ऋग्वेद

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिंदी भावार्थ सहित)



सम्पादक—

श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

प्रथम संस्करण] १९६० [मूल्य ७ रुपया

भूमिका

"वेद ही समस्त धर्मों का मूल है"—यह घोषणा अब से हजारों वर्ष पहले ऋषि-महर्षियों ने की थी और आज सब प्रकार की वैज्ञानिक उन्नति कर लेने पर भी हम उस प्राचीन सत्य से इनकार नहीं कर सकते। वेदों का ज्ञान नित्य है और उसे ईश्वरीय प्रेरणा से उन ज्ञानी जनों ने प्रकट किया है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पर पूर्ण विजय प्राप्त करके मनुष्यमात्र को आत्मवत् देखते थे और इसलिए जो कुछ वे कहते थे उसमें मानवमात्र ही नहीं समस्त सृष्टि के कल्याण और सुख की भावना सन्निहित रहती थी। उन्होंने जो उपदेश दिये हैं, जीवन का जो मार्ग प्रदर्शित किया है, आचार-विचार, व्यवहार के जो नियम बतलाये हैं वे सब त्रिकालबाधित सत्य सिद्धान्तों पर आधारित हैं। उन्होंने समाज और व्यक्तियों के आचरण और पारस्परिक सम्बन्धों के लिए जो विधान बनाया है उसके मूल तत्व अपरिवर्तनीय हैं और जब कभी मनुष्य उन तत्वों से दूर हटता है अथवा उनके विपरीत चलने लगता है, तभी संसार के ऊपर कष्ट और नाश की काली घटायें छा जाती हैं। वेदों के नियम स्वाभाविक और प्राकृतिक हैं, और वे पूर्णतया परमात्मा के आदेशों के आधार पर निश्चित किये गये हैं, इसलिये वे किसी भी दशा में मनुष्य के लिए हानिकर सिद्ध नहीं होते। इसके विपरीत जो धर्म-ग्रन्थ या धर्म-प्रचारक केवल अपने समुदाय या समाज के हित का ध्यान रखकर उपदेश देते हैं और नियम बनाते हैं, उनमें स्वार्थ की भावना किसी न किसी रूप में सन्निहित हो जाती है और उसका अन्तिम परिणाम राग-द्वेष की उत्पत्ति होता है जिससे लोगों को कष्ट सहन करना पड़ता है। कहना नहीं होगा कि संसार के अन्य सभी धर्म एक-एक विशेष सम्प्रदाय या समुदाय के हितों की दृष्टि से बनाये गये हैं, इसलिए मनुष्यमात्र के लिए एक समान उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते। इतना ही नहीं उनके

द्वारा प्रायः बड़े-बड़े वैमनस्यों और कलह की उत्पत्ति होते भी हम देख चुके हैं। पर वेदों में कहीं एक विशेष धर्म या सम्प्रदाय को दृष्टिगोचर रखकर उपदेश नहीं दिया गया है, वरन स्थान-स्थान पर प्राणीमात्र के कल्याण और हित-साधन का ही उपदेश दिया है। यही कारण है कि वेद अनादि काल से एक ही रूप में चले आये हैं और उनकी शिक्षायें निरन्तर एक सी कल्याणकारी रही हैं।

पर यह देख कर प्रत्येक धर्माभिमानी के मन में एक प्रकार के खेद का भाव उदय होगा कि इतना महत्त्वपूर्ण होने पर भी वेद का प्रचार नाममात्र को ही है। ईसाइयों की "बाइबिल" की प्रतिवर्ष कई करोड़ प्रतियाँ बिक जाती हैं और संसार की डेढ़-दो सौ भाषाओं में उसके अनुवाद करके घोर जंगलों तथा बर्फिस्तानों और रेगिस्तानों के मुट्ठी-भर निवासियों तक उसका सन्देश पहुँचाया जा रहा है। कुरान का प्रचार भी कम नहीं है और प्रत्येक धार्मिक मुसलमान अपना यह कर्तव्य समझता है कि कुरान को नित्य पढ़े और उसे पास रखे। एक लेखक ने तो लिखा है कि कुरान के ऊपर गीता से भी अधिक संख्या में भाष्य हो चुके हैं। कुरान का अनुवाद भी संसार की समस्त प्रमुख भाषाओं में हो चुका है और उसका सर्वत्र प्रचार है। पर वेदों के सम्बन्ध में हमको संकोचपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि उनका जैसा होना चाहिए वैसा प्रचार तो दूर रहा, अधिकांश हिन्दुओं ने आज तक वेदों के दर्शन भी नहीं किये। विदेशी लेखकों ने वेदों पर कि[illegible] जमाने में बड़ी खोजबीन की थी और उनके विषय में सैकड़ों पुस[illegible] लिखी थीं, पर वह सब आलोचनात्मक साहित्य है, जिनमें से अ[illegible] लेखकों ने वेदों के अर्थ का अनर्थ करके उनको बदनाम करने की की है। हम विदेशी और विधर्मी लोगों से यह आशा भी नहीं सकते कि वे धार्मिक श्रद्धा के साथ वेदों का अध्ययन या पाठ [illegible] उन्होंने किसी भी दृष्टिकोण से वेदों की चर्चा को "सभ्य-सं[illegible] फैला दिया और उनकी ओर विद्वानों का ध्यान आकर्पित क[illegible] [illegible] ही उनके लिये बहुत है और वे हमारे धन्यवाद के पात्र

प्रश्न तो यह है कि वेदों की संस्कृति के नीचे पले हुए हम हिन्दुओं ने उनके प्रचारार्थ क्या किया? यह सत्य है कि वेदों की मूल संहितायें कई जगह छप चुकी हैं और उनका पूरा या अधूरा हिन्दी अनुवाद भी दो-चार जगह से प्रकाशित किया गया है, पर इनमें से अधिकांश पुस्तकें बीसियों वर्षों तक पड़ी रहकर अब अप्राप्य हो चुकी हैं। न उनके प्रचार का यथोचित उद्योग किया गया और न पुनर्मुद्रण की कोई व्यवस्था हो सकी। पुस्तकालयों में भी जहाँ जो पुस्तक पड़ी है उसे शायद ही कभी कोई खोलकर देखता हो। इस दुरवस्था का एक-मात्र कारण यही है कि न तो जनता को किसी ने वेदों का महत्व ठीक ढङ्ग से समझाने का प्रयत्न किया और न उनको सुलभ रूप में उनके पास पहुँचाने की व्यवस्था की गई। इसलिए सब प्रकार से मनुष्य-मात्र के लिये बहुमूल्य और कल्याणकारी होने पर भी वेद एक छिपे हुए खजाने की तरह अभी तक अधिकांश में अज्ञात जैसी अवस्था में ही पड़े हुए हैं।

वेदों के भाष्य

इसमें सन्देह नहीं कि उपर्युक्त अवस्था का एक कारण वेदों के अर्थ की दुरूहता और उसके सम्बन्ध में फैला हुआ मतभेद भी है। आज की बात छोड़ दीजिये हजारों वर्ष पूर्व भी विद्वानों में वेदार्थ के विषय में वाद-विवाद हुआ करता था और उनके सम्बन्ध में कई प्रकार के मत प्रचलित थे। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा आदि सभी दर्शन शास्त्रों में वेद के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये गये हैं। कोई उनके ज्ञान को ही नित्य मानता है और कोई शब्दों को भी नित्य कहता है। मीमांसा दर्शन के कर्ता जैमिनि ने तो वेदों के प्रत्येक शब्द और उनके अर्थ को अनादि और अटल रूप से निश्चित बतलाया है।

यही कारण है कि अब तक वेदों पर अनेक भाष्य किये गये हैं और उनमें काफी मतभेद है। प्राचीन ग्रन्थों में, भट्ट अ,

भरत स्वामी, वेंकट माधव, उद्गीथ, स्कन्द स्वामी, नारायण, रावण, मुद्गल, महीधर, उव्वट आदि कितने ही भाष्यकारों के नाम मिलते हैं। पर न तो उनके कोई प्रामाणिक ग्रन्थ मिलते हैं और न यही कहा जा सकता है कि उन्होंने चारों वेदों पर विस्तारयुक्त भाष्य लिखा था। ऐसी दशा में प्राचीन समय के विद्वानों में केवल एक सायणाचार्य ऐसे हैं जिनके चारों वेदों के भाष्य पूर्णरूप में मिलते हैं और जिनका आधार लेकर ही देश-विदेश के विद्वानों ने आधुनिक वेद-सम्बन्धी साहित्य की रचना की है। सायण भाष्य पर्याप्त विस्तृत है और उसमें सर्वत्र प्राचीन परम्परा के अनुकूल अर्थ किया गया है। वेदों के प्राचीन भाष्यकार स्कन्द स्वामी, भट्ट भास्कर आदि के मत का भी उन्होंने खयाल रखा है और बीच-बीच में उनके भाष्यों से अपने भाष्य का समर्थन किया है।

आजकल कुछ लोग यह आक्षेप करने लगे हैं कि सायण को वेदार्थ की कुंजी स्वरूप पाणिनि की अष्टाध्यायी और यास्क के निरुक्त आदि का ज्ञान न था और इसलिए उन्होंने केवल पौराणिक कथाओं के अनुकूल ही वेद-भाष्य कर दिया है। पर यह विचार निराधार है। अभी हाल में आर्य समाज के एक माननीय विद्वान् तथा नेता पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने अपनी "सायण और दयानन्द" नामक पुस्तक में इस विषय पर विचार करते हुए लिखा है—

"साधारण आर्यसमाजी समझता है कि सायणाचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी और यास्क के निरुक्त से परिचित नहीं थे और न उन्होंने वेद भाष्य का आधार इन प्राचीन ग्रन्थों को माना है। उन्होंने केवल पौराणिक आख्यायिकाओं के आधार पर ही मन्त्रों का भाष्य कर दिया है। पर जिन्होंने सायण भाष्य का अवलोकन किया है, वे जानते हैं कि सर्व साधारण की यह धारणा निराधार है। सायण के भाष्य में पाणिनि के सूत्रों तथा यास्क के वचनों की भरमार है। सायण की इन प्राचीन मौलिक ग्रन्थों पर श्रद्धा है। इस विषय में सायण भाष्य में वेद के समझने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है।"

वेदार्थ की शैली

हमने अपने इस संस्करण में वेद मन्त्रों का जो संक्षिप्त अर्थ दिया है वह सायण भाष्य के आधार पर ही है। सायण ने सर्व साधारण के समझने लायक अधिकांश मन्त्रों का अर्थ आधिभौतिक दृष्टि से ही किया है। क्योंकि बहुसंख्यक जनता द्वारा वेदों का उपयोग विविध प्रकार के काम्य-यज्ञों के लिए ही होने लगा था, और लोग इसी आधिभौतिक दृष्टि से किये गये अर्थ को स्वाभाविक मानने लगे थे। तो भी सायण ने जहाँ उचित प्रसङ्ग समझा है वहाँ मन्त्रों का अर्थ आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी किया है। हमने भी यथाशक्ति इसी शैली का अनुकरण किया है और आशा है कि इसके द्वारा पाठकों को वेद मन्त्रों के स्थूल अर्थ का सामान्य बोध हो सकेगा।

पर साथ ही हम यह भी कह देना चाहते हैं कि वेदार्थ अत्यन्त गूढ़ विषय है और वह इतने संक्षेप में स्पष्ट रूप से कदापि प्रकट नहीं किया जा सकता। वेद के अधिकांश मन्त्रों के अधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ होते हैं जिनको हम स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप भी कह सकते हैं। स्थूल में बाह्य क्रियाकाण्ड, पूजा, उपासना, प्रार्थना, शिक्षा आदि का समावेश होता है। सूक्ष्म से प्रत्येक पदार्थ या कार्य के वैज्ञानिक रहस्य प्रकट होते हैं और उनको शक्ति रूप में परिणित करके सांसारिक उन्नति के नये-नये मार्गों का ज्ञान होता है। तीसरा कारण रूप अर्थ सबसे अधिक गूढ़ है, क्योंकि बिना आत्म-ज्ञान के वह भली प्रकार हृदयंगम नहीं हो सकता। हर तरह के शाप, वरदान, अणिमा, महिमा, लघिमा आदि अष्टसिद्धियाँ आदि कारण शक्ति के अन्तर्गत आती हैं। इस प्रकार वेदार्थ का जितना अधिक विस्तार किया जायगा उतने ही उसके नये-नये और गूढ़ रहस्य प्रकाशित होते चले जायेंगे। पर प्रस्तुत ग्रन्थ में इसके लिये कोई साधन नहीं है। अत्यन्त संक्षिप्त भावार्थ देने पर भी यह चार हजार पृष्ठ के लगभग होगया है। यदि वेदमन्त्रों के अधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से अर्थ किये जाँय और उनका विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण किया जाय तो इससे दस, बीस

थ भी पर्याप्त नहीं हो सकता। यदि पाठकों ने इस प्रथम प्रयत्न
ाहा और इससे लाभ उठाया तो समय आने पर विस्तृत भाष्य
करने का भी प्रयत्न किया जायगा।

वैदिक स्वर-चिन्ह

वेद की ऋचाओं में अक्षरों के ऊपर और नीचे कई प्रकार की
ड़ी और आड़ी रेखायें देकर उनके अनुसार उन अक्षरों के उच्च,
ध्यम और मन्द स्वर में बोलने के नियम बनाये गये हैं। इनको "स्वर"
कहा जाता है। इनके मुख्य भेद तीन माने गये हैं, अर्थात उदात्त,
अनुदात्त और स्वरित। पर इनमें से भी प्रत्येक स्वर अधिक अथवा
न्यून रूप में बोला जा सकता है इसलिये प्रत्येक के दो भेद हो जाते
हैं, जैसे उदात्त, उदात्ततर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित, स्वरितोदात्त।
इनके अतिरिक्त एक स्वर और माना गया है—'एक श्रुति', जिसमें तीनों
स्वरों का तिरोभाव हो जाता है। इस प्रकार सब मिला कर सात स्वर
माने गये। इनकी व्याख्या महाभाष्यकार महामुनि पतंजलि ने इस
प्रकार की है :—

"स्वयं राजन्त इति स्वराः। आयामो दारुण्यमणुता खस्येतुच्चैः
कराणि शब्दस्य। आयामो गात्राणां निग्रहः, दारुण्यं स्वरस्य दारुणता
रूक्षता, अणुता कण्ठस्य, कण्ठस्य संवृतता, उच्चैः कराणि शब्दस्य।

"अन्वव सर्गो गात्राणां शिथिलता, मार्दवं, स्वरस्य मृदुत
स्निग्धता, उरुता खस्य महत्ता कण्ठस्येति नीचैः कराणि शब्दस्य।"

"त्रैस्वर्य्येणाधीमहे, त्रिप्रकारै रज्भिरधीमहे, कैश्चिदुदात्तगु
कैश्चिदनुदात्तगुणै, कैश्चिदुभयगुणैः। तद्यथा शुक्लगुणः शुक्लः, कृ
गुणः कृष्णः, य इदानीमुभयगुणः स तृतीयामाख्यां लभते, क
इति वा, सारङ्ग इति वा।"

अर्थात् "जो बिना दूसरे की सहायता के स्वयं ही प्रका
अथवा प्रकट हैं वे स्वर कहे जाते हैं। अंगों का रोकना, वा
रूखा करना अथवा उच्च स्वर से बोलना, कण्ठ को भी कुछ रो

ये सब बातें शब्द के "उदात्त" करने वाली होती हैं अर्थात् उदात्त स्वर इन्हीं नियमों के अनुकूल बोला जाता है।

"शरीर के अङ्गों या गात्रों का ढीलापन, स्वर की कोमलता, कण्ठ को फैला देना, ये सब बातें शब्द को 'अनुदात्त' करने वाली हैं। इस प्रकार हम सब तीन प्रकार के स्वरों से बोलते हैं, अर्थात् कहीं उदात्त, कहीं अनुदात्त और कहीं उदात्तानुदात्त अर्थात् स्वरित। जैसे श्वेत और काले रंग अलग-अलग होते हैं, परन्तु इन दोनों को मिला देने से जो रंग पैदा होता है उसका नाम तीसरा ही होता है, अर्थात् खाकी अथवा आसमानी इसी प्रकार उदात्त और अनुदात्त के गुण अलग-अलग हैं पर इन दोनों के मिला देने से एक तीसरा ही स्वर पैदा हो जाता है, जिसे "स्वरित" कहते हैं।"

"एक श्रुति" में भी उदात्त और अनुदात्त दोनों का सम्मिश्रण होता है, इसलिए "स्वरित" और "एक श्रुति" का भेद करने में कठिनाई पड़ती है। इस सम्बन्ध में प्राचीन व्याख्याकारों ने यह मत प्रकट किया है कि 'स्वरित' में उदात्त और अनुदात्त का सम्मिश्रण इस प्रकार होता है जैसे काठ और लाख का जोड़। ये दोनों एक दिखाई पड़ने पर भी अलग-अलग दिखलाये जा सकते हैं, और अनुभव किये जा सकते हैं। पर एक श्रुति में दोनों प्रकार के स्वरों का मेल इस प्रकार होता है जैसे दूध और पानी का, जिनको न अलग-अलग किया जा सकता है, न अनुभव में लाया जा सकता है।

इन सात भेदों में भी एक दूसरे का संयोग होने से कई प्रकार के भेद पैदा होते हैं, जिनके लिए स्वर चिन्हों में कुछ परिवर्तन किया जाता है। "स्वरित" के ही नौ भेद बतलाये गये हैं :—

(१) संहितज (२) जात्य (३) अभिनिहित (४) क्षैत्र (५) प्रश्लिष्ट (६) तैरोव्यञ्जन (७) वैवृत्त अथवा पादवृत्त (८) तैरो विराम (९) प्रतिहित।

कई प्राचीन ग्रन्थों में स्वरों के अठारह भेद लिखे हैं और कहते हैं कि आरम्भिक काल में लोग उन सबका स्पष्ट उच्चारण कर लेते थे।

-जैसे लोगों के रहन-सहन में कृत्रिमता आती गई और उनका
ान प्राकृतिक फल, मूल आदि के बजाय तरह-तरह के स्वादिष्ट
न और पकवान होने लगे, वैसे-वैसे ही उनके कण्ठ-स्वर में भी
वर्तन होने लगा। इसके फल से विभिन्न प्रकार की सूक्ष्म ध्वनियों
निकालने में उनको कठिनाई होने लगी। तब स्वरों की संख्या सात
र्दी गई। फिर जब इनका उच्चारण भी लोग ठीक-ठीक करने में
असमर्थ होगये तब स्वर संख्या घटाते-घटाते तीन ही रह गई। पर
वर्तमान समय में इनको भी शुद्ध रूप से उच्चारण कर सकें ऐसे वेद-
पाठी इने-गिने रह गये हैं। इसलिये अब हाथ को ऊपर नीचे करके
ही स्वरों का बोध कराया जाता है।

स्वरों के लिये जिन चिन्हों का प्रयोग किया जाता है उनके
सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद दृष्टिगोचर होता है। साधारणतया अनु-
दात्त के लिये अक्षर के नीचे आड़ी लकीर देने तथा स्वरित के लिये
अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा बनाने का नियम है। उदात्त का कोई चिन्ह
नहीं, उसका इन्हीं दो स्वरों की स्थिति के आधार पर उच्चारण किया
जाता है। पर ये चिन्ह भी प्रत्येक स्थान में एक से नहीं हैं। भिन्न-भिन्न
वैदिक शाखा वालों ने उनमें बड़ा अन्तर कर रखा है जिससे साधारण
पाठक को बड़ा भ्रम हो जाता है। इस विषय में स्वर-शास्त्र की खो
करने वाले एक विद्वान् श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी पुस्त
में लिखा है :—

"वैदिक वाङ्मय के जितने ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं उनमें उद
अनुदात्त और स्वरित स्वरों का अंकन (संकेत अथवा चिन्ह)
प्रकार का नहीं है। उनमें परस्पर अत्यन्त वैलक्षण्य है। एक ग्र
जो स्वरित का चिन्ह देखा जाता है, वही दूसरे ग्रन्थ में उद
चिन्ह माना जाता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थ में जो अनुद
चिन्ह है, वह अन्य ग्रन्थ में उदात्त का चिन्ह हो जाता है
संहिता" का स्वराङ्कन प्रकार सबसे विलक्षण है। उसके पा
संहिता के स्वरांकन से भी पूर्णतया मेल नह

इसलिए वेद के विद्यार्थी को पदे-पदे सन्देह और कठिनाई उपस्थित होती है ।"

इन बातों के अतिरिक्त स्वर-चिन्ह युक्त छपी वेद की पुस्तकों में एक नई कठिनाई प्रेस-सम्बन्धी हमारे अनुभव में आई है। इनके कारण एक साधारण पाठक के लिये मन्त्रों के पढ़ने में असुविधा होती है और अनेक बार वे गलती कर जाते हैं। प्रेस के कर्मचारी अक्षरों के ऊपर लगी छोटी रेखा को प्रायः अनुस्वार का चिन्ह समझ कर वैसा ही कम्पोज कर देते हैं। इसी प्रकार जिस अक्षर के नीचे 'अनुदात्त' की आड़ी रेखा लगाई गई है और उसमें 'छोटे उ' की मात्रा भी लगी हो तो वह भी प्रायः निगाह से ओझल हो जाती है।

इन कारणों से हमने इस संस्करण में स्वर चिन्हों का प्रयोग नहीं किया है। इनकी आवश्यकता सस्वर वेद पाठ करने में होती है, और इस कार्य के लिये कई स्थानों में मूल संहिता की पुस्तकें छपी हैं। हमारा मुख्य उद्देश्य वेदों के पठन पाठन को प्रेरणा देने का है, जिससे साधारण लोग भी हिन्दू-धर्म के इस "मूल" को स्वयं पढ़ सकें और उसका साधारण तात्पर्य समझ सकें। इस प्रकार "स्वरों" का परित्याग कोई नवीन बात नहीं है। अब से लगभग तीस वर्ष पूर्व बिहार की एक धार्मिक संस्था की तरफ से "ऋग्वेद" का भाष्य आठ खण्डों में प्रकाशित किया गया था, जिसके लेखक "भारतधर्म महामण्डल" के महोपदेशक पं० रामगोविन्द वेदान्तशास्त्री थे। उन्होंने अप्रामाणिक जानकर उसमें स्वरों का प्रयोग नहीं किया था। इसी प्रकार अभी कुछ वर्ष पूर्व अहमदाबाद के परमहंस परिव्राजक श्री भगवदाचार्य ने सामवेद संहिता का भाष्य प्रकाशित कराया था। उसमें "स्वरों" को छोड़ दिया गया था। स्वामी जी ने स्पष्ट रूप से लिखा था कि "मैं वेदों के स्वरों को अनियंत्रित मानता हूँ। तभी "अनन्ता वै वेदाः" की उक्ति सार्थक हो सकती है। स्वर मेरे साथ चल नहीं सकते।" प्राचीन काल के विद्वानों ने भी उपनिषद् आदि ग्रन्थों में जहाँ वेद-मन्त्रों के उद्धरण दिये हैं वहाँ स्वर चिन्ह नहीं लगाये हैं। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण तो

"ईशावास्योपनिषद्" है जो पूर्णतः "यजुर्वेद" के अन्तिम अध्याय की प्रतिलिपि है और जिसे सर्वत्र बिना स्वर चिन्हों के लिखा व छापा गया है ।

वेदों के ऋषि, देवता और छन्द

वेद के प्रत्येक मन्त्र का कोई न कोई ऋषि माना गया है । अनेक लोग ऋषियों और देवताओं का एकीकरण करने की चेष्टा किया करते हैं, पर "ऋग्वेद" के अध्ययन से स्पष्ट प्रकट होता है कि उसकी ऋचाएँ अवश्य ही कुछ प्रधान ऋषियों और उनके वंशजों द्वारा प्रकट की गई हैं । 'ऋग्वेद' में दस मण्डल हैं, इनमें से पहले और दसवें सबसे बड़े हैं, इनमें से प्रत्येक में १६१ सूक्त हैं और ये दोनों मिलकर इस वेद के एक तिहाई भाग के बराबर हैं । इन दोनों मण्डलों में विविध ऋषियों द्वारा प्रकट किये गये सूक्तों का संग्रह किया गया है । अधिकांश सूक्त एक-एक ऋषि के ही हैं, कहीं-कहीं ऐसे सूक्त भी मिलते हैं जिनके दृष्टा एक से अधिक ऋषि हैं । इन दो मंडलों के सिवाय दो से सात तक के मंडलों में तो प्रायः एक ही ऋषि के द्वारा प्रकट किये गये सूक्त दिये गये हैं, अगर दो-चार नाम और हैं तो वह उनके ही वंश वालों के हैं । इस प्रकार द्वितीय मंडल में गृत्समद, तीसरे में विश्वामित्र, चौथे में वामदेव, पाँचवें में अत्रि, छठे में भरद्वाज, तथा सातवें में वसिष्ठ के सूक्तों का संग्रह है । आठवें में यद्यपि और भी बहुत से ऋषियों के सूक्त हैं, पर उसमें कण्व ऋषि के वंश की प्रधानता दिखलाई पड़ती है । नौवें मंडल में भी अनेक ऋषियों का संग्रह ही है । इसका अर्थ यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अन्य ऋषि जिनके सूक्त कम संख्या में हैं वे किसी भी दृष्टि से न्यून महत्व रखते हैं । इस प्रकार केवल ऋग्वेद के ऋषियों की संख्या लगभग ३०० है । अन्य वेदों के मंत्रों के रचियता भी लगभग ये ही हैं, यजुर्वेद और अथर्ववेद में इनके अतिरिक्त बहुत थोड़े नये नाम मिलते हैं । हमने प्रत्येक सूक्त पर उसके ऋषि का नाम दिया है, तो

भी यहाँ हम ऋषियों की नामावली देते हैं जिससे पाठकों को इस विषय का सम्यक परिचय प्राप्त हो सकेगा :—

मधुच्छन्दा, जेत, मेधातिथि, शुनःशेप, हिरण्यस्तूप, कण्व, सव्य, नोध, पाराशर, गोतम, कुत्स, कश्यप, ऋज्रास्व, कक्षिवान्, परुच्छेप, दीर्घतमस, अगस्त्य, सोमहूति, कूर्म, ऋषभ, उत्कल, देवश्रवा, देवव्रत, प्रजापति, बुध, गविष्ठ, कुमार, ईश, सुतम्भरा, धरुण, पुरु, विश्वसाम, द्युम्न, विश्वचर्षणि, वसुयु, विश्ववर, बभ्रु, अवस्यु, पृथु, वसु, प्रतिरथ, प्रतिभानु, पुरुमीढ, गोपवन, सप्तवध्रि, विरूप, उपणाकाव्य, कृष्ण, विश्वक, नृमेध, अपाला, श्रुतकक्ष, सुकक्ष, बिन्दु, पूतदक्ष, जमदग्नि, नेम, प्रस्कण्व, त्रित, पर्वत नारद, त्रिशिरा, हविर्धान आङ्गि, शंख, दमन, मथित, विमद, वसुक्र, ऐलूष, मौजवान, धानाक, अभितपा, घोष, विश्ववारा, वत्सप्रि, सप्तगुः, वैकुण्ठ, बृहदुक्थो, गोपायन, मानव, प्लात, वसुकर्ण, अयास्य, सुमित्र, बृहस्पति, गौरिवीति, जरत्कर्ण, स्यूमरश्मि, सौचीक, विश्वकर्मा, सूर्या सवित्री, पायु, रेणु, नारायण, अरुण, शार्यात, ताक्ष्य अर्बुद, वरु, भिषग्, मुद्गल, अष्टक, भूतांश, पणयोऽसुर, सरमा, अष्टादंष्ट्र, उपस्तुत, भिक्षुः, बृहद्दिव, चित्रमह, कुशिक, विहव्य, सुकीर्ति, शकपूत, मान्धाता, अङ्ग, श्रद्धा कामायनी, यमी, शिरम्बिठ, केतु, भुवन, चक्षु, शची पौलोमी, रक्षोहा, कपोत, अनिल, शबर, संवर्त, ध्रुव, पतंग, अरिष्टनेमि, जय, प्रथ, उलो, सुपर्ण, देवला, श्यावाश्व, रहूगण, भृगु कर्णश्रुत, अम्बरीष, च्यवन, उर्वशि, द्रोण, राम, घर्म, रातहव्य, सुहोत्र, शुनहोत्र, नर, गर्ग, कश्यप, नाभाग, त्रिशोक, आदि-आदि ।

× × ×

वैदिक देवताओं की सूची भी काफी लम्बी है । 'ऋग्वेद' में तो परमात्मा की शक्ति के विभिन्न अङ्ग रूप प्रकृति की संचालक शक्तियों की ही अधिकांश में स्तुति और प्रार्थना की गई है, पर अथर्ववेद में जहाँ औषधियों, जड़ी बूटियों, व्याधियों के निवारण के अन्य उपायों अथवा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन किया है वहाँ

अधिष्ठात्री शक्ति को देवता मानकर उसी का नाम दिया गया है। यजुर्वेद और सामवेद में प्रायः सभी देवता ऋग्वेद के ही हैं। नीचे ऋग्वेद के देवताओं की सूची दी जाती है :—

अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, मरुत, सोम, ब्रह्मणस्पति, अर्यमा, आदित्य, सविता, त्वष्टा, सरस्वती, द्यावा-पृथिवी, ऋभुगण, सूर्य, रुद्र, विष्णु, उषा, वैश्वानर, ऋतु, दक्षिणा, पूषा, इन्द्राणी, वरुणाणी, अग्नपेयि, सिन्धु, स्वनय, बृहस्पति, वाक्, काल, रति, अन्न, वनस्पति, राका, सिनीवाली, आयलयत, कपिञ्जल, यूप, पर्वत, उच्चैश्रवस, क्षेत्रपति, सीता, पर्जन्य, धेनु, प्रस्तोक, पृश्णि, वास्तोष्पत्ति, सोमयनमान, पितृ, मृत्यु, धाता, वैकुण्ठ, आत्मा, निर्ऋति, ज्ञान, श्रद्धा, शचि, तार्क्ष्य, आदि।

अथर्ववेद में इनमें से सभी मुख्य-मुख्य देवताओं के स्तोत्रों के अतिरिक्त इन देवताओं के नाम भी मिलते हैं :—

वाचस्पति, आपः, असुर, यक्ष्म नाशनम, विद्युत, योपित, आसुरी वनस्पति, यातुधान, मधुवनस्पति, हिरण्यम्, गन्धर्व और अप्सरायें, जङ्गिडमणि, चन्द्र, पाश्निपर्णी, पशु, दम्पती पशुपति, पर्णमणि, अश्वत्थ, हरिण, अष्टका, शाला, गोष्ठ, योनि, यामिनी, काम, सांमनस्य, व्याघ्र, वृषभ, शंखमणि, रोहिणी वनस्पति, दिशायें, अपामार्ग, . और शव मन्यु, ब्रह्मौदन, जातवेदः, लाक्षा, तक्म नाशनम्, सर्प-वेपनाशनम, ब्रह्मगवी, दुन्दुभि, गर्भ, कृत्या प्रतिहरणम्, ईर्ष्या विनाशम, यक्ष्मा, शमी, अघ्न्या, अर्क (मदार), वाजी (अश्व), कासा (खाँसी), मेधा, पिप्पली, भग, स्मर, वज्र, दुःस्वप्न नाशनम, इडा, अक्षि, मन, कुहू, अरिनाशनम्, सुखम्, अमावास्या, पौर्णमासी, प्रश्न, वेदी, भेषज, विराट, अध्यात्म, व्रात्य, अतिथि, विद्या, ब्रह्मचारी, शतौदन, आञ्जनम आदि, आदि।

"अथर्ववेद" का मुख्य विषय अध्यात्म तथा ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ जीवन के विविध विषयों का ज्ञान प्रदान करना है। उसमें विविध प्रकार की व्याधियों को हटाने के लिये औषधियों और मन्त्र-तन्त्र का

विधान है, और इन्हीं सबको उसमें देवता मान लिया गया है। अनजान व्यक्ति औषधियों तथा शारीरिक और मानसिक व्याधियों के निवारण के उपायों को देव-श्रेणी में देखकर आश्चर्य करते हैं पर जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं प्रत्येक पदार्थ और विधान के जड़ और चेतन दो विभाग होते हैं। आत्मज्ञानी पुरुष मुख्यतः प्रत्येक पदार्थ में चेतन शक्ति को ही देखता है, क्योंकि वास्तविक कार्य और प्रभाव इसी का होता है। इसी तत्व को लक्ष्य करके एक विद्वान् ने लिखा है :—

"अभी भी यहाँ के या किसी भी अन्य देश के महात्मा ऐसा ही अनुभव करते हैं और जड़ पदार्थों से भी बातें करते है। जो 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' को जीवन में ढाल देते हैं वे पशु, पक्षी, पत्थर, मिट्टी से भी बातचीत करते हैं। भला जो वैद्य अपनी औषधियों से बातें करना नहीं जानता, वह भेषज का मर्म क्या जानेगा? जो वीर अपनी तलवार से बातें नहीं करता, वह भी कोई वीर है? सचाई तो यह है कि अपने में चेतन का जितना अधिक विकास होगा, मनुष्य उतना ही जड़ वस्तुओं से चेतनवत् व्यवहार करेगा। इसके विपरीत जिसमें चेतनतत्व का विकास नहीं हुआ है, जिसके मन, मस्तिष्क और प्राण जड़ानुगत हैं, वह तो मनुष्य को भी जड़ समझेगा और जड़ की ही तरह उसके साथ मनमाना जघन्य व्यवहार करेगा। महात्माओं और जड़वादी मनुष्यों का यह भेद प्रतिदिन प्रत्यक्ष देखा सुना जाता है। फलतः वेद मन्त्रों का चेतनानुगत होना उनकी अत्युच्च अध्यात्म-भूमिका का परिचायक है।"

वैदिक ऋषि भली प्रकार जानते थे कि शरीर की शक्ति से मन की शक्ति अनेक गुनी प्रबल है और उसकी अपेक्षा आत्मा की शक्ति बहुत अधिक प्रभावशाली है। इसलिये उन्होंने सभी मनुष्यों को मानसिक शक्ति के विकास करने और सांसारिक कार्यों में इसका उपयोग करने का मार्ग दिखलाया है, और इसमें सन्देह नहीं कि आज भी वे ही मनुष्य वास्तविक सफलता प्राप्त करते हैं। जिनको

शक्ति प्रबल है और उसी के द्वारा वे अन्य मनुष्यों को अभिभूत करके अपना अनुगामी बना सकते हैं।

+ + +

वैदिक छन्दों का ज्ञान बड़ा महत्वपूर्ण है। सभी वैदिक मन्त्र छन्दों में हैं और जब तक छन्दों का ज्ञान नहीं होता तब तक उनको शुद्ध रूप से पढ़ा नहीं जा सकता और न यथोचित फल प्राप्त किया जा सकता है। वेदमन्त्रों में जिन छन्दों का व्यवहार किया गया है वे मध्यकाल के संस्कृत काव्यों के छन्दों से बहुत भिन्न हैं। वेदों का अनुष्टुप छन्द तो बाद के संस्कृत ग्रन्थों में भी दिखलाई पड़ता है, पर अन्य छन्द वेद के सिवाय अन्यत्र काम में नहीं आये हैं। संस्कृत के मध्यकालीन और आधुनिक छन्द प्रायः चार चरणों के होते हैं, पर वेदों में तीन चरणों के छन्दों की बहुतायत है। जैसे इन छन्दों के नाम भिन्न हैं उसी प्रकार इन छन्दों का पिङ्गलशास्त्र भी अन्य ग्रन्थों के छन्दों से भिन्न है। वैदिक पिङ्गल के मुख्य छन्द ये हैं :—

(१) गायत्री (२) उष्णिक् (३) अनुष्टुप् (४) बृहती (५) पंक्ति (६) त्रिष्टुप् (७) जगती। ये क्रमशः एक दूसरे से अधिक चरणों के होते हैं। इनमें से प्रत्येक के सात भेद हैं (१) आर्षी (२) दैवी (३) आसुरी (४) प्राजापत्या (५) याजुषी (६) साम्नी (७) आर्च्ची (८) ब्राह्मी। इस प्रकार ५६ भेद तो मुख्य छन्दों के ही हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त शक्वरी, अष्टिः, ककुभ, कृतिः, धृतिः, प्रकृति, प्रगाथा, अभिसारिणी आदि नाम के छन्द भी पाये जाते हैं। फिर इनमें से दो-दो और तीन-तीन छन्दों का सम्मिलन करके जो छन्द लिखे गये हैं उनकी गिनती सैकड़ों तक पहुँचती है। उदाहरणार्थ कुछ नाम यहाँ दिये जाते हैं :—

भुरिक् त्रिष्टुप्, परानुष्टुप त्रिष्टुप्, पुरोबार्हत त्रिष्टुप्, त्रिपदा भुरिगार्ची गायत्री, सम विषमा गायत्री, पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा जगती, त्रिष्टुब् बृहती गर्भाति जगती, विपरीत पाद लक्ष्मा पंक्ति, षटपदा ककुम्मती शक्वरी, पुरोति जगता जगती, पुरस्ताद विराड बृहती,

हतीगर्भा त्रिष्टुप, उष्णिग् बृहतीगर्भा परात्रिष्टुप पट्पदाऽति जगती, मध्ये ज्योतिरुष्णिग्गर्भा त्रिष्टुप, विषम पादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती, चतुष्पदा उष्णिक्, आस्तार पंक्ति, सप्तपदा विराट शक्वरी, पिपीलक मध्या निचृद गायत्री, चतुष्पदा पुरः शक्वरा भुरिग् जगती, आदि आदि ।

सच पूछा जाय तो जिस प्रकार वेदों को अनन्त बतलाया गया है, उसी प्रकार उनके देवता, छन्द आदि सभी अनंत हैं। "अनन्ता वै वेदाः" यह वाक्य इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कहा गया है ।

वेदों का विषय

वेदों का मूल वर्ण्य विषय "सृष्टि-विज्ञान" या सृष्टि विद्या है । सृष्टि का प्रारम्भ कैसे हुआ, इसका विस्तार किस प्रकार हुआ, इसके संचालन के नियम क्या हैं, इस विधान में मनुष्य का क्या स्थान और कर्तव्य हैं—ये ही मुख्य विषय हैं जिनको वेदों में भिन्न-भिन्न विधियों से, तरह-तरह के संकेतों, प्रतीकों, रूपकों, काव्यालंकारों द्वारा समझाया गया है। क्योंकि इन विषयों का ज्ञान छोटे बड़े, विद्वान् मूर्ख सभी के लिए आवश्यक और उपयोगी है, इसलिए उन त्रिकालदर्शी ऋषियों ने मानव-जीवन के लिये महत्त्व के सभी विषयों को ऐसे ढङ्ग से प्रकट किया है कि जिस प्रकार एक विद्वान उसमें से चमत्कारी सूक्ष्म और अध्यात्म तत्वों को ढूँढ़ लेता है, उसी प्रकार एक विद्या-विहीन अपढ़ व्यक्ति भी अपने जीवन को सफल और सुखमय बनाने वाली बातों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। इस सम्बन्ध में वेदों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एक प्रसिद्ध विद्वान ने हाल ही में कहा था :—

"वेद सृष्टि विद्या का दूसरा नाम है । सृष्टि की रहस्यमयी प्रक्रिया की व्याख्या वेद की नाना विद्याओं के रूप में उपलब्ध होती है। इन विद्याओं का अपरिमित विस्तार है । जैसे सृष्टि अनन्त है, वैसे ही वेद विद्या भी अन्तहीन है। विराट और अणु इन

में अर्वाचीन विज्ञान की यही तथ्यात्मक स्वीकृति है कि इन दोनों की रहस्यमयी रचना का वारापार नहीं। हमारे ऋषियों ने भी अनगिनती वर्ष पूर्व यही कहा था कि "अणो रणीयान महतो महीयान" इन दोनों का मूल कोई अनन्त अव्यक्त अक्षर तत्व है। अणु (सबसे छोटा) और महत् (सबसे बड़ा) दोनों में उसी की महिमा प्रकट हो रही है। वह अव्यक्त पुरुष स्वयं महत्मात्मा या अनन्त है। यह विश्व विराट्, अनादि और अनन्त है, इसका स्रोत अविनाशी है। देश और काल, अथवा नाम और रूप के परिवर्तनशील स्वस्तिक में इसका नित्य नया रूप प्रकट हो रहा है। इस प्रकार ऋषि और वैज्ञानिक दोनों ही विश्व के रहस्य की व्याख्या करते हैं। पर ऋषियों का दर्शन इस ध्रुव विश्वास से भरा हुआ है कि यह व्यक्त विश्व किसी अव्यक्त मूल स्रोत से उद्गत हुआ है। वह अव्यक्त मूल इस व्यक्त की सृष्टि करके इसी में अनुप्रविष्ट हो रहा है—समाया हुआ है।"

दैवतवाद

वेदों में अनेक देवताओं की स्तुतियाँ और प्रार्थनाएँ मिलती हैं। वैदिक ऋषियों के मतानुसार प्रत्येक जड़ अथवा भौतिक पदार्थ का एक चेतन आत्मा भी होता है वही उसका देवता है। इस दृष्टि से वैदिक सृष्टि विद्या दो भागों में विभाजित है, एक देव तत्व जिसे शक्ति-तत्व भी कह सकते हैं और दूसरा 'भूत' अथवा स्थूल पदार्थ। बिना देवता अथवा शक्ति के किसी 'भूत' या भौतिक पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता सम्भव नहीं। जिस प्रकार मृत शरीर में भी नेत्र रहते हैं, पर वे इस कारण नहीं देख सकते कि उनकी चेतन शक्ति पृथक् हो गई है, इसी प्रकार बिना देव-तत्व के केवल जड़-पदार्थ निर्जीव है। इस बात को जो व्यक्ति नहीं समझते वे इस बात पर सन्देह प्रकट करते हैं कि वेदों में अग्नि, पानी, वनस्पति, औषधि, सूर्य वायु चमस आदि सब पदार्थों की मनुष्यों के समान स्तुति क्यों की है और उनसे धन, सौभाग्य, वरदान आदि की याचना करते क

क्या परिणाम हो सकता है ? इसका स्पष्टीकरण करते हुए एक प्राचीनता के पोषक लेखक ने कहा है :—

"ऋषियों ने जिन प्राकृत शक्तियों की स्तुति वा प्रशंसा की है वह उनके स्थूल रूप की नहीं है, प्रत्युत उनकी शासिका अथवा अधिष्ठात्री चेतन शक्ति की है। इस चेतन शक्ति को वे परमात्मा से पृथक नहीं मानते थे। परमात्म रूप ही मानते थे। उन्होंने 'ऋग्वेद' के प्रथम मन्त्र में ही अग्नि की स्तुति की है, परन्तु अग्नि को परमात्मा से भिन्न मानकर नहीं। वे स्थूल अग्नि के रूप को जानते हुए भी सूक्ष्म अग्नि-परमात्म-शक्ति-रूप के स्तोता और प्रशंसक थे। वे मरणशील, (नाशवान) अग्नि में व्याप्त अमरता के उपासक थे। वेद में कहा गया है-"अपश्यमहं महतो महित्वम मर्त्यस्य विक्षु" (मं० १०-७१-१) अर्थात "मरणशील मनुष्यों में मैंने अमर अग्नि की महिमा को देखा।" इसी तरह 'इन्द्र' में भी वे परमात्म शक्ति को देखते थे। कहा गया है कि "जो सृष्टिकर्ताओं के भी सृष्टिकर्ता हैं, मैं उनकी स्तुति करता हूँ (मं० १०-१२८-७)। जितने देवता हैं उन सबको वे उसी प्रकार परमात्म रूप समझते थे जिस प्रकार एक ही सूत्र में माला के समस्त दाने ओत-प्रोत रहते हैं और सब मिलकर केवल एक माला ही समझे जाते हैं।"

वास्तविक बात यही है कि वैदिक ऋषिगण अध्यात्मवादी थे और सर्वदा चैतन्य जगत में ही विचरण किया करते थे। वे अपने को किसी दशा में केवल हाड़-मांस का पुतला समझने को तैयार न थे। इसलिये उन्होंने अपने सांसारिक जीवन को पूर्णतया आधिदैविक और आध्यात्मिक रंग में रँग दिया था और वे सर्वत्र और सदैव अपने को देवशक्तियों के से घिरा हुआ अनुभव करते थे। वे उन शक्तियों से भौतिक मनुष्यों की तरह ही बातचीत और व्यवहार करते और उनको भी अपने जीवन और समाज का एक अविच्छिन्न अंग मानते थे। इसका परिणाम यह होता था कि संसार में रहते और उसके सब व्यवहारों को करते हुए भी उनकी भावनायें बहुत

धरातल पर रहती थीं और इसी के फलस्वरूप वे जीवन के परम
को देख सकने में समर्थ होते थे। यही कारण था कि सब देव-
ों के एक ही विराट शक्ति के अंश होने पर भी वे उनसे पृथक-
क शक्तियों के रूप में भी लाभ उठा सकते थे।

वैदिक समन्वयवाद

उपर्युक्त विवेचन से वेदकालीन ऋषियों की समन्वयवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। समन्वयवाद भारतीय संस्कृति का एक बहुत बड़ा गुण है और यही कारण है जहाँ संसार की अन्य संस्कृतियाँ एक-दो हजार वर्षों के भीतर ही लोप होगईं, वर्तमान भारतीय संस्कृति, विदेशी इतिहासज्ञों के हिसाब से भी, कम से कम आठ-दस हजार वर्ष पुरानी अवश्य हो चुकी है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका अग्र प्रधानता वैदिक आदर्शों को ही है। मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति के लिए जिन तीन बातों अर्थात ज्ञान, उपासना और कर्म की आवश्य-कता होती है, उनका पूर्ण समन्वय वेदों में पाया जाता है। विद्वानों ने 'ऋग्वेद' को ज्ञान, 'यजुर्वेद' को कर्म 'सामवेद' को उपासना और 'अथर्ववेद' का अध्यात्म का विवेचन करने वाला माना है, पर स्वयं वेदों में स्थान-स्थान पर यही घोषणा की गई है कि चारों वेद औ उनका ज्ञान एक ही है :—

तस्माद् यज्ञात सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद् जायत ॥ ऋ० १०।६

अर्थात् ऋक्, यजु, साम, अथर्व चारों वेद एक ही ईश्व ज्ञान से प्रादुर्भूत हुए हैं, उनमें किसी प्रकार का अन्तर करना अ भेदभाव प्रकट करना अनुचित और अनावश्यक है। पर मनुष्य प्रायः स्वार्थ बुद्धि की प्रधानता रहती है, जिसके कारण वे दाल चावल की खिचड़ी अलग पकाकर मतभेद और फूट क बो देते हैं। यही कारण था कि बाद में इसी देश में ऐसे वि विद्वान् पैदा होगये जिन्होंने वेद की इस समन्वयवादी

मूलाधार ज्ञान, उपासना और कर्म में से केवल एक को पकड़ कर दूसरे की निन्दा करनी आरम्भ करदी। शंकराचार्य जैसे महान् व्यक्ति भी लोगों को ऐसा ही उपदेश देने लगे कि इन तीनों में "ज्ञान ही उद्धार का मार्ग है, कर्म बन्धन में डालने वाला है। इसलिये ज्ञानी व्यक्ति को कभी कर्म नहीं करना चाहिए।" इधर उपासना का डंका पीटने वालों ने भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ बतला कर ज्ञान और कर्म की उपेक्षा करने की प्रेरणा दी। गीताकार ने वेदों के आदर्श पर ज्ञान कर्म और उपासना के समन्वय का उपदेश दिया, पर इन प्रतिद्वन्द्वी मनोवृत्ति के आचार्यों ने उसके भी बीसियों तरह के भाष्य अपने-अपने सिद्धान्त का पोषण करने वाले बनाकर तैयार कर दिये। इसी सम्प्रदायवाद ने भारतीय समाज में फूट और निर्बलता को उत्पन्न किया, जिसका अंतिम परिणाम देश का पतन और विदेशियों की पराधीनता के रूप में प्रकट हुआ। यदि समाज को संगठित, शक्तिशाली और कार्यक्षम बनाना है तो इसके लिए सर्वश्रेष्ठ आदर्श वेदों का समन्वयवाद ही है, जिसका सारांश स्वयं 'वेद' ने इन स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दिया है—

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सञ्जानाना उपासते॥
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ऋ० १०।१९१।२

इसका आशय यह है कि 'सब मनुष्य भली प्रकार मिलकर और प्रेमपूर्वक आपस में वार्तालाप करें, सबके मनों में एक समान भाव हों और वे अविरोधी ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार विद्वान् लोग सदा से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करते हुए [illegible] है, उसी प्रकार तुम भी ज्ञान और उपासना में [illegible] रहो। सब लोगों के संकल्प, निश्चय, अभिप्राय एक से हों, सबके हृदयों में समानता का भाव हो, सबके मनों में [illegible] पूर्वक अच्छी तरह से [illegible]।'

"[illegible]

आदेश असंदिग्ध रूप से दिया है :—

संज्ञानन्नं स्वेभिः संज्ञान मरणेभिः ।
संज्ञान माश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छताम् ॥
सं जानामहै मनसा सं चिकित्वा मा युत्स्महि मनसा दैव्येन ।
मा घोषा उत्थुर्बहुले विनहिते मेषुः पप्तदिन्द्रस्याहन्यागते ॥

अर्थात्—"सब लोग एक मत हों, प्रतिकूल बातें करने वाले भी परस्पर में अनुकूल हो जायें। हे सर्व शक्तिमान परमात्मा! अपने पराये, दोनों प्रकार के मनुष्यों की समान मनोवृत्तियाँ हों। हम अपने मन को दूसरे के मन के साथ जोड़ें और मिलकर सत्कार्य करें।"

पाठकों को अनेक मंत्र इसके विपरीत भी मिलेंगे, जिनमें शत्रुओं के नाश की, उनका धन और पशु छीन लेने की, उनकी हर तरह से दुर्गति की बात कही गई है। विशेष रूप से 'अथर्ववेद' में तो 'शत्रु नाश' के अनेक मंत्र, तन्त्र और गूढ़ उपायों का वर्णन किया गया है। पर वहाँ उनका आशय विशेष परिस्थिति और विशेष व्यक्तियों से ही है। उनको सार्वजनिक रूप से ग्रहण करने और प्रचार करने की बात नहीं है। जैसे अन्यायी और अत्याचारी कौरवों के साथ युद्ध करने का समर्थन सबसे अधिक भगवान कृष्ण ने किया और युद्ध-काल में स्वयं तरह-तरह की गुप्त योजनाओं, चालाकियों और असत्यपूर्ण दिखलाई पड़ने वाली युक्तियों से भी काम निकाला, उसी प्रकार वेद में धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले शत्रुओं, यातुधानों, राक्षसों के विरुद्ध ही प्राय: शत्रु-भाव के उद्‌गार प्रकट किये गये हैं। अन्यथा संसार के सामान्य मनुष्यों को वेद भगवान का उपदेश समन्वय, सहयोग, संगठन, न्याय और सत्य के अनुकूल आचरण का ही है।

वेद और पशुहिंसा

अनेक लोग वेदों में पशुहिंसा होने का आक्षेप करते हैं। कुछ भाष्यकारों ने वैदिक सूक्तों का अर्थ करते हुए, पशुओं के मांस आदि से आहुति देने की बात लिखी है। पर जब हम मूल संहिताओं पर

विचार करते हैं तो यही मानना पड़ता है कि वेदों ने तो हिंसा के बजाय अहिंसा का ही उपदेश दिया है और असहाय प्राणियों, पशुओं की रक्षा को परम धर्म माना है। इसलिये अगर किसी भाष्यकार ने अथवा किसी शाखा वालों ने वैदिक मन्त्रों का पशुहिंसात्मक अर्थ किया है तो इसका कारण उसका व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक विचार ही रहा होगा। जिस प्रकार वर्तमान समय में हम भगवद्गीता के ज्ञान, भक्ति, कर्म, वैराग्य, हिंसा, अहिंसा के समर्थक विभिन्न भाष्य देख रहे हैं उसी प्रकार वेदों के भी लोगों ने स्वमतानुयायी अलग-अलग तरह के भाष्य बनाये थे। मध्यकाल में भारत में तांत्रिक सम्प्रदायों का बड़ा जोर रहा था और ये बलिदान आदि को अपने धर्म का अङ्ग मानते थे। उन्होंने अपने सम्प्रदाय के समर्थन के लिये वेद मन्त्रों के वैसे ही अर्थ कर दिये हैं। प्राचीन काल में सायण को वेदानुयायी लिखा है, पर वह कदाचित् वाममार्गी भी था, इसलिये जहाँ वेद में सर्वत्र घृत, सोम, जौ, तिल आदि की आहुति देने को बतलाया है, वहाँ मेघनाद आदि राक्षसों के लिये रामायण में सदैव पशु अंगों द्वारा ही हवन करने की बात लिखी है। ऐसे व्यक्तियों को 'अथर्ववेद' में एक स्थान पर साफ शब्दों में 'मूर्ख' और 'निन्दनीय' लिखा है :—

मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त ।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्रणो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥

(काण्ड ७-५-५)

"अविवेकशील और मूढ़ यजमान पशु अंगों से हवन करते हैं, यह निश्चय ही मूर्खतापूर्ण और निन्दनीय है। अपने से आत्मयज्ञ को करने वाले महापुरुष को बतलाइये। वे ही परमात्मा के सत्य स्वरूप का उपदेश करने योग्य हो सकते हैं।"

यज्ञ-विषय का विशेष रूप से विवेचन करने वाले "यजुर्वेद" में कहा है :—

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवींष्या ।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ (अध्याय१९-२०)

"पशुओं द्वारा पशुओं अर्थात् पशुत्व को प्राप्त होता है। पुरोडाशों से हवियों (अन्नादि) को प्राप्त होता है। इसी प्रकार छन्दों (वेद मंत्र) से छन्द को, सामधेनियों (समिधा आदि) से सामधेनियां को, याज्यों से याज्यों को और वषटकारों से वषट्कारों को प्राप्त होता है।"

एक अन्य स्थान पर कहा गया है :—

पशून् पाहि, गां मा हिंसी, अजां मा हिंसी ।
आविं मा हिंसी, इमं मा हिंसी द्विपादं पशुं ॥
मा हिंसी रेक शफं पशुं, मा हिंस्यात सर्वाभूतानि ॥

"पशुओं की रक्षा करो, गाय को मत मारो, बकरी को मत मारो, भेड़ को मत मारो, दो पैर वाले (मनुष्य पक्षी आदि) को मत मारो, एक खुर वाले पशुओं (घोड़ा, गधा आदि) को मत मारो, किसी भी प्राणी को हिंसा मत करो।"

"ऋग्वेद" में गौ की उपयोगिता बतला कर उसकी रक्षा का इन शब्दों में आदेश दिया है :—

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथोवयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥
(मंडल १-१६४-४०)

हे अघ्न्ये (हिंसा के अयोग्य) भाग्यवती धेनु ! तू तृण (घास) सेवन करने वाली है। हमको भी भाग्यशाली बना। तू घास खाती हुई निर्मल जल पीने वाली हो।"

यः पौरषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्ये न पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्यायाः भरति क्षीर मग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥
(ऋ० मंडल १०-८७-१६)

"जो राक्षस मनुष्य का, घोड़े का और गाय का मांस खाता है, तथा दूध की चोरी करता हो उसके शिर को कुचल देना चाहिए।"

'अथर्ववेद' (काण्ड १२ सूक्त ५) में गौहिंसक की दुर्गति

का ऐसा भीषण और रोमांचकारी चित्र खींचा है, कि उसे पढ़कर पापी से भी पापी व्यक्ति का दिल काँप जाता है । सर्वोपयोगी गौ आदि पशुओं के घातक का सर्वस्व नाश हो जाता है और उसे तीन लोकों में कहीं भी टिकने के लिये स्थान नहीं मिलता ।

वेदों में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के सैकड़ों स्पष्ट आदेश होते हुए और प्राणीमात्र को आत्मवत् देखने का उपदेश होने पर भी यह कहना कि वेद ने 'यज्ञ' जैसे समाज के आधार-स्वरूप परम पवित्र कृत्य में हिंसा का विधान किया है, विवेक के विरुद्ध बात है । इस विषय में अनेक लोगों को भ्रम होने का यह भी कारण है कि वेद-भाषा में एक-एक शब्द के अनेक अर्थ लिये जाते हैं, अर्थात् उसके शब्द बहुत व्यापक आशय रखने वाले होते हैं । उदाहरणार्थ गौ या गावः (गौ) शब्द का प्रयोग केवल गाय (पशु) के लिए नहीं किया गया है, पर उससे उत्पन्न घी, दूध, दही, गोबर, गोमूत्र, बछड़ा, बछिया आदि सबके लिये प्रयोग में आ सकता है । इसी प्रकार 'अज' का अर्थ बकरा, पुराना अन्न और अजन्मा अर्थात् आत्मा भी माना गया है । इसके सिवा विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिये तरह-तरह की जड़ी-बूटियों से हवन करने का भी विधान है और आयुर्वेद के ग्रन्थों में बहुसंख्यक जड़ी-बूटियों के ऐसे नाम दिये गये हैं जिनका अर्थ पशु भी होता है । जैसे ऋषभकन्द नाम की औषधि का नाम केवल वृषभ (बैल) लिखा है । अश्वगंधा का उल्लेख 'अश्व' (घोड़े) के नाम से ही किया गया है । इसी प्रकार कुत्ता घास के लिए 'श्वान' महिषाक्ष या गुग्गुल के लिये 'महिष', वाराहीकन्द के लिए 'वाराह', मूषाकर्णी के लिए 'मूषक' आदि शब्द लिख दिये गये हैं । फलों और औषधियों के गूदे के लिए 'मांस' शब्द लिखा है । 'भाव प्रकाश' में एक स्थान पर आम के 'मांस, अस्थि मज्जा' का जिक्र किया गया है । ऐसे कारणों से भी प्राचीन ग्रन्थों के अनेक वाक्यों के अर्थ करने में हिंसा की बात गलती से कह दी जाती है । इस विवेचन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वेदों का मूल उद्देश्य हिंसा का नहीं हो

सकता। उनके मन्त्रों का जहाँ कहीं हिंसात्मक अर्थ किया गया है वह या तो हिंसावादी सम्प्रदायों द्वारा शब्दों की खींचातानी करके निकाला गया है, या शब्दों के अर्थ में भ्रम हो जाने के कारण उत्पन्न हो गया है। वास्तव में वेदों ने प्राणीमात्र पर करुणा, दया और उनके हित करने का ही आदेश दिया है।

चरित्र और नीति

चरित्र और नीति के सम्बन्ध में वेदों का आदर्श बहुत ऊँचा है। यह ठीक है कि उस समय भी ऋषियों, महात्माओं और सज्जन पुरुषों के साथ राक्षस, दस्यु, तस्कर, चोर, घातक आदि दुष्कर्म करने वाले व्यक्ति पाये जाते थे, पर वेद में सर्वत्र उनकी निन्दा पाई जाती है और उनको समाज का 'शत्रु' मान कर उनके नाश की प्रार्थना की गई है। वैदिक काल में सभी धार्मिक व्यक्तियों का दृढ़ विश्वास रहता था कि देवगण सदैव उनके आस-पास रहते हैं और उनके भले बुरे सब प्रकार के कार्यों का निरीक्षण करते रहते हैं, इसलिए अगर वे कोई पाप-कर्म करेंगे तो उसका दण्ड उनको अवश्य भुगतना पड़ेगा। इस भावना के फलस्वरूप उनका जीवन अधिकांश में सत्य, न्याय, दया, धर्म के नियमों के अनुकूल ही रहता था, और समाज में सुख तथा शान्ति का वातावरण बना रहता था। समाज के व्यक्तियों में समानता और प्रेम का भाव पाया जाता था और वे एक दूसरे की हर प्रकार से सहायता करना अपना कर्तव्य समझते थे। 'ऋग्वेद' में कहा गया है।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी॥

(ऋ० १०-११७-६)

"जिसका मन उदार नहीं है उसका भोजन करना वृथा है। उसका भोजन उसकी मृत्यु के समान है। जो न तो देवगण को (परोपकारार्थ) देता है और न मित्रों को देता है और स्वयं ही भोजन करता है,-वह केवल पाप ही खाता है।"

वेदकालीन आर्यों ने मोक्ष को प्रधान मानते हुए भी सांसारिक जीवन की उपेक्षा नहीं की थी, क्योंकि वे भली प्रकार जानते थे कि जो व्यक्ति प्रत्यक्ष जीवन को सज्जनोचित और कार्यक्षम रूप से व्यतीत नहीं कर सकता वह अपरोक्ष जीवन को किस प्रकार श्रेष्ठ बनाने का दावा कर सकता है ? इसलिये उन्होंने जो नियम निर्धारित किये थे वे पूर्ण न्याय पर आधारित थे, जिससे समाज के सब व्यक्तियों को प्रगति करने में समान रूप से सुविधा प्राप्त हो सके । यजुर्वेद में कहा गया है :-

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथे तोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

(४०।१-२)

अर्थात्–"इस जगत में परमात्मा को सदैव सर्वत्र उपस्थित समझकर किसी के भी धन की इच्छा न करो, किन्तु उतने से ही निर्वाह करो जितना उसने न्यायानुकूल तुम्हारे लिये स्थिर किया है। आजीवन इसी मार्ग पर चलने और आचरण करने से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है, और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

संसार में प्रत्येक प्राणी को भोजन और निवास स्थान की आवश्यकता होती है । मनुष्यों को इन दो चीजों के अतिरिक्त वस्त्र तथा गृहस्थी सम्बन्धी कुछ सामग्री जैसे बर्तन आदि की भी अनिवार्य रूप से आवश्यकता मानी गई है । अपने अस्तित्व को स्थिर रखने तथा विकसित करने के लिए इन चारों वस्तुओं की प्रत्येक मनुष्य को समान रूप से आवश्यकता है । पर आज देखा जा रहा है कि मनुष्य की इन प्राथमिक और अनिवार्य आवश्यकता के पदार्थों पर कुछ चालाक लोगों ने छल, बल, कौशल से अधिकार जमा लिया है और वे उनका दुरुपयोग करते हैं । इसीके फलस्वरूप इस समय समाज में असंतोष और अशान्ति का साम्राज्य छाया हुआ है और समाज

तरह-तरह के दोषों की वृद्धि हो रही है। पर वैदिक-युग में आरम्भ से ही प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और न्याय के अनुकूल आचरण की शिक्षा दी जाती थी और उनके सामने 'असतो मा सद्गमया' (हे परमात्मन्! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो) का आदर्श रखा जाता था। इसके फल से सभी लोग बिल्कुल सीधे सादे ढंग पर जीवन निर्वाह करने से सन्तुष्ट रहते थे, और समयानुसार जो कुछ भी सुख-दुख की परिस्थिति उत्पन्न होती थी, उसे सब सम्मिलित रूप से संतोष और धैर्यपूर्वक सहन करते थे। इस कारण समाज में राग-द्वेष और वैमनस्य की उत्पत्ति नहीं होने पाती थी और सभी व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति कर सकने में समर्थ होते थे। पर जो लोग आजकल के समान धन को ही सब कुछ समझ कर उसके पीछे दौड़ते रहते हैं और उसे प्राप्त करने के लिए हर तरह का जघन्य कर्म करने को भी तैयार रहते हैं उनकी कभी तृप्ति नहीं होती। क्योंकि वेद में कहा है :-

एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिसरे संपश्यन्पंक्तीरुपतिष्ठमाना॥

(ऋ० १०-११७-८)

"एक गुणा धन रखने वाला अपने से दुगुने धन रखने वाले के मार्ग पर आक्रमण करता है, दुगुने धन वाला तिगुने धन वाले के पीछे दौड़ता है, और चौगुने धन वाला अपने से दुगुने धन वाले की महत्ता प्राप्त करने की कामना करता है। अर्थात् प्रत्येक अपने से अधिक धन वाले मनुष्य को देखकर उसकी समानता करने की अभिलाषा करता है।" इस प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता का कहीं अन्त नहीं होता और एक ही समुदाय या समाज के व्यक्तियों में पारस्परिक शत्रुता के भाव जागृत होने लगते हैं। इसलिये लोगों को उपदेश दिया गया है कि :-

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥

(अथर्व ३-३०-६)

"तुम सब मनुष्यों के जल स्थान एक समान हो, तुम सब अन्न को एक समान परस्पर में बाँट लो। मैं तुम सबको एक ही बन्धन में बाँधता हूँ, अतएव तुम सब मिलकर कर्म करो, जैसे रथ के पहिये के सब अरे एक नाभि में लगे काम करते हैं।"

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्र स्याहं चक्षुषां सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥
(यजु० ३६-१८)

"हे परमात्मन्! मेरी दृष्टि दृढ़ कीजिये जिससे सब प्राणी मुझे मित्र दृष्टि से देखें। इसी तरह मैं भी सब प्राणियों को मित्र दृष्टि से देखूँ और हम सब प्राणी परस्पर एक दूसरे को मित्र दृष्टि से देखें।"

इस प्रकार वेदों में स्थान-स्थान पर काम, क्रोधादि, मानसिक विकारों तथा संकीर्णता को त्याग कर सरल और उदारता का व्यवहार करने का आदेश दिया गया है। उनमें स्पष्ट रूप से कह दिया गया है कि 'जहाँ विद्वान् लोग अपनी वाणी को मन से शुद्ध करके बोलते हैं, वहीं पर लक्ष्मी और मित्रता ठहरती है! विद्वान् लोग भली प्रकार जानते हैं कि सत्य और असत्य वचन एक दूसरे के विपरीत होते हैं। इनमें से सत्य सरल और सीधे स्वभाव से कहा जाता है और कल्याणकारी होता है। असत्य हर प्रकार से नाश करने वाला तथा अकल्याणकारी होता है।" (ऋग्वेद १०।७१।२ तथा ७।१०४।१२) वेदों में मोह, लोभ, कामवासना, नशा, जुआ आदि दुर्गुणों की जगह-जगह निन्दा की गई है और ऐसे व्यक्ति को लोक तथा परलोक में दण्डनीय बतलाया है। व्यक्तिगत अनुचित स्वार्थ और लालच को त्याग कर समाज के सब व्यक्तियों के साथ प्रेम, सहानुभूति, सहयोग और परोपकार के व्यवहार को ही प्रशंसनीय और आचरणीय बतलाया गया है। स्वार्थी, इन्द्रियपरायण और दूसरों को हानि पहुँचाने वाले व्यक्ति को बहुत ही निन्दनीय और हेय कहा है।

सच पूछा जाय तो वेदों का वास्तविक आदर्श 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अथवा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही है। वेदों से तत्कालीन

क, सामाजिक, आर्थिक स्थिति का जो कुछ विवरण ज्ञात होता है,
हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उस काल का चारित्रिक और
क मापदण्ड बहुत ऊँचा था और लोगों में त्याग की उच्च-कोटि
भावना पाई जाती थी। वेदों में सर्व प्रधान कर्म 'यज्ञ' बतलाया
या है और इसका आशय केवल कर्मकाण्ड से ही नहीं है। 'यज्ञ'
ा सबसे बड़ा उद्देश्य समाज सेवा या परोपकार के लिये 'स्वार्पण'
ी भावना थी। यजुर्वेद में कई जगह 'सर्वस्व दक्षिणा' वाले यज्ञों
का उल्लेख है। पिछले जमाने में चाहे इस प्रकार के यज्ञों को स्वार्थी
लोगों ने अपने लाभ का व्यवसाय बना लिया हो, पर आरम्भ में
वेदों में इस सम्बन्ध में जो आदेश दिया गया था उसमें समाज के
सब व्यक्तियों के कल्याण, सेवा और हित की भावना ही निहित थी।
इसीलिये उस युग में यज्ञ को सबसे बड़ा 'धार्मिक कार्य' माना गया
था और जो लोग स्वयं 'यज्ञ' द्वारा समाज का संचालन, पालन और
अभ्युदय साधित करते थे वही ब्राह्मण के पूजनीय पद के अधिकारी
होते थे। इसके विपरीत जो धन के लोभी थे और उचित अथवा
नुचित सब प्रकार के उपायों से, छल कपट का सहारा लेकर भी
पने लिये सम्पत्ति बटोर कर रखना ही अपना मुख्य उद्देश्य बना
ते थे उनको 'पणि' (वणिक् या बनिया) के नाम से पुकारा जा
था, जो उस समय एक घृणित शब्द माना जाता था। वेदा
यायी लोगों का तीसरा वर्ण 'वैश्य' इन 'पणियों' या 'बनियों' से
था। 'वैश्य' वह था जो समाज की आर्थिक व्यवस्था को ठीक
के लिये खेती, शिल्प और वितरण के कार्यों की न्यायानुकूल पूर्ति
था। इसके विपरीत 'पणि' का अर्थ था बेईमान और ठग व्य

ैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है –

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीरं अश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान।
प्र प्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून।
(७-

'हे अग्नि देव ! तुम यज्ञशून्य, ठगी का व्यवहार क

हिंसायुक्त वचन कहने वाले, श्रद्धारहित, ज्ञानहीन, यज्ञ से विमुख पणि रूप दस्युओं को दूर हटाओ और उनको सब प्रकार से हेय बनाओ।"

इस प्रकार दस्युओं, राक्षसों की निन्दा, नाश और उनकी सम्पत्ति को छीन लेने वाले वाक्य वेदों में बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं। जिससे अनेक पाठकों को तत्कालीन व्यक्तियों के घोर स्वार्थी और ईर्षालु होने का संदेह होजाता है, पर इसका वास्तविक कारण यही है कि उस युग में वेदों के ईश्वरीय आदेशों को समझने और पालन करने का प्रयत्न एकमात्र आर्य जाति ने ही किया था। उनमें से भी अनेक स्वार्थी और लोलुप वृत्ति के व्यक्ति त्याग और परोपकार के मार्ग को कठिन समझ कर समाज से पृथक होकर नीच कर्मों में प्रवृत्त होगये थे। इनके सिवाय पृथ्वी पर अन्य अनेकों मनुष्य समुदाय थे जो केवल पशुओं की तरह खाना, सोना और संतानोत्पादन के सिवा अन्य मानवोचित कर्तव्यों से अनजान और विमुख थे। ये स्वयं विधि-पूर्वक कार्य कर सकने में अक्षम थे और दूसरे परिश्रमी तथा पुरुषार्थी मनुष्यों की कमाई को लूट खसोट कर भक्षण कर जाना ही सबसे सहज और लाभजनक काम समझते थे। ये पशुओं से भी अधम लोग अन्य मनुष्यों और गौ आदि पशुओं को मार कर अपना पेट भरने में भी कुछ बुराई नहीं समझते थे। ऐसे ही निकृष्ट और नाशकारी लोगों को वेद में समाज का शत्रु बतलाया गया है और मानव-समाज के हित और प्रगति के लिये उनको नष्ट करने की आज्ञा दी है।

× × ×

जैसा हमने आरम्भ में लिखा है वेदों के अधिकांश मंत्रों के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दृष्टि से विभिन्न अर्थ होते हैं, और इस कारण हमारे इस वर्तमान संस्करण में लौकिक अर्थ की प्रधानता होने पर भी, हम यह असंदिग्ध रूप से कह सकते हैं कि वेदों का मूल लक्ष्य मनुष्य की आध्यात्मिक प्रगति और आत्म-कल्याण ही है। वेद के सत्य उपदेश जाति, धर्म, सम्प्रदाय और समुदाय आदि

बहुत ऊपर हैं। वे मनुष्य को सृष्टि के मूल स्वरूप का ज्ञान प्रदान
ते हैं और उसी के अनुसार आत्मज्ञान के अनुकूल जीवन व्यतीत
ने का मार्ग प्रदर्शन करते हैं।

\+ + +

वेदों का प्रकाशन कार्य बहुत भारी है और बिना एक विशाल योजना के उसकी पूर्ति हो सकना संभव नहीं। इतने विशाल ग्रंथ को लिखकर तैयार करना और छाप सकना किसी अकेले व्यक्ति की शक्ति से बाहर की बात है। हमने अपने सीमित साधनों से जहाँ तक सम्भव था इसे उपयोगी रूप में पूरा करने का प्रयत्न किया है। इस कार्य में हमको अपने जिन सहयोगियों तथा अन्य विद्वान् पुरुषों से सहायता प्राप्त हुई है उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। लेखन कार्य में सबसे अधिक सहयोग श्री दाऊदयाल जी गुप्त से प्राप्त हुआ है। उनके सतत परिश्रम के बिना इसका इतने अल्प समय में तैयार हो सकना संभव न था, जिसके लिये गुप्ता हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। इसके संशोधन और मुद्रण का भार श्री सत्यभक्तजी को दिया गया था। इतना बड़ा कार्य कि एक स्थानीय प्रेस द्वारा शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सकता था, इसलिये विभिन्न प्रेसों में इसे छपाने की व्यवस्था करनी पड़ी। इन सबकी भाल करना और ग्रन्थ को ठीक समय पर सुन्दर रूप में तैयार कर एक बहुत असाध्य कार्य था, जिसे उन्होंने दिन रात प करके पूर्ण किया, अतः उन्हें भी धन्यवाद देना हमारा कर्तव्य इसके अतिरिक्त जिन अनेक ग्रन्थों से प्रस्तुत संस्करण को करने में सहायता मिली है उन सबके लेखकों के प्रति भी हम आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

—श्रीराम शर्मा

—o—

ऋग्वेद

(सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

: पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥९॥२

हे अग्ने ! तू हविदाता का कल्याण करने वाला है। अवश्य ही वह तुझे प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! हम दिन-रात अपनी बुद्धि और हृदय नमस्कार पूर्वक तेरा सामीप्य प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तू यज्ञ को प्रकट करने वाला, सत्य-रक्षक, स्वयं प्रकाशित तथा स्वयं ही वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! पुत्र जैसे पिता के पास सहज ही पहुँच जाता है, वैसे तू हमको सुगमता से प्राप्त हो जाता है। इसलिए तू हमारे लिए मङ्गल-दाता बन ॥ ९ ॥

[२]

२ सूक्त

(ऋषि—मधुच्छन्दा। देवता—वायु, इन्द्रवायू, मित्रावरुणौ। छन्द—गायत्री)

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥१
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विद ॥२
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ॥३
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥

हे प्रिय दर्शन वायो ! यहाँ आ ! तेरे निमित्त यह सुसिद्ध सोम है, उसे पीते हुए हमारे वचनों पर ध्यान दो ॥ १ ॥ हे वायो ! यह निष्पन्न करने वाले और इसके गुणों को जानने वाले स्तोता तेरा गु करते हुए स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ हे वायो ! तुम्हारी मर्मस्पर्शी वाणी कामना से दाता को शीघ्र प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र, वायो ! रस प्रस्तुत है। यह तुम्हारे ही लिए है। अतः अन्नादि सहित आ हे वायो ! हे इन्द्र ! तुम अन्न सहित सोमों के ज्ञाता हो। अतः शी आओ ॥ ५ ॥

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्ष्वि त्था धिय
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं स
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्त

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया । दक्षं दधाते अपसम् ॥९॥४

हे वायो और इन्द्र ! इस सिद्ध किये हुए सोम रस के पास शीघ्र आओ तुम दोनों ही योग्य पदार्थ को प्राप्त करते हो ॥ ६ ॥ पवित्र बल वाले मित्र और शत्रु-नाशक वरुण का मैं आह्वान करता हूँ । यह ज्ञान और कर्म को प्रेरित करने वाले हैं ॥ ७ ॥ ये मित्र वरुण सत्य से वृद्धि को प्राप्त होने वाले, सत्य स्वरूप तथा सत्य से विशालता को प्राप्त यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हैं ॥ ८ ॥ ये मित्र वरुण शक्तिशाली, सर्वत्र व्याप्त हैं और बल द्वारा कर्मों में प्रेरित करते हैं । ये सब कर्मों और अधिकारों को वश में करने वाले हैं ॥ ९॥४

३ सूक्त

(ऋषि-मधुच्छंदा । देवता-अश्विनौ, इन्द्रः विश्वेदेवाः सरस्वती । छंद-गायत्री)

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती । पुरुभुजा चनस्यतम् ॥१
अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया । धिष्ण्या वनतं गिरः ॥२
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यातं रुद्रवर्तनी ॥३
इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥४
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥५
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥६॥५

हे बड़े बाहु वाले, शुभ कर्मों के सम्पादक, द्रुत कामकारी अश्विद्वय ! यज्ञ के इस अन्न से तृप्ति को प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे अश्विदेवो ! तुम विभिन्न कर्मों को सम्पन्न करने वाले, धैर्य और बुद्धि हो । अतः अपने मन करके हमारी प्रार्थना पर ध्यान दो ॥ २ ॥ हे शत्रु-संहारक वीरो ! तुम असत्य से बचने वाले, दुर्धर्ष मार्ग पर चलने वाले हो । इस छाने हुए सोम रस को पीने के लिए यहाँ आओ ॥ ३ ॥ हे कांतिवान इन्द्र ! दसों अँगुलियों से सिद्ध किये पवित्रता पूर्वक तेरे निमित्त रखे इस सोम के लिए यहाँ आ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! बुद्धियों से प्रार्थना किया हुआ तू सोम सिद्ध करने वाले स्तोता के स्तवन से उसे प्राप्त हो ॥ ५ ॥ हे अश्व युक्त इन्द्र तू हमारी प्रार्थनाएँ सुनने को शीघ्र यहाँ आ और यज्ञ में हमारी हवियों को ग्रहण

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥७
विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः। उस्रा इव स्वसराणि ॥८
विश्वे देवासो अस्त्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ॥९
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१०
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ॥११
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति ॥१२

हे विश्वे देवाओ! तुम रक्षक, धारक और दाता हो। अतः इस हवि दाता के यज्ञ को प्राप्त होओ ॥ ७॥ हे विश्वेदेवाओ! तुम कर्मवान् और शीघ्रत करने वाले हो, आप सूर्य किरणों के समान ज्ञान प्रदान करने को आओ ॥ ८ ॥ हे विश्वेदेवाओ! तुम किसी से भी न मारे जाने वाले, चतुर, निर्वैर तथा सुख साधक हो। हमारे यज्ञ को प्राप्त होकर अन्न ग्रहण करो ॥ ९ ॥ हे पवित्र करने वाली सरस्वती! तू बुद्धि द्वारा अन्न धन की देने वाली है। हमारे इस यज्ञ को सफल कर ॥ १० ॥ सत्य कर्मों की प्रेरक, उत्तम बुद्धि को प्रशस्त करने वाली यह सरस्वती हमारे यज्ञ को धारण करने वाली है ॥ ११ ॥ यह सरस्वती विशाल ज्ञान-समुद्र को प्रकट करने वाली है। यही सब बुद्धियों को ज्ञान की ओर प्रेरित करती है ॥ १२ ॥ [६]

४ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि–मधुच्छन्दा। देवता–इन्द्र। छन्द–गायत्री)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥२
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥३
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥५॥७

दोहन के लिए गाय को बुलाने वाले के समान, अपनी रक्षा के लिए हम उत्तमकर्मा इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ हे सोमपायी इन्द्र! सोम-पान के लिए हमारे यज्ञ का सामीप्य प्राप्त करो। तुम ऐश्वर्यवान! प्रसन्न होकर

हमको गवादि धन देने वाले हो ॥ २ ॥ तुमसे निकट सम्पर्क प्राप्त बुद्धिमानों के आश्रय में रह कर हम तुम्हें जानें। तुम हमारे विरुद्ध न होओ, हमें त्याग न कर तुम हमें प्राप्त हो ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! उस अपराजित, कर्मवान् इन्द्र के पास जाकर अपने बान्धवों के लिए श्रेष्ठ ऐश्वर्य को प्राप्त करो ॥ ४ ॥ इन्द्र के उपासक उसी की उपासना करते हुए इन्द्र के निन्दकों को देश से दूर जाने को कहें, जिससे वे दूर से भी दूर भाग जावें ॥ ५ ॥ [७]

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥६
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत् सखम् ॥७
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभव. । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥९
यो रायो वनिर्महान्त्सुपार. सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ।१०।८

हे शत्रु-नाशक इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय में रहने से शत्रु और मित्र सभी हमको ऐश्वर्यवान बताते हैं ॥ ६ ॥ यज्ञ को शोभित करने वाले, आनन्दप्रद, प्रसन्नतादायक तथा यज्ञ सम्पन्न करने वाले सोम को इन्द्र के लिए अर्पित करो ॥ ७ ॥ हे सैकड़ों यज्ञ वाले इन्द्र ! इस सोम-पान से बलिष्ठ हुए तुम दैत्यों के नाशक हुए। इसी के बल से तुम युद्धों में सेनाओं की रक्षा करते हो ॥ ८ ॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! युद्धों में बल प्रदान करने वाले तुमको हम ऐश्वर्य के निमित्त हविष्यान्न भेंट करते हैं ॥ ९ ॥ धन-रक्षक, दुःखों को दूर करने वाले, यज्ञ करने वालों से प्रेम करने वाले इन्द्र की स्तुतियाँ गाओ ॥ १० ॥ [८]

५ सूक्त

(ऋषि–मधुच्छन्दा । देवता–इन्द्र । छन्द–गायत्री)

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय. स्तोमवाहसः ॥१
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥
स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम् । गमद् वाजेभिरा स नः ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिर

हे स्तुति करने वाले मित्रो ! यहाँ आकर बैठो और इन्द्र के गुणों का गान करो ॥ १ ॥ सब इकट्ठे होकर सोम-रस को सिद्ध करो और इन्द्र की स्तुतियाँ गाओ ॥ २ ॥ वह इन्द्र प्राप्त होने योग्य धन को हमें प्राप्त करावे तथा सुमति दे । वह अपनी विभिन्न शक्तियों सहित हमको प्राप्त हो ॥ ३ ॥ जिसके अश्व-जुते रथ के सम्मुख शत्रु डट नहीं सकते, उसी इन्द्र के गीत गाओ ॥ ४ ॥ यह शोधित सोमरस, सोमपायी इन्द्र के पीने के लिए स्वतः ही प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥ [६]

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥६
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥७
त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥८
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ।९
मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् । १

हे उत्तमकर्मा इन्द्र ! तू सोम-पान द्वारा उन्नत होने के लिए सद्‌ तत्पर रहता है ॥ ६ ॥ हे स्तुत्य ! यह सोमरस तेरे शरीर में रम जाय औ तुझे प्रसन्नता प्रदान करे । ज्ञानी जन तुझे सुखकारक हों ॥ ७ ॥ हे शतक इन्द्र ! तू इन स्तोत्रमयी वाणियों से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ वह ॥ ८ ॥ जिस सामर्थ्य में कभी कमी नहीं आती, जिसमें सभी बलों का समावेश है, वह इ सहस्रों के पालन करने को सामर्थ्य हमको प्रदान करे ॥ ९ ॥ हे स्तुत्य इन् हमारे शरीरों को कोई भी शत्रु हानि न पहुँचा सके, हमारी कोई हिंसा न सके । तू सभी प्रकार समर्थ है ॥ १० ॥ [१

६ सूक्त

(ऋषि-मधुच्छन्दा । देवता-इन्द्र, मरुत, इन्द्रश्च । छंद-गायत्री ।)

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहस
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियं
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अ

सूर्य रूप में विद्यमान इन्द्र के अहिंसक रूप से सब पदार्थ सम्बन्धित हैं। सब लोकों के प्राणी भी इसी से सम्बन्ध जोड़ते हैं ॥ १ ॥ इस इन्द्र के रथ में लाल रंग के, शत्रु का मर्दन करने वाले, वीर पुरुषों को सवार करा कर युद्धस्थल में ले जाने वाले घोड़े जुते रहते हैं ॥ २ ॥ हे मनुष्यो! अज्ञानी को ज्ञान देता हुआ, असुन्दर को सुन्दर बनाता हुआ यह सूर्य रूप इन्द्र किरणों द्वारा प्रकाशित होता है। ॥ ३ ॥ अन्न प्राप्ति की इच्छा से यज्ञोपयोगी हुए मरुद्गण गर्भ को बादल में रचने वाले हुए ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम दृढ़ दुर्गों के भी भेदक हो। तुमने गुफा में छिपी हुई गायों को मरुद्गण के सहयोग से प्राप्त किया ॥ ५ ॥ [११]

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥६
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥७
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥८
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥९
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥१०

देवत्व प्राप्ति की इच्छा से स्तुति करने वाले उन ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी मरुद्गणों की अपनी प्रखर बुद्धि से स्तुति करते हैं ॥६॥ यह इन्द्र के सहगामी मरुद्गण निडर हैं और इन्द्र तथा मरुद्गण एक-से ही तेज वाले हैं ॥ ७ ॥ इस यज्ञ में निर्दोष और यशस्वी मरुद्गणों के साथी इन्द्र की सामर्थ्यवान समझ कर पूजा की जाती है ॥ ८ ॥ हे सर्वत्र विचरने वाले मरुतो! तुम अन्तरिक्ष, आकाश या सूर्यलोक से यहाँ आओ। इस यज्ञ में एकत्रित सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष से धन प्राप्त कराने के निमित्त हम इन्द्र से याचना करते हैं ॥ १० ॥ [१२]

७ सूक्त

(ऋषि–मधुच्छन्दा । देवता–इन्द्र । छन्द–गायत्री ।)

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥१
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री [illegible]

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥३
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्त्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥५॥१३

साम-गायकों और विद्वानों ने मन्त्रों द्वारा इन्द्र की पूजा की । हमारी वाणी भी इन्द्र का स्तवन करती है ॥ १ ॥ इन्द्र अपने वचन मात्र से दोनों घोड़ों को एक साथ जोड़ते हैं। वह वज्र को धारण करने वाला और सुवर्ण के समान रूपवान है ॥ २ ॥ दूर तक दिखाई पड़ने के लिए, इन्द्र ने सूर्य को स्थापित किया और उसकी किरणों से अँधेरे रूप दैत्य को मिटाया ॥ ३ ॥ हे प्रचण्ड योद्धा इन्द्र ! तू सहस्त्रों प्रकार के भीषण युद्धों में अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा कर ॥ ४ ॥ हमारे साथियों की रक्षा के लिए इन्द्र वज्र धारण करता है। वह इन्द्र हमको धन अथवा बहुत से ऐश्वर्य के निमित्त प्राप्त हो ॥ ५ ॥ [१३]

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥६
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥७
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥८
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥९
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥१०॥१४

हे वीर एवं दाता इन्द्र ! हमारे निमित्त उस मेघ को छिन्न-भिन्न कर । तू कभी भी हमारे लिये 'नहीं' नहीं कहते ॥ ६ ॥ वज्रिन इन्द्र के दान की उपमा मुझे कहीं नहीं मिलती। उसकी अधिक उत्तम स्तुति किस प्रकार करें ? ॥ ७ ॥ गौओं के झुण्ड में चलने वाले बैल के समान, वह सर्वेश्वर इन्द्र अपने बल से मनुष्यों को प्रेरित करते हैं ॥ ८ ॥ वह इन्द्र पाँचों श्रेणियों के मनुष्यों और ऐश्वर्यों का एक मात्र स्वामी है ॥ ९ ॥ साथियो ! हम तुम्हारे कल्याण के निमित्त सबके अग्र पुरुष इन्द्र का आह्वान करते हैं, वह केवल हमारे हैं ॥१०॥ [१४]

हे इन्द्र ! तुम्हारी सामर्थ्य मुझ उपासक के लिए तुरन्त रक्षा करने वाली और अभीष्टदात्री है ॥ ६ ॥ इन्द्र का गुण-गान और स्तुतियाँ सोम-पान के लिए गायी जाती हैं ॥ १० ॥ [१६]

६ सूक्त

(ऋषि–मधुच्छन्दा । देवता–इन्द्र । छन्द–गायत्री ।)

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥१
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥२
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥३
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥४
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥५॥१७

हे इन्द्र ! आओ । सोम-पान कर प्रसन्न होओ । तुम अपने बल के द्वारा पूजनीय हो ॥ १ ॥ इस प्रसन्नताप्रद सोम को समस्त कार्यों और पुरुषार्थों के करने वाले इन्द्र के निमित्त सिद्ध करो ॥२॥ हे सुन्दर रूप वाले, सर्वेश्वर इन्द्र ! इस सोम के उत्सव में पधारो और स्तोत्रों से प्रसन्नता को प्राप्त हो ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिए जो स्तुतियाँ की गई हैं, वे सभी तुमको प्राप्त हुई हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! विभिन्न उत्तम ऐश्वर्यों को हमारी ओर प्रेरित करो। क्योंकि तुम ही पर्याप्त धन के स्वामी हो ॥ ५ ॥ [१७]

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥६
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥७
अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥८
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥९
सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत् एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥१०॥१८

हे अनन्त ऐश्वर्य वाले इन्द्र ! हम बल-वीर्य से सम्पन्न पुरुषों को कर्म में उचित प्रेरणा दो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! गौ, बल, आयु से पूर्ण, अमर कीर्ति को हमें प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! महान् यश, सहस्र संख्यक धन और रथों से पूर्ण ऐश्वर्य हमको दो ॥ ८ ॥ हम ऐश्वर्य-स्वामी, स्तुत्य, गतिशील इन्द्र

का स्तुति पूर्वक, धन-रक्षा के लिए आह्वान करते हैं ॥ ९ ॥ सोम के सिद्ध करने वाले स्थान में उपासक-गण इन्द्र को बुलाते हैं ॥ १० ॥

१० सूक्त

(ऋषि–मधुच्छंदा । देवता–इंद्र । छंद–अनुष्टुप ।)

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१
यत्सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३
एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥४
उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥
तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ६॥१९

हे शतकर्मा इन्द्र ! गायक तुम्हारा यश गाते और पूजने वाले तुम्हें पूजते हैं तथा स्तोता अपनी स्तुतियों द्वारा तुम्हें उन्नत करते हैं ॥ १ ॥ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाले यजमान के अभीष्ट का ज्ञाता इन्द्र मरुद्गण सहित अभीष्ट वर्षण के निमित्त यज्ञ में पहुँचता है ॥ २ ॥ हे सोमपायी इन्द्र ! बालों वाले अपने अश्वों को रथ में जोत कर हमारी स्तुतियाँ सुनने को आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! यहाँ आकर हमारी स्तुतियों का अनुमोदन करो । हमारे साथ गाओ और हमारे कार्यों का अनुमोदन करते हुए वृद्धिकारक बनो ॥ ४ ॥ शत्रु-संहारक इन्द्र को वृद्धि के निमित्त स्तोत्रों का गान करो, जिससे वह हम सबके मध्य आकर हर्ष-ध्वनि करे ॥ ५ ॥ ... और सामर्थ्य के लिए हम इन्द्र से ही याचना करते हैं ।

धनवान और बलवान बनाता हुआ रक्षा करता है ॥ ६ ॥ [१६]

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद् यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥७

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्ववंतीरपः सं गा अस्तभ्यं धूनुहि ॥८॥

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥९

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊर्ति सहस्रसातमाम् ॥१०

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥११

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥१२॥२०

हे इन्द्र ! तुम्हारा दिया हुआ यश सब ओर फैल गया है । हे वज्रिन् ! गोशालाओं को खोल कर हमको बहुत-सा गो-धन प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! आपकी क्रोधितावस्था में आकाश या पृथिवी कोई भी तुमको धारण करने में समर्थ नहीं होते । तुम आकाश से वृष्टि करो और हमको गौएँ दो ॥ ८ ॥ हे सबकी सुनने वाले इन्द्र ! मेरी भी सुनो । इन स्तुतियों को स्वीकार करो । मेरे स्तोत्र को अपने मित्र से भी अधिक निकटस्थ मानो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! हम जानते हैं कि तुम महान् पुरुषार्थी हो । तुम युद्ध-काल में हमारी स्तुतियों को सुनते हो । हे अभीष्ट साधक ! अपनी रक्षा के लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १० ॥ हे कुशिक के पुत्र इन्द्र ! इस निष्पन्न सोम के पीने को शीघ्र यहाँ आओ । मेरी आयु की वृद्धि करते हुए इस ऋषि को सहस्र संख्यक धन का स्वामी बनाओ ॥ ११ ॥ हे स्तुत्य इन्द्र ! हमारी ये स्तुतियाँ तुम्हारे सब ओर व्याप्त हैं । तुम बढ़ी हुई आयु वाले हो । इन स्तुतियों से तुम्हारी प्रीति प्राप्त हो ॥ १२ ॥ [२०]

११ सूक्त

(ऋषि-माधुच्छंदस । देवता-इंद्र । छन्द-अनुष्टुप)

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१॥
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२॥
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥३
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥४
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥५
तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥६
मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥७॥
इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८ ॥२१

अन्तरिक्ष के समान विशाल, रथियों में श्रेष्ठ, अन्न के स्वामी तथा उपासकों की रक्षा करने वाले इन्द्र को हमारे स्तोत्र बढाते हैं ॥ १ ॥ हे-बल के स्वामी इन्द्र ! तुम्हारी मित्रता हमारे भयों को दूर कर हमें शक्तिशाली बनावे । तुम सदा विजय प्राप्त करते हो। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र का दान विख्यात है । स्तोताओं को गवादि धन तथा बल देने वाला इन्द्र साधकों को निरन्तर देता ही रहता है ॥ ३ ॥ इन्द्र, स्तुत्य दुर्गों का भेदन करने वाले, युवा, मेधावी, महा बली, कर्मों के करने वाले, वज्रधारी प्रकट हुए ॥ ४ ॥

हे वज्रिन् ! वृत्र की गौओं वाली गुफा के खोले जाने पर पीड़ित देवताओं ने तुमसे अभय प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! निष्पन्न सोम का गुण सबको बता कर तुम्हारे धन-दान के प्रभाव से फिर आया हूँ। हे स्तुत्य इन्द्र ! तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करने वाले तुमको भले प्रकार जानते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपनी माया से ही उस मायावी शुष्ण पर विजय प्राप्त की। तुम्हारी इस महिमा को जो बुद्धिमान जानते हैं, उनकी वृद्धि करो ॥ ७ ॥ अपने बल से संसार पर शासन करने वाले इन्द्र का स्तोताओं ने यश-गान किया। वे सहस्रों प्रकार से भी अधिक ऐश्वर्यों के दाता हैं ॥ ८ ॥ [२१]

१२ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—मेधातिथि काण्व । देवता—अग्नि । छंद—गायत्री)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥४
घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह । अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥५
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा । हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥६॥२२

हम देव-दूत, आह्वानकर्त्ता, सब ऐश्वर्यों के स्वामी, यज्ञ के सम्पादन करने वाले अग्नि का वरण करते हैं ॥ १ ॥ प्रजा-पालक, हवि-वाहक, बहुतों के प्रिय अग्नि का मन्त्रों द्वारा यजमान आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! कुश बिछाने वाले यजमान के लिए प्रदीप्त हुए तुम देवताओं को बुलाओ। क्योंकि तुम हमारे पूज्य होता हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के दौत्य कर्म में नियुक्त हो, इसलिए हव्य चाहने वाले देवों को बुलाओ और उनके साथ इस कुशासन पर प्रतिष्ठित होओ ॥ ४ ॥ हे दीप्यमान अग्ने ! तुम घृत से प्रदीप्त हुए, हमारे शत्रुओं को भस्म करो ॥ ५ ॥ मेधावी, गृह-रक्षक, हवि-वाहक और जुहू मुख वाले अग्नि को अग्नि से ही प्रज्वलित करते हैं ॥ ६ ॥ [२२]

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे । देवममीवचातनम् ॥ ७

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृळय ॥ ९
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १०
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२

मेधावी, सत्यनिष्ठ, शत्रुनाशक अग्नि की यज्ञ-कर्म में निकट से स्तुति करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम देव-दूत की जो यजमान सेवा करता है, उसकी तुम रक्षा करने वाले होओ ॥ ८ ॥ हे पावक ! जो यजमान हवि देने के लिए अग्नि के समीप जाकर उपासना करे, उसका कल्याण करो ॥ ९ ॥ हे पवित्र अग्ने ! तुम प्रदीप्त हुए हमारे यज्ञ में हवि ग्रहण करने के लिए देवताओं को यहाँ लाओ ॥ १० ॥ हे अग्ने ! नवीन स्तोत्रों से स्तुति किए जाते तुम हमको धन, पुत्र और अन्न के प्रदाता बनो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम कान्तिवान् और देवताओं को बुलाने में समर्थ हो । हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करो ॥ १२ ॥   [२३]

१३ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथि काण्व । देवता—अग्नि प्रभृति । छन्द—गायत्री ।)

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥ १
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २
नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४
स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ । २४

हे समिधा वाले अग्निदेव ! हमारे यजमान के निमित्त देवताओं को यज्ञ में लाकर उनका पूजन कराओ ॥ १ ॥ हे मेधावी अग्ने ! तुम शरीर की रक्षा करने वाले हो, हमारे यज्ञ को देवताओं के उपभोग के लिए प्राप्त

हे वज्रिन्! वृत्र की गौओं वाली गुफा के खोले जाने पर पीड़ित देवताओं ने तुमसे अभय प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे इन्द्र! निष्पन्न सोम का गुण सबको बता कर तुम्हारे धन-दान के प्रभाव से फिर आया हूँ। हे स्तुत्य इन्द्र! तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करने वाले तुमको भले प्रकार जानते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुमने अपनी माया से ही उस मायावी शुष्ण पर विजय प्राप्त की। तुम्हारी इस महिमा को जो बुद्धिमान जानते हैं, उनकी वृद्धि करो ॥ ७ ॥ अपने बल से संसार पर शासन करने वाले इन्द्र का स्तोताओं ने यश-गान किया। वे सहस्रों प्रकार से भी अधिक ऐश्वर्यों के दाता हैं ॥ ८ ॥ [२१]

१२ सूक्त [चौथा अनुवाक]

(ऋषि—मेधातिथि काण्व। देवता—अग्नि। छंद—गायत्री)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१
अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः ॥३
ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम्। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥४
घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह। अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥५
अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥६।२२

हम देव-दूत, आह्वानकर्त्ता, सब ऐश्वर्यों के स्वामी, यज्ञ के सम्पादन करने वाले अग्नि का वरण करते हैं ॥ १ ॥ प्रजा-पालक, हवि-वाहक, बहुतों के प्रिय अग्नि का मन्त्रों द्वारा यजमान आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! कुश बिछाने वाले यजमान के लिए प्रदीप्त हुए तुम देवताओं को बुलाओ। क्योंकि तुम हमारे पूज्य होता हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम देवताओं के दौत्य कर्म में नियुक्त हो, इसलिए हव्य चाहने वाले देवों को बुलाओ और उनके साथ इस कुशासन पर प्रतिष्ठित होओ ॥ ४ ॥ हे दीप्यमान अग्ने! तुम घृत से प्रदीप्त हुए, हमारे शत्रुओं को भस्म करो ॥ ५ ॥ मेधावी, गृह-रक्षक, हवि-वाहक और जुहू मुख वाले अग्नि को अग्नि से ही प्रज्वलित करते हैं ॥ ६ ॥ [२२]

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम् ॥ ७

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति । तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८
यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति । तस्मै पावक मृलय ॥ ६
स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १०
स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा । रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः । इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२

मेधावी, सत्यनिष्ठ, शत्रुनाशक अग्नि की यज्ञ-कर्म में निकट से स्तुति करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम देव-दूत की जो यजमान सेवा करता है, उसकी तुम रक्षा करने वाले होओ ॥ ८ ॥ हे पावक ! जो यजमान हवि देने के लिए अग्नि के समीप जाकर उपासना करे, उसका कल्याण करो ॥ ६ ॥ हे पवित्र अग्ने ! तुम प्रदीप्त हुए हमारे यज्ञ में हवि ग्रहण करने के लिए देवताओं को यहाँ लाओ ॥ १० ॥ हे अग्ने ! नवीन स्तोत्रों से स्तुति किए जाते तुम हमको धन, पुत्र और अन्न के प्रदाता बनो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम कान्तिवान् और देवताओं को बुलाने में समर्थ हो । हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करो ॥ १२ ॥　　　　　　　　　　　　　　[२३]

१३ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथि काण्व । देवता—अग्नि प्रभृति । छन्द—गायत्री ।)

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते । होतः पावक यक्षि च ॥१
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे । अद्या कृणुहि वीतये ॥ २
नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये । मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह । असि होता मनुर्हितः ॥ ४
स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः । यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५
वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः । अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ।'२४

हे समिधा वाले अग्निदेव ! हमारे यजमान के निमित्त देवताओं को यज्ञ में लाकर उनका पूजन कराओ ॥ १ ॥ हे मेधावी अग्ने ! तुम शरीर की रक्षा करने वाले हो, हमारे यज्ञ को देवताओं के उपभोग के लिए प्राप्त

कराओ ॥ २ ॥ मनुष्य द्वारा प्रशंसित प्रिय अग्नि को इस यज्ञ स्थान में बुलाता हूँ। वह मधुजिह्व और हवि के सम्पादक हैं ॥ ३ ॥ हे हमारे द्वारा स्तुत्य अग्ने! तुम अत्यन्त सुखकारी रथ में देवताओं को यहाँ लाओ। तुम इस यज्ञ में मनुष्य द्वारा होता नियुक्त किये गये हो ॥ ४ ॥ हे विद्वानो! परस्पर मिली हुई कुशा को घृत-पात्र रखने के लिये बिछाओ ॥ ५ ॥ आज यज्ञ-सम्पादन के निमित्त यज्ञशाला के प्रकाशित द्वार को खोलें। वे (कपाट) अब परस्पर मिले हुए न रहें ॥ ६ ॥ [२४]

नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये। इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७
ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी। यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८
इला सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९
इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये। अस्माकमस्तु केवलः ॥ १०
अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः। प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥ ११
स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे। तत्र देवाँ उप ह्वये ॥ १२ । २५

सुन्दर लगने वाले रात्रि और दिन को कुशासन पर बैठने के लिए बुलाता हूँ ॥ ७ ॥ उन सुन्दर जिह्वा वाले, मेधावी दोनों दिव्य होताओं (अग्नि और सूर्य) को यज्ञ में यजन कार्य के निमित्त बुलाता हूँ ॥ ८ ॥ इला, सरस्वती और मही यह तीनों देवियाँ सुख देने वाली हैं। ये इस कुशासन को ग्रहण करें ॥ ९ ॥ मैं अग्रगण्य, विविध रूप वाले त्वष्टा (अग्नि) का इस यज्ञ में आह्वान करता हूँ, वह हमारे ही रहें ॥ १० ॥ हे वनस्पति देव! यजमान को ज्ञान देने के निमित्त देवगण के लिए हवि समर्पण करो ॥ ११ ॥ ऋत्विजो! यजमान के गृह में 'स्वाहा' कहते हुए इन्द्र लिए यज्ञ करो। उस यज्ञ में हम देवताओं का आह्वान करते हैं ॥ १२ ॥ [२५]

१४ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथि। देवता-विश्वेदेवा। छन्द-गायत्री)

ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये। देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १
आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः। देवेभिरग्न आ गहि ॥२

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ॥ ३
प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४
ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरङ्कृतः ॥ ५
घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥६।२६

हे अग्ने ! इन देवताओं को साथ लेकर सोम पीने के लिए आओ। हमारी पूजा और स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों। हमारे यज्ञ में देवताओं की पूजा करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुमको कण्व वंशी बुलाते रहे हैं। वे अब भी तुम्हारे गुण गाते हैं। तुम देवताओं के सहित आओ ॥ २ ॥ इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गण का आह्वान करो ॥ ३ ॥ तृप्त करने वाले, मत्तताप्रद पात्रों में ढके हुए, विन्दु-रूप सोम यहाँ उपस्थित हैं ॥ ४ ॥ कण्व वंशी तुमसे रक्षा-याचना करते हुए, कुश बिछाकर हव्यादि सामग्री से युक्त हुए तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥ तुम्हारी इच्छा मात्र से रथ में जुड़ने वाले अश्व तुम्हें ले जाते हैं। ऐसे तुम सोम-पान के निमित्त यहाँ आओ ॥ ६ ॥ [.२६]

तानयजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७
ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८
आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥९
विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १०
त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२।२७

हे अग्ने ! उन पूज्य तथा यज्ञ को बढ़ाने वाले देवताओं को पत्नी सहित मधुर सोम-रस का पान कराओ ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! वे पूज्य और स्तुत्य देवगण तुम्हारी जिह्वा के द्वारा मधुर सोम-रस का पान करें ॥ ८ ॥ हे मेधावी अग्नि रूप होता ! प्रातःकाल जागने वाले विश्वेदेवताओं को सूर्य मण्डल से पृथक् कर यहाँ ले आओ ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम मित्र, इन्द्र, वायु के तेज के सहित सोम-रस का पान करो ॥ १० ॥ हे अग्ने ! [illegible]

रूप तुम यज्ञ में विराजमान होते हो। अतः इस यज्ञ को सम्पन्न करो ॥ ११ ॥
हे अग्ने! तुम स्वर्णाभ और रक्त वर्ण वाले अश्वों को अपने रथ में जोतकर
देवताओं को इस यज्ञ में ले आओ ॥ १२ ॥ [२७]

१५ सूक्त

(ऋषि–मेधातिथिः काण्वः। देवता–ऋतवः प्रभृति। छन्द–गायत्री।)

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः। मत्सरासस्तदोकसः ॥ १
मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन। यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २
अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना। त्वं हि रत्नधा असि ॥३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु। परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु। तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५
युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूलभम्। ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ २८

हे इन्द्र! ऋतु सहित सोम-पान करो। यह सोम तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट होकर तृप्त के साधन बनें ॥ १ ॥ हे मरुद्गणो! ऋतु के सहित पोत-पात्र से सोम-पान करो। तुम कल्याणदाता मेरे यज्ञ को पवित्र करो ॥ २ ॥ हे त्वष्टा! देव-पत्नियों सहित हमारे यज्ञ की भले प्रकार प्रशंसा करो और ऋतु सहित सोम-पान करो। तुम अवश्य ही रत्नों के देने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! देवताओं को यहाँ लाकर तीनों यज्ञ-स्थानों में बैठाओ। उनको विभूषित करते हुए सोम-पान करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! ब्रह्मणाच्छंसि के पात्र से ऋतुओं के अनुसार सोम-पान करो। क्योंकि तुम्हारी मित्रता कभी टूटती नहीं ॥ ५ ॥ हे अटल व्रत वाले मित्र, वरुण! तुम दोनों कर्मों में लीन हुए ऋतु के सहित हमारे यज्ञ में आते हो ॥ ६ ॥ [२८]

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे। यज्ञेषु देवमीलते ॥ ७
द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे। देवेषु ता वनामहे ॥ ८
द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९
यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे। अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १०
अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता। ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि । देवान् देवयते यज ॥ १२।२९

धन की इच्छा वाले यजमान सोम तैयार करने के लिए पाषाण धारण कर धनदाता अग्नि की पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ हे द्रविणोदा अग्ने! हमको नयीं सुने गये धनों को दो। हम उन सब धनों को देवार्पण करते हैं ॥ ८ ॥ वह धनदाता अग्नि सोम-पान के इच्छुक हैं। उन्हें आहुति दो और अपने स्थान को प्राप्त होओ। शीघ्रता करो। ऋतुओं सहित नेष्टा के पात्र से सोम पिलाओ ॥ ९ ॥ हे धनदाता! ऋतुओं सहित आपको चतुर्थ बार अर्पित करते हैं। तुम हमारे लिए धन प्रदान करने वाले होओ ॥ १० ॥ अग्नि से प्रकाशित, नियमों में दृढ़, ऋतु के साथ यज्ञ के निर्वाहक अश्विनीकुमारो! इस मधुर सोम का पान करो ॥ ११ ॥ हे दाता अग्ने! तुम ऋतु के साथ-साथ घर के पालक यज्ञ का निर्वाह करने वाले हो। इस देवताओं की कामना करने वाले यजमान के लिए देवार्चन करो ॥ १२ ॥ [२९]

१६ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये । इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १
मा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः । इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २
इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे । इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३
उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः । सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४
सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् । गौरो न तृषितः पिब ॥५ ३०

हे अभीष्ट वर्षक इन्द्र! तुम अपने प्रकाशित रूप वाले अश्वों को सोम-पान के लिए यहाँ लाओ ॥ १ ॥ इन्द्र के दोनों घोड़े उन्हें सुखदायक रथ में बिठाकर घी में स्निग्ध धान्य के निकट ले आवें ॥ २ ॥ हम उषाकाल में इन्द्र का आह्वान करते हैं। यज्ञ-सम्पादन काल में सोम-पान करने को इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! अपने लम्बे केश वाले अश्वों के साथ यहाँ आओ। सोम-रस छन कर तैयार हो जाने पर हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! इस सोम-रस के लिए हमारे स्तोत्रों से यहाँ आकर प्यासे गौर के समान सोम-पान करो ॥ ५ ॥ [३१]

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि । ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥६
अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः । अथा सोमं सुतं पिब ॥७
विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति । वृत्रहा सोमपीतये ॥८
सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ।६।३

हे इन्द्र ! यह परम शक्ति वाले, निष्पन्न सोम कुशासन पर रखे हैं, तुम उन्हें शक्ति-वर्द्धन के निमित्त पीओ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यह श्रेष्ठ स्तोत्र मर्मस्पर्शी और सुख का कारणभूत है। तुम इसे सुनकर तुरन्त ही इस निष्पन्न सोम का पान करो ॥ ७ ॥ जहाँ सोम छाना जाता है वहाँ सोम-पान के निमित्त उससे उत्पन्न प्रसन्नता प्राप्ति के लिए दुष्टों को मारने वाले इन्द्र अवश्य पहुँचते हैं ॥ ८ ॥ हे महाबली इन्द्र ! गाय और अश्वादि युक्त धन वाली हमारी सब कामनाएँ पूर्ण करो । हम ध्यानपूर्वक तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ६ ॥ [२१]

१७ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द—गायत्री ।)

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे । ता नो मृलात ईदृशे ॥१
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः । धर्तारा चर्षणीनाम् ॥२
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ । ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥३
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् । भूयाम वाजदाव्नाम् ॥४
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् । क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ।५।३

मैं, सम्राट इंद्र और वरुण से रक्षा चाहता हूँ । वे दोनों हम पर कृपा करें ॥ १ ॥ तुम मनुष्यों के स्वामी ! हम ब्राह्मणों के बुलाने पर रक्षा के लिए अवश्य आओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! हमको अभीष्ट धन देकर तृप्त करो । हम सदा तुम्हारा सामीप्य चाहते हैं ॥ ३ ॥ बल तथा सुबुद्धि प्राप्ति की इच्छा से हम तुम्हारी कामना करते हैं । हम अन्न दान करने वालों में अग्रणी रहें ॥ ४ ॥ सहस्रों धनदाताओं में इन्द्र ही श्रेष्ठ हैं और स्तुति ग्रहण करने वालों में वरुण श्रेष्ठ हैं ॥ ५ ॥ [२२]

ोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम्　　॥६
न्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥७
न्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥८
वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ।९।३३

उनकी रक्षा से हम धन को प्राप्त कर उसका उपभोग करें । वह धन चुर परिमाण में संचित हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और वरुण विभिन्न प्रकार के नों के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं । हमको भले प्रकार जय लाभ राओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनों स्नेह भाव रखते हुए हमको पना आश्रय प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! जो सुन्दर स्तुति तुम्हारे निमित्त करता हूँ और जिस स्तुति की तुम पुष्टि करते हो, उन तुतियों को ग्रहण करो ॥ ९ ॥　　　　　　[३३]

१८ सूक्त

(ऋषि-मेधातिथिः काण्वः । देवता-ब्रह्मणस्पतिः । छन्द-गायत्री ।)

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः　　॥१
यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥२
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥३
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥४
वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः　।५।३४

हे ब्रह्मणस्पते ! मुझ सोम निचोड़ने वाले को उशिज के पुत्र कक्षीवान् के मान प्रसिद्धि प्रदान करो ॥ १ ॥ धनवान्, रोगनाशक, धनों के ज्ञाता, पुष्टि-र्द्धक, शीघ्र फल देने वाले ब्रह्मणस्पति हम पर कृपा करें ॥ २ ॥ नास्तिक मको वश में न कर सकें । हम मरणधर्मा प्राणी हिंसित न हों । अतः हे ह्मणस्पते ! हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ इन्द्र, सोम और ब्रह्मणस्पति द्वारा रेरणा प्राप्त मनुष्य कभी दुखित नहीं होता ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मणस्पते,

सोम, इन्द्र और दक्षिणा उस मनुष्य की पापों से रक्षा करो ॥ ५ ॥ [३४]

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् । सनिं मेधामयासिषम् ॥६
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति ॥७
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् । होत्रा देवेषु गच्छति ॥८
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् । दिवो न सद्ममखसम् ॥९॥३५

अद्भुत रूप वाले, इन्द्र के प्रिय तथा पालक अग्नि, धन और सुमति की याचना करता हूँ ॥ ६ ॥ जिसकी कृपा के विना ज्ञानी का यज्ञ पूर्ण नहीं होता, वह अग्नि हमको उचित प्रेरणा देते हैं ॥ ७ ॥ अग्नि ही हवियों को सम्बृद्ध कर यज्ञ की वृद्धि करते हैं । यजमान की स्तुतियाँ देवताओं को प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥ प्रतापी, विख्यात तथा यशस्वी मनुष्यों द्वारा स्तुति किये और पूजे गये अग्नि को मैंने देखा है ॥ ९ ॥ [३५]

१९ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—अग्नि और मरुत । छन्द—गायत्री ।)

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३
य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४
ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि । ५।३६

हे अग्नि ! उस सुशोभित यज्ञ में सोम पीने के लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ । मरुद्गणों के साथ यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे अग्ने तुम्हारे समान कोई देवता या मनुष्य महान नहीं है, जो तुम्हारे वल का सामना कर सके । तुम मरुतों के साथ पधारो ॥ २ ॥ जो विश्वेदेवा किसी से वैर नहीं रखते और महान् अंतरिक्ष के ज्ञाता हैं, हे अग्ने उनके साथ आओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जिन उग्र और अजेय, वलशाली मरुतों ने वृष्टि की थी, स्तोत्रों से स्तवन किये हुये उन मरुतों के साथ यहाँ आओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जो शोभा

युक्त और उग्र रूप धारण करने वाले हैं जो बहुत बलशाली और शत्रुओं के संहारकर्त्ता हैं, उन्हीं मरुद्गणों के साथ आओ ॥ ५ ॥ [३६]

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६
य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७
आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८
अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि । ९ । ३७

हे अग्ने ! स्वर्ग से ऊपर प्रकाशित लोक में जिन मरुतों का निवास है, उन्हें साथ लेकर आओ ॥ ६ ॥ हे अग्ने बादलों का संचालन करने वाले और जल को समुद्र में गिराने वाले मरुतों के साथ यहाँ पधारो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! सूर्य किरणों के साथ सर्वत्र व्याप्त और समुद्र को बलपूर्वक चलायमान करने वाले मरुतों के साथ पधारो ॥ ८ ॥ हे अग्ने आपके पीने के लिए मधुर सोम रस प्रस्तुत कर रहा हूँ । अतः तुम मरुतों के साथ आओ ॥ ९ ॥ [३७]

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

२० सूक्त [पाँचवाँ अनुवाक]

(ऋषि—मेधातिथि काण्वः । देवता—ऋभवः । छन्द—गायत्री ।)

अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया । अकारि रत्नधातमः ॥ १
य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी । शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २
तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम ॥ ३
युवाना पितरा पुनः सत्यमंत्रा ऋजूयवः । ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४
सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता । आदित्येभिश्च राजभिः । ५ । १

यह स्तोत्र विद्वानों ने ऋभु देवों के निमित्त रमणीक रूप में रचा है ॥ १ ॥ जिन ऋभुओं ने अपने मन से, इन्द्र के वचन मात्र से जुत जाने वाले अश्वों की रचना की, वे हमारे यज्ञ में स्वयं ही व्याप्त हैं ॥ २ ॥ उन्होंने अश्विनीकुमारों के लिए सुख देने वाले रथ की रचना की और दुग्ध रूप अमृत देने वाली धेनु को बनाया ॥ ३ ॥ सत्याश्रय, सरल स्वभाव वाले,

स्नेही, निस्वार्थी ऋभुओं ने अपने माता पिता को पुनः युवावस्था दी ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मरुद्गण और आदित्य के सहित तुम्हारे निमित्त यह सोम रस प्रस्तुत हैं ॥ ५ ॥ [१]

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् । अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६
ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते । एकमेकं सुशास्तिभिः ॥ ७
अधारयन्त वह्नयोऽभजंत सुकृत्यया । भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ २

त्वष्टा ने जो नया चमस पात्र प्रस्तुत किया था, ऋभुओं ने उसके स्थान पर चार चमस बना दिए ॥ ६ ॥ वे उत्तम प्रकार से स्तुति किये जाते हुए ऋभुगण सोम सिद्ध करने वाले यजमान को एक-एक कर इक्कीस रत्न प्रदान करें ॥ ७ ॥ ऋभुगण अविनाशी आयु प्राप्त कर देवताओं के मध्य रहते हुए यज्ञ-भाग प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ [२]

२१ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—इन्द्र और अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि । ता सोमं सोमपातमा ॥ १
ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः । ता गायत्रेषु गायत ॥ २
ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे । सोमपा सोमपीतये ॥ ३
उग्रा संता हवामह उपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४
ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् । अप्रजाः संत्वत्रिणः ॥ ५
तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६।३

इन्द्र और अग्नि का इस यज्ञ-स्थान में आह्वान करता हूँ । उन्हीं का स्तवन करता हुआ सोम-पान के लिए दोनों से निवेदन करता हूँ ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! इन्द्र और अग्नि का स्तवन करो, उन्हें अलंकृत कर स्तोत्र गान करो ॥ २ ॥ इन्द्र और अग्नि को मित्र की प्रशंसा के लिए तथा सोम-पान करने के लिए आमन्त्रित करते हैं ॥ ३ ॥ उग्र देव इन्द्र और अग्नि का सोम-याग में आह्वान करते हैं । वे दोनों यहाँ पधारें ॥ ४ ॥ हे महान्, सभा

रक्षा करने वाले इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों दुष्टों को वशीभूत करो। तुष्य-भक्षी दैत्य सन्तानहीन हों ॥ ५ ॥ हे इन्द्राग्ने ! उस सत्य, चैतन्य यज्ञ निमित्त जागकर हमको आश्रय दो ॥ ६ ॥ [३]

२२ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथिः काण्वः । देवता—अश्विनी प्रभृति । छंद—गायत्र)

प्रातयु॑जा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥१
या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥ २
या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३
नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४
हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५-। ४

हे अग्ने ! प्रातःकाल सचेत होने वाले अश्विनीकुमारों को यज्ञ में आने के लिए जगाओ ॥ १ ॥ वे दोनों सुशोभित रथ में युक्त अतिरथी तथा आकाश को भी छूने वाले हैं। हम उनका आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों की मधुर, प्रिय और सत्य रूप जो चाबुक है, उसके साथ आकर यज्ञ को सींचो ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों जिस मार्ग से प्रस्थान करते हो, उससे सोम वाले यजमान का घर दूर नहीं है ॥ ४ ॥ मैं उस स्वर्ण हस्त वाले सूर्य का आह्वान करता हूँ। वे यजमान को उचित प्रेरणा देंगे ॥ ५ ॥ [४]

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६
विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७
सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८
अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् । वरूत्रीं धिषणां वह ।१०।५

जलों को आकर्षण करने वाले सूर्य की रक्षा के लिए आमन्त्रित कर हम यज्ञ करने की इच्छा करते हैं ॥ ६ ॥ धनैश्वर्य को बाँटने वाले, मनुष्यों के द्रष्टा सूर्य का आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥ हे मित्रो ! सब और बैठकर धनदाता

सूर्य की स्तुति करो। वे अत्यन्त सुशोभित हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने! अभिलाषा वाली देव-पत्नियों को यज्ञ में लाओ। सोम-पान के लिए त्वष्टा को यहाँ ले आओ ॥ ९ ॥ हे युवावस्था प्राप्त अग्ने! हमारे रक्षण के लिए होत्रा, भारती, वरुत्री और धिषणा देवियों को यहाँ लाओ ॥ १० ॥ [५]

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।

अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये । अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।

पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३

तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः । गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५।६

वीर पत्नी, द्रुतगामिनी देवियाँ अपने रक्षण-सामर्थ्यों से हमको आश्रय प्रदान करें ॥ ११ ॥ अपने मङ्गल के लिए इन्द्राणी, वरुण पत्नी और अग्नि की पत्नी का सोम पीने के लिए आह्वान करता हूँ ॥ १२ ॥ महान् आकाश और पृथिवी इस यज्ञ को सींचने की कामना करती हुई हमको पोषण सामर्थ्य प्रदान करें ॥ १३ ॥ आकाश, पृथिवी के मध्य, गन्धर्वों के स्थान में ज्ञानी जन ध्यान से घी के समान जल पीते हैं ॥ १४ ॥ हे पृथिवी, तू सुख-दायिनी, बाधारहित और उत्तम वास देने वाली हो तथा हमको आश्रय प्रदान कर ॥ १५ ॥ [६]

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।

पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूलहमस्य पांसुरे ॥ १७

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २०
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ । ७

जिस सप्त स्थान वाली पृथिवी पर विष्णु ने पाद-क्रमण किया उसी पृथिवी पर देवगण हमारी रक्षा करें ॥ १६ ॥ विष्णु ने इस संसार को तीन पाँव रखकर विक्रमण किया । इनके धूल लगे पैर में ही पूरी सृष्टि समा गई ॥ १७ ॥ सबके रक्षक, किसी से धोखा न खाने वाले नियम पालक विष्णु ने तीन पैर रखे ॥ १८ ॥ विष्णु के पराक्रम को देखो जिनके बल से सभी नियम स्थित हैं । वे इन्द्र के साथी तथा मित्र हैं ॥ १९ ॥ आकाश की ओर विस्तारपूर्वक देखने वाला नेत्र विष्णु के परमपद को देखना चाहता है । ज्ञानी मन उस पद को निरन्तर अपने हृदय में देखते हैं ॥ २० ॥ विष्णु के सर्वोच्च पद को स्तुति करने वाले चैतन्य ज्ञानी जन भले प्रकार प्रकाशित करते हैं ॥ २१ ॥ [७]

२३ सूक्त

(ऋषि–मेधातिथिः काण्वः । देवता–वायु प्रभृति । छन्द–गायत्री)

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे ।
वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥ १
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ २
इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ५ । ८

हे वायो ! आओ, यह वेग वाले दूध से मिले हुए और छने हुए सोम रस रखे हैं, इनका पान करो ॥ १ ॥ आकाश को छूने वाले इन्द्र और वायु देवता का हम सोम पीने के निमित्त आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ मन की तरह द्रुतगामी, सहस्र चक्षु, कर्मशील इन्द्र और वायु को अपनी रक्षा के लिये ज्ञानी जन बुलाते हैं ॥ ३ ॥ मित्र और वरुण को सोम पान करने के लिये हम

बुलाते हैं। वे पवित्र और बलवान हैं ॥ ४ ॥ सत्य से यज्ञ को बढ़ाने वाले प्रकाश के पालक मित्र और वरुण का मैं आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥ [८]

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करता नः सुराधसः ॥ ६
मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये । सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८
हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९
विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये । उग्रा हि पृश्निमातरः । १० । ९

वरुण मेरे रक्षक हों, मित्र भी रक्षा करें और यह दोनों मुझे धनवान बना दें ॥ ६ ॥ मरुतों के सहित इन्द्र का हम आह्वान करते हैं। वे सोम पान के लिये यहाँ आकर तृप्त हों ॥ ७ ॥ पूषा दाता हैं और इन्द्र दाताओं में मुख्य हैं। वे मरुद्गण हमारे आह्वान को सुनें ॥ ८ ॥ हे सुशोभित दानी मरुतो ! तुम बली और सहायक इन्द्र के सहित शत्रुओं को नष्ट कर डालो। कहीं दुष्ट लोग हम पर शासन न करने लगें ॥ ९ ॥ सब मरुत नाम वाले देवों को हम सोम-पान के लिये बुलाते हैं। वे उग्र और अंतरिक्ष की संतान हैं ॥ १० ॥ [९]

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया । यच्छुभं याथना नरः ॥ ११
हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः । मरुतो मृलयन्तु नः ॥ १२
आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः । आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३
पूषा राजानमाघृणिरपगूलहं गुहा हितम् । अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥ १४
उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत् ।
गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥ १५ । १

मरुतों का गर्जन विजय-नाद के समान है, उससे मनुष्यों का मङ्गल होता है ॥ ११ ॥ विद्युत के प्रकाश पर हँसमुख (सूर्य) से उत्पन्न मरुद्गण हमारे रक्षक हों और हमारा कल्याण करें ॥ १२ ॥ हे दीप्तियुक्त पूषा ! जैसे खोये हुये पशु को ढूँढ़ लाते हैं, वैसे ही तुम कुशा से युक्त, यज्ञ-धारक सोम को ले आओ ॥ १३ ॥ सब ओर से प्रकाशित पूषा ने गुफा में छिपे

कुशयुक्त राजा सोम को प्राप्त किया ॥ १४ ॥ वह पूषा सुघटित छैओं
ओं को सोमों द्वारा प्राप्त कराता रहे, जैसे किसान जौ को बार-बार प्राप्त
ा है ॥ १५ ॥   [१०]

वयो यन्त्यध्वभिर्जामयो: अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१६
यूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७
ो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः । सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥१८
स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः ॥ १९
सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० । ११

यज्ञ की इच्छा करने वालों का मातृ-भूत जल हमारा बन्धु रूप है
र वह दूध को पुष्ट करता हुआ यज्ञ-मार्ग से चलता है ॥ १६ ॥ जो जल
र्य के पास स्थित हैं अथवा सूर्य जिनके साथ हैं, वे हमारे यज्ञ को
ंचे ॥ १७ ॥ जिन जलों को हमारी गौऐं पीती हैं, उन जलों को हम
हते हैं। जो जल बह रहा है, उसे हवि देनी है ॥ १८ ॥ जलों में अमृत
, जलों में औषध है, जलों की प्रशंसा से उत्साह प्राप्त करो ॥ १९ ॥ सोम
कथनानुसार जलों में औषधि-तत्व है। उसने सर्व सुखदाता अग्नि और
ारोग्यता देने वाले जलों का गुण वर्णन किया है ॥ २० ॥   [११]

ापः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । ज्योक् सूर्यं दृशे ॥ २१
दमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २२
ापो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३
ं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥ २४।१२

हे जलो ! चिरकाल तक सूर्य-दर्शन के निमित्त, निरोग रहने के लिये,
ारीर-रक्षक औषध को मेरे देह में स्थित करो ॥ २१ ॥ हे जलो ! मुझमें

स्थित पाप को बहा दो। मेरे द्रोह-भाव, अपशब्द और मिथ्याचरण को प्रवाहित करो ॥ २२ ॥ आज मैंने जलों को पाया है। उन्होंने हमें रसयुक्त किया है। हे अग्ने जलों के सहित आकर मुझे तेजस्वी बनाओ ॥ २३ ॥ हे अग्ने ! मुझे तेजस्वी करो। प्रजा और आयु से युक्त करो। देवगण, ऋषिगण और इन्द्रदेव मेरे स्तवन को जान लें ॥ २४ ॥ [१२]

२४ सूक्त [छठा अनुवाक]

(ऋषि-शुनःशेप आजीगर्त्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः। देवता-प्रजापति प्रभृति। छन्द-त्रिष्टुप्। गायत्री)

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २
अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन्भागमीमहे ॥ ३
य श्चिद्धि त इत्था भगः शशमानःपुरानिदः। अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४
भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ । १

मैं किस देवता के सुन्दर नाम का उच्चारण करूँ ? कौन मुझे महती अदिति को देगा, जिससे मैं पिता और माता को देख सकूँ ॥ १ ॥ अमरत्व प्राप्त देवताओं में सर्व प्रथम अग्नि का नामोच्चार करें। वह मुझे महती अदिति को देवें और मैं पिता माता को देख पाऊँ ॥ २ ॥ हे सतत रक्षण शील एवं वरणीय धनों के स्वामी सविता देव ! तुमसे हम सभी ऐश्वर्यों की याचना करते हैं ॥ ३ ॥ हे सूर्य ! सत्य, अनित्य, स्तुत्य, द्वेष रहित तथा सेवनीय धन के तुम धारण करने वाले हो ॥ ४ ॥ हे ऐश्वर्यशाली सूर्य तुम्हारी रक्षा में आश्रित हुए हम तुम्हारे सेवक ऐश्वर्य-साधनों की वृद्धि में लगे रहते हैं। आप हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥ [१३

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥ ७
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८
शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥ १० । १४

हे वरुण ! तुम्हारे अखण्ड राज्य, बल और क्रोध को यह उड़ते हुए पक्षी भी नहीं पहुँच पाते । निरन्तर चलते हुए और वायु का प्रबल वेग भी तुम्हारी गति को नहीं रोक पाता ॥ ६ ॥ पवित्र पराक्रमयुक्त वरुण आकाश के ऊपर की ओर तेज समूह को स्थापित करते हैं । इस तेज समूह का मुख नीचे और जड़ ऊपर है । यह हमारे भीतर स्थिर होकर बुद्धि रूप से धाम करें ॥ ७ ॥ वरुण ने सूर्य के गमन करने के लिए विस्तृत मार्ग बनाया है तथा निराश्रय आकाश में सूर्य के पाँव रखने की व्यवस्था की । वे वरुण मेरे हृदय को कष्ट देने वाले को भी हटाने में समर्थ हैं ॥ ८ ॥ हे वरुण तुम्हारे पास असंख्य उपाय हैं । तुम्हारी कल्याण बुद्धि गम्भीर और दूर तक जाने वाली है । तुम पाप के बल को नष्ट करो । किये हुए हमारे पापों से हमको छुड़ाओ ॥ ९ ॥ यह तारे रूप सप्तर्षि उन्नत स्थान में बैठे हुए रात्रि में दीखते थे, वह दिन में कहाँ विलीन हो गये ? चन्द्रमा भी रात्रि में ही प्रकाशित होता हुआ चलता है । वरुण के नियम अटल हैं ॥ १० ॥ [१४]

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ११
तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनः शेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२
शुनः शेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।

अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३
अव ते हेलो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५।१५

हे वरुण ! मन्त्रयुक्त वाणी से स्तवन करता हुआ तुमसे ही याचना करता हूँ । हवि वाला यजमान, क्रोध न करने की आप से प्रार्थना करता हुआ आयु माँगता है ॥ ११ ॥ रात और दिन यही बात मेरे हृदय में उठती है कि बन्धन में पड़े जिस शुनः शेप ने वरुण को बुलाया था, वह हमको भी बन्धन से मुक्त करें ॥ १२ ॥ पकड़े जाकर काठ के तीन खम्भों से बाँधे गये शुनः शेप ने अदिति-पुत्र वरुण का आह्वान किया । वे वरुण विद्वान और कभी धोखा न खाने वाले हैं । वे मेरी पाशों को काटकर मुक्त करें ॥ १३ ॥ हे वरुण ! हमारे स्तुति वचनों से अपने क्रोध को निवारण करो । तुम प्रखर बुद्धि वाले हमारे यहाँ वास करते हुए हमारे पापों के बन्धन को ढीला करो ॥ १४ ॥ हे वरुण ! हमारे ऊपर के पाश को ऊपर और नीचे के पाश को नीचे खींचकर, बीच के पाश को काट डालो । हम तुम्हारे नियम में चलते हुए निरपराध रहें ॥ १५ ॥ [१५]

२५ सूक्त

(ऋषि—शुनःशेप आजीगर्तिः । देवता—वरुण । छन्द—गायत्री)

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १
मा नो वधाय हत्नवे जिहीलानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २
वि मृलीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥ ३
परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥ ४
कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृलीकायोरुचक्षसम् ॥ ५ १६

हे वरुण ! जैसे तुम्हारे व्रतानुष्ठान में मनुष्य प्रमाद करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे नियमादि का उल्लङ्घन कर बैठते हैं ॥ १ ॥ हे वरुण ! निरा-

दूर करने वाले की देह उसकी हिंसा है। हमको वह देह मत दो। हम पर क्रोध न करो ॥ २ ॥ हे वरुण! स्तुतियों द्वारा हम आपकी कृपा चाहते हैं। उसी प्रकार जैसे अश्व का स्वामी उसके घावों पर पट्टियाँ बाँधता है ॥ ३ ॥ घोंसलों की ओर दौड़ने वाली चिड़ियाओं के समान हमारी क्रोध रहित बुद्धियाँ धन-प्राप्ति के लिये दौड़ती हैं ॥ ४ ॥ बलवान ऐश्वर्य वाले दूरदर्शी वरुण को कृपा प्राप्त करने के लिये कब उन्हें अपने अनुष्ठान में ले आवेंगे? ॥ ५ ॥ [१९]

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६
वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः ॥ ७
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते ॥ ८
वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ॥ ९
नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥ ३

हवि की इच्छा वाले मित्र और वरुण, नियमवान यजमान की आत्म-रूप हवि को भी नहीं त्यागते ॥ ६ ॥ हे वरुण! आप उड़ने वाले पक्षियों के आकाश मार्ग और समुद्र के नौका-मार्गों के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥ ७ ॥ वे धृत-नियम वरुण, प्रजाओं के उपयोगी बारह मासों को तथा तेरहवें अधिक मास को भी जानते हैं ॥ ८ ॥ वे सूक्ष्म रूप से स्थित, विस्तृत, उच्च, महान वायु के मार्ग को भले प्रकार जानते हैं ॥ ९ ॥ नियमों में दृढ़, सुन्दर कर्म वाले, वरुण प्रजाजनों में साम्राज्य स्थापन के निमित्त बैठते हैं ॥ १० ॥ [२०]

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११
स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १२
बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३
न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः ॥ १४
उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥ १५

जो बन चुके हुए अथवा होने वाले हैं, उन कर्मों को वे मेधावी वरुण इस स्थान से देखते हैं ॥ ११ ॥ वे श्रेष्ठ बुद्धि वाले वरुण हमको सदा सुन्दर मार्ग दें और हमको आयुष्मान् करें ॥ १२ ॥ सोने के कवच से उन्होंने अपना

मर्म-भाग ढक लिया है, उनके चारों ओर समाचार वाहक उपस्थित हैं। ॥ १३ ॥ जिसे शत्रु धोखा नहीं दे सकते, विद्रोही जिनसे द्रोह करने में सफल नहीं हो सकते, उस वरुण से कोई शत्रुता नहीं कर सकता ॥ १४ ॥ जिस वरुण ने मनुष्यों के लिए अन्न की भरपूर स्थापना की है, वह हमारे उदर में अन्न ग्रहण करने की सामर्थ्य देता है ॥ १५ ॥ [१८]

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु । इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६
सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् । होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७
दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि । एता जुषत मे गिरः ॥ १८
इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृलय । त्वामवस्युरा चके ॥ १९
त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि । स यामनि प्रति श्रुधि ॥२
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत । अवाधमानि जीवसे ॥२१।१९

दूरदर्शी वरुण की कामना करती हुई मन की वृत्तियाँ निवृत्त होक वैसे ही पहुँचती हैं, जैसे चरने के स्थानों की ओर गौएँ जाती हैं ॥ १६ मेरे द्वारा सम्पादित मधुर हवि को अग्नि के समान प्रीतिपूर्वक भक्षण करे फिर हम दोनों वार्तालाप करेंगे ॥ १७ ॥ सबके देखने योग्य वरुण को, उ रथ सहित भूमि पर मैंने देखा है। उन्होंने मेरी स्तुतियाँ स्वीकार कर हैं ॥ १८ ॥ हे वरुण मेरे आह्वान को सुनो। मुझ पर आज कृपा करो। पर रक्षा करने की इच्छा वाले तुम्हें मैंने पुकारा है ॥ १९ ॥ हे मे वरुण ! तुम आकाश और पृथिवी के स्वामी हो। तुम हमारे आह्वा उत्तर दो ॥ २० ॥ हे वरुण ! ऊपर के पाश को खींचो, बीच के पा काटो और नीचे के पाश को भी खींचकर हमको जीवन दो ॥ २१ ॥

२६ सूक्त

(ऋषि-शुनःशेप आजीगर्त्ति । देवता-अग्नि । छन्द-गायत्री)

वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते । सेमं नो अध्वरं यज
नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः । अग्ने दिवित्मता व
आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये । सखा सख्ये वरेण्

आ नो वर्हीं रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा । सीदन्तु मनुषो यथा ॥४
पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५।२०

हे पूज्य, योग्य, बली अग्ने ! तुम अपने तेज रूप वस्त्रों को धारण कर हमारे यज्ञ को सम्पन्न करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम सतत युवा, उत्तम तेजस्वी हो। इस यजमान के स्तुति वचनों प्रतिष्ठित होओ ॥ २ ॥ हे वरणीय अग्ने ! जैसे पिता पुत्र को, भाई भाई को तथा मित्र मित्र को वस्तुएँ देते हैं, वैसे ही तुम हमको दाता बनो ॥ ३ ॥ शत्रुओं को मारने वाले वरुण, मित्र और अर्यमा मनुष्यों के समान कुशों पर विराजमान हों ॥ ४ ॥ हे पुरातन होता ! तुम इस यज्ञ और हमारे मित्र-भाव से प्रसन्न हो ओ । हमारी स्तुतियों को भले प्रकार सुनो ॥ ५ ॥ [२०]

यच्चिद्धि शश्वता तना देवन्देवं यजामहे । त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६
प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः । प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥७
स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः । स्वग्नयो मनामहे ॥ ८
अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् । मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ॥ १० । २१

हे अग्ने ! नित्यप्रति विभिन्न देवताओं को पूजते हुए भी हम तुमको ही हवि देते हैं ॥ ६ ॥ प्रजा-पालक, होता, वरणीय, अग्नि हमको प्रिय हों। हम भी शोभायुक्त अग्नि वाले होकर उनके प्रिय बनें ॥ ७ ॥ शोभनीय अग्नि सहित देवताओं ने जैसे हमारे लिए ऐश्वर्य धारण किया है, वैसे ही हम सुन्दर अग्नियों से युक्त हुए तुमको पूजते हैं ॥ ८ ॥ हे मरण-धर्म रहित अग्ने ! तुम्हारी ओर हम मरणशील मनुष्यों की प्रशंसायुक्त वाणियाँ परस्पर स्नेह वाली हों ॥ ९ ॥ हे बल पुत्र अग्ने ! तुम सब अग्नियों [illegible] इस यज्ञ और हमारी वाणी से प्रसन्न हो ओ ॥ १० ॥

२७ सूक्त

(ऋषि-शुनःशेप आजीगर्ति । देवता-अग्नि और विश्वेदेवा ।
छन्द-गायत्री ।)

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः । पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३
इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् । अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥४
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु । शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५।२२

हे अग्ने ! तुम बालों वाले अश्व के समान हो। यज्ञों में सम्राट् के समान प्रतिष्ठित अग्नि की, स्तुतियों द्वारा पूजन के लिए मैं उपस्थित हूँ ॥ १ ॥ वह बल के पुत्र, विस्तीर्ण गमन शक्ति वाले, शोभनीय सुख के दाता, अभीष्ट वर्षक अग्नि हमारे हों ॥ २ ॥ सर्वत्र गमनशील अग्ने ! तुम हमको दूर या पास से भी, पाप करने की इच्छा वालों से सदा बचाते रहो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हमारे इस हवि दान और नवीन स्तोत्र का देवताओं के सम्मुख उत्तम प्रकार से वर्णन करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने हमको उत्तम लोक प्राप्त कराओ । मध्यलोक में होने वाले अन्नों में हमें भागी बनाओ और समीपस्थ धन को हमें प्रदान करो ॥ ५ ॥ [२२]

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ । सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥६
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः । स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७
नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् । वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता । विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९
जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० २३

हे विभिन्न सामर्थ्य वाले अग्ने ! तुम धन को बाँटते हो । समुद्र की

मर्यादा में बहने वाले जल के समान तुम यजमान के लिए तुरन्त प्रवाहमान होते हो ॥ ६ ॥ अग्ने ! तुमने युद्धों में जिसकी रक्षा की तथा युद्धों की ओर जिसको प्रेरित किया, वह अटल ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला मनुष्य सदा स्वाधीन रहता है ॥ ७ ॥ हे विजयशील ! उस पूर्वोक्त मनुष्य को कोई वश नहीं कर सकता क्योंकि उसका बल वर्णन करने योग्य हो जाता है ॥ ८ ॥ वह अग्नि मनुष्यों के स्वामी हैं। हमको अश्वों द्वारा युद्ध से पार करते हैं तथा ज्ञान द्वारा धन देते हैं ॥ ९ ॥ हे स्तुतियों के ज्ञाता अग्ने ! हमको मनुष्यों के पूज्य रुद्र के निमित्त सुन्दर स्तोत्र की प्रेरणा दो ॥ १० ॥ [२३]

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः । धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ १२
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ १३।२४

वह अपरिमित धूम्र-ध्वज वाले अग्नि अत्यन्त प्रकाशित हैं। हमको बुद्धि और बल प्रदान करें ॥ ११ ॥ प्रजा के स्वामी, देवताओं से सम्बन्धित, ज्ञानदाता, महान् प्रकाश वाले वह अग्नि हमारे स्तोत्रों को ऐश्वर्यवानों के समान सुनें ॥ १२ ॥ बड़े, छोटे, युवक, वृद्ध सभी को हम नमस्कार करें। हम सामर्थ्यवान् हों। देवताओं को पूजने वाले हों। हे देवगण ! मैं अपने से बड़ों का सदा आदर करूँ ॥ १३ ॥ [२४]

२८ सूक्त

(ऋषि-शुनःशेप आजीगर्तिः। देवता-इन्द्रयज्ञसोमाः।
छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २

यत्रनार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३
यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४
यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ । २५

हे इन्द्र ! जहाँ कूटने के लिए दृढ़ पत्थर का मूसल उठाया जाता है, वहाँ निष्पन्न किये गये सोमों का वारम्वार सेवन करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जहाँ दो जङ्घाओं के समान सोम कूटने वाले सिल-लोढ़े अथवा दो फलक रखे हैं, उनसे तैयार किये हुए सोम रस को पान करो ॥ २ ॥ जहाँ स्त्री सोम रस तैयार करने के लिए मूसल से कूटने को डालने निकालने का अभ्यास करती है । हे इन्द्र ! वहाँ जाकर सोम रस का सेवन करो ॥ ३ ॥ सारथी द्वारा घोड़े को रास से बाँधने को भाँति जहाँ मन्थन-दण्ड (मथानी) को रस्सी से बाँधकर मन्थन करते हैं, उस स्थान को प्राप्तकर सोमरस पान करो ॥ ४ ॥ हे ऊखल ! तुम घर-घर में, काम में लिए जाते हो, फिर भी हमारे इस घर में विजय-दुन्दुभी के समान शब्द करो ॥ ५ ॥ [२५]

स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६
आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः ।
हरी इवान्धांसिबप्सता ॥ ७
ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः ।
इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८
उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज । नि धेहिगोरधि त्वचि ॥९।२६

हे ऊखल-मूसल वनस्पते ! वायु तुम्हारे सामने विशेष गति से चलती है । हे ऊखल ! तुम इन्द्र को पीने के लिए सोम को सिद्ध करो ॥ ६ ॥ महान् फल के देने वाले पूजने योग्य यह ऊखल और मूसल दोनों, अन्नों का सेवन

करते हुए अश्व के समान उच्च स्वर में खेलते हैं ॥ ७ ॥ हे ऊखल मूसल रूप वनस्पते ! तुम सोम सिद्ध करने वालों के लिए मधुर सोमों का इन्द्र के निमित्त निष्पीड़न करो ॥ ८ ॥ ऊखल और मूसल द्वारा कूटे गये सोम को पात्र से निकालकर पवित्र कुश पर रखो, अवशिष्ट को चर्म-पात्र में रखो ॥ ९ ॥ [२६]

२९ सूक्त

(ऋषि-शुनःशेप आजीगर्ति । देवता-इन्द्र । छन्द-पंक्ति)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १
शिप्रिन्वाजाना पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ । २७

हे सत्य स्वरूप, सोमपायी इन्द्र ! यद्यपि हम निराश से हुए पड़े हैं, फिर भी तुम अत्यन्त सुन्दर पुष्ट हजारों गाय-घोड़े देकर हमको करो ॥ १ ॥ हे शक्तिशालिन्, हे सुन्दर नासिकायुक्त इन्द्र ! आपब हमको सदा मिली है । हमको हजारों गाय-घोड़े प्रदान करो ॥

न्द्र ! परस्पर देखने वाली दोनों, विपत्ति और दरिद्रता को अचेत कर दो,
कभी जागरणशील न रहें। हमको असंख्य गाय और अश्वों से युक्त
करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र हमारे शत्रु सोते रहें और मित्र जागरणशील हों हमको
सहस्रों गौ और घोड़े दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! इस पापपूर्ण स्तुति करने वाले
गधे के समान हमारे शत्रु को मार डालो। हमको सहस्र संख्यक गज, अश्व
प्रदान करो ॥ ५ ॥ कुटिल गति वाली वायु जङ्गल से भी दूर रहे। तुम
हमको गौ और धन आदि के दाता हो ओ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र हमारा अशुभ
चिन्तन करने वालों को मार डालो। हिंसकों को नष्ट करो, असंख्य गौ, अश्व
प्रदान करो ॥ ७ ॥ [२७]

३० सूक्त

(ऋषि—शुनःशेप आजीगर्ति । देवता—इन्द्र, उषा । छन्द—गायत्री)

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।
एदु निम्नं न रीयते ।

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ।

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ।

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५

हे मनुष्यो ! तुमको बहु बल प्राप्त कराने की इच्छा से महाव
को हम गढ़े के समान सब ओर से सींचते हैं ॥ १ ॥ नीचे की
वाले जल के समान हजारों कलश दूध में मिलाने के लिये सैक
गिरते हुये सोमों को इन्द्र प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ जल के लिए
समुद्र के समान इन्द्र बलकारी सोम के लिए अपने पेट को वि
है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए है। तुम इसे
... को प्राप्त करने के समान प्रेम से प्राप्त करते

वाणी भी पहुँचती है ॥ ४ ॥ हे धनेश्वर ! जिसके मुख में आपकी स्तुतिमय वाणी है, उसकी स्तुतियों से प्राप्त होने वाले तुम उसके घर में ऐश्वर्य भरदो। उसकी वाणी मधुर और सत्य हो ॥ ५ ॥ [२८]

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६
योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ६
तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत ।
सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० । २६

हे महाबली इन्द्र ! इस युद्ध में हमारी रक्षा के लिए उठो। हम दोनों भले प्रकार मन्त्रणा करें ॥ ६ ॥ हे सखे ! हम प्रत्येक कार्य अथवा युद्ध के आरम्भ में महाबली इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥ यदि इन्द्र ने हमारी पुकार सुन ली तो वे असंख्य रक्षा साधनों और शक्तियों के साथ अवश्य आवेंगे ॥ ८ ॥ मैं अपने अग्रणि, शक्ति स्वरूप इन्द्र को पूर्वजों की भाँति बुलाता हूँ। हे इन्द्र हमारे पिता भी तुमको बुलाते थे ॥ ६ ॥ हे वरणीय इन्द्र ! बहुतों से बुलाये गये तुम स्तोताओं के शरणदाता मित्र हो। हम तुम्हारे आह्वान की कामना करते हैं ॥ १० ॥ [२६]

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११
तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥ १२
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३
आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४
आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ । ३०

हे सोमपायी वज्रिन् ! सोम से बलवान हुए हमारे मित्रों के तुम मित्र हो ॥ ११ ॥ हे सोमपायी वज्रिन् ! हमारी यह इच्छा पूरी करो कि हम अपने अभीष्ट के निमित्त सदा तुम्हारी ही कामना किया करें ॥ १२ ॥ इन्द्र

न होने पर हमारी गायें अधिक दूध दें, जिससे हम अधिक पुष्टि को
र सकें ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रार्थना करने पर तुम स्वयं ही
की धुरी के समान भाग्य को घुमाकर धन देते हो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र !
कों की साधना और कामना के अनुसार ही तुम पहिये की धुरी
न उनकी दरिद्रता को पलट देते हो ॥ १५ ॥ [३०]

श्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥ १६
आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरिया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७
समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८
न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥ १९
कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥ २०
वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥ २२ । ३१

इन्द्र सदा ही शत्रुओं के धन को अपने स्फूर्तियुक्त घोड़ों के द्वारा
जीतता रहा है । उसने स्नेहवश हमको सोने का रथ प्रदान किया है ॥ १६ ॥
हे भीषण बल वाले अश्विनीकुमारो ! तुम अश्वों की गति से गौ और स्वर्णादि
धन के साथ यहाँ आओ ॥ १७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों के लिए
जुतने वाला एक ही रथ आकाश मार्ग में चलता है । उसे कोई नष्ट नहीं क
सकता ॥ १८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुमने अपने रथ के एक पहिये को प
पर स्थित किया है तथा दूसरा पहिया आकाश के चारों ओर चलता है ॥ १
हे पापों का नाश करने वाली ऊषे ! कौन मरणधर्मा मनुष्य तुम्हारे सुख
प्राप्त कर सकता है ॥ २० ॥ हे अश्व के समान गमन करने वाली, कांति
उषे ! तुम क्रोध रहित का ही हमने निकट या दूर तक चिन्तन
है ॥ २१ ॥ हे आकाश-सुते ! तुम उन शक्तियों के साथ यहाँ आओ,
द्वारा उत्तम ऐश्वर्य की हमारे लिए स्थापना कर सको ॥ २२ ॥ [

३१ सूक्त [सातवाँ अनुवाक]

(ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १
त्वमग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २
त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥ ३
त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥ ४
त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥ ५ । ३२

हे अग्ने ! तुम अङ्गिरा ऋषि से भी पहले हुए । देवता होकर भी उनके और हमारे मङ्गल की कामना वाले मित्र हो । मेधावी, ज्ञान और कर्म वाले दमकते हुए शस्त्रों वाले मरुद्गण तुम्हारे नियम में प्रकट हुए हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! अङ्गिराओं में श्रेष्ठ और प्रथम हो । तुम देवताओं को नियमों से सुशोभित करते हो । लोक व्यापक, दो माता वाले मनुष्यों के हित के निमित्त विद्यमान हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम सुन्दर कर्म की इच्छा से प्रकट हुए । होता के वरण करने पर तुम्हारे बल से आकाश-पृथिवी काँपते हैं । इसलिए तुमने यज्ञ का भार उठाकर देवताओं का पूजन किया है ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म वाले हो । तुमने मनु और पुरूरवा राजा को स्वर्ग के सम्बन्ध में बताया था । जब तुम मातृ-भूत दो काष्ठों से उत्पन्न होते हो तब तुम्हें पूर्व की ओर लाकर फिर पश्चिम की ओर ले जाते हैं ॥ ४ ॥ हे पोषण शक्ति वाले अग्ने ! स्रुक् हाथ में लिए हविर्दाता तुम्हारी स्तुति करता है तथा वषट्कार सहित आहुति देता है । तुम प्रधान पुरुष उन यजमानों को प्रकाशित करते हो ॥ ५ ॥

[३२]

ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
ूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥ ६
तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥ ७
नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८
त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद्वोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९
त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥ १०।२८

हे विशिष्ट द्रष्टा अग्ने ! तुम पाप-कर्मियों का भी उद्धार करते हो। तुम युद्ध उपस्थित होने पर थोड़े से धर्मवीरों द्वारा भी बहुसंख्यक पापियों को नष्ट करा देते हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम उस सेवक को भी अविनाशी पद देकर यशस्वी बनाते हो। उस पद की देवता और मनुष्य दोनों ही कामना करते हैं। तुम अपने साधक को अन्न-धन द्वारा सुखी करते हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हमको धन-प्राप्ति की योग्यता दो। साधक को यशस्वी बनाओ नये उत्साह से यज्ञादि कर्म करें। देवताओं सहित आकाश-पृथ्वी हमारे रक्ष हों ॥ ८ ॥ हे निर्दोष अग्ने ! तुम देवताओं में चैतन्य, आकाश-पृथ्वी मध्य में स्थित हमको पुत्र रूप समझो। तुम शासक का कल्याण करने व उसे हर प्रकार का ऐश्वर्य दो ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम कृपा करने वाले तुम्हें कोई धोखा नहीं दे सकता, तुम वीरतायुक्त गुण वाले और सहस्रों के कर्ता हो ॥ १० ॥

[३

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।
इलामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ।
त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते

त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥ १३
त्वमग्ने उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्रदिशो विदुष्टरः ॥ १४
त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥१५।३४

हे अग्ने! तुमको देवताओं ने मनुष्यों का हित करने को उसका राजा, स्वामी बनाया है। मेरे पिता (अङ्गिरा ऋषि) के पुत्र रूप से जब तुम उत्पन्न हुए तब देवताओं ने इडा को मनु की उपदेशिका बनाया ॥ ११ ॥ हे स्तुत्य अग्ने! तुम्हारी कृपा से धनी हुए हमारे शरीरों का पोषण और रक्षण करो। अविलम्ब हमारी सन्तान और पशुओं की रक्षा करो ॥ १२ ॥ हे अग्ने! तुम पूजक के पालनकर्ता हो। जिसने तुमको अहिंसित हवि दी है और जो निरत है, उसे तुम सब ओर से देखते हो। तुम अपने साधक की कामना पर ध्यान देते हो ॥ १३ ॥ हे अग्ने! उत्तम, अभीष्ट धन को ऋत्विज के निमित्त साध्य करते हो। तुम निर्बल के पिता और मूर्ख को ज्ञान देने वाले हो ॥ १४ ॥ हे अग्ने! तुम दक्षिणा वाले यजमान के लिए कवच के समान रक्षक हो। जो अपने घर में मधुर अन्न-हवि से सुख देने वाले यज्ञ को करता है, वह स्वर्गीय उपमा का अधिकारी होता है ॥ १५ ॥   [६४]

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६
मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥ १७
एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥ १८ । ३५

हे अग्ने! तुम हमारे यज्ञ में हुई भूलों को क्षमा करो। जो कुमार्ग में बहुत बढ़ गया है, उसे क्षमा करो। तुम सोम वाले यजमान के बन्धु, पिता

उस पर कृपा करने वाले हो ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! हे अङ्गिरा ! तुम
त पवित्र हमारे यज्ञ को प्राप्त होओ । पूर्वकाल में मनु, अङ्गिरा, ययाति
ज में आने वाले देवताओं को बुलाकर कुश पर प्रतिष्ठित करते हुए उनका
न करो ॥ १७ ॥ हे अग्ने इन मन्त्र रूप स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हो
। यह स्तुति शक्ति और ज्ञान से तुम्हारे निमित्त ही हमने प्राप्त की है।
म हमको महान् ऐश्वर्य प्रदान करो और बल देने वाली बुद्धि [३५]
ो ॥ १८ ॥

वेघा ॥ ३ ॥ हे इन्द्र तुमने मेघों में उत्पन्न प्रथम मेघ (वृत्र) का वध किया, प्रपंचियों का नाश किया । फिर सूर्य, उषा और आकाश को प्रकट किया तब कोई शत्रु शेष नहीं रहा ॥ ४ ॥ इन्द्र ने घोर अन्धकार करने वाले वृत्रासुर को भीषण वज्र से वृक्षों के तनों के समान काट डाला तब वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ५ ॥ [३६]

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७
नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव ॥ ८
नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ १० । ३७

मिथ्याभिमानी वृत्र ने महा बली, शत्रुनाशक, अत्यन्त वेग वाले इन्द्र को मौसिसियें को बुलाने के समान ललकारा । तब इन्द्र ने घोर जल-वर्षा की, जिससे बहते हुए वृत्र ने नदियों को भी पीस डाला ॥ ६ ॥ पाँव और हाथों से हीन वृत्र ने इन्द्र से युद्ध की इच्छा व्यक्त की । इन्द्र ने उसके कन्धे पर वज्र-प्रहार किया । तब वह क्षत-विक्षत हो धराशायी हुआ ॥ ७ ॥ जैसे नद तटों को लाँघ जाते हैं, वैसे ही मन को प्रसन्न करने वाले जल वृत्र को लाँघ जाते हैं । जो वृत्र अपने बल से जलों को रोक रहा था, वही अब उनके नीचे पड़ा सो रहा है ॥ ८ ॥ वृत्र की माता उसकी रक्षा के लिए उसकी देह पर टेढ़ी होकर पड़ गई । परन्तु इन्द्र के प्रहार करने पर वह बछड़े के साथ गौ के समान सो गई ॥ ९ ॥ स्थितिहीन अविश्रांत जलों के मध्य गिरे हुए वृत्रासुर के देह को जल जानते हैं । वह अनन्त निद्रा में लीन पड़ा है ॥ १० ॥ [३८

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां विलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥ १२
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥ १४
इंद्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता वभूव ॥ १५ । ३८

जैसे गायें छिपी हुई थीं, वैसे ही जल भी रुके हुए थे । इन्द्र ने वृत्र को मारकर उसके द्वार को खोल दिया ॥ ११ ॥ हे इन्द्र जब तुम पर वृत्र ने प्रहार किया तब तुम घोड़े के बाल के समान हो गये । हे वीर ! तुमने गौओं और सोमों को जीत कर सातों समुद्रों को प्रवाहित किया ॥ १२ ॥ वृत्र द्वारा छोड़ी हुई बिजली, मेघ की गर्जना, जल वर्षा और भीषण वज्र भी इन्द्र का स्पर्श न कर सके । उस युद्ध में इन्द्र ने उसे हर प्रकार जीत लिया ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्र पर आक्रमण करते हुए क्या किसी अन्य आक्रमणकारी को देखा, जिसके कारण तुम बाज पक्षी के समान निन्यानवे नदियों के पार चले गये ॥ १४ ॥ वज्रधारी इन्द्र सभी स्थावर, जङ्गम प्राणियों के स्वामी हैं । वही मनुष्यों पर शासन करते हैं । पहियों की लीक जैसे रथ को धारण करती है वैसे ही इन्द्र ने इन सबको व्यवस्थित कर लिया ॥ १५ ॥ [३८]

॥ द्वितीय अध्याय समाप्तम् ॥

३२ सूक्त

(ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ । १

आओ, गाय की इच्छा वाले हम इन्द्र के समक्ष उपस्थित हों। वे विघ्न-नाशक, हमारे धन को बढ़ाते हुए, हमारी गौ की इच्छा को पूर्ण करेंगे ॥ १ ॥ जिसे युद्ध में स्तोता बुलाते हैं, उस इन्द्र का कोई सामना नहीं कर सकता। मैं उस धनदाता इन्द्र की उपयुक्त स्तोत्रों से पूजन करता हुआ अभिलाषा करता हूँ ॥ २ ॥ सेना वाले इन्द्र ने स्तोताओं के पक्ष में तूणीर कस लिए। प्रजाओं के स्वामी वे इन्द्र गवादि धन को जीतने में समर्थ हैं। हे इन्द्र! तुम हमारे साथ विनिमय करने वाले न बनो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! सहायक मरुतों के साथ आपने भीषण वज्र से बहुत धन के चोर वृत्र को मारा। फिर उस वृत्र के अनुचरों ने सङ्गठित होकर तुम पर आक्रमण किया, तब वे यज्ञ-कर्मों से हीन मृत्यु को प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! यज्ञ-कर्म वालों के सामने से अयाज्ञिक भाग गये। हे अश्व युक्त, युद्ध में डटे रहने वाले भीषण इन्द्र! तुमने आकाश और पृथिवी पर स्थित व्रतहीनों को निःशेष कर दिया ॥ ५ ॥   [१]

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६
त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।

न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ८
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदाँ पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥ १०

अयाज्ञिकों ने अनिन्द्य इन्द्र से लड़ने की इच्छा की। तब वीरों के स कायरों के युद्ध करने के समान वे परास्त हुए ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुमने और हँसते हुए वृत्रों को युद्ध में मारा। घोर वृत्र को ऊँचा उठाकर आ से जलाकर गिराया। फिर तुमने सोम वालों की स्तुतियों से हर्ष किया ॥ ७ ॥ उन वृत्रों ने भूमि को ढक लिया, वे स्वर्ण रत्नादि से हुए। परन्तु वे इन्द्र को न जीत सके। इन्द्र ने उन्हें सूर्य के द्वारा दिया ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने आकाश-पृथिवी का सब ओर से उपभोग है। तुमने अपने अनुयायियों द्वारा विरोधियों को जीता। तुम्हारी मन्त्र स्तुतियों ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की ॥ ९ ॥ मेघ आकाश-पृथिवी सीमा को प्राप्त नहीं करते और गर्जन करते हुए अन्धकारादि कर्मों सूर्य रूप इन्द्र को नहीं ढक सकते। परन्तु इन्द्र अपने सहायक वज्र मेघ से जलों को गाय के समान दुह लेता है ॥ १० ॥ [

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥
न्यविध्यदिलीविशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वितिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।

ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥ १५ । ३

स्वेच्छानुसार बढ़ने वाले जलों में वृत्र बढ़ने लगा, तब इन्द्र ने उसे अपने शक्ति साधनों से मार डाला ॥ ११ ॥ इन्द्र ने भूमि की गुफा में सोये हुए वृत्र के गढ़ों का भेदन किया और उस सींग वाले को ताड़ना दी। हे धनवान इन्द्र! तुमने अपने बल-वेग से शत्रु को नष्ट कर दिया ॥ १२ ॥ इन्द्र के वज्र ने शत्रुओं को लक्ष्य कर तीक्ष्ण वर्षा के जल से उनके दुर्गों को छिन्न-भिन्न किया। उन्हें वज्र से मारकर स्वयं उत्साहित हुआ ॥ १३ ॥ हे इन्द्र तुम जिस "कुत्स" को चाहते थे, उसकी तुमने रक्षा करते हुए "दशद्यु" नामक बैल को भी बचाया। जब अश्व के खुरों से धूल उड़कर आकाश तक फैल गई तब भी तुम रणक्षेत्र में खड़े रहे ॥ १४ ॥ हे इन्द्र भूमि की इच्छा से जल में गये हुए "श्वैत्रेय" की तुमने रक्षा की। जलों पर ठहर कर चिरकाल तक युद्ध करते रहे। शत्रुओं के ऐश्वर्य को तुमने जलों के नीचे पहुँचा दिया ॥ १५ ॥   [३]

३४ सूक्त

(ऋषि-हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। देवता-अश्विनौ। छन्द-जगती।)

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १
त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥ २
समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३
त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहितारुह

श्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ । ४

हे मेधावी अश्विनीकुमारो ! यहाँ आज तीन वार आओ। तुम्हारा और दान दोनों ही विस्तृत हैं। जाड़ों में वस्त्रों के सहारे की भाँति हमको रा ही सहारा है। तुम विद्वानों के माध्यम से हमको प्राप्त हो ओ। ॥ १ ॥ ारे मिष्ठान्न ढोने वाले रथ में तीन पहिये हैं। देवताओं ने यह बात न्द्रमा की प्रिय पत्नी के विवाह के समय जानी। उसमें सहारे के लिए तीन खम्भे लगे हैं। हे अश्विनीकुमारो ! तुम उस रथ से रात्रि में तीन-तीन वार गमन करते हो ॥ २ ॥ हे दोष को ढकने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दिन में तीन वार विशेषकर आज तीन वार यज्ञ को मधुर रस से सींचो और दिन-रात में तीन-तीन वार हमारे लिए अन्नों को लाओ ॥ ३ ॥ हे कुमार द्वय ! तुम तीन वार हमारे घर आओ। तुम अपने अनुयायी जन को तीन वार सुरक्षित करो। हमको तीन वार सुखदायक पदार्थ तथा तीन वार ही दिव्य अन्न प्राप्त कराओ ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! हमें तीन वार धन दो। हमारी वृत्तियों को ती वार देवाराधन में प्रेरित करो। हमको सौभाग्य और यश भी तीन-तीन वार दो। तुम्हारे रथ पर सूर्य पुत्री (उषा) चढ़ी हुई ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! हमें रोगनाशक दिव्य औषधियाँ तीन वार दो। पार्थिव औषधियाँ तीन वार दो। जलों से तीन वार रोगों को नाश करो। हमारी सन्तान की रक्षा करो औ सुख दो। सब सुखों को तिगुने रूप में प्रदान करो ॥ ६ ॥

[४]

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ।
त्रिरश्विना सिंधुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृ
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम्
क्वत्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्वत्रयो वन्धुरो ये सन
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथ
... गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभि

युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १०
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ११
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ १२ । ५

हे अश्विद्वय ! तुम नित्य तीन बार पूजने योग्य हो। तुम पृथ्वी पर तीन बार तीन लपेटे वाले कुशासन पर सो ओ। हे असत्य रहित रथी, आत्मा द्वारा शरीरों को प्राप्त करने के समान तुम तीन यज्ञों को प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! सप्त मातृ-भूत जलों द्वारा हमने तीन बार सोमों को सिद्ध किया है। यह तीन कलश भर कर हैं। तीन प्रकार से हवि भी तैयार की है। तुम आकाश के ऊपर चलते हुए तीनों लोकों की रक्षा करते हो ॥ ८ ॥ हे अश्विद्वय ? जिस रथ के द्वारा तुम यज्ञ को प्राप्त होते हो, उस त्रिकोण रथ के तीन पहिये किधर लगे हैं ? रथ के आधार भूत तीनों काष्ठ कहाँ हैं ? तुम्हारे रथ में बलशाली गर्दभ कब संयुक्त किया जायगा ॥ ९ ॥ हे अश्वद्वय ! आओ, मैं हव्य देता हूँ। अतः मधुरपान करने वाले मुखों से मधुर हवियों को ग्रहण करो। उषा काल से पूर्व सूर्य तुम्हारे घृतयुक्त रथ को यज्ञ में आने के लिए प्रेरणा देते हैं ॥ १० ॥ हे असत्य-रहित अश्वियो ! तुम तेंतीस देवताओं के साथ यहाँ आकर मधु-पान करो। हमको आयु देकर पापों को हटाओ। शत्रुओं को भगा कर हम में वास करो ॥ ११ ॥ हे अश्वियो ! त्रिकोण रथ द्वारा, वीरों से युक्त ऐश्वर्य को यहाँ लाओ। मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम युद्धों में हमारी बल-वृद्धि करो ॥ १२ ॥ (५]

३५ सूक्त

(ऋषि–हिरण्यस्तूप, आङ्गिरस। देवता–अग्निमित्रावरुणौ प्रभृति।
छन्द–जगती त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविह
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितृ

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽपविश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ । ६

कल्याण के लिए अग्नि, मित्र और वरुण का आह्वान करता हूँ और प्राणियों के विश्राम देने वाली रात्रि तथा सूर्य देवता का रक्षण के लिए आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ अन्धकारपूर्ण आकाश में भ्रमण करते हुए प्राणियों को चैतन्य करने वाले सूर्य सोने के रथ से हमको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ सूर्य देवता नीचे मार्गों या ऊँचे मार्गों पर श्वेत अश्वों युक्त रथ पर गमन करते हैं। वे अन्धकारादि का नाश करते हुए दूर से आते हैं ॥ ३ ॥ पूज्य, अद्भुत रश्मियों से युक्त सूर्य, अन्धकारयुक्त लोकों के निमित्त शक्ति को धारण करते हैं। वे स्वर्ण साधनों से युक्त रथ पर चढ़ते हैं ॥ ४ ॥ श्वेत आश्रय वाले, जुओं को बाँधने वाले स्थान युक्त रथ को चलाते हुए सूर्य के अश्वों ने मनुष्यों को प्रकाश दिया। सब प्राणी और लोक सूर्य के अङ्क में ही स्थित हैं ॥ ५ ॥ तीन लोकों में आकाश और पृथिवी सूर्य के समीप हैं। एक अंतरिक्ष यमलोक का द्वार रूप है। रथ के पहिये की अगली कील पर अव-लम्बित रहने के समान सभी नक्षत्र सूर्य पर अवलम्बित हैं ॥ ६ ॥ [३]

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७
अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिंधून् ।

हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अंतरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १०
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ । ७

गम्भीर कम्पनयुक्त, सुन्दर प्राणयुक्त सविता ने अंतरिक्ष को प्रकाशित किया है। वह सूर्य कहाँ रहता है, उसकी किरणें किस आकाश में व्याप्त हैं—यह कौन कह सकता है? सूर्य ने पृथिवी की आठों दिशाओं को मिलाने वाले तीनों लोकों को और सातों समुद्रों को प्रकाशित किया। वह स्वर्णिम नेत्र वाले सूर्य-साधक को धन देने के लिए यहाँ आवें ॥ ८ ॥ सोने के हाथ वाले सर्वदृष्टा सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य गति करते हैं। वे रोगादि बाधाओं को मिटाकर अन्धकारनाशक तेज से आकाश को व्याप्त कर देते हैं ॥ ९ ॥ सुवर्णपाणि, प्राणवान्, श्रेष्ठ, कृपालु, ऐश्वर्यवान् सूर्य हमारे सामने आवें। वह सूर्य नित्यप्रति राक्षसों का दमन करते हुए यहाँ ठहरें ॥ १० हे सूर्य! आकाश में तुम्हारे धूल रहित पुरातन मार्ग सुनिर्मित हैं। उन मार्गों से आकर हमारी रक्षा करो। जो बात हमारे अनुकूल हो, उसे बताओ ॥ ११ ॥ [७]

३६ सूक्त [आठवाँ अनुवाक]

(ऋषि–कण्वो घौरः । देवता–अग्नि । छन्द–अनुष्टुप् आदि ।)

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४
मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

हे मनुष्यो ! तुम बहु संख्यक व्यक्ति देवताओं की कामना करते हो तुम्हारे निमित्त हम उन महान् अग्नि का सूक्त वचनों द्वारा प्रार्थना करते हैं उनकी अन्य लोग भी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ मनुष्यों ने जिन बलवान् अग्नि को धारण किया है, हम उसको हवियों से तृप्ति करें। हे दानी तु प्रसन्न होकर, इस युद्ध में हमारी रक्षा करो ॥ २ ॥ हे सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले देव-दूत और होता ! तुम्हारा हम वरण करते हैं। तुम महान् और सत्य रू हो। तुम्हारी लपटें आकाश की ओर उठती हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम पुरात पुरुष को वरुण, मित्र और अर्यमा प्रदीप्त करते हैं। तुमको हवि देने वा साधक सभी धनों को प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ हे अग्ने तुम मन को प्रस करने वाले, प्रजाओं के स्वामी, गृह-पालक और देव-दूत हो। देवताओं सभी कर्म तुममें मिलते हैं ॥ ५ ॥ [८]

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥
घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।

हे युवा अग्ने ! तुम सौभाग्यशाली हो क्योंकि तुममें ही सब हवियाँ डाली जाती हैं। तुम प्रसन्न होकर हमारे निमित्त आज और आगे भी पराक्रमी देवताओं का पूजन करो ॥ ६ ॥ नमस्कार करने वाले व्यक्ति स्वयं प्रकाशित अग्नि की पूजा करते हैं। शत्रुओं से बढ़े हुए मनुष्य स्तुतियों द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ॥ ७ ॥ देवताओं ने प्रहारपूर्वक वृत्र को जीता और तीनों लोकों का विस्तार किया। अभीष्ट वर्षक अग्नि आह्वान करने पर मुझ कण्व को गवादि धन प्रदान करें ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! आओ, विराजमान होओ। देवताओं को लाने वाले, तुम चैतन्य होओ। उत्तम लालिमा लिए सुन्दर धुएँ को फैलाओ ॥ ९ ॥ हे हविवाहक अग्ने ! तुम पूजने योग्य को देवताओं ने मनु के निमित्त इस लोक में स्थापित किया। तुम धन से सन्तुष्ट करने वाले को कण्व और मेधातिथि ने तथा वृषा और उपस्तुत ने धारण किया ॥ १० ॥   [९]

यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११
रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३
ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४
पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ । १०

जिस अग्नि को मेधातिथि और कण्व ने यज्ञ के लिए प्रदीप्त किया, वह अग्नि दीप्तिमान् है। इन ऋचाओं द्वारा हम उस अग्नि को बढ़ाते हैं। हे अन्नवान् अग्ने ! हमारे भण्डार भरो। तुम देवताओं के लिए और स्वामी हो। हे [illegible] ! हम [illegible] करें ॥ १२ ॥ [illegible] हमारे

ए ऊँचे खड़े होओ। तुम उन्नत शक्ति के प्रदाता हो। हम विद्वानों के सह-
ग से तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ १३ ॥ तुम उन्नत हुए, पाप से हमारी
ा करो। मनुष्य भक्षकों को भस्म कर हमको जीवन में प्रगति करने के लिए
ँचा उठाओ। हमारे कार्यों को देवताओं के प्रति निवेदन करो ॥ १४ ॥
हे अग्ने! दैत्यों से रक्षा करो। दान करने वालों को बचाओ। तुम महान्
दीप्ति वाले, निपट युवा और हिंसकों से रक्षा करने वाले हो। हमारी रक्षा
करो ॥ १५ ॥ [१०]

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६
अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९
त्वेपासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० । ११

हे सन्ताप देने वाली दाढ़ों वाले अग्नि देव! दृढ़ सोंटे से मारने के समान
दान न देने वाले को मारो। हमारे द्रोहियों और रात्रि में हमारे लिए शस्त्र
पैनाने वालों के आधिपत्य को रोको ॥ १६ ॥ अग्नि ने मेरे निमित्त सौभाग्य
की इच्छा की। उन्होंने मेधातिथि और उपस्तुत की धन प्राप्ति के लिए रक्षा
की ॥ १७ ॥ "तुर्वस", "यदु" और "उग्रदेव" को अग्नि के साथ दूर से
बुलाते हैं। वे "नवास्त्व", "बृहद्रथ" और "तुर्वीति" को भी या
बुलावें ॥ १८ ॥ हे ज्योतिमान् अग्ने! तुमको मनुष्यों के लिए मनु
स्थापित किया। तुम यज्ञ के लिए प्रकट होकर हवि से तृप्त होते हो और साथ
तुमको नमस्कार करते हैं ॥ १९ ॥ अग्नि की प्रदीप्त ज्वालाएँ बलवती अ

उग्र होती हैं, उनका सामना नहीं किया जा सकता। हे अग्ने! तुम राक्षसों को और मनुष्य-भक्षियों को भस्म करो ॥ २० ॥ [११]

३७ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौरः। देवता-मरुत। छन्द—गायत्री)

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥ १
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥५। १

हे कण्व गोत्र वाले ऋषियो! क्रीड़ायुक्त, अहिंसित मरुद्गण रथ पर सुशोभित हैं। उनके लिए स्तुति-गान करो ॥ १ ॥ वे स्वयं प्रकाश वाले, बिन्दु-चिन्हयुक्त मृग-वाहन, शस्त्रों, युद्ध में ललकारों, आभूषणादि आदि से युक्त उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ इनके हाथों की चाबुक का शब्द हम सुन रहे हैं। यह अद्भुत चाबुक युद्ध में साहस बढ़ाने वाली है ॥ ३ ॥ ये मरुद्गण तुम्हारे बल को बढ़ाते और यशस्वी बनाते हैं, उन शत्रुनाशक की स्तुति करो ॥ ४ ॥ दुग्धदात्री धेनुओं में बैल के समान क्रीड़ा करने वाले मरुद्गण की स्तुति करो। वह वृष्टि रूप रस को पीकर वृद्धि को प्राप्त हुये हैं ॥ ५ ॥ [१२]

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतय । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥६
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥ ८
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे । यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत । वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥१०।१

आकाश पृथिवी को कम्पित करने वाले मरुतो! तुममें बड़ा कौन है। तुम वृक्ष की डालियों के समान लोकों को हिलाते हो ॥ ६ ॥ हे मरुतो! तुम्हारी गति और क्रोध से भयभीत मनुष्यों ने सुदृढ़ खम्भे खड़े किये हैं।

लिए ऊँचे खड़े होओ। तुम उन्नत शक्ति के प्रदाता हो। हम विद्वानों के सहयोग से तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ १३ ॥ तुम उन्नत हुए, पाप से हमारी रक्षा करो। मनुष्य भक्षकों को भस्म कर हमको जीवन में प्रगति करने के लिए ऊँचा उठाओ। हमारे कार्यों को देवताओं के प्रति निवेदन करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! दैत्यों से रक्षा करो। दान करने वालों को बचाओ। तुम महान् दीप्ति वाले, निपट युवा और हिंसकों से रक्षा करने वाले हो। हमारी रक्षा करो ॥ १५ ॥ [१०]

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६
अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७
अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९
त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० । ११

हे सन्ताप देने वाली दाढ़ों वाले अग्नि देव ! दृढ़ सोंटे से मारने के समान दान न देने वाले को मारो। हमारे द्रोहियों और रात्रि में हमारे लिए शस्त्र पैनाने वालों के आधिपत्य को रोको ॥ १६ ॥ अग्नि ने मेरे निमित्त सौभाग्य की इच्छा की। उन्होंने मेधातिथि और उपस्तुत की धन प्राप्ति के लिए रक्षा की ॥ १७ ॥ "तुर्वस", "यदु" और "उग्रदेव" को अग्नि के साथ दूर से बुलाते हैं। वे "नवास्त्व", "बृहद्रथ" और "तुर्वीति" को भी यहाँ बुलावें ॥ १८ ॥ हे ज्योतिमान् अग्ने ! तुमको मनुष्यों के लिए मनु ने स्थापित किया। तुम यज्ञ के लिए प्रकट होकर हवि से तृप्त होते हो और साधक तुमको नमस्कार करते हैं ॥ १९ ॥ अग्नि की प्रदीप्त ज्वालाएँ बलवती और

उग्र होती हैं, उनका सामना नहीं किया जा सकता। हे अग्ने! तुम राक्षसों को और मनुष्य-भक्षियों को भस्म करो ॥ २० ॥ [११]

३७ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौरः। देवता-मरुत। छन्द—गायत्री)

क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम्। कण्वा अभि प्र गायत ॥ १
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः ॥२
इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३
प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४
प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे ॥५। १२

हे कण्व गोत्र वाले ऋषियो! क्रीड़ायुक्त, अहिंसित मरुद्गण रथ पर सुशोभित है। उनके लिए स्तुति-गान करो ॥ १ ॥ वे स्वयं प्रकाश वाले, बिन्दु-चिन्हयुक्त मृग-वाहन, शस्त्रों, युद्ध में ललकारों, आभूषणादि आदि से युक्त उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ इनके हाथों की चाबुक का शब्द हम सुन रहे हैं। वह अद्भुत चाबुक युद्ध में साहस बढ़ाने वाली है ॥ ३ ॥ वे मरुद्गण तुम्हारे बल को बढ़ाते और यशस्वी बनाते हैं, उन शत्रुनाशक की स्तुति करो ॥ ४ ॥ दुग्धदात्री धेनुओं में बैल के समान क्रीड़ा करने वाले मरुद्गण की स्तुति करो। वह वृष्टि रूप रस को पीकर वृद्धि को प्राप्त हुये हैं ॥ ५ ॥ - [१२]

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥६
नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वां इव विश्पतिः। भिया यामेषु रेजते ॥ ८
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥१०।१३

आकाश पृथिवी को कम्पित करने वाले मरुतो! तुममें बड़ा कौन है। तुम वृक्ष की डालियों के समान लोकों को हिलाते हो ॥ ६ ॥ हे मरुतो! तुम्हारी गति और क्रोध से भयभीत मनुष्यों ने सुदृढ़ खम्भे खड़े किये हैं।

ह जोड़ों वाले पर्वतों को भी कँपा देते हो ॥ ७ ॥ उन मरुतों की गति
वी वृद्ध राजा के समान भय से काँपती है ॥ ८ ॥ इनका जन्म स्थान
है। उनके मातृ-भूमि आकाश में पक्षी की गति भी निर्बाध है। उनका
दुगुना होकर व्याप्त है ॥ ९ ॥ वे अन्तरिक्ष में उत्पन्न मरुद्गण गमन के
जल का विस्तार करते हैं और रँभाने वाली गायों को घुटने-घुटने जल में
जाते हैं ॥ १० ॥

[१२]

ं त्रिद्या दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥११
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन गिरींरचुच्यवीतन ॥ १२
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३
प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४
अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ । १४

अवश्य ही मरुद्गण उस विशाल, अबाध्य मेघ-पुत्र को अपनी गति से
कँपाते हैं ॥ ११ ॥ हे मरुतो! तुमने अपने बल से मनुष्यों को कर्म में प्रेरित
किया है। तुम्हीं मेघों को प्रेरित करने वाले हो ॥ १२ ॥ मरुद्गण चलते हैं,
तब मार्ग में परस्पर बातें करते हैं। उनके उस शब्द को सब सुनते हैं ॥ १३ ॥
हे मरुतो! वेग वाले वाहन से शीघ्र आओ। यहाँ कण्ववंशी और अन्य विद्वान
एकत्रित हैं, उनके द्वारा हर्ष प्राप्त करो ॥ १४ ॥ हे मरुतो! तुम्हारी प्रसन्नता
के लिए हवि प्रस्तुत है। हम आयु प्राप्त करने के लिए यहाँ विद्यमा
हैं ॥ १५ ॥

[१४]

३८ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौरः। देवता—मरुत। छन्द—गायत्री।]

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः। दधिध्वे वृक्त बर्हिषः।
क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति
क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। क्वो विश्वानि सौभग
यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥ १५

हे स्तुतियों को चाहने वाले मरुतो! तुम्हारे लिए कुश बिछाई गई है। पिता द्वारा पुत्र को धारण करने के समान तुम हमें कब धारण करोगे? ॥ १ हे मरुतो! अब तुम कहाँ हो? किस लिए आकाश मार्ग में घूमते हो? पृथिवी में क्यों नहीं घूमते? तुम्हारी गौएँ तुम्हें यहाँ नहीं पुकारतीं क्या? ॥ २ ॥ हे मरुतो! तुम्हारी अभिनव कृपाएँ, शुभ और सौभाग्य कहाँ हैं? ॥ ३ ॥ हे आकाश-पुत्रो! यद्यपि तुम मरणधर्मा पुरुष हो पर तुम्हारा स्तोता (उपदेष्टा) अमर और शत्रु से कभी नाश न होने वाला हो ॥ ४ ॥ जिस प्रकार घास के मैदान में मृग आहार प्राप्त करता है पर मृग के लिए घास असेवनीय नहीं होता उसी प्रकार स्तोता भी सेवा प्राप्त करता रहे जिससे उसे यम-मार्ग से न जाना पड़े ॥ ५ ॥ [१५]

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६
सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः। मिहं। कृण्वन्त्यवाताम् ॥
वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८
दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९
अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजंत प्र मानुषाः ॥१०॥१

बारम्बार प्राप्त होने वाली पाप की शक्ति हमारी हिंसा न करे। वह तृष्णा के साथ नष्ट हो जाय ॥ ६ ॥ वे कान्तिवान् रुद्र के पुत्र मरुद्गण मरुभूमि में भी वायु रहित वर्षा करते हैं ॥ ७ ॥ रँभाने वाली गौ के समान जब बिजली कड़कती है और वर्षा होती है तब बछड़े का पोषण करने वाली गाय के समान ही मौन हुई बिजली मरुतों की सेवा करती है ॥ ८ ॥ जल-वर्षक बादलों द्वारा मरुद्गण दिन में भी अँधेरा कर देते हैं। उस समय वे भूमि को वर्षा से सींचते हैं ॥ ९ ॥ मरुतों की गर्जना से पृथिवी पर बने हुए घर तथा मनुष्य भी काँप जाते हैं ॥ १० ॥ [१६]

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु। यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११
स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्। सुसंस्कृता अभीशवः ॥१

...अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥१३
...छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् । ...
...मीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४
...न्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् । अस्मे वृद्धा असन्निह ॥१५॥१७

हे मरुद्गण ! तुम दृढ़ खुर वाले और निरन्तर गति वाले अश्वों द्वारा उज्ज्वल नदियों की ओर गति करो ॥ ११ ॥ हे मरुतो ! तुम्हारी पहिये को हाल, रथ की धुरी और रालें उत्तम हों तथा अश्व स्थिर बलिष्ट हों ॥ १२ ॥ मित्र के समान वेद-रक्षक अग्नि को साध्य बनाकर स्तुति-वचनों का उच्चारण करो ॥ १३ ॥ अपने मुख से स्तोत्र रचना करो। मेघ के समान स्तोत्र को बढ़ाओ। शास्त्रानुकूल सूक्त का गायन करो ॥ १४ ॥ कांतिवान्, स्तुत्य और स्तुतियों से युक्त मरुतों की स्तुति करो । वे महान् हमारे यहाँ वास करें ॥ १५ ॥ [१७]

३९ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौरः । देवता—मरुत । छन्द—गायत्री ।)

प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २
परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३
नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४
प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५

हे कांपने वाले मरुतो ! जब तुम दूर से धारा के समान, ... को इस स्थान पर फेंकते हो, तब तुम किसके यज्ञ द्वारा आकर्षित ... हो ? ॥ १ ॥ हे मरुतो ! तुम्हारे शस्त्र शत्रुओं ...

करने को स्थिर हों। दृढ़तापूर्वक शत्रुओं को रोकें। तुम्हारा वल स्तुत्य हो कपट करने वालों की हमारे निकट प्रशंसा न हो ॥ २ ॥ हे पुरुषो ! तुम वृक्षों को गिराते, पत्थरों को घुमाते और पृथिवी के नये वृक्षों के मध्य से तथा पर्वतों में छिद्र करके निकल जाते हो ॥ ३ ॥ हे शत्रुनाशक मरुतो ! आकाश और पृथिवी में तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। हे रुद्र पुत्रो ! तुम मिलकर शत्रुओं के दमन के लिए बल बढ़ाओ ॥ ४ ॥ वे मरुद्गण पर्वतों को कम्पित करते, वृक्षों को पृथक-पृथक करते हैं। हे मरुतो ! तुम मदमत्त के समान प्रजा गण के साथ आगे चलो ॥ ५ ॥ [१८]

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥
असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० । १

हे मरुतो ! तुमने बिन्दुयुक्त मृगों को रथ में जोड़ा है। लाल मृग सबसे आगे जुड़ा है। पृथिवी तुम्हारी प्रतीक्षा करती है और मनुष्य भयभीत हो गये हैं ॥ ६ ॥ हे रुद्र पुत्रो ! सन्तान की रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते। जैसे तुम पूर्वकाल में रक्षा के लिए आये थे, वैसे ही भयभीत यजमान के पास आओ ॥ ७ ॥ हे मरुतो तुम्हारे द्वारा सहायता प्राप्त या किसी अन्य द्वारा उकसाया हुआ शत्रु हमारे सामने आये तो तुम उसे अपने वल, तेज और रक्षण साधनों द्वारा दूर हटा दो ॥ ८ ॥ हे पूजनीय मेधावी मरुतो तुमने कण्व को सम्पूर्ण ऐश्वर्य दिया था। बिजलियों से वर्षा के निमित्त प्राप्त होने के समान समस्त रक्षण साधनों से युक्त हुए हमको प्राप्त होओ ॥ ९

...जमय मरुतो ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। हे कम्पित करने वालो, तुम
...ं बलों से युक्त हो। अतः ऋषियों से वैर करने वालों के समान अपनी
...ा को प्रेरित करो॥ २०॥ [१६]

४० सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौरः। देवता—ब्रह्मणस्पति। छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्।)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवासचा॥
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके॥ २
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः॥ ३
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः।
तस्मा इलां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम्॥ ४
प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥ ५। २०

हे ब्रह्मणस्पते ! उठो। देवताओं की कामना करने वाले हम तुम्हा...
स्तुति करते हैं। कल्याणकारी मरुद्गण हमारे निकट आवें। हे इन्द्र ! ...
शीघ्र यहाँ आओ॥ १ व हे बल के पुत्र ब्रह्मणस्पते ! धनी होने पर म...
तुम्हारी ही स्तुति करता है। हे मरुतो ! तुम्हारी कामना करने वाला म...
सुन्दर घोड़ों और बल से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है॥ २॥ ब्रह्म...
हमको प्राप्त हों। प्रिय सत्य रूप वाणी हमको प्राप्त हो। देवगण पंच ...
युक्त हमारे यज्ञ में मनुष्यों के हित के लिए आवें॥ ३॥ ऋत्विज को ...
धन देने वाला यजमान अक्षय यश प्राप्त करता है। उसके लिए ह...
हिंसक, किसी के द्वारा न मारी जाने वाली इडा को यज्ञ में बुलाते है...
ब्रह्मणस्पति ही शास्त्र-सम्मत मन्त्र का उच्चारण करते हैं। उस मन्...
वरुण, मित्र और अर्यमा का वास है॥ ५॥

द्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६
देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७
क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ । २१

हे देवगण ! सुखकारक, विघ्ननाशक उसी मन्त्र का यज्ञ में हम धारण करें। हे पुरुषो ! यदि इस मन्त्र रूप वाणी को चाहते हो तो हमारे ही सुन्दर वचन तुमको प्राप्त हों ॥ ६ ॥ देवताओं की कामना करने वाले पास कौन आवेगा ? कुश बिछाने वाले के पास कौन आवेगा ? हविदाता यजमान अन्य मनुष्यों के साथ पशु, पुत्रादि युक्त घर के लिए चल चुका ॥ ७ ॥ ब्रह्मणस्पति अपने बल को बढ़ाकर राजा के साथ ही शत्रु का नाश करते हैं। भय के समय सुख देने वाले होते हैं। वे वज्रधारी युद्धों में किसी से भी नहीं ॥ ८ ॥ [२१]

४१ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौरः । देवता—आदित्याः । छन्द—गायत्री ।)

रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित्स दभ्यते जनः ॥ १
बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्व एधते ॥ २
विदुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् । नयन्ति दुरिता तिरः ॥३
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ॥४
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा । प्र व. स धीतये नशत् ॥ ५ । २२

उत्कृष्ट ज्ञानी वरुण, मित्र और अर्यमा जिसकी रक्षा करें, उस मनुष्य को कोई नहीं मार सकता ॥ १ ॥ अपने हाथ से विभिन्न धन देते हुए वरुणादि देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, उसे कोई शत्रु संतप्त नहीं कर सकता, बल्कि वह सब ओर से बढ़ता है ॥ २ ॥ वरुणादि देवता साधकों के कष्टों का नाश करते, शत्रुओं को मारते और दुर्गों को दूर कर देते हैं ॥ ३ ॥ हे आदित्यो !

...प्त होने के लिए तुम्हारे मार्ग में कोई कंटक नहीं है। इस यज्ञ में ...लिए हवि-रूप भोजन निकृष्ट नहीं है॥ ४॥ हे पुरुषो! जिस यज्ञ ... विधान से करते हो, वह यज्ञ तुम्हें प्राप्त हो॥ ५॥ [२२]

...र्ं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः॥
...राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य॥
...वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आ विवासे॥८
...ुरश्चिद्दमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत॥ ९। २३

हे आदित्यो! तुम्हारा साधक किसी से पराजित नहीं होता। वह ...पभोग्य धन को और सन्तानों को प्राप्त करता है॥ ६॥ हे मित्रो! मित्र ...और अर्यमा के स्तोत्र का हम कैसे साधन करें? वरुण के हवि-रूप भोजन को किस प्रकार सिद्ध करें?॥ ७॥ हे देवगण! यजमान की हिंसा करने के इच्छुक अथवा उसके प्रति कटु वचन कहने वाले की बात तुमसे नहीं कहता। मैं तो स्तुतियों से तुम्हें प्रसन्न करता हूँ॥ ८॥ चारों प्रकार के कुकर्म वालों को वश में रखने वाले से डरना चाहिए परन्तु दुर्वचन बोलने वाले को पास न बैठावें। [२३]

४२ सूक्त

(ऋषि—कण्वो घौरः। देवता—पूषा। छन्द—गायत्री।)

सं पूषन्नध्वनस्तिरु व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः॥ १
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि॥ २
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज॥ ३
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित्। पदाभि तिष्ठ तपुषिम्॥ ४
आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे। येन पितॄनचोदयः॥५। २...

हे पूषन्! हमको दुःखों से पार लगाओ और हमारे पापों को ... करो। हमारे अग्रगामी बनो॥ १॥ हे पूषादेव हिंसक, चोर, जुआ खे... ...जो हम पर शासन करना चाहते हैं, उन्हें हमसे दूर कर दो॥ ... ...ने वाले कुटिल दस्यु को हमारे मार्ग से...

दो ॥ ३ ॥ हे पूषन ! तुम पाप को बढ़ावा देने वाले क्रोधी को अपने पैरों से कुचल डालो ॥ ४ ॥ हे विकराल कर्म वाले, ज्ञानी पूषादेव ! तुम्हारी रक्षा के निमित्त हम स्तुति करते हैं। उस रक्षा ने हमारे पूर्व पुरुषों को भी बढ़ाया था ॥ ५ ॥ [५]

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम । धनानि सुषणा कृधि ॥ ६
अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७
अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने । पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८
शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् । पूषन्निह क्रतुं विदः॥ ९
न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि । वसूनि दस्ममीमहे ॥ १०।२५

हे परम सौभाग्यशाली, स्वर्ण रथ वाले पूषा देव ! हमारे लिए सुसाध्य धनों को प्राप्त करने की शक्ति दो ॥ ६ ॥ क्लेश में पड़े हुए हमको शत्रुओं से दूर ले जाओ। हमको सरल मार्गावलम्बी बनाओ। हे पूषन् ! हमारी रक्षा के लिए बल प्रदान करो ॥ ७ ॥ जहाँ कृषि के उपयुक्त सुन्दर भूमि हो, हमको वहाँ ले चलो। मार्ग में कोई नया सङ्कट न आवे। हमारी रक्षा के लिए बलिष्ट होओ ॥ ८ ॥ हे समर्थ पूषन ! हमको इच्छित धनादि दो। हमको तेजस्वी बनाओ। हमारी उदर-पूर्ति करो। हमारे लिए बल प्राप्त करो ॥ ९ ॥ हम पूषादेव की निन्दा नहीं, स्तुति करते हैं। हम उस अद्भुत देव से धन माँगते हैं ॥ १० ॥ [२५]

४३ सूक्त

(ऋषि-कण्वो घौरः । देवता-रुद्र, मित्रावरुणौ । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप् ।)

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीलहुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शंतमं हृदे ॥ १
यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥२
यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥३
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् । तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४
यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते । श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ । २६

मेधावी, अभीष्ट वर्षक, महाबली रुद्र के निमित्त किस सुखकारी

...का पाठ करें ? ॥ १ ॥ जिससे पृथिवी हमारे पशु, मनुष्य, गौ, सन्तान
आदि के निमित्त रुद्र-सम्बन्धी औषधि को उपजावे ॥ २ ॥ जिससे मित्र,
वरुण और रुद्र देवता तथा समान प्रीति वाले अन्य सभी देवता हमसे संतुष्ट
हों ॥ ॥ ३ ॥ हम स्तुतियों को बढ़ाने वाले, यज्ञ के स्वामी, सुख-स्वरूप,
औषधियों से युक्त रुद्र से आरोग्यता और सुख की याचना करते हैं ॥ ४ ।
सूर्य की तरह चमकते हुए, स्वर्ण की तरह चमकते हुए वे रुद्र देवताओं में
श्रेष्ठ और ऐश्वर्यों के स्वामी हैं ॥ ५ ॥ [२६]

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये । नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६
अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् । महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥७
मा नः सोम परिबाधो मारातयो जुहुरन्त । आ न इन्दो वाजे भज ॥८
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ । २

हमारे अश्व, मेढ़े, भेड़ और गवादि के लिए वे रुद्र कल्याणका...
हों ॥ ६ ॥ हे सोम ! मनुष्यों में व्याप्त सौगुना ऐश्वर्य दो । हमको ...
सहित महान् यश प्रदान करो ॥ ७ ॥ सोम याग में बाधा देने वाले ह...
दुःख न दें । शत्रु हमको न सतावें । हे सोम ! हमको बल प्रदान करो ॥ ...
हे सोम ! तुम उत्तम स्थान वाले हो । तुम संसार की मूर्धा के समान ...
प्रजा पर स्नेह करो । तुम अपने को विभूषित करने वाली प्रजा को जानने...
बनो ॥ ९ ॥ [...

४४ सूक्त [नवाँ अनुवाक]

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्वः । देवता—अग्नि । छन्द—बृहती त्रिष्टु...

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बु...
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृ...
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।

धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३
रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४
तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ । २८

हे अविनाशी, सर्व भूतों के ज्ञाता अग्ने! तुम हविदाता के निमित्त विभिन्न धन प्राप्त कराओ तथा प्रातःकाल में जागने वाले देवताओं को भी यहाँ लाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने! वास्तव में तुम देव-दूत, हविवाहक और यज्ञों के रथ-रूप हो। ऐसे तुम अश्विनीकुमारों और उषा के सहित महान् पराक्रम से युक्त हुए हमको यश प्राप्त कराने वाले होओ ॥ २ ॥ धनवान्, प्रिय, धूम-ध्वजा वाले, उषाकाल में प्रकाशित, यज्ञों में यज्ञ रूप से सुशोभित अग्नि को आज हम दौत्य-कर्म के लिए वरण करते हैं ॥ ३ ॥ सर्वश्रेष्ठ, युवा, सहज प्राप्य, अतिथि रूप, यजमान के लिए प्रसन्न रहने वाले, सर्वभूतों के ज्ञाता अग्नि का उषाकाल में स्तवन करता हूँ ॥ ४ ॥ हे अविनाशी, पोषक, हवि-वाहक, पूज्य अग्ने! मैं तुम रक्षक का स्तवन करता हूँ ॥ ५ ॥ [२८]

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६
होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७
सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८
पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९
अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० । २९

हे अत्यन्त युवा अग्ने! तुम स्तुत्य, मधुर जिह्वा, सरलता

। स्तोता की ओर ध्यान दो और आयु-वृद्धि करते हुए देवताओं का पूजन
ते ॥ ६ ॥ हे ऐश्वर्य वाले ! तुमको मनुष्य उत्तम प्रकार से प्रज्वलित करते
। तुम अत्यन्त मेधावी देवगण को इस स्थान पर लाओ ॥ ७ हे सुन्दर
ज्ञ वाले अग्ने ! तुम प्रातः कालों और रात्रियों में उषा, अश्विद्वय, भग और
अग्नि देवताओं को यहाँ लाओ। सोम निष्पन्नकर्त्ता यजमान तुम हविवाहक
को प्रदीप्त करते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ-स्वामी और प्रजा दूत हो।
तुम प्रातः चैतन्य, प्रकाशदर्शी देवगण को सोम-पान के लिए यहाँ लाओ ॥ ९
हे प्रकाश रूप धन के स्वामिन् ! सबके दर्शन योग्य तुम पूर्व काल में भी
उषाओं के साथ प्रदीप्त किये गये हो। मनुष्यों के हित के लिए तुम ग्रामों के
रक्षक और यज्ञों में पुरोहित होओ ॥ १० ॥ [२९]

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११
यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२
श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३
शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ । ३०

को सुनें। दृढ़ नियम वाले वरुण, अश्विद्वय और उषा के साथ सोम-पा
करें ॥ १४ ॥   [३०]

४५ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्वः। देवता—अग्निर्देवाश्च। छन्द—अनुष्टुप्।)

त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जन मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १
श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २
प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३
महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४
घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ । ३१

हे अग्ने! वसु, रुद्र, आदित्यों को इस यज्ञ में पूजो। यज्ञ-युक्त, घृत अन्न वर्षक, मनु पुत्र देवताओं का पूजन करो ॥ १ ॥ हे अग्ने! देवगण मेधावी और हविदाता को सुख की कामना करने वाले हैं। तुम रोहित नामक अश्व वाले हो। हे स्तुत्य! उन तेतीस देवताओं को यहाँ लाओ ॥ २ ॥ हे सर्व प्राणियों के ज्ञाता, महान् कर्म वाले अग्ने! जैसे प्रिय मेधा, अत्रि, विरूप और अङ्गिरा की पुकार तुमने सुनी थी, वैसे ही अब प्रस्कण्व की पुकार सुनो ॥ ३ ॥ महान् प्रकाश वाले अग्निदेव यज्ञ में प्रकाशित होते हैं। प्रिय मेध वंश वालों ने अग्नि को अपनी रक्षा के निमित्त बुलाया था ॥ ४ ॥ हे घृत में हवन करने योग्य, दाता अग्ने! कण्व-पुत्र जिन स्तुतियों से अपनी रक्षा के लिए तुम्हें बुलाते हैं, उन स्तुतियों को ध्यान से सुनो ॥ ५ ॥   [३१]

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ।

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७
आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा विभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥ ८
प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९
अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् १० । ३२

हे अद्भुत कीर्ति वाले अग्निदेव ! तुम बहुतों के प्रिय हो । तुम प्रकाश वाले का हवि के निमित्त आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! होता, ऋत्विज, धन के जानने वाले, प्रख्यात, स्तुति सुनने वाले, तुमको विद्वानों ने स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से यज्ञों में स्थापित किया ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! निष्पन्न सोम और हवि वाले विद्वानों ने आपको मरणधर्मा यजमान के निमित्त स्थापित किया है ॥ ८ ॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम दाता और धन के स्वामी हो । प्रातःकाल में आने वाले देवगण को कुश पर बैठाकर सोम-पान के लिए तैयार करो ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! साक्षात् हुए देव-समूह को स्तुतिपूर्वक पूजो । हे मङ्गलकारी देवगण ! यह निचोड़ा हुआ सोम प्रस्तुत है, इसका पान करो ॥ १० ॥ [३२]

४६ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्वः । देवता—अश्विनौ । छन्द—गायत्री ।)

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥ २
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि । यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३
हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा । पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४
आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा । पातं सोमस्य धृष्णुया ॥५।३३

जो प्रिय उषा पहिले दिखाई नहीं दी, वह आकाश से प्रकट होती है ।

हे अश्विनीकुमारो ! मैं हृदय से तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ जो समुद्र से उत्पन्न, मन से ही ऐश्वर्य का उत्पादन करने वाले तथा ध्यान से धनों के ज्ञाता हैं, उनका स्तवन करता हूँ ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! जब तुम्हारा रथ अन्तरिक्ष में जाता है, तब तुम्हारी सभी स्तुतियाँ करते हैं ॥ ३ ॥ हे पुरुषो ! जलों से स्नेह करने वाले, धन पूरक, गृह-पालक और द्रष्टा अग्नि हमारी हवि से तुम्हें पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥ हे मिथ्यात्व रहित अश्वियो ! हमारे आदरपूर्वक वचनों को ग्रहण करते हुए, स्तुतियों द्वारा प्रेरित सोम का निःशङ्क पान करो ॥ ५ ॥ [३३]

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासाथामिषम् ॥६
आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे । युञ्जाथामश्विना रथम् ७ ॥
अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः । धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८
दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे । स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९
अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १०।३

हे अश्विनो ! प्रकाश से युक्त और अँधेरे से रहित अन्न-धन को हमारे पोषणार्थ प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! हमारी स्तुतियों के प्रेमपूर्ण बन्धन में बँधकर हमको दुःख समुद्र से पार करो । अपने रथ में अश्वों को जोतो ॥ ७ ॥ हे अश्विनो ! तुम्हारा जहाज समुद्र से भी विस्तृत है ! समुद्र के किनारे पर तुम्हारा रथ खड़ा है तथा यहाँ सोम-रस तैयार खड़ा है ॥ ८ ॥ हे कण्व वंशियो ! सोम दिव्य गुणों को प्राप्त हुआ है । समुद्र के किनारे पर ऐश्वर्य है । हे अश्विद्वय ! तुम अपना स्वरूप कहाँ रखना चाहते हो ? ॥ ९ ॥ उषा काल में सूर्य सोने की आभा सहित प्रकाशित हो गया । अग्नि श्यामवर्ण का होता हुआ अपनी लपट रूप जिह्वा से प्रकट होने लगा ॥ १० ॥ [३४]

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया । अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११
तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति । मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा । मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥ १
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् । ऋतावनथो अक्तुभिः ॥ १४
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ॥१५।४

पार जाने के लिए यज्ञ रूप उत्तम मार्ग है। उसमें से निकलती हुई
ा की पगडंडी दिखाई दे रही है ॥ ११ ॥ स्तोता सोम के आनन्द से
करने वाले अश्विदेवों की रक्षा को वार-वार सराहना दे ॥ १२ ॥ हे
शमय आकाश के निवासी, सुखदायक अश्विनीकुमारो ! मनु की स्तुतियों
उनको प्राप्त होने के समान हमारे स्तवन से हमको प्राप्त होओ ॥ १३ ॥
अश्विद्वय ! तुम चारों ओर गमन करने वाले की शोभा के पीछे-पीछे उषा
कर रही हैं। तुम रात्रि में हवियों की इच्छा करो ॥ १४ ॥ हे अश्विनो !
तुम दोनों सोम-पान करते हुए अपनी रक्षाओं से हमको सुखी
करो ॥ १५ ॥ [३५]

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

४७ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्व । देवता—अश्विनौ । छन्द—बृहत, पंक्ति ।)

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअन्ह्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२
अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥
त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ।
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५

हे यज्ञ-वर्द्धक अश्विनो ! यह अत्यन्त मधुर सोम तुम्हारे लिए
गया है, उसका पान करो और हविदाता को रत्नादि धन प्रदान करो
हे अश्विद्वय ! अपने तीन काठों से युक्त त्रिकोण सुन्दर रथ से ह
होओ। यह कण्ववंशी अपने यज्ञ में मन्त्रयुक्त स्तुतियाँ अर्पित करते

ध्यान से सुनो ॥ २ ॥ हे यज्ञवर्द्धक विक्रमशील अश्विनो ! तुम मधुर सोमों का पान करो । फिर अपने रथ में धनों को धारण करते हुए हविदाता की ओर पधारो ॥ ३ ॥ हे सर्वज्ञाता अश्विद्वय ! तीन स्थानों में रखी हुई कुश पर विराजमान होकर मधुर रस से यज्ञ का सिंचन करो । स्वर्ग की कामना से सोम को निष्पन्न करने वाले कण्ववंशी तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥ हे यज्ञ-वर्द्धक, सुकर्मों का पोषण करने वाले अश्विद्वय ! जिन साधनों से तुमने कण्व की रक्षा की थी, उनसे हमारी भी रक्षा करो और इस सोम रस का पान करो ॥ ५ ॥ [१]

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६
यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७
अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८
तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्केश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥ १० । [illegible]

हे उग्र कर्मा अश्विद्वय ! रथ में धन को धारण कर तुमने सुदास नामक राजा को अन्न पहुँचाया । उसी प्रकार अन्तरिक्ष या आकाश से बहुत-सा इच्छित धन भी हमारे लिए प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे सत्य-निष्ठ अश्विद्वय ! तुम दूर हो या पास, सूर्य की किरणों सहित, सुन्दर रथ से हमको प्राप्त होओ ॥ ७ ॥ हे पुरुषो ! यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाले अश्व [illegible] तुम्हें हमारे यज्ञ में ले आवें । उत्तम कर्म वाले इस यजमान को अन्न से पुष्ट करते हुए तुम कुश के आसनों पर बैठो ॥ ८ ॥ हे [illegible] अश्विद्वय ! जिस रथ से [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के लिए [illegible] [illegible] ॥ ९ ॥ हे [illegible]

के निमित्त स्तोत्रों से हम बारम्बार तुम्हारा आह्वान करते हैं। कण्व-
शियों के समाज में तुम सोम-पान करते रहे हो—यह प्रसिद्ध ही
॥ १० ॥

४८ सूक्त

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः। देवता–उषा। छन्द–बृहती, पंक्ति।)

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥ २

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५

वस्था प्राप्त कराती है। पैर वाले जीवों को कर्म में लगाती और पक्षियों को उड़ाती है॥ ५॥ [३]

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति॥ ६
एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान्॥ ७
विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः॥ ८
उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु॥ ९
विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम्॥ १०।४

यही उषा युद्धों की ओर प्रेरित करती तथा कर्मशीलों को काम में लगाती है। वह स्वयं विश्राम नहीं करती। हे अन्न वाली उषा! तुम्हारे आने पर पक्षी भी अपने घोंसले छोड़ देते हैं॥ ६॥ इसने सूर्य के उदय-स्थान से दूर देशों को जोड़ दिया। यह सौभाग्यशालिनी उषा सौ रथों द्वारा मनुष्य-लोक में आती है॥ ७॥ सब संसार इसके दर्शन के लिए झुकता है। यह प्रकाशवती सबको सुमार्ग बताती है। आकाश की पुत्री, धन वाली यह उषा हमारे वैरियों और दुःख देने वालों को दूर हटावे॥ ८॥ हे आकाश-पुत्री उषे! हमको सौभाग्यशाली बनाती हुई हमारे यज्ञों में प्रकट हो और आनन्ददायक प्रकाश से सर्वत्र चमकती रह॥ ९॥ हे सुमार्ग पर ले चलने वाले उषे! तू प्रकट होती है, इसी में तेरी महत्ता और जीवन है। तू कान्तिमती, धन वाली हमारी ओर रथ में आकर आह्वान को सुन॥ १०॥ [४]

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः॥ ११

न्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२
। रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३
चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ । ५

हे उषे ! मनुष्य के लिए विभिन्न प्रकार के अन्नों की कामना करो ।
हविदाताओं की स्तुतियों से उनको सुकर्मसंयुक्त यज्ञों की ओर प्रेरित करो ॥ ११
हे उषे ! सोम-पान के लिए अन्तरिक्ष से सब देवताओं को यहाँ लाओ । तुम
हमें अश्वों और गौओं से युक्त धन और वीरता सहित अन्न को प्रदान
करो ॥ १२ ॥ जिसकी दमकती हुई कान्ति मङ्गल रूप है, वह उषा सबके
वरण करने योग्य उक्त धनों को हमारे लिए सुप्राप्य करावे ॥ १३ ॥ हे
पूजनीय ! प्राचीन ऋषि भी तुमको अन्न और रक्षा के निमित्त बुलाते थे ।
तुम हमारे स्तोत्रों का उत्तर यश और धन से दो ॥ १४ ॥ हे उषे ! तुम
अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोला है । तुम हमको हिंसकों
रहित बड़ा घर और गवादि युक्त धन प्रदान करो ॥ १५ ॥ हे उषे ! हम
ऐश्वर्यशाली बनाओ और गौओं को युक्त करो । हमको शत्रु को नाश क
वाला पराक्रम देकर अन्नों से सम्पन्न बनाओ। [५

४९ सूक्त

(ऋषि-प्रस्कण्वः काण्वः । देवता-उषा । छन्द-अनुष्टुप्)

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम्

ान्द्वेवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२
स्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ । ५

हे उषे ! मनुष्य के लिए विभिन्न प्रकार के अन्नों की कामना करो । हविदाताओं की स्तुतियों से उनको सुकर्मयुक्त यज्ञों की ओर प्रेरित करो ॥ ११ हे उषे ! सोम-पान के लिए अन्तरिक्ष से सब देवताओं को यहाँ लाओ । तुम हमें अश्वों और गौओं से युक्त धन और वीरता सहित अन्न को प्रदा करो ॥ १२ ॥ जिसकी दमकती हुई कान्ति मङ्गल रूप है, वह उषा स वरण करने योग्य उक्त धनों को हमारे लिए सुप्राप्य कराये ॥ १३ ॥ पूजनीय ! प्राचीन ऋषि भी तुमको अन्न और रक्षा के निमित्त बुलाते तुम हमारे स्तोत्रों का उत्तर यश और धन से दो ॥ १४ ॥ हे उषे ! अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोला है । तुम हमको हिं रहित बड़ा घर और गवादि युक्त धन प्रदान करो ॥ १५ ॥ हे उषे ! ऐश्वर्यशाली बनाओ और गौओं को युक्त करो । हमको शत्रु को वाला पराक्रम देकर अन्नों से सम्पन्न बनाओ।

४९ सूक्त

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता–उषा । छन्द–अनुष्टु

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि
वहन्त्वरुणप्सव

सुपेशसं सुख रथ यमध्यस्या उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जु नि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
ता त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ । ६

हे उषे ! प्रकाशमय आकाश से भी उत्तम मार्गों से आओ । सोम-याग वाले के घर लाल रङ्ग के घोड़े तुम्हें पहुँचायें ॥ १ ॥ हे आकाश-पुत्री उषे ! तुम जिस सुन्दर और सुखदायक रथ पर विराजमान हो, उसके सहित आकर यजमान की रक्षा करो ॥ २ ॥ हे उज्ज्वल वर्ण वाली उषे ! तेरे आते ही दो पैर वाले मनुष्य, पङ्ख वाले पक्षी तथा चौपाये आदि सब ओर विचरने लगते हैं ॥ ३ ॥ हे उषे ! अपनी किरणों से उदय होती हुई तुम समस्त संसार को प्रकाशित करती हो । धन की कामना से कण्ववंशी स्तुतियों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥ [४]

५० सूक्त

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता–सूर्यः । छन्द–गायत्री ।)

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे ॥५।६

सर्वभूतों के ज्ञाता प्रकाशमान सूर्य को रश्मियाँ आकाश में ही गमन कराती हैं ॥ १ ॥ सर्वदर्शी सूर्य के प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोर के समान छिप जाते हैं ॥ २ ॥ सूर्य की ध्वजा रूप रश्मियाँ प्रज्वलित अग्नि के समान मनुष्यों की ओर जाती हुई स्पष्ट दिखाई देती हैं ॥ ३ ॥ हे सूर्य !

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो र्रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५
सं नो राया बृहता विश्वपेशस मिमिक्ष्वा समिलाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ । ५

हे उषे ! मनुष्य के लिए विभिन्न प्रकार के अन्नों की कामना करो । हविदाताओं की स्तुतियों से उनको सुकर्मयुक्त यज्ञों की ओर प्रेरित करो ॥ ११ हे उषे ! सोम-पान के लिए अन्तरिक्ष से सब देवताओं को यहाँ लाओ । तुम हमें अश्वों और गौओं से युक्त धन और वीरता सहित अन्न को प्रदान करो ॥ १२ ॥ जिसकी दमकती हुई कान्ति मङ्गल रूप है, वह उषा सबके वरण करने योग्य उक्त धनों को हमारे लिए सुप्राप्य कराये ॥ १३ ॥ हे पूजनीय ! प्राचीन ऋषि भी तुमको अन्न और रक्षा के निमित्त बुलाते थे । तुम हमारे स्तोत्रों का उत्तर यश और धन से दो ॥ १४ ॥ हे उषे ! तुमने अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोला है । तुम हमको हिंसकों से रहित बड़ा घर और गवादि युक्त धन प्रदान करो ॥ १५ ॥ हे उषे ! हमको ऐश्वर्यशाली बनाओ और गौओं को युक्त करो । हमको शत्रु को नाश करने वाला पराक्रम देकर अन्नों से सम्पन्न बनाओ। [५]

४९ सूक्त

(ऋषि–प्रस्कण्वः काण्वः । देवता–उषा । छन्द–अनुष्टुप्)

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि
वहन्त्वरुणप्सव

सुपेशसं सुख रथ यमध्यस्था उपस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥
वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ।

हे उषे ! प्रकाशमय आकाश से भी उत्तम मार्गों से आओ। सोम याग वाले के घर लाल रङ्ग के घोड़े तुम्हें पहुँचावें ॥ १ ॥ हे आकाश-पुत्र उषे ! तुम जिस सुन्दर और सुखदायक रथ पर विराजमान हो, उसके सहि आकर यजमान की रक्षा करो ॥ २ ॥ हे उज्ज्वल वर्ण वाली उषे ! तेरे आ ही दो पैर वाले मनुष्य, पङ्ख वाले पक्षी तथा चौपाये आदि सब ओर विचर लगते हैं ॥ ३ ॥ हे उषे ! अपनी किरणों से उदय होती हुई तुम समस संसार को प्रकाशित करती हो। धन की कामना से कण्ववंशी स्तुतियों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥ [४]

५० सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्वः । देवता—सूर्यः । छन्द—गायत्री ।)

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे ॥५।

सर्वभूतों के ज्ञाता प्रकाशमान सूर्य को रश्मियाँ आकाश में ही गमन कराती हैं ॥ १ ॥ सर्वदर्शी सूर्य के प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोर के समान छिप जाते हैं ॥ २ ॥ सूर्य की ध्वजा रूप रश्मियाँ प्रज्ज्वलित अग्नि के मनुष्यों की ओर जाती हुई स्पष्ट दिखाई देती हैं ॥ ३ ॥ हे सूर्य !

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
साऽस्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥ १२
यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३
ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्वं ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४
उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५
सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ । ५

हे उषे ! मनुष्य के लिए विभिन्न प्रकार के अन्नों की कामना करो। हविदाताओं की स्तुतियों से उनको सुकर्मयुक्त यज्ञों की ओर प्रेरित करो ॥ ११ हे उषे ! सोम-पान के लिए अन्तरिक्ष से सब देवताओं को यहाँ लाओ। तुम हमें अश्वों और गौओं से युक्त धन और वीरता सहित अन्न को प्रदान ॥ १२ ॥ जिसकी दमकती हुई कान्ति मङ्गल रूप है, वह उषा सबके करने योग्य उक्त धनों को हमारे लिए सुप्राप्य करावे ॥ १३ ॥ हे नीय ! प्राचीन ऋषि भी तुमको अन्न और रक्षा के निमित्त बुलाते थे। तुम हमारे स्तोत्रों का उत्तर यश और धन से दो ॥ १४ ॥ हे उषे ! तुमने अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोला है। तुम हमको हिंसकों से रहित बड़ा घर और गवादि युक्त धन प्रदान करो ॥ १५ ॥ हे उषे ! हमको ऐश्वर्यशाली बनाओ और गौओं को युक्त करो। हमको शत्रु को नाश करने वाला पराक्रम देकर अन्नों से सम्पन्न बनाओ। [५]

४९ सूक्त

(ऋषि—प्रस्कण्वः काण्वः। देवता—उषा। छन्द—अनुष्टुप्)

उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १

सुपेशसं सुख रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २
वयश्चिरो पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३
व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥ ६

हे उषे ! प्रकाशमय आकाश से भी उत्तम मार्गों से आओ। सोम याग वाले के घर लाल रङ्ग के घोड़े तुम्हें पहुँचायें ॥ १ ॥ हे आकाश-पुत्री उषे ! तुम जिस सुन्दर और सुखदायक रथ पर विराजमान हो, उसके सहित आकर यजमान की रक्षा करो ॥ २ ॥ हे उज्ज्वल वर्ण वाली उषे ! तेरे आते ही दो पैर वाले मनुष्य, पङ्ख वाले पक्षी तथा चौपाये आदि सब ओर विचरने लगते हैं ॥ ३ ॥ हे उषे ! अपनी किरणों से उदय होती हुई तुम समस्त संसार को प्रकाशित करती हो। धन की कामना से कण्ववंशी स्तुतियों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ४ ॥ [४]

५० सूक्त

(ऋषि-प्रस्कण्वः काण्वः । देवता-सूर्यः । छन्द-गायत्री ।)

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ २
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् । प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे ॥५॥

सर्वभूतों के ज्ञाता प्रकाशमान सूर्य को रश्मियाँ आकाश में ही गमन कराती हैं ॥ १ ॥ सर्वदर्शी सूर्य के प्रकट होते ही नक्षत्रादि प्रसिद्ध चोर के समान छिप जाते हैं ॥ २ ॥ सूर्य की ध्वजा रूप रश्मियाँ प्रज्ज्वलित अग्नि के समान मनुष्यों की ओर जाती हुई स्पष्ट दिखाई देती हैं ॥ ३ ॥ हे सूर्य

तुम वेगवान् सबके दर्शन करने योग्य हो। तुम प्रकाश वाले सबको प्रकाशित करते हो॥ ४॥ सूर्य ! तुम देवगण, मनुष्य तथा सभी प्राणियों के निमित्त साक्षात् हुए तेज को प्रकाशित करने को आकाश में गमन करते हो॥ ५॥ [७]

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ७
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९
उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १०
उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२
उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ । ८

हे पवित्रताकारक वरुण ! तुम जिस नेत्र से मनुष्यों की ओर हम देखते हो, उस नेत्र को प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥ हे सूर्य ! रात्रियों को दिनों से पृथक् करते हुए, जीव-मात्र को देखते हुए, तुम विस्तृत आकाश में गमन करते हो ॥ ७ ॥ हे दूरद्रष्ट सूर्य ! तेजवन्त रश्मियों सहित रथारोही हुए तुमको सात घोड़े चलाते हैं ॥ ८ ॥ सूर्य, रथ की पुत्री रूप स्वयं जुड़ने वाली सात घोड़ियों को रथ में जोड़कर आकाश में गमन करते हैं ॥ ९ ॥ अन्धकार के ऊपर विस्तृत प्रकाश को फैलाते हुए देवताओं में श्रेष्ठ सूर्य को हम प्राप्त हों ॥ १० ॥ हे मित्रों के मित्र सूर्य तुम उदय होकर आकाश में उठते हुए, मेरे हृदय-रोग और पीतवर्ण को मिटाओ ॥ ११ ॥ हे सूर्य ! मैं अपने पीलेपन को शुक-सारिकाओं पर स्थापित

करता हूँ ॥ १२ ॥ यह सूर्य अपने पूर्ण तेज से सब रोगों के नाश के निमित्त उदय हुए हैं। मैं उन रोगों के वश में न पड़ सकूँ ॥ १३ ॥ [८]

५१ सूक्त [दसवाँ अनुवाक]

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती ।)

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३
त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥ ५ ॥

हे मनुष्यो ! बहुतों द्वारा बुलाये गये, स्तुत्य, धन-सागर, श्रेष्ठ वी इन्द्र को प्रसन्न करो। मनुष्यों के हित में किये गये जिनके कार्य प्रसिद्ध हैं तुम बुद्धिपूर्वक उसी की पूजा करो ॥ १ ॥ सहायता देने वाले, कर्मों कुशल, ऋभुओं में पूज्य, अत्यन्त बल वाले इन्द्र का स्तवन करने वालों प्रिय वाणी बहुकर्मा इन्द्र को उत्साहवर्द्धक हुई ॥ २ ॥ तुमने अङ्गिरा औ अत्रि के निमित्त गौओं का समूह प्राप्त कराया। स्तोता "विमद" के लि वज्र द्वारा अन्न युक्त धनों को प्राप्त कराते हुए उसकी रक्षा की ॥ ३ ॥ इन्द्र ! तुमने जलों वाले मेघ को खोला। पर्वत पर धन प्राप्त करने लिए वृत्र को मारा और सूर्य को दर्शन के निमित्त प्रेरित किया है ॥ ४ ॥ इन्द्र ! जो राक्षस यज्ञ की हव्य-सामग्रियों को खा जाते थे, उन प्रपंचियों तुमने दूर हटाया। तुमने "पिप्रु" नामक राक्षस का गढ़ तोड़कर युद्ध शत्रुओं का नाश कर "ऋजिश्वा" की रक्षा की ॥ ५ ॥ [९]

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ ६
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७
वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ८
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥ ९
तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१० । १०

हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" के साथ युद्ध कर "कुत्स" को बचाया । "शम्बर" को 'अतिथिग्व" से पराजित कराया । "अर्बुद" नामक असुर को पाँवों से रौंदा । तुम राक्षसों का नाश करने को ही उत्पन्न हुए हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सभी बलों से पूर्ण हो । सोम पीने के निमित्त तुम हर्ष प्राप्त कर वज्र हाथ में लिए आते हो । उसी से शत्रुओं के सम्पूर्ण बलों को नष्ट करते हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम आर्य और अनार्य को भले प्रकार जानते हो । कर्महीनों को ललकारते हुए कुश-आसन बिछाने वाले यजमान के वशीभूत करो । यज्ञानुष्ठान के प्रेरक तुम्हारा मैं यज्ञों में आह्वान करता हूँ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र तुम कर्महीनों को कर्मवानों के वशीभूत करते एवं प्रशंसकों द्वारा निन्दकों को मारते हो । "वम्र" ऋषि ने बढ़ते हुए, इन्द्र से दिव्य ऐश्वर्य को प्राप्त किया ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! "उशना" ने स्तुतियों द्वारा तुम्हारा बल बढ़ाया । उस बल ने आकाश और पृथिवी को भी कम्पित कर दिया । हे मनुष्यों पर कृपा करने वाले ! सब ओर से प्रसन्नताप्रद होकर, मन से जुतने वाले अश्वों सहित हवि रूप अन्न सेवन के निमित्त यहाँ आओ ॥ १० ॥ [१०]

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥ ११

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥ १२
अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥ १३
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूप. ।.
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इन्द्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥ १५ । ११

"उशना" की स्तुति से प्रसन्न हुए इन्द्र वेगवान् अश्वों पर चढ़े। फिर उन्होंने मेघों से प्रवाह रूप जल को मुक्त किया और "शुष्ण" के दुर्गों को नष्ट कर दिया ॥ ११ ॥ हे वीर्यवान्! तुम सोम पीने के लिए रथ पर चढ़ते हो, जिन सोमों से तुम प्रसन्न होते हो, वे "शार्य्यात" ने सिद्ध किये थे। सोम निष्पन्न करने वाले यज्ञ की जितनी कामना करते हैं उतनी ही विमल कीर्ति तुम्हें प्राप्त होती है ॥ १२ ॥ हे इन्द्र तुमने स्तुति करने वाले राजा "कक्षीवान्" को "वृचया" नामक पत्नी प्रदान की। तुम श्रेष्ठ कर्म वाले, "वृषणश्व" राजा के लिए वाणी रूप बने, इस बात को भले प्रकार कहना चाहिये ॥ १३ ॥ अङ्गिरा वंश वालों में स्तोत्र रूप द्वार में स्तम्भ के समान स्थिर इन्द्र उत्तम कर्म वालों को अश्व, गौ, रथ तथा अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ १४ ॥ हे श्रेष्ठ! तुम प्रकाशमान, बलवान् और उन्नत शील को हमारा प्रणाम है। हे इन्द्र! इस युद्ध में अपने सब वीरों के सहित हम आपकी शरण में उपस्थित हैं ॥ १५ ॥ [११]

५२ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्)

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।

इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ३ ॥
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४
अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधींरिव त्रितः ॥ ५।१२

स्वर्ग प्राप्त कराने वाले इन्द्र का भले प्रकार पूजन करो। गतिमान अश्व के रथ में स्तुतियों से इन्द्र शीघ्र आते हैं। मैं आगत इन्द्र का नमस्कार पूर्वक स्वागत करता हूँ ॥ १ ॥ जब जलों में पर्वत के समान अविचल रूप से प्रजाओं की रक्षा के लिए इन्द्र ने जलों को रोकने वाले राक्षसों को मारा, तब वे अत्यन्त वलिष्ट हो गये ॥ २ ॥ इन्द्र ने जलों के रोकने वालों पर विजय प्राप्त की। इन्द्र आकोशव्यापी हैं। वे आनन्द के मूल और विद्वानों द्वारा सोम रस से वृद्धि को प्राप्त हैं। मैं उन महान् दाता इन्द्र का अन्न के निमित्त आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥ समुद्र में गिरती हुई नदियाँ जैसे समुद्र को भरती हैं, वैसे ही कुश पर रखे हुए सोम इन्द्र को पूर्ण करते हैं। शत्रुओं का शोषण करने वाले वह इन्द्र अविचल मरुद्गण को सहायक बनाते हैं ॥ ४ ॥ अभिमुख गमन करने वाली नदियों के समान, वृत्र से युद्ध करने वाले इन्द्र और उसके सहायक मरुतों को सोम का आनन्द प्राप्त हुआ। तब सोम-पान से साहस में बढ़े हुए इन्द्र ने उसके दुर्गों को तोड़ दिया ॥ ५ ॥

[१२]

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।

अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८
बृहत्स्व श्चन्द्रममवद्‌दुक्थ्य मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुपप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृपाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९
द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्‌बद्वधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥ १०।१३

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो । बल से उत्तेजित हुए तुमने वृत्र के जबड़े के नीचे वज्र-प्रहार किया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! प्रवाहित जल के जलाशय को प्राप्त करने के समान यह स्तोत्र तुमको प्राप्त होते हैं। त्वष्टा ने तुम्हारे बल की वृद्धि की और जीतने वाली शक्ति से तुम्हारे वज्र को बनाया ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अश्व पर चढ़कर मनुष्यों के हित के लिए वृत्र को मारा। उस समय लोहे का वज्र हाथ में लेकर हमारे दर्शन करने के लिए सूर्य को स्थापित किया ॥ ८ ॥ आनन्द देने वाला, बलयुक्त, तथा स्तुति के योग्य स्तोत्र की मनुष्यों ने वृत्र के भय से बचने के लिए रचना की। तब मनुष्यों के लिए युद्ध करने वाले उपकारी इन्द्र की मरुतों ने सहायता की ॥ ९ हे इन्द्र ! वृत्र के भय से विशाल आकाश भी काँप गया। तब तुमने अपने वज्र से उसे मार डाला ॥ १० ॥   [१३]

यदिन्निवन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥ ११
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १४
आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद्‌भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ । १४

हे इन्द्र ! पृथिवी दस गुने भोग वाली हो और मनुष्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हों। हे ऐश्वर्यशालिन् ! तुम्हारा पराक्रम पृथिवी और आकाश में सर्वत्र फैले ॥ ११ ॥ हे निर्भय इन्द्र ! तुमने अन्तरिक्ष के ऊपर रहते हुए हमारी रक्षा के लिए पृथिवी को रचा। तुम जल और ज्योति के पुञ्ज हुए स्वर्ग में वास करते हो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्तरिक्ष और पृथिवी के प्रतिमान हो। तुम वीरों से युक्त आकाश के स्वामी और अन्तरिक्ष के पूर्ण करने वाले हो। वास्तव में तुम्हारे समान और कोई नहीं है ॥ १३ ॥ जिसकी समानता आकाश और पृथिवी नहीं कर सकते। अन्तरिक्ष के जल जिसकी सीमा को नहीं पाते, वृत्र के प्रति युद्ध करते हुए जिसकी तुलना नहीं हो सकती। हे इन्द्र ! यह सब प्राणी एक मात्र तुम्हारे ही आधीन हैं ॥ १४ ॥ उस युद्ध में मरुतों ने तुम्हारी स्तुति की और सब देवता हर्षित हुए। तब हे इन्द्र ! तुमने वृत्र के मुख पर वज्र-प्रहार किया था ॥ १५ ॥ [१४]

५३ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती।)

न्यू षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २
शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३
एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ । १५

हम इन्द्र के लिए सुन्दर स्तोत्रों को कहते हैं। इन्द्र ने दैत्यों के धनों को, सोते हुए मनुष्य के धन पर अधिकार करने के समान, छीन लिया।

धन देने वालों की उत्तम स्तुति की जाती है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अश्व, गाय, धन-धान्यादि के दाता हो। तुम प्राचीनकाल से दान करते आये हो। तुम किसी की आशा भङ्ग नहीं करते तथा मित्रता रखने वालों के मित्र हो। हम तुम्हारे लिए यह स्तुति कहते हैं ॥ २ ॥ हे मेधावी, बहुकर्मा, धनों को प्रकाशित करने वाले इन्द्र ! सम्पूर्ण धन तुम्हारा ही बताया जाता है। उसे हमारे निमित्त लाओ। अपने स्तोताओं की कामना व्यर्थ न करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! दमकती हुई हवियों और सोमों से हर्षित हुए तुम गौ, घोड़ों से युक्त धन देकर हमारी दरिद्रता दूर करो। हमारे शत्रुओं को मारकर द्वेष रहित बल हमको दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम अन्न-धन वाले हों, बहुतों को प्रसन्न करने वाले बलों से युक्त हों। वीरतायुक्त, अश्व, गवादि प्राप्त करने की उत्तम बुद्धि से सम्पन्न हों ॥ ५ ॥ [१५]

ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हय: ॥ ६
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनाय: ॥ १०
य उद्दृचीन्द्र देवगोपा: सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयु: प्रतरं दधाना: ॥ ११ । १६

हे सज्जनों के रक्षक इन्द्र ! वृत्र को मारने वाले युद्ध में सोमों से प्राप्त आनन्दों ने तुम्हें बढ़ाया। तब यजमान की स्तुति से दस हजार शत्रुओं को तुमने मारा ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम युद्ध में निःशङ्क जाते हो।

तुम एक के बाद दूसरे दुर्ग को तोड़ते हो। तुमने अपने वज्र से "नमुचि" नामक दैत्य को दूर देश में जाकर मार डाला ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! जिसके समान कोई दानी नहीं, ऐसे तुमने "अतिथिग्व" के लिए "करंज" और "पर्णय" नामक दैत्यों को अत्यन्त चमकते हुए अस्त्र से मारा। तुमने "ऋजिश्वान्" राजा के द्वारा "वंगृद" नामक दैत्य को पराजित कराया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुमने सुश्रुवा से युद्ध के लिए आते हुए बीस राजाओं को उनके साठ हजार निन्यानवे अनुचरों सहित रथ के पहिये से भगा दिया ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने रक्षा-साधनों से "सुश्रुवा" को, पोषण-साधनों से "तूर्वयाण" को बचाया। तुम्हीं ने "कुत्स", "अतिथिग्व" और "आयु" नामक राजाओं को "सुश्रुवा" के आधीन कराया ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! देवताओं द्वारा रक्षित हम तुम्हारे मित्र हैं। हम भविष्य में भी सुखी रहें। हम बहुत से वीरों से युक्त लम्बी आयु को धारण करते हुए तुम्हारा स्तवन करते रहें ॥ ११ ॥ [१६]

५४ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती।)

मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे।
अक्रन्दयो नद्यो रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥ १
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि।
धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २
दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥ ३
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंबरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥ ४
नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥ ५ । १७

हे महान इन्द्र ! इस कष्ट रूप युद्ध में हमको प्रवृत्त न करो। तुम्हारा बल अनन्त है। तुमने जलों को शब्द देकर नदियों को शब्द युक्त किया,

तब पृथिवी क्यों न डरती ? ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! सर्व शक्तिमान, विशाल
इन्द्र को नमस्कार करो। आदर सहित स्तुतियों को सुनने वाले इन्द्र की
प्रशंसा करो, जो प्रजाओं और धनों के वर्धक, श्रेष्ठ बल द्वारा आकाश-पृथिवी
को सुशोभित करते हैं ॥ २ ॥ जिस बली इन्द्र का मन भय रहित है, उनके
निमित्त आदरपूर्वक वचनों को कहो। वे शत्रुओं को दूर करने वाले, बलगुण
और अभीष्ट की वर्षा करने वाले हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने आकाश के
मूर्द्धा को कँपा दिया और अपनी महान् सामर्थ्य से "शम्बर" को मारा।
तुम निःशङ्क मन से युद्ध में शत्रुओं को मारने की इच्छा करते हो ॥ ४ ॥ हे
इन्द्र ! तुमने वायु के ऊपर जलों को गर्जना के लिए प्रेरित करते हुए भी शुष्ण
का वध किया। तुम उसी कार्य को करने की अब भी इच्छा करो तो कोई
नहीं रोक सकता ॥ ५ ॥   [१०]

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥ ६
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति ।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥
असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्यै इषे धाः ॥ ११ ॥

हे शतकर्मा इन्द्र ! तुमने [illegible] के निमित्त "नर्य", "तुर्वश"
और "तुर्वीति" की रक्षा की। तुमने रथ और [illegible] की रक्षा करते हुए "शम्बर" के
निन्यानवे नगरों को नष्ट कर डाला ॥ ६ ॥ [illegible]

वाला मनुष्य उत्तम पुत्रों का स्वामी हुआ करता है। उत्तम स्तुतियों से याजक के निमित्त आह्वान से सन्तुष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ सोमपायी इन्द्र और बल-वृद्धि की तुलना नहीं हो सकती। हे इन्द्र! तुम दानशील के राज्य और बल को बढ़ाने वाले हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! पाषाणों से कूटकर और छानकर यह देय सोम रखे हैं, इनका उपभोग करो। यह तुम्हारे ही निमित्त हैं। अपनी इच्छा पूर्ण करने के पश्चात् हमको देने की बात सोचो ॥ ९ ॥ जब जलों की धाराओं को रोकने वाला अन्धकार स्थिर था और मेघ वृत्र के उदर-प्रदेश में थे, तब इन्द्र ने उन जलों को नीचे स्थानों की ओर बहाया ॥ १० ॥ हे इन्द्र! सुख, यश, मनुष्यों को वशीभूत करने वाला शासन और शक्ति की हम में स्थापना करो। तुम हमारे प्रमुख जनों की रक्षा करते हुए ऐश्वर्य, श्रेष्ठ सन्तान और बल को हमारी ओर प्रेरित करो ॥ ११ ॥ [१८]

५५ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती।)

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति।
भीमस्तुविष्मांचर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥ १
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृपायते सनात्स युध्म ओजसा मनस्यते ॥ २
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३
न इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।
वृषा छंदुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ । १

इन्द्र की कीर्ति सर्वत्र फैली है। पृथिवी भी इनके समान नहीं है विकराल, बलवान और मनुष्यों को सन्तापित करने वाला इन्द्र बैल के समान तीक्ष्ण वज्र को तेज करता है ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष व्यापी इन्द्र प्रवाहित

जलों को, समुद्र द्वारा नदियों को प्राप्त करने के समान प्रभाव से ग्रहण कर
हैं। वे सोम-पान के लिए बैल के समान गति करते हैं। वहाँ बली इन्
स्तुतियों को चाहते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेघ के स्वामी और सब धन
के धारणकर्ता हो। तुम बलों में बढ़े हुए तथा विकराल कर्म वालों में अग्र
गण्य हो ॥ ३ ॥ वह इन्द्र मनुष्यों में वीर्य रूप, पूजकों से स्तुत्य, पूज्
अभीष्ट वर्षक हैं। जब हव्यदाता यजमान स्तुति वाक्य उच्चारण करता
उस समय अभीष्ट प्रदायक इन्द्र उसे यज्ञ में तत्पर करते हैं। ॥ ४ ॥ वह
वीर इन्द्र अपने पवित्र बल से मनुष्यों के लिए युद्ध करते हैं। मनुष्यगण उ
वज्रधारी इन्द्र को श्रद्धा से नमस्कार करते हैं। ॥ ५ ॥ [१६

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वंदनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इंद्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवंति भूर्णयः ॥ ७
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ । २०

उस यश की इच्छा वाले, उत्तम कर्म वाले इन्द्र ने असुरों के घरों को
नष्ट करते हुए आकाश के नक्षत्रों को निरावरण कर जल-वर्षा की ॥ ६ ॥
हे सोमपायी इन्द्र ! तुम देने में मन लगाओ। तुम स्तुतियों को सुनने हो।
तुम अपने घोड़ों को हमारे सामने लाओ। तुम अश्व-विद्या में कुशल सारथी
मार्ग नहीं भूलते ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे दोनों हाथों में अक्षय धन है।
तुम्हारे शरीर में महान बल है। स्तुति करने वालों ने तुम्हारे यश को बढ़ाया
है ॥ ८ ॥ [२०]

५६ सूक्त

(ऋषि—सव्य आङ्गिरसः । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, त्रिष्टुप ।)

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम्

वाला मनुष्य उत्तम पुरुषों का स्वामी हुआ बढ़ता है। उत्तम स्तुतियों के गायक के निमित्त आकाश से जल-वर्षा होती है ॥ ७ ॥ सोमपायी इन्द्र के बल-बुद्धि की तुलना नहीं हो सकती। हे इन्द्र ! तुम दानशील के राज्य और बल को बढ़ाने वाले हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! पाषाणों से कूटकर और छानकर यह पेय सोम रखे हैं, इनका उपभोग करो। यह तुम्हारे ही निमित्त हैं। अपनी इच्छा तृप्त करने के पश्चात् हमको देने की बात सोचो ॥ ९ ॥ जब जलों की धाराओं को रोकने वाला अन्धकार स्थिर था और मेघ वृत्र के उदर-प्रदेश में थे, तब इन्द्र ने उन जलों को नीचे स्थानों की ओर बहाया ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! सुख, यश, मनुष्यों को वशीभूत करने वाला शासन और शक्ति की हम में स्थापना करो। तुम हमारे प्रमुख जनों की रक्षा करते हुए ऐश्वर्य, श्रेष्ठ सन्तान और बल को हमारी ओर प्रेरित करो ॥ ११ ॥ [१८]

५५ सूक्त

(ऋषि–सव्य आङ्गिरसः। देवता–इन्द्र। छन्द–जगती।)

दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥ १
सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः ।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा मनस्यते ॥ २
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि ।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम् ।
वृषा छंदुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥ ५ ।

इन्द्र की कीर्ति सर्वत्र फैली है। पृथिवी भी इनके समान नहीं है विकराल, बलवान और मनुष्यों को सन्तापित करने वाला इन्द्र बैल समान तीक्ष्ण वज्र को तेज करता है ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष व्यापी इन्द्र प्रवाहि

जलों को, समुद्र द्वारा नदियों को प्राप्त करने के समान प्रभाव से ग्रहण करते हैं। वे सोम-पान के लिए बैल के समान गति करते हैं। वहाँ बली इन्द्र स्तुतियों को चाहते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेघ के स्वामी और सब धनों के धारणकर्त्ता हो। तुम बलों में बढ़े हुए तथा विकराल कर्म वालों में अग्रगण्य हो ॥ ३ ॥ वह इन्द्र मनुष्यों में वीर्य रूप, पूजकों से स्तुत्य, पूज्य, अभीष्ट वर्षक हैं। जब हव्यदाता यजमान स्तुति वाक्य उच्चारण करता है उस समय अभीष्ट प्रदायक इन्द्र उसे यज्ञ में तत्पर करते हैं। ॥ ४ ॥ वही वीर इन्द्र अपने पवित्र बल से मनुष्यों के लिए युद्ध करते हैं। मनुष्यगण उस वज्रधारी इन्द्र को श्रद्धा से नमस्कार करते हैं। ॥ ५ ॥ [१६]

स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन् ।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६
दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वदनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इंद्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवंति भूर्णयः ॥ ७
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥ ८ । २०

उस यश की इच्छा वाले, उत्तम कर्म वाले इन्द्र ने असुरों के घरों को नष्ट करते हुए आकाश के नक्षत्रों को निरावरण कर जल-वर्षा की ॥ ६ ॥ हे सोमपायी इन्द्र ! तुम देने में मन लगाओ। तुम स्तुतियों को सुनते हो। तुम अपने घोड़ों को हमारे सामने लाओ। तुम अश्व-विद्या में कुशल सारथी ! मार्ग नहीं भूलते ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे दोनों हाथों में अक्षय धन है। तुम्हारे शरीर में महान् बल है। स्तुति करने वालों ने तुम्हारे बल को बढ़ाया है ॥ ८ ॥

[२०]

५६ सूक्त

(ऋषि-सव्य आङ्गिरसः । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती, त्रिष्टुप् ।)

एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४
वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥ ६ । २१

यह इन्द्र यजमान के पात्रों में रखे सोमों को पीने की इच्छा उठते हैं। वह अपने रथ को रोककर सोम पीते हैं ॥ १ ॥ हविदाता यजमा धन के लिए समुद्र को प्राप्त होने वाले मनुष्यों के समान बल और यज्ञ स्वामी इन्द्र को प्राप्त करते हैं। हे मनुष्य ! तू भी उसे आत्म-बल से प्र कर। ॥ २ ॥ वे द्रुतवेग वाले महान् इन्द्र युद्ध में पर्वत के शिखर के सम चमकते हैं। उन्हीं बली ने मायावी "शुष्ण" को बाँधकर रखा था ॥ ३ हे स्तोता ! सूर्य द्वारा उषा को प्राप्त करने के समान तेरे द्वारा बढ़ाया ब बल इन्द्र को प्राप्त होता है, तब वह शत्रुओं में आर्तनाद उठाकर दुष्कर्मों मिटाते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुमने आकाश की दिशाओं में जल धारण क वाले अन्तरिक्ष की स्थापना की। सोम का आनन्द प्राप्त कर तुमने वृत्र मारकर जलों को नीचे की ओर प्रवाहित किया ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तु अ ने बल से आकाश-पृथिवी के मध्य जल को स्थापित किया। तुमने वि सोम के आनन्द में जलों को छुड़ाया और पाषाण दुर्गों का ख कि ॥ ६ ॥ [२

...त्यन्त बलवान् हो। आकाश भी तुम्हारे बल का लोहा मानता है और ...ी तुम्हारे सामने झुकी हुई है ॥ ५ ॥ हे वज्रिन्! तुमने उस फैले हुए ...को खण्ड-खण्ड किया और जलों को छोड़ा। तुम अवश्य ही बहुत ...वान् हो ॥ ६ ॥ [२२]

५८ सूक्त [ग्यारहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—नोधा गौतमः। देवता—अग्नि। छन्द—जगती।)

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम देवताता हविषा विवासति ॥ १
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजमा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ । २...

बल से उत्पन्न अविनाशी अग्नि कभी भी सन्ताप देने वाले नहीं... वह यजमान के दूत एवं होता नियुक्त हुए। उन्होंने ही अन्तरिक्ष को प्रक... तथा वे ही यज्ञ में हव्य द्वारा देवताओं की सेवा करते हैं ॥ १ ॥ जरा... यह अग्नि हवियों को एकत्रित कर खाते हुए काष्ठ पर चढ़े। इनकी... चिकनी पीठ अश्व के समान दमकती है। इन्होंने आकाशस्थ मेघ ग... समान शब्द वाली ज्वाला को प्रकट किया ॥ २ ॥ अमर अग्नि रु... वसुओं के सम्मुख स्थान पाये हुए हैं और यज्ञ-स्थानों में उपस्थित... प्रकाशयुक्त अग्नि यजमानों की स्तुतियाँ सुनकर मनुष्यों को वार... प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! वायु के योग से अधिक शब्दवा... दाँत के समान जिह्वाओं से काष्ठों को प्राप्त होते हो। तुम जरा रहि...

धान ज्वालायुक्त वन-वृक्षों में वृप समान आचरण करते हो। तुम्हारा मार्ग कृष्ण वर्ण का हो जाता है ॥ ४ ॥ ज्वाला रूप दाढ़ वाले, विजेता, वायु द्वारा प्रेरित तुम जब वन में मैरते हुए, गो-समूह में जाने वाले बैल के समान आकाश की ओर उठते हो, तब सभी जीव कांप जाते हैं ॥ ५ ॥ [२३]

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥ ८
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ । २४

हे अग्ने ! मनुष्य के सुख के निमित्त आह्वान किये गये होता एवं वरणीय अतिथि, देवताओं के मित्र तुम्हें भृगुओं ने मनुष्यों में स्थापित किया ॥ ६ ॥ आह्वानकर्ता सात ऋत्विज श्रेष्ठ एवं पूज्य होता अग्नि का यज्ञ में वरण करते हैं। उसको अन्न रूप हवि से सेवा करता हुआ मैं रमणीय धन की याचना करता हूँ ॥ ७ ॥ हे बल के पुत्र ! हे मित्रों को सुखी करने वाले अग्निदेव ! हम स्तोताओं को उत्तम आश्रय दो और रक्षा करते हुए मुझे पाप से बचाओ ॥ ८ ॥ हे प्रदीप्तमान् ! स्तोता के लिए आश्रय रूप होओ। धन वालों को शरण दो। तुम प्रातःकाल शीघ्र प्राप्त होते हुए मुझे पाप से बचाओ ॥ ९ ॥ [२४]

५९ सूक्त

(ऋषि—नोधा गौतमः । देवता—अग्निर्वैश्वानरः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥ १
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३
बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४
दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अवशम्बरं भेत् ॥ ६
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ । २५

हे अग्निदेव ! तुम ज्वालाओं से युक्त अमर हो और देवताओं को प्रसन्न करने वाले हो। तुम मनुष्यों में नाभि के समान हो। तुम उनको खम्भे के समान सहारा देते हो ॥ १ ॥ अग्नि आकाश की मूर्द्धा और पृथिवी की अधिपति हैं। सब मनुष्यों में व्याप्त उस अग्नि को ज्योति रूप से देवताओं ने मनुष्य में प्रकट किया ॥ २ ॥ सूर्य में सदा रहने वाली किरणों के समान देवगण ने वैश्वानर अग्नि में धनों की स्थापना की। जो धन पर्वतों में, औषधियों में, जलों में और मनुष्यों में स्थित हैं, उनके वही स्वामी हैं ॥ ३ ॥ आकाश-पृथिवी के समान स्तुतियाँ भी महान् हैं। वे होता अग्नि मनुष्य के समान चतुर, प्रकाशित, बलवान हैं। हे मनुष्यो ! उनके निमित्त पुरातन स्तुतियाँ करो ॥ ४ ॥ प्राणियों के ज्ञाता, मनुष्यों में वास करने वाले अग्निदेव ! तुम्हारी महिमा आकाश से भी अधिक है। तुम मनु द्वारा उत्पन्न प्रजाओं के स्वामी हो। तुमने युद्ध द्वारा दिव्य धनों को प्राप्त कराया है ॥ ५ ॥ अब मैं उन पुरुष श्रेष्ठ की महिमा कहता हूँ—उन वृत्रनाशक वैश्वानर अग्नि ने जलों के चोर को मारा, दिशाओं को कँपाया और शम्बर को काट डाला ॥ ६ ॥ वे मनुष्यों के स्वामी, अत्यन्त प्रकाशित, पूज्य, सत्य

ायी युक्त वैश्वानर अग्नि, शतवनि-पुत्र "राजा पुरणीय" के वंशधरों द्वारा
तुति किये गये हों ॥ ७ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[२५]

६० सूक्त

(ऋषि—नोधा गौतमः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥ १
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३
उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ । २६

यशस्वी, यशस्वी, यज्ञपति, द्रुतगामी, दूत, अरणि-मन्थन से उत्पन्न धन के समान प्रशंसित अग्नि को भृगु के समीप ले आवें ॥ १ ॥ मेधावी और हविदाता मनुष्य अग्नि का सेवन करते हैं। ये प्रजापालक, फल-वर्षक अग्नि सूर्य से भी पहले प्रजाओं में स्थापित होते हैं ॥ २ ॥ हृदय से उत्पन्न उस मधुर जिह्वा अग्नि को हमारी अभिनव स्तुतियाँ प्राप्त हों, जिसे मनुष्यों ने हवियों से उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ वे मनुष्यों द्वारा इच्छित पावक !, धनयुक्त प्रजाओं में वरणीय होता नियुक्त हुए हैं। घर में आसक्ति वालों के रक्षक हमारे घरों में धनों की वृद्धि करें ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हम गौतमवंशी तुम धनाधिप, अग्निवाहक की स्तोत्रों से पूजा करते हैं। तुम उषाकाल में हमें प्राप्त होओ ॥ ५ ॥　　　　　　　　　　　　　[२६]

ऽपायद्विष्णुः पचतं महीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ६
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्र ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० । २८

त्वष्टा ने इन्द्र के लिए कार्य सिद्ध करने वाले, घोर शब्दयुक्त वज्र को बनाया । उससे इन्द्र ने वृत्र के मर्म स्थल को नष्ट किया ॥ ६ ॥ संसार के रचयिता इन्द्र को यज्ञ में तीन अभिषेक दिये, जिनमें उन्होंने सोम को तुरन्त पी लिया तथा हव्य भी सेवन किया। असुरों का धन जीतने वाले इन्द्र जगत में व्याप्त हैं। वे विजेता, वज्रधारी और मेघ का भेदन करने वाले हैं ॥ ७ ॥ वृत्र के मरने पर देव-पत्नियों ने इन्द्र की स्तुति की। इन्द्र ने आकाश-पृथिवी का अतिक्रमण किया, परन्तु आकाश और पृथिवी इन्द्र की मर्यादा को नहीं लाँघ सकते ॥ ८ ॥ आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष से भी इन्द्र की महिमा महान् है। स्वयं प्रकाशित, सर्वप्रिय, असीमित बल वाले इन्द्र वृद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र के बल से क्षीण होता हुआ वृत्र उसके (इन्द्र के) द्वारा वज्र से मारा गया। इससे अपहृत गायों के समान जल भी मुक्त हुआ। हविदाता को वे इन्द्र अभीष्ट अन्न देते हैं ॥ १० ॥ [२८]

अस्येदु त्वेपसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।

स्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥ १४
इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५
ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ । २६

इन्द्र की दीप्ति से नदियाँ सुशोभित हैं क्योंकि इन्द्र ने वज्र से उनको ोभित कर दिया। हविदाता को धन देते हुए ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र ने "तुर्वीति" के लिये उचित स्थान दिया ॥ ११ ॥ हे शीघ्र कार्यकारी, महाबली इन्द्र रूप ईश्वर! तुम इस वृत्र पर वज्र फेंको और उसके जोड़ों को वधिक द्वारा पशुओं को काटने के समान, काट डालो ॥ १२ ॥ मनुष्यो! इन्द्र के प्राचीन पराक्रमों का बखान करो। वे उत्तेजित हुए अस्त्रों को चलाकर शत्रुओं को पीड़ित करते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रत्यक्ष हुए इन्द्र के डर से दृढ़ पर्वत तथा आकाश, पृथिवी सभी काँपते हैं। नोधा ऋषि इन्हीं इन्द्र के रक्षण-सामर्थ्यों का वर्णन करते हुए बल प्राप्त कर सकें ॥ १४ ॥ अत्यन्त धन वाले इन्द्र ने जो इच्छा की, वही अर्पण किया गया। सोम-साधक "एतश" ऋषि से स्पर्द्धा करने वाले स्वश्व-पुत्र "सूर्य" को पराजित कराया ॥ १५ ॥ दो अश्वों से युक्त रथ वाले इन्द्र! गौतमों ने तुम्हें आकर्षित करने वाली मन्त्र रूप स्तुतियों को किया, तुम प्रातःकाल आकर हमको सर्वकर्म सिद्ध करने वाली बुद्धि प्रद करो ॥ १६ ॥ [२६

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्तम् ॥

६२ सूक्त

(ऋषि—नोधा गौतमः। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो आङ्गिरसो गा अविन्द

इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम्।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः॥ ३
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो नवग्वैः।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः॥ ४
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः।
वि भूम्या अप्रथय इंद्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः॥ ५। १

हम इन्द्र के प्रति अङ्गिराओं के समान स्तुतियों को धारण करते हैं। हम अत्यन्त आकर्षक मन्त्रों का उच्चारण करें॥ १॥ हे मनुष्यो! उस महान् इन्द्र को नमस्कार करो, जिसकी स्तुति से अङ्गिराओं ने गौओं को प्राप्त किया था, उसकी उच्च स्वर से स्तुतियाँ गाओ॥ २॥ इन्द्र और अङ्गिराओं की इच्छा से "सरमा" ने अपनी सन्तान के लिए अन्न पाया। इन्द्र ने राक्षस को मारा, गौओं को पाया तथा गायों के साथ देवगण ने भी हर्षयुक्त नाद किया॥ ३॥ हे शक्तिशालिन्! उत्तम स्तोत्र से गाने योग्य तुमने शीघ्रतापूर्वक नौ अथवा दस महीनों में यज्ञ समाप्त करने वाले सप्त-ऋषियों की प्रार्थना सुनी। तुम्हारे शब्द से पर्वत और मेघ भी काँप गये॥ ४
हे विचित्रकर्मा इन्द्र! तुमने अङ्गिराओं की स्तुतियाँ प्राप्त की और उषा, सूर्य तथा रश्मियों द्वारा अन्धकार हटाया। तुमने पृथिवी पर पर्वतों को बढ़ाया तथा आकाश के नीचे अन्तरिक्ष को दृढ किया॥ ५॥ [१]

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य श्चतस्रः॥ ६
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः॥ ७
सनाद्दिव परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या॥ ८
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु॥ ९

सनात्सनीला अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० । २

अद्‌भुतकर्मा इन्द्र का यह कर्म प्रशंसनीय है कि इसने नदियों को जल से भर दिया ॥ ६ ॥ ऋषियों द्वारा स्तुत्य इन्द्र ने परस्पर मिली हुई प्राचीन आकाश और पृथिवी को पृथक्-पृथक् किया। फिर उस उत्तम कर्म वाले ने आकाश में, सूर्य के समान उन दोनों को धारण किया ॥ ७ ॥ अपनी श्याम वर्ण से रात्रि और दीप्तियुक्त वर्ण से उषा गतियों से वारम्वार उत्पन्न होती हैं और आकाश-पृथिवी के चारों ओर पुरातन काल से ही चक्कर काटती हैं ॥ ८ ॥ उत्तम कर्म वाले, महाबली इन्द्र यजमानों से मित्रता रखते हैं। हे इन्द्र ! तुम अपरिपक्व गायों में भी श्वेत दूध स्थापित करते हो। काले और लाल रङ्ग वाली गायों में भी ... हो ॥ ६ ॥ सदा से एक साथ रहने वाली अँगुलियाँ असंख्य कर्मों को करती हुई इन्द्र ... हैं। यह सभी बहिनें गृहस्थ पत्नियों के समान गति करती हुई [... सेवा-कार्य करती हैं ॥ १० ॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशंति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥ १
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयंते नोप दस्यंति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इंद्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः
सनायते गोतम इंद्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥

हे अद्‌भुत कर्म वाले ! प्राचीन धर्म की इच्छा से अभि... साथ ऋषिगण आपको प्राप्त करते हैं। कामना वाले पतियों ... वाली पत्नियों के समान यह स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त होती हैं ॥ १ ... इन्द्र ! तुम्हारी सम्पत्ति का नाश नहीं होता, वह कम नहीं होती ... युक्त, ज्ञानयुक्त, दृढ़ विचार वाले हो। हमको धन और बल प्र... ... ! तुम अग्रणि, रथ में घोड़ों को ज...

गौतमों ने अभिनव स्तोत्र की रचना की है, तुम प्रातःकाल में शीघ्रतापूर्वक पधारो ॥ १३ ॥ [३]

६३ सूक्त

(ऋषि—नोधा गौतमः । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति प्रभृति)

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्य स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ । ४

हे इन्द्र ! तुम महान् हो। तुमने प्रकट होते ही बल से आकाश-पृथिवी को धारण किया तब तुम्हारे भय से सभी प्राणी और महान् पर्वत भी किरणों के समान काँपने लगे ॥ १ ॥ हे निष्काम, स्तुत्य इन्द्र ! जब तुम अपने अश्वों को लाते हो, तब स्तोता तुम्हारे हाथों में वज्र देता है। उससे तुम शत्रुओं पर प्रहार करते हुए उनके दुर्गों को तोड़ते हो ॥ २ ॥ हे सत्य रूप इन्द्र ! तुम शत्रुओं को वश करने वाले और महान् हो। तुम मनुष्यों का हित करने वाले विजेता हो। तुमने युवक "कुत्स" के सहायक होकर युद्ध में "शुष्ण" का वध किया ॥ ३ ॥ हे वीरकर्मा वज्रिन् ! तुम मित्रता को निभाने वाले हो। वृत्र को मारकर राक्षसों को गृह सहित तुमने नष्ट किया ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम किसी दृढ़ मनुष्य से भी पीड़ित नहीं हो सकते। तुम वज्रधारी हमारे घोड़ों के लक्ष्य को बाधा रहित करो। कठिन वज्र से हमारे शत्रुओं का विनाश करो ॥ ५ ॥

[४]

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८
अकारि त इंद्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ । ५

हे इन्द्र ! धन प्राप्ति और कीर्त्ति के निमित्त मनुष्य, युद्ध में सहायतार्थ तुम्हारा आह्वान करते हैं । तब युद्ध-क्षेत्र में तुम्हारी रक्षा निरन्तर प्राप्त होती है ॥ ६ ॥ हे वज्रिन् ! "पुरुकुत्स" के लिए युद्ध करते हुए तुमने सातों दुर्ग ध्वंस किये । तुमने "सुदास" के लिए शत्रुओं को कुश के समान काट डाला । राजा "पुरु" की दरिद्रता दूर करने को धन दिया ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! जल के समान विभिन्न अन्नों की वृद्धि करो । तुम हमारे लिए जीवन और बल प्रदान करते हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! गौतमों ने तुम्हारी मन्त्रयुक्त स्तुतियाँ कीं । तुम्हारे अश्वों को भी नमस्कार किया । तुम हमको श्रेष्ठ धन दो प्रातःकाल में शीघ्र यहाँ पधारो ॥ ९ ॥ [५]

६४ सूक्त

(ऋषि—नोधा गौतमः । देवता—इन्द्र । छन्द जगती ।)

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्ति प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।

अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ । ६

हे नोधा! पौरुषवान्, पूज्य, मेधावी मरुतों के निमित्त आकर्षक स्तुतियाँ करो। जैसे कर्मवान् व्यक्ति जलों को सिद्ध करते हैं वैसे ही मैं स्तुतियों को सिद्ध करता हूँ ॥ १ ॥ वे महान्, समर्थ मरुत रुद्र के पुत्र हैं। वे मायावान्, निष्पाप, पवित्रकर्त्ता, सूर्य के समान तेजस्वी, विकराल रूप वाले हैं ॥ २ ॥ युवा, विकराल, अजर, हवि न देने वालों के हिंसक, अबाधगति से चलने वाले मरुद्गण पर्वत के समान महत्व वाले हुए अपने बल से पृथिवी आकाश में उत्पन्न जीवों को कँपाते हैं ॥ ३ ॥ शोभा के निमित्त विविध अलंकारों से अपने को सजाने वाले मरुद्गण ने स्वर्णाभूषण धारण किये। वे कंधों पर अस्त्र रखे स्वेच्छा से आकाश द्वारा प्रकट हुए ॥ ४ ॥ ऐश्वर्यदाता, शत्रु को भयभीत करने वाले, भक्षक मरुतों ने अपने बल से वायु और विद्युत को प्रकट किया। सर्वत्र गमनशील वे आकाशस्थ मेघ को दुह कर पृथिवी पर सींचते हैं ॥ ५ ॥ [६]

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० । ७

कल्याणकारी मरुद्गण जलों को सींचते हुए यज्ञों में घृतयुक्त दूध की

...र्षा करते हैं। अश्व के समान मेघ को वर्षा की प्रेरणा देते और उसे दुहते हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! महान् वृद्धि वाले तुम विभिन्न दीप्तियुक्त, पर्वतों के समान उन्नत, द्रुतगामी हाथियों के समान वन का भक्षण करते हो। तुमने लाल रङ्ग की अग्नि को बल प्रदान किया है ॥ ७ ॥ श्रेष्ठ ज्ञानी, हरिणों के समान सुन्दर, समस्त ऐश्वर्यों से युक्त, अद्भुत अस्त्रों से सम्पन्न, प्रजा-पीड़कों के नाशक मरुद्गण सिंहों के समान क्रोध से गर्जन करते हैं ॥ ८ ॥ हे गति-शील, वीर, उपकारी, शत्रुनाशक मरुतो ! तुम क्रोध से बढ़े बल से आकाश पृथिवी को गुँजा दो। तुम्हारे रथ में चन्द्रमा के समान कांतिवाली विद्युत रूप देवी विराजमान है ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य वाले, बल वाले, शत्रुनाशक रणकुशल मरुतों ने दोनों हाथों में हथियार धारण किये हैं ॥ १० ॥ [७]

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीपिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२
नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १...
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १...
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥

जलों को बढ़ाने वाले, पूज्य, द्रुतगति वाले, अचल पदार्थों को... वाले, अबाध गतियुक्त मरुद्गण सोने के रथ-चक्र से मेघों को उठाते... शत्रु-नाशक, पतितपावन, बहुकर्मा रुद्र-पुत्र मरुतों की हम स्तुति... उन धूल-प्रेरक, वृद्धिप्रद वीर्यवान् मरुतों के आश्रय में धन... जाओ ॥ १२ ॥ हे मरुतो ! तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य सब ... अधिक बली हुआ। वह अश्वों द्वारा अन्न और मनुष्यों द्वारा धन...

वह अग्नि रूप हैं। अग्नि कन्याओं का कौमार्य समाप्त करने वाले तथा विवाहिता के "पति" हैं। (स्त्रियाँ गार्हपत्य अग्नि की पति के साथ नित्य पूजन करती हैं, इस दृष्टि से उनको पति कहा गया है ॥ ४ ॥) पशु (पशु के दुग्ध-घृत) की तथा अन्न की आहुति से प्रदीप्त अग्नि को हम प्राप्त करें। वह अग्नि प्रवाहित जल के समान ज्वालाओं को प्रवाहित करते हैं। उनकी दर्शनीय किरणें आकाश में ऊपर की ओर उठती हैं ॥ ५ ॥ [१०]

योग से वनों में फैलते हैं तब भूमि के वनस्पति रूप बालों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि जलों में हंस के समान बैठकर प्राण धारण करते हैं। उषा वेला में चैतन्य होकर मनुष्यों को जगाते हैं। सोम के समान औष-धियों को बढ़ाते हैं। बालक के समान प्रदीप्त हुए अग्नि बढ़ने पर विस्तृत प्रकाश वाले होते हैं ॥ ५ ॥ [९]

६६ सूक्त

(ऋषि—पराशरः शाक्त्यः । देवता—अग्नि । छन्द—पंक्ति ।)

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ १
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥ २
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट्श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥ ३
सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ४
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥ ५ । १०

अग्नि रमणीक धन के समान अद्भुत, सूर्य के समान द्रव्य, जीव के समान प्राणवान, पुत्र के समान नित्य सम्बन्धित, अश्व के समान द्रुतिगा और गौ के समान उपकारी हैं। वे अपनी दीप्ति से वनों को जला डाल हैं ॥ १ ॥ वे अग्नि गृह के समान रमणीय, अन्न के समान परिपक्व, ऋ के समान प्रशंसित तथा स्तोता द्वारा स्तुत्य हैं। वे अश्व के समान बली हैं। अन्न साध्य अग्नि तेजस्वी एवं यज्ञ रूप हैं। वे समर्थ गृहिणी के समान में रहने वाले जब प्रदीप्त होते हैं, तब प्रजाओं में सूर्य के समान प्रकाशित ह हैं ॥ २ ॥ चतुर सेना के समान भयभीत करने वाले, अस्त्रधारी के स बली, दीप्तियुक्त मुख वाले हैं। उत्पन्न हुआ जो था जो भविष्य में उत्पन्न ह

ह अग्नि रूप हैं। अग्नि कन्याओं का कौमार्य समाप्त करने वाले तथा विवाहिता के "पति" हैं। (स्त्रियाँ गार्हपत्य अग्नि की पति के साथ नित्य पूजन करती हैं, इस दृष्टि से उनको पति कहा गया है ॥ ४ ॥) पशु (पशु के दूध-घृत) की तथा अन्न की आहुति से प्रदीप्त अग्नि को हम प्राप्त करें। वह अग्नि प्रवाहित जल के समान ज्वालाओं को प्रवाहित करते हैं। उनकी दर्शनीय किरणें आकाश में ऊपर की ओर उठती हैं ॥ ५ ॥ [१०]

६७ सूक्त

(ऋषि—पराशरः शाक्त्यः। देवता अग्नि। छन्द—पंक्ति।)

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन्।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्रां अशंसन् ॥ २
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥ ३
य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥ ५ । ११

जैसे राजा सर्वगुण सम्पन्न वीर पुरुष का सम्मान करता है, वैसे ही जङ्गलों में उत्पन्न जयशील अग्नि यजमान पर कृपा करते हैं। वह अग्नि चतुर के समान अनुकूल और ज्ञान के समान कल्याणकारी हों ॥ १ ॥ अग्नि अन्नों को हाथ में धारण कर गुफा (हृदय) में बैठ गये, इसके फलस्वरूप देवता भयभीत हो गये। इस गुफा स्थित अग्नि को मेधावी जन हृदय से उत्पन्न स्तुतियों के उच्चारण द्वारा जान पाते हैं ॥ २ ॥ जैसे सूर्य पृथिवी को धारण करता है, वैसे अग्नि ने अंतरिक्ष को धारण किया है तथा सत्य संकल्पों से आकाश को भी धारण किया है। हे अग्ने! तुम पशुओं के स्थान की रक्षा

करो । सब प्राणियों के आयु रूप तुम गुफा से गुफा में प्रवेश करते हो ॥ ३ ॥ जो गुफा में स्थित अग्नि को जानता है, जो यज्ञानुष्ठान में अग्नि को प्रदीप्त करता है, उस यजमान को वे शीघ्र ही धन देते हैं ॥ ४ ॥ जो अग्नि औषधियों में अपना गुण स्थापित करते हैं, जो लताओं में विभिन्न पुष्प, फलादि का प्रकट करने वाला है, ज्ञानी पुरुष जलों में स्थित उस आयु रूप अग्नि की पूजा कर शरण प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ [११]

६८ सूक्त

(ऋषि–पराशरः शाक्त्यः । देवता–अग्नि । छन्द–पंक्ति ।)

श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥ १
आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषंत शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥ ३
होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणां ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ । १२

शीघ्र कार्यकारी अग्नि स्थावर, जङ्गम वस्तुओं को परिपक्व कर आकाश को प्राप्त हुए। वहां रात्रियों को अन्धकार से रहित करने के कारण अन्य देवों से यह देव अधिक महिमावान् हो गये ॥ १ ॥ हे अग्ने ! शुष्क काष्ठ के घर्षण से तुम उत्पन्न हुए, इसके पश्चात् ही वे सब देवगण यज्ञ में पहुँच सके। तुम अविनाशी के अनुगत होने से ही वे सब देवत्व को प्राप्त कर सके ॥ २ ॥ सब प्राणी अग्नि की प्रेरणा से यज्ञ करते हैं। अग्नि ही आयु हैं, उन्हीं का यज्ञ किया जाता है। हे अग्ने! जो तुम्हारा ज्ञान प्राप्त कर तुमको हव्य देता है, उसी को जानकर तुम धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ मनुष्यों में होता रूप

यमान अग्नि ही प्रजाओं और धनों के स्वामी हैं। उन्होंने तुम्हारी क्ति से सन्तानोत्पत्ति की इच्छा की और सामर्थ्य से सन्तानयुक्त हुए ॥ ४ ॥ ता का आदेश मानने वाले पुत्र के समान जिन मनुष्यों ने अग्नि का आदेश पालन किया, उनके लिए अग्नि ने अन्न-धन के भण्डार खोल दिये। ज्ञ-कर्म वाले घरों में आसक्त अग्नि ने ही नक्षत्रों से आकाश को अलंकृत किया है ॥ ५ ॥ [१२]

६९ सूक्त

(ऋषि-पराशरः शक्तिपुत्रः । देवता अग्निः । छन्द-पंक्ति ।)

शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २
पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥ ३
नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व र्दृशीके ॥ ५ । १३

उषा-प्रेमी सूर्य के समान प्रकाशित, कांतिवान् तुम सूर्य के प्रकाश के समान आकाश-पृथिवी को पूर्ण करते हो। हे अग्ने! तुम प्रकट होकर बल से वृद्धि को प्राप्त हुए। तुम दूत रूप से देवताओं के पुत्र समान होते हुए भी हव्य देकर उनके पिता-तुल्य हो गये हो ॥ १ ॥ बुद्धिमान्, अहङ्कार-रहित, गौ के थन के समान स्वादिष्ट अन्न को वर्षाने वाले अग्नि यज्ञ-कर्म वाले घर में बुलाने पर आकर यजमान को सुखी करते हैं ॥ २ ॥ घर में उत्पन्न हुए पुत्र के समान सुखदायक अग्नि, भर पेट खा लेने वाले अश्व के समान मनुष्यों को दुःख से पार लगाते हैं। जब मैं मनुष्यों के साथ यज्ञ में विश्वेदेवाओं का

आह्वान करता हूँ तव यह अग्नि ही सब देव-भाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३ हे अग्ने ! जिन कर्म-नियमों से तुमने मनुष्यों को सुखी किया है, वे तुम्हारे नियमों को नहीं तोड़ते। तुमने ही पाप रूप दैत्यों को, मनुष्यों के सहयोग से मारकर भगा दिया ॥ ४ ॥ उषा-प्रेमी सूर्य के समान प्रकाशित, प्रख्यात अग्नि मुझे जानें। अग्नि की सुन्दर लपटें, हविवाहक हुई यज्ञ-गृह के द्वार को खोल कर आकाश-मार्ग को जाती हैं ॥ ५ ॥ [१२]

७० सूक्त

(ऋषि—पराशरः शक्ति-पुत्रः। देवता—अग्नि। छन्द—पंक्ति।)

वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ १
गर्भो या अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम्।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥ २
स हि क्षपावाँ अग्नो रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्ताश्च विद्वान् ॥ ३
वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम्।
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४
गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥ ६ १४

हे मनुष्यो ! हम बहुत अन्न की कामना वाले स्तोत्रों को पढ़ें। उत्तम प्रकाशवान् अग्नि, देवता और मनुष्य के कार्यों और सृष्टि के रूप को जानते हु सब में व्यापक हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जल, वन, स्थावर-जङ्गम के बीच विद्यमान, अमर, ध्यानयुक्त प्राणियों की आत्मा के समान तुमको यजमान के घर या पर्वत पर हवि देते हैं ॥ २ ॥ रात्रि में अग्नि की उत्तम स्तुति करने वालों को धन देते हैं। हे चैतन्य देव अग्ने ! तुम देवता और मनुष्यों को जानते हुए उनके रक्षक हो ॥ ३ ॥ विभिन्न रूप वाली उषा और रात्रि जिस

अग्नि को बढ़ाते हैं, वह अग्नि स्थावर और जङ्गम प्राणियों के निमित्त यज्ञ में प्रतिष्ठित कर, उत्तम कर्मानुष्ठानों द्वारा प्रसन्न किये जाते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने! तुम्हारा गुण किरणों और नक्षत्रों में भी स्थापित है। वे सब हमको प्रकाश देते हैं। बहुत कालों से मनुष्य तुमको पूजता आया है और वृद्ध पिता से पाने के समान तुमसे धन पाता रहा है ॥ ५ ॥ वे अग्नि परोपकारी के समान शुभ कामना वाले, अस्त्र चलाने वाले के समान धीर, दण्डदाता के समान विकराल और युद्ध-क्षेत्र में साक्षात् तेज हैं ॥ ६ ॥ [१४]

७१ सूक्त

(ऋषि—पराशरः शाक्त्यः। देवता—अग्नि। छन्द—पंक्ति।)

उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १
वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २
दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३
मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय ॥ ४
महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ । १५

प्रेमपूर्ण पत्नियों [redacted] काम्य पतियों को प्राप्त करने के समान, इकट्ठी रहने वाली अँगुलियाँ अग्नि को प्रसन्न करती हैं। काले रङ्ग वाली फिर पीले और अरुण रङ्ग वाली उषा की जैसे किरणें सेवा करती हैं, वैसे ही अँगुलियाँ अग्नि की सेवा करती हैं ॥ १ ॥ हमारे पितर अङ्गिरा ने मन्त्र द्वारा अग्नि की स्तुति की और "पणि" नामक असुर को नाद से ही नष्ट कर दिया। तब आकाश में मार्ग, दिन, ज्योति रूप सूर्य तथा ध्वज रूप किरणों को हमने प्राप्त किया ॥ २ ॥ अङ्गिरा ने यजमान को धारण किया और अग्नि को ही धारण

...र्त बनाया। फिर मनुष्यों ने अग्नि की स्थापना की और उसे धारण
...दिव्यान्त हुए। उनकी हवियाँ देव और मनुष्य की वृद्धि करती हुई अग्नि
...प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥ मातरिश्वा द्वारा अग्नि के मथे जाने पर वह उज्ज्वल
...ति वाले घर-घर में प्रकट हुए। फिर भृगु के समान मनुष्यों ने इस अग्नि
...दूत बनाया, जैसे निर्बल राजा अधिक बलवान राजा के पास दूत भेजता
...है ॥ ४ ॥ जब बलवान, अपने पोषक अग्नि को हवि-रूप रत्न भेंट करता है,
...तब उसके महान् कर्म को जान कर दैत्यादि पलायन करते हैं। उस समय
अग्नि अपने प्रदीप्त बाणों को उन पर चलाते और सूर्य रूप से उषा में दे...
स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥

[१५]

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७
आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ८
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १०

हे अग्ने ! अपने घर में तुम्हें प्रदीप्त करने वाला याचक तुमको...
...रूप अन्न देता है। तुम उसे अपने दुगुने बल से युक्त करो। ...
प्रेरणा से जो व्यक्ति युद्ध में जाता है, वह धन प्राप्त करता है ॥ ६
सातों नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे ही सभी हवियाँ अग्नि...
होती हैं। हमारा अन्न सम्बन्धी भी नहीं पा सकते। अतः देवताओं...
प्रचुर धन दिलाओ। (जिससे हम उसे सम्बन्धियों तथा अन्य लो...
... ॥ जब मनुष्यों के स्वामी अग्नि ने अन्न के लिए तेज धा...

तब उसने आकाश के गर्भ में बीज डाला। इससे अनिंद्य, युवा, उत्तम कर्म वाले मरुत उत्पन्न हुए जिन्हें उन्होंने वृष्टि के लिए प्रेरित किया ॥ ८ ॥ मन के समान द्रुत गति वाले, मेधावी, धन के स्वामी, सुन्दर भुजाओं वाले मित्र और वरुण हमारी गायों के उत्तम और अमृत तुल्य दूध की रक्षा करें ॥ ६ ॥ हे अग्ने! सर्वज्ञाता और और मेधावी तुम हमारी पैतृक मित्रता को न भूलो। बुढ़ापा कायर के समान आकर हमको नष्ट करता है। अतः वह हमारे विनाश को न आवे, उससे पहिले ही वह उपाय करो ॥ १० ॥ [१६]

७२ सूक्त

(ऋषि-पराशरः शाक्त्यः। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥ १
अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २
तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३
आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥ ४
संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥ ५ । १७

मनुष्यों का हित करने वाले अग्नि बहुतसा धन हाथ में लिए हुए हैं। वे विधाता के ज्ञान से सभी रमणीय धनों को उत्पन्न करते हुए ऐश्वर्यों के स्वामी होते हैं ॥ १ ॥ हमारे प्रिय अग्नि की इच्छा हुए भी अमर और सुमति वाले देवताओं ने उन्हें ठीक प्रकार से नहीं जाना। तब वे थके हुए पैरों से चलते हुए, ध्यानपूर्वक अग्नि के स्थान में पहुँचे ॥ २ ॥ हे अग्ने! जब मरुतों ने तीन वर्ष पर्यन्त तुम्हारा घृत से पूजन किया, तब उन्होंने यज्ञ-योग्य नामों को धारण कर उच्च देवों में उत्पन्न हो अमरत्व को प्राप्त किया ॥ ३

महान् पृथिवी और आकाश का ज्ञान करते हुए पूज्य मनुष्यों ने अग्नि
योग्य स्तोत्रों को भेंट किया, तब उन्होंने उत्तम स्थान में स्थित अग्नि
पाया ॥ ४ ॥ देवगण दर्शनीय हुए, गौ के वत्स बैठे और पत्नियों सहि
उनकी पूजा की । फिर अग्नि को मित्र जानकर उनका पोषण कर यज्ञ कि
और अपने शरीरों की रक्षा की ॥ ५ ॥ [१

त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुणीरजानन् ॥ १० १

हे अग्ने ! तुममें स्थित जिन इक्कीस गूढ़ पदों को देवगण ने प्र
किया, वे उनसे अपनी रक्षा करते हैं । हे अग्ने ! तुम पशुओं और स्था
जङ्गम की रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! मनुष्यों के व्यवहारों के ज्ञाता तुम
जीवन के निमित्त अन्नों की स्थापना की तथा देव-मार्गों को जानते हुए तु
निरालस्य हुए, हविवाहक दूत बने ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! ध्यान से सृष्टि
नियमों को जानने वाले ऋषियों ने आकाश से निकली सप्त नदियों को धन
द्वार रूप समझा । तुम्हारी प्रेरणा से सरमा ने गौओं को खोज लिया, जिन
मनुष्यों का पोषण होता है ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! जिन्होंने उत्तम कर्मों द्वा
अमरत्व प्राप्ति का यत्न किया, उन्हीं के सत्कर्मों से यह पृथिवी म
अपने स्थान पर स्थित है ॥ ९ ॥ देवगण ने इस लोक में सुन्दर शो
स्थापित की और आकाश को दो नेत्र दिए । इसके पश्चात् ही मनुष्य न
के समान नीचे उतरती हुई उषा को जान सके ॥ १० ॥ [१८

७३ सूक्त

(ऋषि-पराशरः शाक्त्यः । देवता-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् ।)

रयिर्न य पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥ १
देवो न य. सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥ २
देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ३
तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥ ४
वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भाग देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५ । १६

यह अग्नि पैतृक धन के समान धन देते हैं। मेधावी के समान शासक हैं। अतिथि के समान प्रिय हैं तथा होता के समान यजमान के घर की वृद्धि करता है ॥ १ ॥ जाज्वल्यमान सूर्य के समान प्रकाशित अग्नि अपने कर्मों द्वारा रक्षक हैं। मनुष्यों से प्रशंसा पाये हुए वे प्रकृति के समान परिवर्तनशील नहीं है। वे आत्मा के समान संतोषी और यजमान द्वारा ग्रहण किये जाते हैं ॥ २ ॥ दीप्तिमान सूर्य के समान संसार का धारक यह अग्नि अनुकूल अनुचरों से सम्पन्न राजा के समान निर्भय है। सभी जीव उसके पितृ-तुल्य आश्रय में रहते हैं और पतिव्रता प्रशंसित नारी के समान अग्नि का अभिनन्दन करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! उपद्रव रहित घरों में प्रदीप्त हुए तुम्हारी मनुष्यगण सेवा करते हैं। देवताओं ने तुममें अत्यन्त तेज भरा है। तुम सबके प्राण रूप हो। हमारे लिए सब धनों को दो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! सम्पन्न यजमान अन्न प्राप्त करे। हविदाता पूर्ण आयु प्राप्त करें। यश के निमित्त देवताओं को हवि देते हुए हम युद्ध में शत्रु के अन्न को प्राप्त करें ॥ ५ ॥

य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
वतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६
अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
क्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७
न्राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥
एना ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० । २०

नित्य दूध देने वाली गौएँ कामनापूर्वक यज्ञ स्थान में अग्नि को दूध से सींचती हैं। कल्याणकारिणी नदियाँ, पर्वत के निकट से बहती हुई अग्नि के सामने झुकती हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! कल्याणकारी बुद्धि की याचना करते हुए पूज्य देवगण ने तुमको यशस्वी बनाया है। विभिन्न रूप वाली रा और उषा को विभिन्न अनुष्ठानों के लिए नियुक्त किया है। इन दोनों के क और अरुण रङ्ग हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम जिन्हें धन के लिए प्रेरित क हो, वे और हम धनवान हों। तुम सब संसार के साथ छाया के समान हो। तुम्हीं ने आकाश, पृथिवी, और अन्तरिक्ष को पूर्ण किया है ॥ ८ अग्ने! तुम्हारी रक्षा से रक्षित हुए हमने पैतृक धन को प्राप्त किया। घोड़ों से शत्रु के घोड़ों को, मनुष्यों से मनुष्यों को, योद्धा से योद्धा क हुए स्तोता को शतायु करो ॥ ९ ॥ हे मेधावी अग्ने! यह स्तोत्र तु हों। देवताओं के दिए हुए धन को धारण करते हुए हम तुम्हारे रथ को स्थित करने में समर्थ हों ॥ १० ॥

७४ सूक्त [तेरहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्र

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २
कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः । सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ । २३

हे अग्नि ! मुख में हवियों को ग्रहण कर हमारे द्वारा देवताओं को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले स्तोत्र को स्वीकार करो ॥ १ ॥ हे अङ्गिराओं में श्रेष्ठ अग्ने ! हम स्नेह पूर्वक तुम मेधावी की स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! मनुष्यों में तुम्हारा बन्धु कौन है, तुम्हारा पूजक कौन है ? तुम कौन हो तथा किसके आश्रित हो ? ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों में सबके बन्धु हो । पूजक के रक्षक और मित्रों के लिए स्तुत्य मित्र हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे लिए मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं की पूजा करो । अपने यज्ञ वाले घर में निवास करो ॥ ५ ॥ [२३]

७६ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १
एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥ २
प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ । २४

हे अग्ने ! तुम्हारा मन सन्तुष्ट करने के लिए तुम्हारे पास आकर कौन-स्तुति करें जो तुमको सुख देने वाली हो ? तुम्हारे सामर्थ्य के योग्य यज्ञ न करे ? किस बुद्धि से तुमको हवि दें ? ॥ १ ॥ हे अग्ने ! यहाँ, इस यज्ञ 'होता' रूप से विराजो। तुम पीड़ा रहित हुए हमारे लिए अग्रणि बनो। ये व्यापक आकाश-पृथिवी तुम्हारी रक्षा करें। तुम हमको महान् प्रसाद प्राप्त ाने के लिए देवार्चन करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! राक्षसों को दग्ध करो। यज्ञ ो हिंसकों से बचाओ। फिर सोम-स्वामी इन्द्र को अश्वों सहित हमारे आतिथ्य के लिए लाओ ॥ ३ ॥ तुम अग्रणि का मैं आह्वान करता हूँ। तुम देवताओं के साथ यज्ञ में रहते हो। हे पूज्य ! तुम 'होता' और 'पोता' का कर्म करने ाले हो। तुम धनोत्पादक हो, धन के निमित्त मुझ पर कृपा करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम सत्य स्वरूप तथा होता रूप हो। तुमने ऋषियों के साथ मेधावी मनु की हवियाँ देवताओं को ग्रहण कराई थीं। अतः प्रसन्नता देने वाली जुहू (आहुति देने का पात्र) से आहुति ग्रहण करो ॥ ५ ॥   [२४]

७७ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः। देवता—अग्नि। छन्द—पंक्ति और त्रिष्टुप्)

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम्।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २
स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३
स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम्।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः।
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ । २५

अग्नि को किस प्रकार हवि दें ? कौन-सी देव-प्रिय स्तुति करें ? यह
धर्म वाले मनुष्य के लिए उत्तम यज्ञ करने वाले, देवताओं के निमित्त
रते हैं ॥ १ ॥ यज्ञ-कर्म द्वारा अत्यन्त सुखदायक यज्ञ-युक्त होता को
करो। देवताओं के समीप पहुँचने वाले अग्नि उनको जानते हैं और
य से उनको पूजते हैं ॥ २ ॥ अग्नि ही यज्ञ, यजमान हैं, वे ही दिव्य
न प्राप्त कराने वाले, मित्र के समान परोपकारी हैं तथा देवताओं की कामना
रते हैं। यज्ञों में पहले उन्हीं अद्भुत कर्म वाले का आह्वान किया जाता
है ॥ ३ ॥ मनुष्यों में श्रेष्ठ, शत्रु-भक्षक वह अग्नि हमारी स्तुतियों को चाहें।
वे महान् ऐश्वर्य वाले, ऐश्वर्य प्रेरित करने के लिए हमारे पूजन को ग्रहण
करें ॥ ४ ॥ यज्ञ-युक्त अग्नि की गौतमों ने स्तुति की। सर्व प्राणियों के
ज्ञाता अग्नि ने यश और धन की वृद्धि कर पोषण शक्ति को बढ़ाया। वे अग्नि
अपने साधक की भक्ति को जानकर कृपा करते हैं ॥ ५ ॥ [२५]

७८ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे ।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥
तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥
तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ४
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ ५

सर्व भूतों के ज्ञाता, द्रष्टा अग्ने ! गौतम वंशी तुम्हारे लिए
उज्ज्वल स्तुतियों को मधुर वचनों से निवेदन करते हैं ॥ १ ॥ धन क
से गौतमवंशी तुम्हारी स्तुतियां करते हैं। हम भी उज्ज्वल मन्त्रों
स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ अत्यन्त अन्न प्रदानकर्त्ता तुम्हारा हम
समान आह्वान करते हैं और उज्ज्वल मन्त्रों से तुम्हारी पूजा कर

नुष्यों के शत्रुओं को कँपाने वाले तथा वृत्र नाशक अग्नि को हम मन्त्रों द्वारा नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ रहूगण वंशियों ने अग्नि के प्रति मधुर स्तुतियाँ कीं । उन्हीं अग्नि के निमित्त हम प्रकाशित मन्त्रों से स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [२६]

७९ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १
आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥ २
यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥ ३
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४
स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।
रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५
क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ । २७

अग्नि, आकाश के समान विस्तृत, लहराते हुए सर्पों के समान स्वर्णिम केशों वाले वायु के समान वेग वाले, उत्तम प्रकाशयुक्त तथा उषा के ज्ञाता हैं। वे कर्त्तव्य में लीन यशस्विनी महिला के समान शोभित हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! काले बादल रूप वाले बैल के गर्जने के समय सुन्दर पङ्खयुक्त तुम्हारी दमक, चमककर लुप्त हो गई । तब कल्याणकारिणी वृष्टि हँसती-सी वर्षने लगी और मेघों में तुम गर्जने लगे ॥ २ ॥ यज्ञ के हव्य से वृद्धि को प्राप्त अग्नि सरल मार्ग से देवगण को यज्ञ में पहुँचाते हैं । तब अर्यमा, वरुण और मरु दिशाओं में मेघों को एकत्र करते हैं ॥ ३ ॥ हे बल के पुत्र अग्ने ! स

उत्पन्न जीवों के ज्ञाता तुम गवादि धनों के स्वामी हमको अत्यन्त यशस्वी बनाओ ॥ ४ ॥ वह प्रकाशवान्, धनों के ईश्वर, मेधावी अग्नि उत्तम वाणियों से स्तुति प्राप्त करते हैं। हे बहुकर्मा, तुम धनों से युक्त हुए प्रदीप्त होओ ॥ ५ हे तीक्ष्ण दाढ़ वाले ! तुम स्वयं प्रकाशित होते हुए रात्रि, दिवस और उषा काल में भी दैत्यों को भस्म करो ॥ ६ ॥ [२७]

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७
आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥८
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥९
प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥ १०
यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद्वृधे भव ॥ ११
सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी वक्षांसि सेधति ।
होता गृणीत उक्थ्यः ॥ १२ । २८

हे सम्पूर्ण कर्मों में पूज्य अग्ने ! हमारे द्वारा स्तोत्र निवेदन करने पर तुम अपने रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हमारे निमित्त सदा जयशील, दूसरों के द्वारा न जीता जा सके, ऐसे गृहणीय धन को प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हमारे जीवन में सुख देने वाले तुम पूर्ण आयु के पोषक धन को स्थापित करो ॥ ९ ॥ हे गौतम ! सुख की इच्छा से तीक्ष्ण से तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्नि के निमित्त पवित्र वचनों वाली स्तुतियाँ उच्चारण करो ॥ १० ॥ हे अग्ने ! पास या दूर वाला जो भी हमको वश करना चाहे उसका पतन हो। तुम हमारी वृद्धि करने वाले होओ ॥ ११ ॥ हे सहस्राक्ष अग्ने ! तुम यशस्वी होता और विशेष दृष्टि वाले हो। तुम राक्षसों को दूर करने वाले हो, हम तुम्हारा पूजन करते हैं ॥ १२ ॥ [२८]

८० सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—इन्द्र । छन्द-पंक्ति ।)

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १

त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
त्वा वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २
ह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा-अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४
इन्द्रो-वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीलितः ॥
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ । २६

हे महाबली इन्द्र ! हर्षदायक सोम के प्रभाव में स्तोता ने प्रशंसा की। तुम वज्रधारी ने अपने बल से वृत्र को दण्डित किया। तुम स्वराज्य में प्रकाशित हुए प्रतिष्ठित हो ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! श्येन से लाये हुए निष्पन्न बलयुक्त सोम ने तुमको हर्षयुक्त और बलवान् बनाया, उससे तुमने वृत्र को जलों से पृथक् कर पीड़ित किया। तुम स्वराज्य में प्रकाशित हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! बढ़ो, शत्रु का सामना करो। तुम निर्भय हो। तुम्हारे वज्र का सामना कोई नहीं कर सकता। तुम्हारा वीर्य ही बल है। तुमने वृत्र को मारा और उससे जलों को जीतकर अपने राज्य में स्वयं प्रकाशित हुए ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्र को पृथिवी से खींचकर मारा और आकाश से खींचकर वध किया। तुम जीवन-रक्षक मरुतों से युक्त जलों की वर्षा करो। अपने में तुम स्वयं प्रकाशित हो ॥ ४ ॥ क्रोधित इन्द्र ने भय से काँपते हुए वृत्र पर प्रहार किया और जलों को प्रवाह में प्रेरित किया। वे इन्द्र स्वयं प्रकाशमान हैं ॥ ५ ॥

[२६]

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६
इंद्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७
वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या अनु ।

...इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८

... साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।

...मन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९

...द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।

...हत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० । २०

सोम से आनन्दित इन्द्र ने सौ गाँठों वाले वज्र से जबड़े पर प्रहार
...किया । वे मित्रों के लिए धन की कामना करते हुए स्वयं प्रकाशमान हैं ॥ ६
हे वज्रिन् ! शत्रुओं का तिरस्कार करने वाला पुरुषार्थ तुम्हारा ही है । तुम्हीं
ने उस पशु रूप मायावी वृत्र को मारा । तुम स्वयं प्रकाशमान हो ॥ ७ ॥
हे इन्द्र ! सब्से बड़ी नदियों के समान तुम्हारा वज्र विस्तृत है । तुम्हारा बल
महान् है । तुम्हारी दोनों भुजाएँ दृढ़ हैं । तुम स्वयं प्रकाशमान हो ॥ ८ ॥
हे मनुष्यो ! तुम हजारों की संख्या में एकत्रित होकर इन्द्र का स्तवन करो ।
बीस स्तोत्र गाओ । यह इन्द्र बहुतों द्वारा स्तुत्य हैं । ऋषियों ने इन्द्र के लिए
मन्त्र रूप स्तुतियों को उन्नत किया हैं । वे स्वयं प्रकाशमान हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र
ने वृत्र का बल क्षीण किया । अपने साहस से उसे साहसहीन बनाया । वृत्र
को मारना इसका महान् बल है । अपने राज्य में यह स्वयं प्रकाशमान
हैं ॥ १० ॥

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।

यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।

अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२

यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।

अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्

अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम्

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ । ३१

हे वज्रिन् ! तुम्हारे भय से आकाश पृथिवी भी कम्पित होते हैं। तुमने मरुतों के सहयोग से वृत्र को मारा ॥ ११ ॥ इन्द्र को वह वृत्र न वेधा सका, न गर्जना से डरा सका। उस पर इन्द्र का लौह-वज्र गिरा ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! जब वृत्र के फेंके हुए वज्र से तुमने अपना वज्र टकराया तब तुमने उसे मारने की इच्छा से अपने बल को आकाश में स्थापित किया ॥ १३ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारी गर्जना से स्थावर जङ्गम सभी काँपते हैं। त्वष्टा भी भय से काँपता है। तुम अपने राज्य को स्वयं प्रकाशित करते हो ॥ १४ ॥ पुरुषार्थ में इन्द्र से अधिक कोई नहीं। देवगण ने इनमें ज्ञान, बल, पुंसत्व की स्थापना की है। वे अपने राज्य को स्वयं प्रकाशित करते हैं ॥ १५ ॥ "अथर्वा", "पिता मनु", "दध्यङ्" ने जो कर्म किये उनकी हवियाँ और स्तुतियाँ इन्द्र में एकत्रित हुईं ॥ १६ ॥ [३१]

॥ पञ्चम अध्याय समाप्तम् ॥

८१ सूक्त

(ऋषि-गोतमो राहूगणः । देवता-इन्द्रः । छन्द-पंक्ति, बृहती ।)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४

...ौं पार्थिवं रजो वद्बधे रोचना दिवि ।
...ावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १

वृत्र को मारने वाले इन्द्र की प्रसन्नता और बल में मनुष्यों
...ा वृद्धि की जाती है। उन इन्द्र का बड़े-छोटे युद्ध में रक्षा के लिए आह्वान
...रते हैं ॥ १ ॥ हे वीर इन्द्र ! तुम सेना में श्रेष्ठ तथा अत्यन्त धनदाता
...ो। तुम छोटे को बढ़ाते हो। तुम सोम वाले यजमान को बहुत धन देते
हो ॥ २ ॥ युद्धों में अभय देने वाले इन्द्र ! तुम दोनों अश्वों को रथ में
जोड़ो। तुम मारते भी हो, धन भी देते हो। हमको धन प्रदान करो ॥ ३ ॥
महान् बुद्धि वाले, विकराल इन्द्र ने अपने इच्छित बल की वृद्धि की, और
अश्वों से युक्त दृढ़ दाढ़ वाले इन्द्र ने यश के निमित्त लौह-वज्र को ग्रहण
किया ॥ ४ ॥ इन्द्र ने पृथिवी से सम्बन्धित अन्तरिक्ष को पूर्ण किया और
आकाश में नक्षत्र स्थापित किये। हे इन्द्र ! उत्पन्न होने वाले या उत्पन्न हुए
प्राणियों में तुम्हारे समान कोई नहीं। तुम अत्यन्त महान् हो ॥ ५ ॥ [१]

यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ७
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ८
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥

जो इन्द्र हविदाता को मनुष्यों के उपभोग्य पदार्थों को दे...
हमको भी दें। हे इन्द्र ! तुम्हारे पास अनन्त धन है, उसे बाँट डाल...
तुम्हारे धन में भाग प्राप्त करूँ ॥ ६ ॥ उत्तम बुद्धि वाले इन्द्र ह...
धन देते हैं। हे इन्द्र ! हमको दोनों हाथों से धन प्राप्त कराने के ...
...ो ॥ ७ ॥ हे वीर इन्द्र ! सोम सिद्ध होने प...

लिए उससे हर्ष प्राप्त करो। तुम अनन्त धन वाले माने गये हो। तुम हमारी कामना पर ध्यान देते हुए रक्षा करो॥ ८॥ हे इन्द्र! यह मनुष्य आपके ग्रहण करने योग्य पदार्थों को बढ़ाते हैं। तुम दान करने वालों के धनों को जानकर हमारे लिए ले आओ॥ ६॥ [२]

८२ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति, जगती)

उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी॥ १
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥ २
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥ ३
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी॥ ४
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी॥ ५
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः॥ ६।

हे धन के स्वामी इन्द्र! तुम हमारी स्तुतियों को निकट से सुनो। पूर्व काल के समान ही स्तुति सुनने वाले रहो। तुमने हमको सत्य और प्रिय वाणी से युक्त किया है, तुम स्तुतियाँ सुनने के इच्छुक भी हो। अपने रथ में अश्वों को जोड़कर यहाँ आओ॥ १॥ प्रिय मनुष्यों ने तुम्हारा प्रसाद रूप सोम सेवन कर लिया। आनन्द में वे झूमने लगे। मेधावी ऋषियों ने अभिनव स्तोत्र पढ़ा। हे इंद्र! रथ में अश्वों को शीघ्र जोड़ो॥ २॥ हे मघवन्! तुम कृपा-पूर्ण दृष्टि वाले को हम नमस्कार करते हैं। तुम स्तुति से प्रसन्न हुए धनों से पूर्ण रथ सहित आओ॥ ३॥ वह अभीष्ट वर्षक, गौओं व

वाले, धान्ययुक्त सोम की कामना वाले इन्द्र रथ पर अवश्य चढ़कर
॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बली हो। तुम्हारे रथ के दोनों ओर दो
जुते हैं। सोम के तेज से युक्त हुए रथ में अश्व जोड़कर अपनी प्रिय पत्नी
पास आओ ॥ ५ ॥ हे वज्रिन् ! मैं तुम्हारे दोनों घोड़ों को स्तोत्र से रथ में
जोड़ता हूँ। तुम हाथ में रास लेकर आओ। सोम से हर्षित हुए पत्नी के पास
आओ ॥ ६ ॥

[२]

८३ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्।)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
र्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५
बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥

हे इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य गौओं से युक्त धन वालों
होता है। सब ओर से जल समुद्र में ही जाते हैं, वैसे ही तुम उन्
से युक्त करते हो जो धन वालों में मुख्य होता है ॥१॥ होता के चमस
जैसे जल प्राप्त होते हैं, वैसे ही स्तोता को स्नेह करने वाले देवता
नीचे की ओर देखते हुए साधक को प्राप्त होते हैं और कन्या के प्रति

वाले वर के समान उत्तम मार्गों से ले जाते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने पूजक में प्रशंसा योग्य वचनों की स्थापना की है। वह पूजक तुम्हारे नियमों पर दृढ़ रहता और वृष्टि को प्राप्त करता है। तुम उस सोम वाले को मङ्गलमय शक्ति देते हो ॥ ३ ॥ जिन अङ्गिराओं ने उत्तम कर्मों से अग्नि को प्रदीप्त कर पहिले हवि रूप अन्न सम्पादित किया, फिर उन्होंने मवादि युक्त धनों की प्राप्ति की ॥ ४ ॥ पहिले "अथर्वा" ने स्वर्ग-मार्गों को बढ़ाया, फिर व्रतनियमा सूर्य रूप इन्द्र प्रकट हुए तब, "उशाना" ने गौओं को हाँका। हम उस शत्रुओं के मारने वाले इन्द्र की पूजा करते हैं ॥ ५ ॥ जब उत्तम यज्ञ के लिए कुशा काटते हैं, साधकगण स्तोत्र पाठ करते हैं, सोम कूटने वाला पाषाण स्तोत्र के समान शब्दवान होता है, तब इन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥ [४]

८४ सूक्त

(ऋषि-गोतमो राहूगणः । देवता-इन्द्र । छन्द अनुष्टुप् । प्रभृति)

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २

आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ५ । ५

हे सर्वाधिक बल सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे लिए सोम निचोड़ा है, तुम निःशङ्क यहाँ आओ। सूर्य अपनी किरणों से लोकों को पूर्ण करता है, उस प्रकार सोम से उत्पन्न बल तुम्हें पूर्ण करे ॥ १ ॥ किसी के वश में न होने वाले इन्द्र को उनके अश्व यज्ञों में स्तुति करते हुए ऋषियों के समीप पहुँचा

हैं ॥ २ ॥ हे वृत्र-नाशक इन्द्र ! स्तोत्र द्वारा तुम्हारे दोनों घोड़े रथ में जुत गये। तुम उन पर चढ़कर सोम कूटने के शब्द से आकर्षित हुए इधर आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! इस उत्तम, हर्षदायक निष्पन्न सोम का पान करो। इस यज्ञ में सोम की उज्ज्वल धार तुम्हारी ओर प्रवाहित है ॥ ४ ॥ अब स्तोत्र उच्चारण करते हुए इन्द्र की पूजा करो। निष्पन्न सोम से प्राप्त बल वाले इन्द्र को प्रणाम करो ॥ ५ ॥ [५]

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग ॥ ७

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।
कदा नः शुश्रवद्गिर इंद्रो अंग ॥ ८

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अंग ॥ ९

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! जब घोड़ों को रथ में जोतते हो तब तुम्हीं सर्वश्रेष्ठ रथी दिखाई पड़ते हो। कोई बलवान या अश्वारोही तुम्हारे समान नहीं ॥ ६ ॥ जो हविदाता को अकेला ही धन देने में समर्थ हैं, वह इन्द्र किसी के द्वारा पीछे नहीं हटाया जा सकता ॥ ७ ॥ दान न देने वाले व्यक्ति को यह इन्द्र साँप की छत्री (कुकुरमुत्ता) के समान कब कुचलेंगे ? वे कब हमारी स्तुतियों को सुनेंगे ? ॥ ८ ॥ अनेकों में जो कोई सोम निष्पन्न कर श्रद्धा भक्ति से तुम्हें पूजता है, वही अनन्त बल प्राप्त करता है। वह ... उसकी अवश्य सुनते हैं ॥ ९ ॥ सुस्वादु, शरीर में रम जाने वाले मधुर सोम को गौर वर्ण वाली गौएँ सेवन करती हैं। ये आनन्द के लिए इंद्र ... सम्पन्न होती हुई उन्हीं के शासन में रहती हैं ॥ १० ॥ [६]

ता अस्य पृशनायुवः श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १३
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ १४
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ । ७

इन्द्र की वे प्रिय गौऐं सोम में अपना दूध पिलाती हुईं उनके वज्र को प्रेरणा देती हुईं उनके राज्य में निवास करती हैं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त वे गौऐं इन्द्र के बल को नमन करती हुईं उनके आश्रय में रहती हैं तथा उनके नियमों को घोषित करती हैं ॥ १२ ॥ शत्रुओं से कभी न हारने वाले इन्द्र ने दधीचि की हड्डी से बने वज्र द्वारा वृत्र आदि आठ सौ दश दैत्यों का हनन किया ॥ १३ ॥ अश्व का सिर दूरस्थ पर्वत में जा पड़ा था, इन्द्र ने उसे "शर्यणावान्" सरोवर में पड़ा पाया ॥ १४ ॥ देवताओं ने चन्द्र-गृह में छिपे हुए त्वष्टा के तेज को जाना ॥ १५ ॥ [७]

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १६
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे को जनाय ॥ १७
को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८
त्वमंग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९
मा ते राधांसि मा [illegible] ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० । ८

आज कौन कर्मधीर अत्यन्त तेज से युक्त, क्रोध सम्पन्न इन्द्र के घोड़ों

को जोड़ सकता है? कौन शत्रु की छातियों को रौंदकर मित्रों को सुख देता है? कौन इनका बल बढ़ाता हुआ दीर्घ जीवन प्राप्त कराता है? ॥ १६ ॥ कौन चलता है? कौन कष्ट उठाता है? कौन इन्द्र से डरने वाला उनका सत्कार करता है? कौन समीपस्थ इन्द्र को जानता है? कौन सन्तान, भृत्य एवं परिजनों की रक्षा के लिए इन्द्र से आश्वासन माँगता है? ॥ १७ ॥ कौन अग्नि की स्तुति करता है? कौन घृतयुक्त हवि से यज्ञ करता है? किसके लिए देवता धन लाते हैं? कौन देवताओं सहित इन्द्र को जानता है? ॥ १८ ॥ हे महाबली इन्द्र! तुम मरणशील मनुष्यों का उत्साह-वर्द्धन करते हो। तुम धैर्यदाता हो। मैं तुम्हारे निमित्त सत्य वाणी से स्तुति करता हूँ ॥ १९ ॥ हे धन रूप इन्द्र! तुम्हारे दान और रक्षाओं से हम कभी वञ्चित न रहें। तुम मनुष्य का हित करने वाले हो। हमारे लिए सब प्रकार के धनों को लाओ ॥ २० ॥ [८]

८५ सूक्त [चौदहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—मरुत । छन्द—जगती ।)

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २
गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४
प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ ६ । ६

द्रुतगामी मरुत जो रुद्र के पुत्र हैं, यात्रा के समय महिलाओं और पृथिवी को वृद्धि करते हैं। वे घर्षणशील हमारे यज्ञ में आनन्द प्राप्त करें ॥ १ वे महान् मरुद्गण महत्त्वावान् हैं। उन्होंने आकाश में अपना स्थान बनाया है। इन्द्र के लिए स्तोत्र उच्चारण कर, बल धारण करते हुए उन पृथिवी-पुत्र ने ऐश्वर्यों को पाया ॥ २ ॥ वे पृथिवी-पुत्र मरुत् अलङ्कारों से सज्कर अधिक दीप्ति को धारण करते हुए शत्रुओं का हनन करते हैं। उनके मार्गों पर चलकर मेघ वृष्टि करते हैं ॥ ३ ॥ सुन्दर यज्ञ वाले यह मरुद्गण अपने आयुधों को चमकाते हुए। पर्वत जैसे अपतनशील पदार्थों को भी गिराने में समर्थ हैं। हे मरुद्गण! तुम मन के समान वेग वाले हो। तुम वीरों के रथों में बिन्दु चिन्हित हरणियों को जोड़ते हो ॥ ४ ॥ मरुतो! जब तुम युद्ध में वज्र को प्रेरित करते हुए बुँदकियों वाले मृग को रथ में जोड़कर सूर्य के निकट से जल को प्रेरित करते हो, तब वह गिरती हुई वर्षा पृथिवी को पूर्णतः आर्द्र कर देती है ॥ ५ ॥ हे मरुतो! तुमको मंद चाल वाले अश्व यहाँ लावें। हाथ में धन लेकर यहाँ आओ। तुम्हारे लिए विस्तृत कुशासन यहाँ है, उस पर बैठकर मधुर सोम को पान करो ॥ ६ ॥ [६]

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७
शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ६
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १०
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्॥ १२ ।

अपने बल से ही वृद्धि को प्राप्त मरुद्गण स्वर्ग में विस्तृत स्थान बना चुके हैं। वे मनोरथदाता यज्ञ की रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥ वीरों के समान आक्रमण करने वाले मरुद्गण यश के लिए वीर कर्म करते हैं। इनसे सब लोक भयभीत होते हैं। यह अत्यन्त तेजस्वी हैं ॥ ८ ॥ उत्तम कर्म वाले त्वष्टा ने सहस्र धारों वाले वज्र को बनाया, उसे इन्द्र ने वीर-कर्मों के लिए धारण किया। उसी से वृत्र को मारकर जलों को नीचे गिराया ॥ ९ ॥ अपने बल से मरुतों ने भूमि पर स्थित जल को ऊपर की ओर प्रेरित किया और दृ मेघों का भेदन कर शब्दवान हुए तथा कल्याणकारी सोम के बल से उन्हों अत्युत्तम कर्मों को किया ॥ १० ॥ मरुतों ने जलाशय (मेघ) को ति करके उड़ाया और प्यासे गौतम के लिए झरनों को सींचा। वे रक्षा के गये और ऋषि को संतुष्ट किया ॥ ११ ॥ हे मरुतो ! स्तोता और हवि को तुम जो इच्छित से तिगुना सुख देते हो, वह हमको दो। हे वीरो ! संतान से युक्त धनों को हमें धारण कराओ ॥ १२ ॥

८६ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः । देवता—मरुत । छन्द—गायत्री ।)

रुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो ज

ज्ञैर्वा यजवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता ह

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति

अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च श

अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।

सूरं चित्सस्रुषीरिषः

हे महापुरुषो ! तुम जिसके घर में सोम-पान करत नितांत रक्षित होता है ॥ १ ॥ हे यज्ञ को पूर्ण करने वाले यज्ञ में स्तुतियों को ग्रहण करो ॥ २ ॥ हे मरुतो ! को तुमने ऋषि बनाया, वह यजमान अधिक

है ॥ ३ ॥ यज्ञों में जो मरुतों के लिए कुशा पर निचोड़ा हुआ सोम रखता है, उसके घर में प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों का गान होता है ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण इस श्रेष्ठ यजमान की प्रार्थना को सुनें। मैं स्तोता भी उनसे अन्न प्राप्त करूँ ॥ ५ ॥ [११]

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ ८
यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० । १२

हे मरुद्गण ! तुम्हारे रक्षण-सामर्थ्यों से युक्त हुए हम बहुत समय से हवि देते रहे हैं ॥ ६ ॥ हे उत्तम प्रकार से पूज्य मरुतो ! जिसे तुम अन्न से भाग्यशाली बनाओ वह तुम्हारा उपासक हो ॥ ७ ॥ हे सत्य बल वाले मरुतो ! यज्ञ के परिश्रम से थके हुए स्तोता की इच्छा पूर्ण कर उसके अभीष्ट को प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे सत्य बल से युक्त मरुतो ! तुम अपनी महत्ता से, दैत्यों को मारने वाले प्रसिद्ध बल को प्रकट करो ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! अन्धकार को छिपाओ, राक्षसों को भगाकर प्रकाश करो। तुमसे ज्ञान की याचना करते हैं ॥ १० ॥ [१२]

८७ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणपुत्रः । देवता—मरुतः । छन्द—गायत्री)

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ । १०

अपने बल से ही वृद्धि को प्राप्त मरुद्‌गण स्वर्ग में विस्तृत स्थान बना चुके हैं। वे मनोरथदाता यज्ञ की रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥ वीरों के समान आक्रमण करने वाले मरुद्‌गण यश के लिए वीर कर्म करते हैं। इनसे सब लोक भयभीत होते हैं। यह अत्यन्त तेजस्वी हैं ॥ ८ ॥ उत्तम कर्म वाले त्वष्टा ने सहस्र धारों वाले वज्र को बनाया, उसे इन्द्र ने वीर-कर्मों के लिए धारण किया। उसी से वृत्र को मारकर जलों को नीचे गिराया ॥ ९ ॥ अपने बल से मरुतों ने भूमि पर स्थित जल को ऊपर की ओर प्रेरित किया और दृढ़ मेघों का भेदन कर शब्दवान हुए तथा कल्याणकारी सोम के बल से उन्होंने अत्युत्तम कर्मों को किया ॥ १० ॥ मरुतों ने जलाशय (मेघ) को तिर्छा करके उड़ाया और प्यासे गौतम के लिए झरनों को सींचा। वे रक्षा के लिए गये और ऋषि को संतुष्ट किया ॥ ११ ॥ हे मरुतो! स्तोता और हविदाता को तुम जो इच्छित से तिगुना सुख देते हो, वह हमको दो। हे वीरो! उत्तम संतान से युक्त धनों को हमें धारण कराओ ॥ १२ ॥ [१०]

८६ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणः। देवता—मरुत। छन्द—गायत्री।)

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः ॥ १
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मरुतः शृणुता हवम् ॥ २
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत। स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु। उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि।
सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥ ५ । ११

हे महापुरुषो! तुम जिसके घर में सोम-पान करते हो वह पुरुष निर्वांत रक्षित होता है ॥ १ ॥ हे यज्ञ को पूर्ण करने वाले मरुद्‌गण! हमारे यज्ञ में स्तुतियों को ग्रहण करो ॥ २ ॥ हे मरुतो! जिस यजमान के ऋत्विज को तुमने ऋषि बनाया, वह यजमान अधिक गौओं वाला होता

है ॥ ३ ॥ यज्ञों में जो मरुतों के लिए कुशा पर निचोड़ा हुआ सोम रखता है, उसके घर में प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों का गान होता है ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण इस श्रेष्ठ यजमान की प्रार्थना को सुनें। मैं स्तोता भी उनसे अन्न प्राप्त करूँ ॥ ५ ॥ [११]

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६
सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७
शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥ ८
यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना । विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० । १२

हे मरुद्गण ! तुम्हारे रक्षण-सामर्थ्यों से युक्त हुए हम बहुत समय से हवि देते रहे हैं ॥ ६ ॥ हे उत्तम प्रकार से पूज्य मरुतो ! जिसे तुम अन्न से भाग्यशाली बनाओ वह तुम्हारा उपासक हो ॥ ७ ॥ हे सत्य बल वाले मरुतो ! यज्ञ के परिश्रम से थके हुए स्तोता की इच्छा पूर्ण कर उसके अभीष्ट को प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे सत्य बल से युक्त मरुतो ! तुम अपनी महत्ता से, दैत्यों को मारने वाले प्रसिद्ध बल को प्रकट करो ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! अन्धकार को छिपाओ, राक्षसों को भगाकर प्रकाश करो। तुमसे ज्ञान की याचना करते हैं ॥ १० ॥ [१२]

८७ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणपुत्रः । देवता—मरुतः । छन्द—गायत्री)

प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३

...हे स्वभ्रष्टपदस्वो युवा गणो या ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
...त सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४
...तुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
...दीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५
...श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
...ते वाशीमंत इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ । १३

महान्, बली, वक्ता, अपतित, अभय, द्रुतगामी, प्रिय मरुद्गण...
...स्वल्प तारों से सजे हुए इस प्रकार दिखाई देते हैं, जैसे प्रातःकालीन उषः...
...सुन्दर दिखाई देती है ॥ १ ॥ हे मरुतो ! तुमने आकाश के निचले भागों में
...मेघ को अवस्थित किया है । तुम्हारे रथ में बूँद बरसती है । तुम उपासक को
...मधुर जल से सींचो ॥ २ ॥ मरुतों के युद्ध में जाने पर पृथिवी भय से काँपती
...है । वे खेलने वाले, गर्जनशील, चमकते आयुधों से युक्त मरुत, विजय के
...निमित्त पूजे जाते हैं ॥ ३ ॥ स्वचालित, चित्र-विचित्र अश्व वाले मरुत बलों
...से युक्त हैं । वे सत्य रूप, पापियों को जानने वाले तथा यज्ञ की रक्षा करते
...वाले हैं ॥ ४ ॥ मरुतों की जन्म-कथा हमने पूर्वजों से सुनी । हमारी जिह्वा
...सोम को देखकर अधिक स्तुति करती है । स्तुति करते हुए मरुत् जब युद्ध...
...इन्द्र के सहायक हुए, तब उन्होंने यज्ञ-योग्य नामों को धारण किया ॥ ५ ॥
...उन सुशोभित मरुतों ने स्तोताओं के निमित्त वर्षा करने की इच्छा की...
...वेग से चलते हुए अपने प्रिय स्थान को पाया ॥ ६ ॥ [१३]

८८ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणपुत्रः । देवता—मरुत । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्...

आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशंगैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २
...तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवंत ऊर्ध्वा...

ुप्मभ्यं क ं म तः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम ॥ ३
हानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४
तत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
श्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५
ुषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
स्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ । १४

हे मरुद्गण ! तुम अत्यन्त दीप्ति, श्रेष्ठ गति, आयुधों से युक्त हुए, उड़ने वाले अश्वों को रथ में जोतकर आओ। तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है। अधिक अन्नों के साथ हमको प्राप्त होओ ॥ १ ॥ वे विजय की इच्छा से लाल-पीले रङ्ग के घोड़ों से जोते जाते हैं, उनका रथ सोने के वर्ण का है। वे वज्रयुक्त हैं। उस रथ के पहिये की लीक से पृथिवी को उखाड़ते हैं ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! तुम शस्त्रों से सुशोभित हो, यज्ञों को धूपों के समान ऊपर उठाओ। यजमान तुम्हें आकर्षित करने को सोम कूटने के पाषाण में शब्द करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तुति की इच्छा वालो ! तुम्हारे शुभ दिन लौट आये हैं। स्तुति करते हुए गौतमों ने, पीने के लिए, मेघ रूप कूप को यज्ञ-कर्म द्वारा ऊपर की ओर प्रेरित किया है ॥ ४ ॥ हे मरुतो ! इस प्रसिद्ध स्तोत्र को हमने पहले नहीं जाना, जिसे गौतम ऋषि ने तुम्हारे लिए उच्चारण किया ॥ ५ ॥ हे मरुतो ! मेरी जिह्वा ऋषियों की वाणी का अनुसरण कर तेरी स्तुति करती है। यह स्तुति सहज स्वभाव से ही की जा रही है ॥ ६ ॥   [१४]

देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३
तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ । १५

अमर, अपराजित, वृद्धियुक्त, कल्याणकारी संकल्पों को हम प्राप्त करें जिससे विश्वेदेवता हमारी वृद्धि करते हुए रक्षक हों ॥ १ ॥ देवताओं का ध्यान और दान हमारी ओर प्रेरित हों। हम उनके मित्र बनने का यत्न करें। वे हमारी आयु-वृद्धि करें ॥ २ ॥ उन भग, मित्र, अदिति, दक्ष, अर्यमा, वरुण, चन्द्र, अश्विनीकुमारों का हम प्राचीन स्तुतियों से आह्वान करते हैं। वे और सौभाग्य देने वाली सरस्वती हमको सुख दें ॥ ३ ॥ वायु, हमको सुख देने वाली औषधि प्राप्त करावें। माता पृथ्वी, पिता आकाश और सोम निष्पन्न करने वाले पाषाण वह औषधि लावें। हे अश्विदेवो! तुम ऊँचे पद वाले हो, हमारी प्रार्थना सुनो ॥ ४ स्थावर जङ्गम के पालनकर्त्ता, बुद्धि-प्रेरक विश्वेदेवों को हम रक्षार्थ बुलाते हैं, जिससे अहिंसित पूषा हमारे धन के बढ़ाने वाले और रक्षक हों ॥ ५ ॥   [१५]

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८
शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० । १

यशस्वी इन्द्र कल्याणकारी हों। धनयुक्त पूषा भी मङ्गल करें जिनके रथ के पहिये की गति कोई रोक नहीं सकता ऐसे अश्व (सूर्य) और बृहस्पति हमारा कल्याण करें ॥ ६ ॥ चित्र-विचित्र अश्वों से युक्त सुन्दर गति से यज्ञों को प्राप्त होने वाले मरुद्गण, सूर्य के समान तेजस्वी मनु और सब देवगण अपने रक्षण सामर्थ्यों सहित यहाँ पधारें ॥ ७ ॥ हे पूज्य देवगण हम स्तोता कल्याणप्रद वाणी सुनें। मङ्गल-कार्यों को नेत्रों से देखें। पुष्ट शरीरों से देवताओं द्वारा नियत की गई पूर्ण आयु का उपभोग करें ॥ ८ ॥ हे देवताओं ! जब हमको बुढ़ापा देते हो तब लगभग सौ वर्ष होते हैं। उस समय हमारे पुत्र भी पिता बन जाते हैं। तुम हमको अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त न कराओ ॥ ९ ॥ आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता सभी जातियाँ अथवा जो उत्पन्न हुआ है और होगा वह सभी अदिति रूप है ॥ १० ॥ [१६]

९० सूक्त

(ऋषि-गोतमो राहूगणपुत्रः । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-गायत्री, त्रिष्टुप्)

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥
वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ॥
उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेवयावः ।
कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥ ५ । १७

वरुण, मित्र एवं देवताओं के साथ रमे हुए अर्यमा हमको सरल मार्ग प्राप्त करावें ॥ १ ॥ वे धन का विस्तार कर किसी की महानता से न दब कर नियमों में दृढ़ रहते हैं ॥ २ ॥ वे अमरत्व प्राप्त देवता हमारे शत्रुओं को नष्ट करें और हम मरणशील मनुष्यों के मनुष्यों के आश्रयदाता हों ॥ ३ ॥ इन्

मरुद्गण, पूषा, भग ये स्तुत्य देवगण हमको कल्याण मार्ग पर चलावें ॥ ४ ॥
पूषा, हे उत्तम मार्ग वाले विष्णो ! तुम हमको ऐसे कर्म की ओर प्रेरित
करो जिससे हम गौएँ प्राप्त कर सकें। तुम हमारे लिए कल्याणकारी
बनो ॥ ५ ॥ [१७]

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥६
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ८
शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ । १८

यज्ञशील के लिए वायु, नदियाँ तथा ओषधियां मधुर रस वर्षक होती
हैं ॥ ६ ॥ रात्रि और दिवस माधुर्यमय हों। पृथिवी और अन्तरिक्ष तथा
हमारे पिता (आकाश) मधुर रस देने वाले हों ॥ ७ ॥ वनस्पतियाँ मधुर
हों, सूर्य मधुर-रस को वर्षा करें, गौएँ हमको मधुर दूध दें ॥ ८ ॥ मित्र
वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति और विस्तृत पैर रखने वाले विष्णु हमारे लि
साक्षात् सुख के स्वरूप हों ॥ ९ ॥ [१८

९१ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणपुत्रः। देवता—सोम। छन्द—पंक्ति प्रभृति

त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ २
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्या या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ । १९

हे सोम ! बुद्धि से तुमको हम जान सकें । तुम हमको सुन्दर मार्ग बताते हो ! तुम्हारे नेतृत्व में हमारे पितर देवताओं से रमणीय सुख को प्राप्त करने में समर्थ हुए ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम उत्तम प्रज्ञा वाले, सभी धनों से युक्त, मन की शक्ति द्वारा चतुर हुए । तुम मनुष्यों को उत्तम सीख देने वाले महिमा से पुरुषार्थयुक्त तथा तेजस्वी हुए हो ॥ २ ॥ हे सोम ! वरुण के सभी नियम तुममें निहित हैं । तुम अत्यन्त यशस्वी हो । तुम पवित्र, मित्र के समान प्रिय और और अर्यमा के समान वृद्धि कारण हो ॥ ३ ॥ हे राजा सोम ! तुम्हारे जो तेज आकाश, पृथिवी, पर्वतों, औषधियों और जलों में हैं, उनके सहित, क्रोध रहित मुद्रा में, प्रसन्नता पूर्वक हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥ ४ ॥ हे सोम ! तुम उत्तम पुरुषों के पालक, वृत्र नाशक एवं उत्तम बल के साक्षात् रूप हो ॥ ५ ॥ [१९]

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७
त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥८
सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० । २०

हे सोम ! प्रिय स्तोत्रों से युक्त वन-राज ! तुम हमारे जीवन की याचना करो, जिससे हम मृत्यु को प्राप्त न हों ॥ ६ ॥ हे सोम ! यज्ञाभिलाषी युवक तथा वृद्धों को ऐश्वर्य और जीवन के निमित्त आप शक्ति धारक हो ७ ॥ हे सोम ! पापी जनों से हमारी सदा रक्षा करो । तुम्हारे मित्र कभी दुःख न उठावें ॥ ८ ॥ हे सोम ! हविदाता को सुखी करने वाले अपने रक्षा-साधनों से तुम हमारे रक्षक हो ॥ ९ ॥ हे सोम ! इस यज्ञ में

मारी इन स्तुतियों को ग्रहण कर हमारी वृद्धि के निमित्त
धारो ॥ १० ॥ [२०]

सोमं गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः सुमृळीको न आ विश ॥ ११
गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥ १२
सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १३
यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥ १४
उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ । २१

हे सोम ! स्तुति वचनों के ज्ञाता हम तुम्हें स्तुतियों से सम्पन्न करते
हैं । तुम कृपापूर्वक हमारे शरीरों में प्रविष्ट होओ ॥ ११ ॥ हे सोम ! तुम
हमारे धन की वृद्धि करने वाले, रोगनाशक, पुष्टिदायक और उत्तम मित्र
होओ ॥ १२ ॥ हे सोम ! गौओं के घासों के समूह में और मनुष्यों
घर में रमण करने के समान, तुम हमारे हृदयों में रमण करो ॥ १२ ॥
सोम ! जो मनुष्य तुम्हारी मित्रता का इच्छुक है तुम मेधावी और शक्ति
सदा उसके साथी रहते हो ॥ १४ ॥ हे सोम ! हमको अपयश से बचा
पाप से हमारी रक्षा करो, तुम हमारे लिए सुखकारी
होओ ॥ १५ ॥ [२

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ।

आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजा सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञ
... वीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥

ोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति।
ादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० । २२

हे सोम ! तुम वृद्धि को प्राप्त होओ। तुम वीर्यवान होओ। युद्ध-काल
पस्थित होने पर हमारे सहायक बनो ॥ १६ ॥ हे अत्यन्त हर्षित करने वाले
ोम ! तुम सुन्दर यश रूप रश्मियों से तेजवान् बनो। तुम हमारे मित्र रह
र सुबुद्धि की ओर प्रेरित करते रहो ॥ १७ ॥ हे सोम ! तुम शत्रुओं को वश
में करने वाले हो। तुमको अन्न, बल और वीर्य की प्राप्ति हो। अमरत्व की
इच्छा में बढ़ते हुए आकाश के समान उत्तम यश तुम्हें प्राप्त हो ॥ १८ ॥ हे
सोम ! तुम्हारे जिन तेजों से यजमान हवि द्वारा यज्ञ करते हैं, वे सब तेज
हमारे यज्ञ के सब ओर विद्यमान हों। तुम धन की वृद्धि करने वाले, पाप से
उबारने वाले, वीरतायुक्त, संतानों के रक्षक हमारे घरों में निवास करो ॥ १६
गौ, अश्व के देने वाले तथा कर्मवान्, गृह-कार्य-कुशल, यज्ञाधिकारी, पितरों का
यश दिलाने वाले पुत्र के दाता सोम को हवि देनी चाहिए ॥ २० ॥ [२२]

अषाळहं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ । २३

हे सोम ! हम युद्धों में प्रबल, पालक, प्रकाशदाता, जलों के पोषक,
शक्ति-रक्षक, स्तोत्ररूप, उत्तम वास वाले, यशस्वी और अजेय होते हुए तुम्हारे
बल में प्रसन्न रहें ॥ २१ ॥ हे सोम ! तुमने औषध, जल और गौओं को
उत्पन्न किया, अन्तरिक्ष को चारों ओर फैलाकर विशाल किया तथा अन्धकार
को दूर कर दिया ॥ २२ ॥ हे शक्तिशाली सोम ! तुम दिव्य हृदय वाले युद्ध
में हमारे लिए धन-भाग जीतकर लाओ। इस कार्य में तुम्हें कोई रोक न
सके। तुम बल के स्वामी हो, युद्ध में दोनों पक्षों को समझ लो कि कौन मित्र
है और कौन शत्रु है ॥ २३ ॥

९२ सूक्त

(–गोतमो राहूगणपुत्रः। देवता–उषा। छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥ १
पप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत।
क्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः॥ २
र्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते॥ ३
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्यु षा आवर्तमः॥
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत्॥ ५। २४

उषाएं अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में प्रकाश को फैलाती हुई संकेत करती हैं। यह अरुण वर्ण की गौ माताएं शस्त्रों से सजे हुए वीरों के समान आगे बढ़ रही हैं॥ १॥ अरुण उषा उदय हो गई। उसने शुभ्र गौओं (रश्मियों) को रथ में जोड़ा है। पूर्व के समान स्थानों को स्पष्ट करती हुई वह चमकीले प्रकाश को सेवन करती हैं॥ २॥ सोम निष्पन्नकर्ता उत्तम कर्मवान् तथा दान-शील यजमान को दूर से आकर भी उषाएं सब धनों को पहुँचाती हुई कार्य-व्यस्त महिलाओं के समान सुशोभित होती हैं॥ ३॥ उषा नर्त्तकी के समा विविध रूपों को धारण करती तथा गौ के समान स्तन प्रकट कर देती है। व समस्त लोकों के लिए प्रकाश से भरती और अन्धकार मिटाती है॥ ४ उषा की दमक सर्वत्र फैल रही है, जिसने विशालकाय अन्धकार को किया। आकाश की पुत्री उषा अद्भुत प्रकाश से युक्त हुई॥ ५॥ [२४]

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः॥ ६
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।

प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्रां उप मासि वाजान् ॥ ७
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९
पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० । २५

हम उस अन्धकार से निकल गये । उषा ने स्थानों को स्पष्ट कर दिया । वह दमकती हुई स्वच्छन्द भाव से हँस रही है । वह हर्षित हुई सुन्दर मुख वाली स्त्री के समान शोभित है ॥ ६ ॥ प्रिय सत्य वाणी की ओर प्रेरित करने वाली, दमकती हुई आकाश-पुत्री उषा गौतमों द्वारा स्तुत्य है । हे उषे ! तुम हमको पुत्र, पौत्र और घोड़ों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे उषे ! तू सौभाग्यवती है । मुझे सुन्दर पुत्रों, सेवकों, अश्वों से युक्त उस यश-पूर्ण धन को प्राप्त कराओ, जिसे तू अपने बल से और कर्म से प्रेरित करती है ॥ ८ ॥ सब लोकों को देखती हुई यह देवी पश्चिम की ओर मुख करके चमकती और सब जीवों को गति देती हुई चैतन्य करती है । यह चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है ॥ ९ ॥ पुनः-पुनः प्रकट होती हुई और ... रूप से सब ओर सुशोभित हुई यह प्राचीन उषा मरणशील जीवों की आयु क्षीण करने वाली है, जैसे व्याध-स्त्रियाँ पक्षियों को मारती हुई उनको कम करती हैं ॥ १० ॥ [२५]

व्यूर्ण्वती दिवो अन्तां अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।

९२ सूक्त

(ऋषि–गोतमो राहूगणपुत्रः। देवता–उषा । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति ।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्यु षा आवर्तमः ॥ ४
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ । २४

उषाऐं अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में प्रकाश को फैलाती हुई संकेत करती हैं। यह अरुण वर्ण की गौ माताऐं शस्त्रों से सजे हुए वीरों के समान आगे बढ़ रही हैं ॥ १ ॥ अरुण उषा उदय हो गई। उसने शुभ्र गौओं (रश्मियों) को रथ में जोड़ा है। पूर्व के समान स्थानों को स्पष्ट करती हुई वह चमकीले प्रकाश को सेवन करती हैं ॥ २ ॥ सोम निष्पन्नकर्ता उत्तम कर्मवान् तथा दानशील यजमान को दूर से आकर भी उषाऐं सब धनों को पहुँचाती हुई कार्य व्यस्त महिलाओं के समान सुशोभित होती हैं ॥ ३ ॥ उषा नर्त्तकी के समान विविध रूपों को धारण करती तथा गौ के समान स्तन प्रकट कर देती है। वह समस्त लोकों के लिए प्रकाश से भरती और अन्धकार मिटाती है ॥ ४ ॥ उषा की दमक सर्वत्र फैल रही है, जिसने विशालकाय अन्धकार को दूर किया। आकाश की पुत्री उषा अद्भुत प्रकाश से युक्त हुई ॥ ५ ॥ [२४]

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६
भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।

प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्रां उप मासि वाजान् ॥ ७
उपस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९
पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० । २५

हम उस अन्धकार से निकल गये। उषा ने स्थानों को स्पष्ट कर [दि]या। वह दमकती हुई स्वच्छन्द भाव से हँस रही है। वह हर्षित हुई सुन्दर [मु]ख वाली श्री के समान शोभित है ॥ ६ ॥ प्रिय सत्य वाणी की ओर प्रेरित [क]रने वाली, दमकती हुई आकाश-पुत्री उषा गौतमों द्वारा स्तुत्य है। हे उषे! [तु]म हमको पुत्र, पौत्र और घोड़ों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे उषे! तू सौभाग्यवती है। मुझे सुन्दर पुत्रों, सेवकों, अश्वों से युक्त उस यश-पूर्ण धन को प्राप्त कराओ, जिसे तू अपने बल से और कर्म से प्रेरित करती है ॥ ८ ॥ सब लोकों को देखती हुई यह देवी पश्चिम की ओर मुख करके चमकती और सब जीवों को गति देती हुई चैतन्य करती है। यह चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है ॥ ९ ॥ पुनः-पुनः प्रकट होती हुई और समान रूप से सब ओर सुशोभित हुई यह प्राचीन उषा मरणशील जीवों की [आय]ु क्षीण करने वाली है, जैसे व्याध-स्त्रियाँ पक्षियों को मारती हुई उनकी [सं]ख्या कम करती हैं ॥ १० ॥ [२५]

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११
पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
प्रमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १३

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४
युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ । २६

वह स्त्री आकाश की सीमाओं को प्रकट करने वाली है। वह अपनी बहिन (रात्रि) को दूर करती हुई छिपाती हैं। वह मनुष्यों से युगों का ह्रास करने वाली अपने प्रेमी के दर्शन से दमकती है ॥ ११ ॥ उज्ज्वल वर्ण वाली सौभाग्यशालिनी उषा पशुओं के समान वृद्धि को प्राप्त हुई, नदियों के समान फैलती है। वह देवताओं के नियमों की अवहेलना नहीं करती और सूर्य की किरणों सहित दीखती है ॥ १२ ॥ हे उषे! तू अत्यन्त अन्न वाली है। उस अद्भुत अन्न को हमारे लिए ला, जिससे हम अपने पुत्रादि का पोषण कर सकें ॥ १३ ॥ हे गौ, अश्व, प्रकाश, सत्यवाणी से युक्त उषे! तू हमारे लिए धन वाली होकर आ ॥ १४ ॥ हे अत्यन्त अन्न वाली उषे! तुम अरुण घोड़ों को जोड़कर हमारे लिए सभी सौभाग्यों को लाने वाली बनो ॥ १५ ॥ [२६]

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६
यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ । २७

हे विकराल कर्म वाले अश्विदेवो! तुम एक मन वाले, गौ-घोड़ों युक्त अपने रथ को हमारे घर के सामने रोको ॥ १६ ॥ हे अश्विनीकुमारो तुमने आकाश से स्तोत्रों को लाकर मनुष्यों को प्रकाश दिया है। तुम हम निमित्त भी बल लाने वाले बनो ॥ १७ ॥ स्वर्णिम मार्ग वाले, सुख दाता विकरालकर्मा अश्विनीकुमारों को उषा काल में चैतन्य हुए उनके अश्व सोम पानार्थ यहाँ लावें ॥ १८ ॥ [२७]

९३ सूक्त

(ऋषि—गोतमो राहूगणपुत्रः । देवता—अग्नीषोमौ । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक, पंक्ति, त्रिष्टुप्, गायत्री)

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः १
अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २
अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३
अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूंरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ । २८

हे पुरुषार्थयुक्त अग्नि और सोम ! तुम दोनों मेरे आह्वान को सुनो । मेरे सुन्दर वचनों से हर्षित होओ । मुझ हविदाता के लिए सुख स्वरूप बनो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हे सोम ! तुम दोनों के प्रति निवेदन करता हूँ । तुम उत्तम पुरुषार्थ धारण कर सुन्दर अश्वों और गौओं की वृद्धि करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हे सोम ! जो तुमको घृत युक्त हवि दे, वह सन्तानवान, वीर्यवान् और पूर्ण आयु को प्राप्त करे ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हे सोम ! तुम दोनों बल में प्रसिद्ध हो । तुमने "पणि" के अन्न रूप गौओं का हरण किया, "बृसय" की सन्तान हनन किया और असंख्यों के लिए एक ही प्रकाश (सूर्य) को प्राप्त किया ॥ ४ ॥ हे सोम ! हे अग्ने ! तुम दोनों समान कर्म वाले हो । तुमने आकाश में ज्योतियाँ स्थापित कीं तुम दोनों ने हिंसक वृत्र से नदियों के जल को मुक्त कराया ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! हे सोम ! तुममें से एक को मातरिश्वा

आकाश से लाये, दूसरे को श्येन पक्षी पर्वत के ऊपर से लाया। तुम स्तोत्रों से बढ़ने वालों ने लोक को यज्ञ के लिए विस्तृत किया ॥ ६ ॥ [२८]

अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८
अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः । सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९
अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ १०
अग्नीषोमविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् ।
आ यातमुप नः सचा ॥ ११
अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १२ । २९

हे वीर्यवन्त अग्नि, सोम ! तुम हमारी हवियों को ग्रहण करके प्रसन्न होओ । तुम उत्तम सुखयुक्त रक्षा करो । तुम यजमान के रोगों को दूर कर शांति दो ॥ ७ ॥ हे अग्नि, सोम ! जो देवताओं में मन लगाने वाला घृत युक्त हवि से तुमको पूजता है, उसके व्रत की रक्षा करो । उसे पाप से बचाओ और उसके कुटुम्बियों को शरणागत करो ॥ ८ ॥ हे अग्नि, सोम ! एकत्रित ऐश्वर्य वाले तुम दोनों एक साथ बुलाये जाते हो । तुम दोनों देवत्व से युक्त हो । हमारी स्तुतियों को ग्रहण करो ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! हे सोम ! जो तुम दोनों के लिए घृतयुक्त हवि दे, उसके लिए तुम जाज्वल्यमान होओ ॥ १० ॥ हे अग्नि ! हे सोम ! तुम दोनों हमारी हवियाँ ग्रहण करो । हमको प्राप्त होओ ॥ ११ ॥ हे अग्नि, सोम ! तुम दोनों हमारे अश्वों को पुष्ट करो । हवि उत्पन्न करने वाली हमारी गौएं वृद्धि को प्राप्त हों । तुम दोनों हम धनवानों को शक्ति दो । हमारे यज्ञ को सुखकारी बनाओ ॥ १२ ॥ [२९]

९४ सूक्त [पंद्रहवाँ अनुवाक]

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्नि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव । ॥ १
यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ । ३०

हम धनोत्पादक पूज्य अग्निदेव के लिए रथ के समान बुद्धि से इस स्तोत्र को महत्व दें। हमारी सुमति कल्याणकारिणी हो। हे अग्ने ! तुम्हारे मित्र होकर हम कभी सन्तापित न हों ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जिसके लिए तुम देव-पूजन करते हो, उसके अभीष्ट पूर्ण होते हैं। वह किसी का आश्रय नहीं खोजता। उत्तम वीर्ययुक्त हुआ वह बढ़ता है तथा दरिद्र नहीं रहता। हे अग्ने ! तुम्हारी मित्रता होने पर फिर हम दुखी न रहें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हें प्रदीप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त करें। तुम हमारे कार्यों को सिद्ध करो। तुममें दी गई हवियों को देवता प्राप्त करते हैं। हम आदित्यों की कामना करते हैं, उन्हें यहाँ लाओ ॥ तुम्हारी मित्रता प्राप्त कर हम दुःखी न हों ॥ ३ हे अग्ने ! तुम्हें चैतन्य करने के लिए हम ईंधन एकत्रित करें, हवि-सम्पादन करें, तुम हमको कर्मवान् बनाकर उच्च जीवन की ओर प्रेरित करो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके हम कभी दुःखी न हों ॥ ४ ॥ दुपाये और चौपाये रूप प्रजा के रक्षक इस अग्नि के दूत रात्रि में विचरण करते हैं। हे अग्ने ! तुम

उषा का आभास देने वाले महान हो। हम तुम्हारे मित्र होने पर पीड़ित न हों॥ ५॥ [३०]

त्वमध्वर्यु रुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥६
यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तलिदिवाति रोचसे।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ७
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ८
वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥ ९
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥१०। ३१

हे दृढ़ विचार वाले अग्निदेव! तुम अध्वर्यु, प्राचीन होता, प्रशास्ता, पोता एवं जन्मजात पुरोहित हो। ऋत्विजों के सब, कर्मों के जानने वाले तुम कर्मों को पुष्ट करते हो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके फिर हम पीड़ित न हों॥ ६॥ हे सुन्दर मुख वाले अग्ने! तुम सब ओर से समान हो। तुम दूर रहो तो भी पास ही दिखाई पड़ते हो। तुम रात्रि के अन्धकार को चीर कर देखने वाले हो। हम तुम्हारे मित्र होकर कभी दुःखी न हों॥ ७॥ हे देवगण! सोम निष्पन्नकर्ता का रथ अग्रणि हो। हमारे स्तोत्र से पाप-बुद्धि वाले हार जावें। तुम हमारे वचनों से बढ़ो। हे अग्ने! तुम्हारे मित्र होकर हम कभी दुःख न पावें॥ ८॥ हे अग्ने! जो भक्षक दैत्य निकट या दूर हों उन्हें तथा अपशब्दवक्ता पापियों को शस्त्रों से मारो और स्तोता के यज्ञ में सुखमय मार्ग बनाओ। हम तुम्हारी मित्रता पाकर पीड़ित न हों॥ ९॥ हे अग्ने! तुम वायु-वेग वाले रोहित नामक अश्वों को रथ में जोड़कर बैल के समान शब्द करते हो और धूम ध्वज वाले रथ से वृक्षों की ओर बढ़ते हो। हम तुम्हारे मित्र होकर पीड़ित न हों॥ १०॥ [३१]

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ११
अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१२
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३
तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १५
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१६।३

हे अग्ने ! जब तुम्हारी लपटें जङ्गल में फैलती हैं, तब पक्षी भी डरते हैं। उस समय तुम्हारा रथ निर्भय विचरता है। तुम्हारे मित्र होकर हम कभी पीड़ित न हों ॥ ११ ॥ यह अग्नि मित्र और वरुण को धारण करने में समर्थ हैं। नीचे उतरते हुए मरुतों का क्रोध भयानक है। हे अग्ने ! कृपा करो इनके मन को हमारे लिए कल्याणकारी बनाओ। तुम्हारे मित्र हम दुःखी न रहें ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के मित्र हो। धन वाले तुम यज्ञ में शोभा पाते हो। हम तुम्हारे आश्रय में रहें और कभी पीड़ित न हों ॥ १३ हे अग्ने ! तुम अपनी कृपा द्वारा घर में प्रदीप्त होते और सोम द्वारा हवि-ग्रहण करते हुए सुखमय शब्द करते हो। तुम हविदाता को रत्न धन देने वाले हो। हम तुम्हारी मित्रता से सुखी हों ॥ १४ ॥ हे सुन्दर ऐश्वर्य रूप, अनन्त बलयुक्त अग्ने ! तुम जिसकी पाप-कर्मों से रक्षा करते हो, जिसे प्रजायुक्त धन देकर कल्याण करते हो, वे हम हों ॥ १५ ॥ हे अग्निदेव !

समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को सम्मा
दें ॥ १६ ॥ [३२]

॥ षष्टम अध्याय समाप्तम् ॥

९५ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमन्तन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।
वह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ । १

उत्तम उद्देश्य वाली दो भिन्न रूपिणी स्त्रियाँ गमनशील हैं। दोनों एक दूसरे के बालकों का पोषण करती हैं। एक से सूर्य अन्न प्राप्त करता और दूसरी से अग्नि सुन्दर दीप्ति से युक्त होता है ॥ १ ॥ त्वष्टा के इस खेलने शिशु को निरालस्य दसों युवतियां (दस उङ्गलियाँ) प्रकट करती हैं। दण मुख वाले, लोकों में यशवान्, दीप्तिमान्, इसे सब ओर लेजाया जाता है ॥ २ ॥ यह अग्नि तीन जन्म वाला है—एक समुद्र में, एक आकाश में और एक अन्तरिक्ष में। सूर्य रूप अग्नि ने ऋतुओं का विभाग कर पृथिवी के प्राणियों के निमित्त पूर्व दिशा के पश्चात् क्रमपूर्वक दिशाओं को बनाया ॥ ३ छिपे हुए इस अग्नि को दाता कौन है ? जो पुत्र होकर भी हव्यान्न द्वारा अपनी माताओं को जन्म देता है तथा जो अनेक जलों का गर्भ रूप, समुद्र से प्रकट होता है।' ४ ॥ जलोत्पन्न अग्नि, यश के साथ प्रकाशित हुए बढ़ते हैं।

दोनों काष्ठ (या धरणियाँ) भयभीत हुईं, इस सिंह की पीछे से सेवा करते हैं ॥ ५ ॥ [1]

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६
उद्यंयमीति सवितेव बाहू सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९
धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १०
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ । ५

सुन्दर स्त्रियों के समान यह आकाश और पृथिवी, उस अग्नि की सेवा करते हैं। वह अग्नि अत्यन्त बल से युक्त हैं और ऋत्विज दक्षिण की ओर खड़े होकर हवियों से इनकी सेवा करते हैं ॥ ६ ॥ यह सूर्य की किरणों के समान अपनी भुजाओं को फैलाते हैं। वे विकराल रूप वाले दिन-रात्रि की सीमाओं को पहुँचते हुए सब वस्तुओं से गुण खींचते हैं और जल रूप माताओं के लिए रस (वर्षा) छोड़ते हैं ॥ ७ ॥ मेधावी अग्नि जलों से मिलकर उज्ज्वल रूप धारण करते हैं। ये अपने कर्म से अन्तरिक्ष को तेजस्वी बनाते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने! तुम्हारा अत्यन्त प्रकाशयुक्त तेज अन्तरिक्ष में फैल जाता है, तुम अपने उस अक्षय तेज से हमारी रक्षा करो ॥ ९ ॥ अग्नि मरुभूमि में भी जल-प्रवाह को प्रेरित करने में समर्थ हैं। [illegible] लहरों से युक्त करते हैं। सब अन्नों के धारक और मातृ-[illegible] रमण करने वाले हैं ॥ १० ॥ हे पावक! तुम ईंधन द्वारा वृ[illegible]

समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को सम्मान दें ॥ १६ ॥ [२२]

॥ षष्ठम अध्याय समाप्तम् ॥

९५ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।
वह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४
आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ । १

उत्तम उद्देश्य वाली दो भिन्न रूपिणी स्त्रियाँ गमनशील हैं। दोनों एक दूसरे के बालकों का पोषण करती है। एक से सूर्य अन्न प्राप्त करता और दूसरी से अग्नि सुन्दर दीप्ति से युक्त होता है ॥ १ ॥ त्वष्टा के इस खेलने ... शिशु को निरालस्य दसों युवतियां (दस उङ्गलियाँ) प्रकट करती हैं। ... मुख वाले, लोकों में यशवान्, दीप्तिमान्, इसे सब ओर लेजाया जाता है ॥ २ ॥ यह अग्नि तीन जन्म वाला है—एक समुद्र में, एक आकाश में और एक अन्तरिक्ष में। सूर्य रूप अग्नि ने ऋतुओं का विभाग कर पृथिवी के प्राणियों के निमित्त पूर्व दिशा के पश्चात् क्रमपूर्वक दिशाओं को बनाया ॥ ३ छिपे हुए इस अग्नि को दाता कौन है ? जो पुत्र होकर भी हव्यान्न द्वारा अपनी माताओं को जन्म देता है तथा जो अनेक जलों का गर्भ रूप, समुद्र से प्रकट होता है ॥ ४ ॥ जलोत्पन्न अग्नि, यश के साथ प्रकाशित हुए बढ़ते हैं। इनके उत्पन्न होने पर त्वष्टा की दोनों पुत्री (अग्नि को उत्पन्न करने वाले

दोनों काष्ठ या अरणियाँ) भयभीत हुईं, इस सिंह की पीछे से सेवा करते हैं ॥ ५ ॥   [१]

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६
उद्यंयमीति सवितेव बाहू सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९
धन्वन्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १०
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ । ५

सुन्दर स्त्रियों के समान यह आकाश और पृथिवी, उस अग्नि की सेवा करते हैं। वह अग्नि अत्यन्त बल से युक्त हैं और ऋत्विज दक्षिण की ओर खड़े होकर हवियों से इनकी सेवा करते हैं ॥ ६ ॥ यह सूर्य की किरणों के समान अपनी भुजाओं को फैलाते हैं। वे विकराल रूप वाले दिन-रात्रि की सीमाओं को पहुँचते हुए सब वस्तुओं से गुण खींचते हैं और जल रूप माताओं के लिए रस (वर्षा) छोड़ते हैं ॥ ७ ॥ मेधावी अग्नि जलों से मिलकर उज्ज्वल रूप धारण करते हैं। वे अपने कर्म से अन्तरिक्ष को तेजस्वी बनाते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा अत्यन्त प्रकाशयुक्त तेज अन्तरिक्ष में फैल जाता है, तुम अपने उस अक्षय तेज से हमारी रक्षा करो ॥ ९ ॥ अग्नि मरुभूमि में भी जल-प्रवाह को प्रेरित करने में समर्थ हैं। वह पृथिवी को लहरों से युक्त करते हैं। सब अन्नों के धारक और मातृ-भूत औषधियों में रमण करने वाले हैं ॥ १० ॥ हे पावक ! तुम ईंधन द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए

धन से पूर्ण यश द्वारा प्रदीप्त होओ। हमारी स्तुतियों को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश ग्रहण करें ॥ ११ ॥ [२]

९६ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—अग्नि। त्रिष्टुप्।)

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३
स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित्।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्त विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५ । ३

शक्ति (काष्ठों के घर्षण) से प्रकट अग्नि ने पुरातन के समान सब ... को तुरन्त ग्रहण किया। धनदाता अग्नि को जलों और पृथिवी ने मित्र ...या तथा देवगण ने दूत रूप से उनको नियुक्त किया ॥ १ अग्नि ने प्राचीन स्तुति मन्त्रों से मनुष्यों की प्रजा को प्रकट किया और आकाश-अन्तरिक्ष को तेज से व्याप्त किया। उस धनदाता अग्नि को देवगण ने दूत रूप से धारण किया ॥ २ ॥ हे मनुष्यो! तुम यज्ञ को पूर्ण करने वाले, हवियों द्वारा पूज्य, अभीष्ट वाले, बल के पुत्र, पालक, धनदाता अग्नि को प्रधान रूप से पूजो। उसी धनदाता अग्नि को देवगण ने दूत-रूप से धारण किया ॥ ३ ॥ बहुतों द्वारा वरणीय, पोषक, रक्षक, आकाश-पृथिवी के उत्पत्तिकर्ता मातरिश्वा अग्नि ने स्वर्ग-पथ को प्राप्त किया। उसी धनदाता अग्नि को देवताओं ने धारण किया ॥ ४ ॥ एक दूसरे के वर्ण रूप अस्तित्व को नष्ट करती हुई उषा और

रात्रि एक शिशु (अग्नि) को पालती हैं। वह शिशु आकाश-पृथिवी के मध्य प्रदीप्त होता है। उसी को देवताओं ने धारण किया है ॥ ५ ॥ [३]

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ । ४

वह ऐश्वर्य के कारण रूप, धन-स्थान, यज्ञ के ध्वज रूप अग्नि मनुष्यों का अभीष्ट पूर्ण करने समर्थ हैं। अमरत्व के रक्षक देवगण ने इन्हीं को धारण किया है ॥ ६ ॥ अब और पहले से ही अग्नि धनों के उत्पत्ति स्थान हैं। जन्मे हुए और भविष्य में जन्म लेने वाले प्राणियों के रक्षक एवं धनदाता अग्नि को देवगण ने धारण किया ॥ ७ ॥ धनदाता अग्नि हमारे लिए कर्म योग्य धन दें। वे हमें वीरतायुक्त धन, सन्तान, अन्न आदि से पूर्ण दीर्घायु प्रदान करें ॥ ८ ॥ हे पावक! हमारे ईंधन से वृद्धि को प्राप्त, प्रचुर धन वाले हुए प्रदीप्त होओ। हमारी इस प्रार्थना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश अनुमोदित करें ॥ ९ ॥ [४]

९७ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री)

अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ १
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥ २
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥ ३
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥ ४

प्र यदग्नेः सहस्वंतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥ ५
त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥ ६
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥ ७
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ । ५

हमारे पाप भस्म हों। हे अग्ने। हमारे चारों ओर धन को प्रकाशित करो। हमारे पाप नष्ट हों ॥ १ ॥ हम सुन्दर क्षेत्र, सुन्दर मार्ग और श्रेष्ठ धन की इच्छा से यज्ञ करते हैं। हमारा पाप भस्म हो ॥ २ ॥ सबसे अधिक स्तुति करने वालों में, मैं अग्रणि होऊँ। हमारे स्तोता अग्रणि हों, हमारा पाप भस्म हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम्हारे स्तोता हम सन्तान वाले हों। हमारा पाप भस्म हो ॥ ४ ॥ अग्नि की शत्रु-विजयी प्रबल ज्वालाएं सब ओर बढ़ती हैं। हमारा पाप भस्म हो ॥ ५ ॥ हे सर्वतोमुख अग्ने! तुम सर्वत्र फैलने वाले हो। हमारा पाप जलकर नष्ट हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम हमको, नौका के समान, शत्रुओं से पार लगाओ। हमारा पाप भस्म हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने! समुद्र से पार ले जाने के समान, हिंसकों से हमको पार ले जाओ। हमारा पाप जल जावे ॥ ८ ॥ [५]

९८ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्)

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २
वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ । ६

हम वैश्वानर अग्नि की दया प्राप्त करें। वे लोकों के पालक और संसार

के देखने वाले हैं। वे सूर्य के समान हैं ॥ १ ॥ वे अग्नि आकाश, पृथिवी में पूजनीय हैं। वे सब औषधियों में व्याप्त हैं। वह बली वैश्वानर अग्नि हिंसकों से हमारी दिन रात्रि में रक्षा करें ॥ २ ॥ हे वैश्वानर अग्ने! तुम्हारे कर्म सत्य हों, हमको धनयुक्त ऐश्वर्य प्राप्त हो। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हम पर कृपा करें। [६]

९९ सूक्त

(ऋषि—कश्यपो मरीचिपुत्रः। देवता—अग्निर्जातवेदा। छन्द—त्रिष्टुप्)

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥७

हम धनोत्पादक अग्नि के लिये सोम निष्पन्न करें। शत्रुओं के धन को भस्म करें। जैसे नाव नदी को पार करा देती है वैसे ही यह अग्नि हमको दुःखों से पार करें और हमारे रक्षक हों ॥ १ ॥ [७]

१०० सूक्त

(ऋषि—ऋजाश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान, सुराधा। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्।)

स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २
दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४
स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।

भिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ । ८

वे वीर, पुरुषार्थी, आकाश-पृथिवी के स्वामी एवं जलों को प्राप्त कराने
युद्धों में आह्वान किये जाने वाले इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा
१ ॥ सूर्य के समान महान् गति वाले, शक्ति से वृत्र को मारने वाले,
न्त वीर्यवान् इन्द्र मरुतों सहित हमारे रक्षक हों ॥ २ ॥ जिसके मार्ग
काश के बलों का दोहन करते (वर्षा के रूप में) चलते हैं, वह विजय-
ल इन्द्र अपने बलों से शत्रुओं का पतन करते हुए मरुतों सहित हमारे
क्षक हों ॥ ३ ॥ वह इन्द्र अङ्गिराओं में प्रधान हुए। वीरों में श्रेष्ठ, मित्रों
मित्र, स्तोताओं में स्तोता, गायकों में गायक, इस प्रकार सभी में, श्रेष्ठ
हैं। मरुतों सहित वे हमारे रक्षक बनें ॥ ४ ॥ उस दूरस्थ चमकते हुए ने
पुत्रों के समान अपने साथी मरुतों सहित यश योग्य कर्मों को करते हुए
शत्रुओं को परास्त किया। वह इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा [८]
करें ॥ ५ ॥

स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७
म [illegible] शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्वे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
सकीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्ती मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० । ९

अभिमानियों के नाशक, युद्ध कर्म में प्रवृत्त रहने वाले, समस्त लो
के अधिकारी इन्द्र सूर्य को प्राप्त करें। वे पालक और आह्वान किये हु
सहित हमारे रक्षक हों ॥ ६ ॥ सहायक मरुतों ने इन्द्र को

ोजित किया। मनुष्यों ने अपनी कुशल के लिए उन्हें रक्षक माना। वह केले ही सब कर्मों के स्वामी हैं। इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा करें ॥ ७ द्धों में मनुष्य इन्द्र को धन और रक्षा के लिए बुलाते हैं। वह अन्धकार में ी प्रकाश करने वाले हैं। वह इन्द्र मरुतों सहित हमारे रक्षक हों ॥ ८ ॥ द इन्द्र बाँए हाथ से हिंसकों को रोकते और दाँए हाथ से यजमान की वियाँ ग्रहण करते हैं। वे स्तोता को धन देते हैं। मरुतों के साथ वे हमारे क्षक हों ॥ ९ ॥ वे अपने सहायकों सहित धन प्राप्त कराते हैं। वैरियों को क्ति से वशीभूत करने वाले वह इन्द्र मरुतों सहित हमारी रक्षा रें ॥ १० ॥ [९]

त जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
प्रपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११
त वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२
तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५।१०

यद्धुओं द्वारा आहूत इन्द्र बन्धुओं अथवा अन्य व्यक्तियों के साथ युद्ध-यात्रा करते हैं, तब वे मरुतों सहित हमारी रक्षा में तत्पर रहें ॥ ११ ॥ वे वज्रधारी इन्द्र, दैत्यों के हननकर्त्ता, विक्रान्त, पराक्रमी, यद्धुओं पर कृपा करने वाले, मार्ग-दर्शक, प्रकाशमान, सोम के समान पूज्य हैं। वे मरुतों [illegible] हमारे रक्षक हों ॥ १२ ॥ इन्द्र का चमकता हुआ वज्र घोर शब्द करता [illegible] है। उनकी स्तुतियाँ और ऐश्वर्य सेवा करते हैं। मरुतों सहित [illegible] हमारी रक्षा करने वाले हों ॥ १३ ॥ जिसका बल आकाश [illegible]

करता है। वे हमारे यज्ञ कर्म से सन्तुष्ट हों और मरुतों सहित रक्षा करें ॥ १४
जिसके बल का पार देवता या मनुष्य कोई नहीं पाते, वे अपने बल से पृथिवी और आकाश से भी महान हैं। मरुतों सहित वे हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥ [१०]

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६
एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्व प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७
दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९ । १

रोहित और श्यामा अत्यन्त सुन्दर रूप वाले घोड़े धन के निमित्त पुरुषार्थी इन्द्र के रथ को ले जाते हुये प्रसन्नता सूचक शब्द करते हैं। इन्द्र "ऋजाश्व" को धन दान करते हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र तुम्हारे निमित्त "वृषागिर" के पुत्र, "ऋजाश्व", "अम्बरीष", "सहदेव", "भयमान" और "सुराधा" इस प्रसिद्ध स्तोत्र को उच्चारण करते हैं ॥ १७ ॥ अनेकों द्वारा आहूत इन्द्र ने हिंसकों को मारकर गिरा दिया। उस उत्तम वज्र वाले ने मनुष्यों के साथ भूमि को, सूर्य को और जलों को पाया ॥ १८ ॥ इन्द्र हमारे पक्ष को सबल करें। हम सीधे मार्ग से अन्न सेवन करें। हमारी इस प्रार्थना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश सुनें ॥ १९ ॥ [११]

१०१ सूक्त

ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३
यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वतं सख्याय हवामहे ॥ ६ । १२

हे मित्रो ! इस प्रसन्न हुए इन्द्र के निमित्त अन्न युक्त स्तुतियाँ अर्पण करो। जिसने राजा "ऋजिश्वा" के साथ कृष्ण नामक दैत्य की प्रजाओं का नाश किया, हम उस वज्रधारी, वीर्यवान् इन्द्र का मरुतों सहित रक्षा के लिए आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ जिसने अपने अत्यन्त क्रोध से "व्यंस", 'शम्बर", "पप्रु" और "शुष्ण" नामक दुष्टों का नाश किया, हम उस इन्द्र को मरुतों सहित बुलाते हैं ॥ २ ॥ जिसके बल से आकाश-पृथिवी प्रेरित हैं, जिसके नियम में वरुण, सूर्य और नदियाँ स्थित हैं, उस इन्द्र को मरुद्गण सहित बुलाते हैं ॥ ३ ॥ अश्वों, गौओं के स्वामी, पूजनीय, कर्मों में स्थिर, सोम विरोधी दुष्टों के शत्रु इन्द्र को मरुद्गण सहित बुलाते हैं ॥ ४ ॥ जो गतिवान् और श्वासधारी जीवों के स्वामी हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों के भी अपहृत गौओं का उद्धार किया तथा दुष्टों का पतन किया, वे इन्द्र मरुद्गण सहित हमारे मित्र हों ॥५॥ जो वीरों द्वारा एवं कायरों द्वारा भी बुलाये जाते हैं, जो विजेताओं तथा पलायनकर्त्ताओं के द्वारा आहूत किये जाते हैं, उन इन्द्र को विद्वज्जन सम्पूर्ण लोकों का स्वामी मानते हैं । वे मरुतों सहित हमारे मित्र बनें ॥ ६ ॥ [१२]

रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इंद्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७

मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
ा यह्याध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८
न्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९
दयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
ा त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १०
रुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

प्रकाशमान इन्द्र रुद्र पुत्र मरुतों की सहायता से प्रकट होकर अपना महत्व दिखाते हैं। उन प्रसिद्ध इन्द्र का स्तुतियाँ सेवन करती हैं। वे मरुतों सहित हमारे मित्र बनें ॥ ७ ॥ हे मरुतोंयुक्त इन्द्र ! तुम ऊपर-नीचे कहीं भी रहो, वहीं से हमारे यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ। तुम सत्य धन से युक्त के लिए ही हम हवि देते हैं-॥ ८ ॥ हे शक्तिशालिन् ! तुम्हारे लिए यह सोम निष्पन्न किया है। तुम स्तोत्र द्वारा प्राप्त होते हो। तुम्हारे निमित्त हवि प्रस्तुत है। मरुतों सहित इस में कुशासन पर आनन्द करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! अपने अश्वों सहित प्रसन्न होओ। अपने जबड़े और होठों को खोलो। तुम सुन्दर ठोड़ी वाले, घोड़ों को लाओ। हम पर प्रसन्न होते हुए हवियाँ स्वीकार करो ॥ १ इन्द्र का स्तोत्र मरुतों के साथ हैं। हम इन्द्र के द्वारा अन्न प्राप्त करें। मि वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी, आकाश हमारे प्रति उ हों ॥ ११ ॥

[१२

१०२ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्।

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १
श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपु

अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २
तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ । १४

हे इन्द्र ! मैं इस अत्यन्त महान् स्तोत्र को तुम्हारे प्रति निवेदन करता हूँ। तुम्हारा मेरे ऊपर अनुग्रह इस स्तोत्र पर निर्भर है। इन्द्र के साथ देवगण इस विजयोत्सव में निष्पन्न सोम द्वारा पुष्ट हुए हैं ॥ १ ॥ इस इन्द्र के यश को सप्त नदियाँ, इसके रूप को आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष धारण करते हैं। हे इन्द्र ! हमारे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए सूर्य और चन्द्रमा विचरण करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्ययुक्त विजेता हो, तुम्हारे रथ को रण-स्थल में देखकर हम आनन्द विभोर होते हैं। उस रथ को धन-प्राप्ति के लिए हमारी ओर प्रेरित करो। तुम हमारे द्वारा बहुत बार स्तुति किये गये हो। हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ हे ऐश्वर्यशालिन् ! हम तुम्हारे सहायक रूप से लड़ते हुए सम्पत्ति को प्राप्त हों। तुम हमारे पक्ष की रक्षा करो। हम धन को सरलता से पावें और शत्रु की शक्ति को नष्ट करें ॥ ४ ॥ हे धनों के धारक इन्द्र ! यह रक्षा की याचना करने वाले मनुष्य तुम्हारा हार्दिक आह्वान करते हैं। तुम हमको सम्पत्ति प्राप्त कराने के लिए रथ पर चढ़ो। तुम्हारा स्थिर मन विजय प्राप्त कराने में पूर्ण समर्थ है ॥ ५ ॥ [१५]

गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः [illegible] ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते [illegible] ॥ ६
उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु [illegible] ।
अमात्रं त्वा धिषणा [illegible] वृत्राणि [illegible]
त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो [illegible]

अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १०
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११।१५

इन्द्र की भुजाओं में अत्यन्त बल है, वे गौओं के लिए लाभकारी हैं। इन्द्र रक्षा-साधनों से सम्पन्न, बाधा रहित, शत्रु में क्षोभ उत्पन्न करने वाले एवं बल स्वरूप है। धन की कामना से याचकगण इनका आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥ हे ऐश्वर्ययुक्त इन्द्र! तुम्हारा यश हजारों गुना फैला हुआ है। तुम अभेद्य दुर्गों को तोड़ने वाले तथा असीम बल वाले हो। तुमको वेद-वाणी प्रकाशित करती है। हे इन्द्र! शत्रुओं का नाश करो ॥ ७ ॥ हे मनुष्यों के स्वामिन्! तुम तीन लोकों में तीन रूप (सूर्य, विद्युत, अग्नि) से विद्यमान हो। तिलड़ी रस्सी के समान प्राणियों के बल रूप हो। तुम सम्पूर्ण जीवों से महान और शत्रु रहित हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम देवों में प्रमुख हो, तुम्हारा हम आह्वान करते हैं। तुम सदा विजेता रहे हो। इस स्तोता को बुद्धि देकर कार्यकुशल बनाओ। रण-क्षेत्र में अपने रथ को आगे रखो ॥ ९ हे इन्द्र! तुमने छोटे या बड़े कैसे भी युद्ध में पराजय नहीं पायी। तुमने जीते हुए धन को कभी नहीं रोका। हम स्तुति द्वारा तुमको युद्धार्थ आमन्त्रित करते हैं। तुम हमको उचित प्रेरणा दो ॥ १० ॥ हे इन्द्र हमारे पक्ष में रहो, कुटिल गति से रहित हम अन्नों का उपभोग करें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारे निवेदन पर ध्यान दें ॥ ११ ॥ [१५]

१०३ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्।)

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।

क्षमेदमन्यद्दिव्यन्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १
स धारयत्पृथिवी पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥५॥ १६

हे इन्द्र ! तुम्हारा प्रसिद्ध सूर्य रूप उत्तम बल आकाश में स्थित है। पृथिवी पर इस अग्नि रूप बल को ऋषियों ने यज्ञ रूप से धारण किया। यह दोनों बल ध्वजाओं के समान मिलते हैं ॥ १ ॥ उस इन्द्र ने पृथिवी को विस्तृत किया। वृत्र का नाश कर जलों की वर्षा की। "अहि" और "रौहिण" असुरों को विदीर्ण किया। "व्यंस" को मार डाला ॥ २ ॥ वज्रधारी वह इन्द्र शत्रु-दुर्गों को नष्ट करने के लिए आते हैं। हे इन्द्र ! दैत्यों पर वज्र डालो और आर्यों के बल और कीर्ति की वृद्धि करो ॥ ३ ॥ मनुष्यों में कीर्तन-योग्य "मघवा" नाम को धारण करते हुए इन्द्र ने साधक के शत्रुओं को मारने से प्राप्त हुए यश और बल को धारण किया ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो ! इन्द्र के प्रसिद्ध पराक्रम को देखो, उसके बल का आदर करो, उसने गौओं और घोड़ों को प्राप्त किया। औषधियों, जलों और वनों को भी प्राप्त किया ॥ ५ ॥ [१६]

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६
तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः

हम बहुकर्मा, श्रेष्ठ, पुरुषार्थी, बल वाले इन्द्र के लिए सोम निष्पन्न करें। वे लालची, अकर्मी दुष्टों के धन को छीनकर कर्मशील उपासकों में बाँटते हैं॥ ६॥ हे इन्द्र! सोते हुए वृत्र को वज्र से जगाना वास्तव में तुम्हारा परम शौर्य है। उस समय तुमको पुष्ट देखकर देवताओं ने अपनी पत्नियों सहित अत्यन्त हर्ष प्राप्त किया॥ ७॥ हे इन्द्र! जब तुमने "शुष्ण" "पिप्रु", "कुयव", "वृत्र" को मारा और "शम्बर" के गढ़ों को तोड़ा तब हमारी प्रार्थना सफल हुई। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थनाओं का अनुमोदन करें॥ ८॥

[१७]

१०४ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्।)

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥७॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥
युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४
प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात्
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः।

हे इन्द्र! हमने तुम्हारे लिए जो स्थान बनाया है, उस पर दिन को रथ से खोलकर बैठो। वे घोड़े यज्ञ का अवसर आने पर दिन रथ को चलाते हैं॥ १॥ मनुष्यो! रक्षा के निमित्त इन्द्र के सम वे दुष्कर्म करने वालों के क्रोध को नष्ट करें। मनुष्य जाति की करें॥ २॥ जैसे जल पर फेन स्वयं ही उठता है, वैसे ही अपने हैं। "कुयव" नामक असुर की स्त्रियाँ दूध से स्नान करती हैं,

जल में जाकर डूब मरें ॥ ३ ॥ आर्यों का सम्बन्ध इन्द्र से भङ्ग हो गया । व
शक्तिशाली 'कुयव' पूर्व की नदियों के पार राज्य करता था । उसकी अंजसी
कुलिशी और वीर पत्नी नामक नदियाँ जल के साथ दूध को ले जाती हैं ॥
गोष्ठ को जानने वाली गौ के समान दैत्यों ने भी हमारे निवास स्थान का मा
देख लिया है। हे इन्द्र ! हमारी अब भी रक्षा करो । जैसे कामुक धन
त्याग करता है, वैसे हमको न त्यागो ॥ ५ ॥ [१८]

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो न श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ८
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ । १९

हे इन्द्र ! हमें सूर्य और जलों के प्रति स्तुति करने वाला तथा पापों से
रहित बनाओ। तुम हमारी गर्भस्थ सन्तान का नाश न करो । हमको तुम्हारी
शक्ति पर पूरा भरोसा है ॥ ६ ॥ बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ! मैं आपके बल
में विश्वास करता हूँ। तुम हमको महान् ऐश्वर्य की ओर प्रेरित करो। हमको
अन्न विहीन घर में भूखा नहीं रखना ॥ ७ ॥ हे समर्थ इन्द्र ! तुम हमारी
हिंसा न करो। हमारा त्याग न करो। हमारे उपभोग्य पदार्थों को नष्ट न
करो । हमारी गर्भस्थ संतति को क्षीण न करो तथा हमारी गर्भवती स्त्रियाँ नष्ट
न करो ॥ ८ ॥ हे सोमाभिलाषी इन्द्र ! हमारे सामने आओ । यह निष्पन्न
सोम रखा है इसे आनन्द के निमित्त पान करो। बुलाये जाने पर पिता के
समान हमारी स्तुति को सुनो ॥ ९ ॥

१०५ सूक्त

(ऋषि—आप्त्यस्त्रित आङ्गिरसः कुत्सो वा। देवता—विश्वेदेवा।
छन्द—पंक्ति, बृहती, त्रिष्टुप्।)

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १
अर्थमिद्वा उ अर्थिनआ जाया युवते पतिम्।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २
मो षु देवा अदः स्वरव पादि दिवस्परि।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४
अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ । २०

चन्द्रमा अन्तरिक्ष में और सूर्य आकाश में गति करते हैं। हे स्वर्णिम बिजलियो! मनुष्य तुम्हें ढूँढने में असमर्थ हैं। हे आकाश-पृथिवी! हमारे निवेदन को सुनो ॥१॥ धन की इच्छा वाले धन पाते हैं, स्त्री पति पाती है। वे दोनों मिलकर सन्तान प्राप्त करते हैं हे आकाश पृथिवी! मेरे कष्ट को समझो ॥ २ ॥ हे देवगण! आकाश के ऊपर की यह ज्योति नष्ट न हो। सोम निष्पन्न करने योग्य सुखकारी पुत्र का अभाव हमको कभी न हो। हे आकाश और पृथिवी! हमारे कष्ट को समझो ॥ ३ ॥ मैं सबसे युवा अग्नि से पूछता हूँ। वे देवदूत उत्तर दें कि पुरातन नियम कहाँ हैं? कौन नया पुरुष इसे धारण करता है? हे आकाश, पृथिवी! मेरे दुःख को समझो ॥ ४ हे देवगण! तीनों में से प्रकाशित आकाश में तुम्हारा स्थान है। तुम्हारा नियम क्या है? उन नियमों के विपरीत क्या है? तुम्हारा प्राचीन आह्वान कहाँ गया? हे आकाश, पृथिवी! मेरे दुःख पर ध्यान दो ॥ ५ ॥ [२०]

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम्।

कदर्यमणो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६

अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ८

अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१० । २१

देवगण ! तुम्हारे नियम का आधार क्या है ? वरुण की व्यवस्था कहाँ है ? अर्यमा किस प्रकार हमको दुष्टों से पार लगा सकते हैं ? हे आकाश-पृथिवी हमारे दुःख को समझो ॥ ६ ॥ मैंने पूर्वकाल में, सोम के निचोड़े जाने पर बहुत स्तोत्र कहे । प्यासे हरिण को भेड़िये द्वारा भक्षण कर लेने के समान मेरे मन की पीड़ा ही मुझे खाये जाती है । हे आकाश-पृथिवी ! मेरे कष्ट पर ध्यान दो ॥ ७ ॥ दो सौतिनों द्वारा पति को सताये जाने के समान कुएं की दीवारें मुझे सता रही हैं । हे इन्द्र ! चुहिया द्वारा अपनी पूँछ को चबाने के समान मेरे मन की पीड़ा मुझे चबा रही है । हे आकाश-पृथिवी मेरे दुःख को समझो ॥ ८ ॥ इन सूर्य की सात किरणों से मेरा पैतृक सम्बन्ध है—इस बात को जल का पुत्र "त्रित" जानता है । इसलिए वह उन किरणों की स्तुति करता है । हे आकाश-पृथिवी मेरे कष्ट को समझो ॥ ९ ॥ आकाश में यह पाँच वीर (अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, विद्युत) स्थित हैं, वे मिलकर मेरे द्वारा रचित इस स्तोत्र को देवताओं को सुनाकर लौट आवें । हे आकाश-पृथिवी मेरे इस दुःख को जानो ॥ १० ॥ [२१]

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं अस्य रोदसी ॥ १४

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ । २२

यह सर्वव्यापी सूर्य आकाश में बैठे हैं। यह अन्तरिक्ष को लाँघकर चन्द्रमा को मार्ग से हटावें। हे आकाश-पृथिवी ! यह बात जान लो ॥ ११ ॥ हे देवगण ! यह नवीन स्तोत्र प्रशंसा-योग्य, हितकर और कल्याण का उद्घोष करता है। नदियाँ देवताओं के नियमों की प्रेरणा करती हैं और सूर्य सत्य का प्रचारक है। हे आकाश-पृथिवी ! यह बात जान लो ॥१२॥ हे अग्ने ! देवताओं से तुम्हारा बन्धुत्व प्रशंसनीय है। तुम होता के समान हमारे यज्ञ में देवताओं को यजन करो। हे आकाश-पृथिवी मेरी यह बात सुन लो ॥ १३ मनुष्य के समान हमारे यज्ञ में बैठे हुए होता रूप मेधावी अग्नि देवगण के निमित्त हवि प्रेरणा करें। हे आकाश-पृथिवी ! मेरी इस बात को जानो ॥ १४ मन्त्र रूप स्तुति को वरुण रचते हैं। हम उन स्तुतियों से अर्चन करते हैं। हृदय द्वारा स्तुतियों को कहते हैं। उससे सत्य प्रकाशित हो। हे आकाश-पृथिवी ! हमारे वचनों पर ध्यान दो ॥ १५ ॥ [२२]

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६

त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७

अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥२३

हे देवगण ! आकाश में पथ-रूप सूर्य स्तुतियों के योग्य हैं, उनका उल्लङ्घन न करो। हे मनुष्यो ! तुम उनकी शक्ति को नहीं जानते। हे आकाश-पृथिवी ! हमारे कष्टों पर ध्यान दो ॥ १६ ॥ कुएँ में गिरे हुए "त्रित" ने रक्षार्थ देवाह्वान किया। उसे बृहस्पति ने सुना और "त्रित" को पाप रूप कुएँ से निकाला। हे आकाश-पृथिवी ! मेरे दुःख को सुनो ॥ १७ ॥ पीठ पर रोग उठने पर पीड़ा से खड़े हो जाने वाले के समान खड़ा होकर प्रकाशयुक्त चन्द्रमा उस मार्ग से जाता हुआ, मुझे नित्य देखता था। हे आकाश-पृथिवी ! मेरी व्यथा को समझो ॥ १८ ॥ इन्द्र तथा सभी वीर पुरुषों से युक्त हम इस स्तोत्र के द्वारा युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारे स्तोत्र का अनुमोदन करें ॥ १९ ॥ [२३]

१०६ सूक्त (सोलहवाँ अनुवाक)

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः । देवता–विश्वेदेवा । छन्द–जगती त्रिष्टुप्)

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५
इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निवाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।

र्यं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६
ऽवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७।२४

इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुद्गण और अदिति का रक्षार्थ आह्वान करते हैं। हे कल्याणकारी वसुओ! रथ को संकीर्ण मार्ग से निकालने के समान सब पापों से निकालकर हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥ हे आदित्यो! तुम हमारी कामनापूर्ति के लिए आओ। युद्धों में दुःख न दो। रथ को संकीर्ण मार्गों से निकालने के समान हमको पापों से निकालो ॥ २ ॥ उत्तम यश वाले पितर और यज्ञ को बढ़ाने वाली देव माताएँ हमारी रक्षक हों। हे वसुओ! रथ को निकालने के समान पापों से निकालकर रक्षा करो ॥ ३ ॥ मनुष्यों द्वारा स्तुत्य बलवान अग्नि को पूजते हुए हम वीरों के स्वामी पूषा की स्तुति करते हैं। हे कल्याणकारी वसुदेवो! रथ को निकालने के समान हमको पापों से निकालो ॥ ४ ॥ हे बृहस्पति, हमको सुख दो। तुम मनुष्यों के रोग और भयों को निवारण करते हो। हम वही चाहते हैं। हे वसुदेवो रथ को संकीर्ण पथ से निकालने के समान पापों से हमको निकालो ॥ ५ ॥ कुएँ में गिरे कुत्स ऋषि ने वृत्र हन्ता को पुकारा। हे कल्याणकारी वसुदेवो! हमको पापों से उबारो ॥ ६ ॥ देवताओं सहित अदिति हमारी रक्षा करें। रक्षा-साधनों से युक्त देवगण आलस्य छोड़कर हमें बचावें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी, आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥ ७ ॥ [२४]

१०७ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—विश्वेदेवा । छन्द—त्रिष्टुप्)

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २

तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३।२५

हमारे यज्ञ को देवगण स्वीकार करें। हे आदित्यो! हम पर अनुग्रह करो। तुम कल्याणकारी मन को हमारी ओर फेरो। हमारे दरिद्र दूर हों और हम अत्यन्त धन प्राप्त करें ॥ १ ॥ अङ्गिराओं द्वारा गाई गईं स्तुतियों से हमारी रक्षा के लिए देवगण आवें। बलों के साथ इन्द्र, वायुओं के साथ मरुद्गण और आदित्यों के साथ अदिति हमको आश्रय प्रदान करें ॥ २ ॥ इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा और सूर्य हमारे लिए सुख धारण कराने वाले हों। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥ ३ ॥ [२५]

१०८ सूक्त

(ऋषि-कुत्स आङ्गिरसः । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचः वरिमता गभीरम् ।
ता वां अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २
चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ । २६

हे इन्द्र - अग्ने! तुम दोनों का अद्भुत रथ सब संसार को देखता है, उस पर चढ़कर यहाँ आओ और निष्पन्न सोम का पान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र-अग्ने! जितना गम्भीर और विस्तृत यह संसार है, उतना विशाल होता हुआ यह सोम तुम्हारे लिए पर्याप्त हो ॥ २ ॥ हे वृत्र-नाशक इन्द्र - अग्ने! तुम

दोनों साथ चलकर इकट्ठे बैठकर सोम का पान करें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र-अग्ने ! अग्नि के प्रदीप्त होने पर हमने हवियों को घृतयुक्त किया तथा कुश को बिछाया है। हम स्त्रुच लिये खड़े हैं। तुम दोनों आकर सोम से तृप्त होओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र अग्ने ! तुमने विविध वीर कर्मों को किया तथा वीर वेशों को धारण किया। तुम्हारी मित्रताएं कल्याण करने वाली हैं। तुम उन मित्र-भावों सहित आकर सोम पिओ ॥ ५ ॥ [२६]

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो यं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद्ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद्द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १०
यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१३॥२७

हे इन्द्र अग्नि ! मेरा संकल्प था कि मैं तुम दोनों को वरण कर सोम से तृप्त करूँगा। तुम मेरी हार्दिक श्रद्धा पर ध्यान देकर पधारो। इस निष्पन्न सोम का पान करो ॥ ६ ॥ हे पूज्य इन्द्र अग्ने ! तुम जिस यजमान के घर में पुष्ट हो रहे हो, वहाँ से मेरे पास आकर सोम-पान करो ॥ ७ ॥ हे पौरुष-

युक्त इन्द्र-अग्ने ! तुम "यदुओं", "तुर्वशों", "द्रुह्युओं" और "पूरवों" में रहते हो, वहाँ से आकर सोम पियो ॥८॥ हे वीर्यवंत इन्द्राग्ने ! तुम यदि निम्न पृथिवी, अंतरिक्ष और आकाश में विद्यमान हो तो मेरे पास आकर सोम पियो ॥९॥ हे इन्द्राग्ने ! यदि तुम उच्च पृथिव्यादि लोकों में हो तो भी यहाँ आकर सोम को पियो ॥१०॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम यदि आकाश-पृथिवी, पर्वत, औषधि, जल आदि में जहाँ कहीं हो वहीं से मेरे पास आकर सोम सेवन करो ॥११॥ हे इन्द्राग्ने ! यदि तुम आकाश के मध्य में सूर्य के चढ़ने पर स्वेच्छापूर्वक विश्राम कर रहे हो, तो भी यहाँ आकर इस सोम का पान करो ॥१२॥ हे इन्द्राग्ने ! इस निष्पन्न सोम को पीकर सभी धनों को जीतो। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना का अनुमोदन करें ॥१३॥ [२०]

१०९ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । इन्द्राग्नी । छन्द—त्रिष्टुप्)

वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २
मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्रचर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ । २१

हे इन्द्राग्ने ! अपनी भलाई के निमित्त मैंने अपने बांधवों को भी देख लिया, परन्तु तुम्हारे समान कृपा करने वाला अन्य नहीं मिला, मैंने तुम्हारे चाहने वाले स्तोत्र को रचना की ॥१॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम प्रयोग

ता तथा साले से भी अधिक धन-दान करने वाले हो । मैं तुम्हें सोम भेंट
हुआ स्तोत्र रचता हूँ ॥२॥ 'सन्तान की लड़ी न काटें' इस प्रार्थना के
पितरों के अनुकरण में वीर्यवान् इन्द्र और अग्नि के द्वारा प्रसन्नता पाने
यह सोम कूटने के पाषाण चर्म पर पड़े हैं ॥३॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारी
मना के लिए ही यह सोम कूटा जा रहा है। हे सुन्दर कल्याणरूप हाथों
ले अश्विदेवो ! शीघ्र आओ। सोम को मीठे जलों से युक्त करो ॥४॥ हे
न्द्राग्ने ! तुम धन बाँटने और शत्रु का नाश करने में अत्यन्त बलवान हो।
स यज्ञ में कुश पर बैठ कर निष्पन्न सोम से आनन्द प्राप्त करो ॥५॥ [२८]

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७
पुरंदरा शिक्षतं वज्रहतास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८ । २९

हे इन्द्राग्ने ! तुम मनुष्यों से बढ़ कर युद्धों में ताड़ना करते हो । तुम
पृथिवी और आकाश से भी महान् हो । तुम पर्वतों, समुद्रों तथा अन्य सब
लोकों से भी बढ़ कर हो ॥६॥ हे वज्रिन्, हे अग्ने ! तुम दोनों धनों को लाकर
हमें दो । अपने बलों से हमारी रक्षा करो । यह वही सूर्य किरणें हैं जो हमारे
पितरों को भी प्राप्य थीं ॥७॥ हे दुर्गभंजक इन्द्राग्ने ! हमें इच्छित फल दो।
युद्धों में रक्षा करो । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी
प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥८॥ [२९]

११० सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—ऋभुगण । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्

ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।

सौधन्वनामश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २
तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४
क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ । ३०

हे ऋभुओ ! जो पूजन कर्म मैंने पहले किया था, वह अब फिर करता हूँ । तुम्हारे निमित्त मधुर स्तोत्र उच्चारण करता हूँ । यह समुद्र-सा विशाल गुण वाला सोम सब देवताओं के लिए है । स्वाहा युक्त सोम होने पर तुम इससे अत्यन्त तृप्त होओ ॥१॥ हे सुधन्वा-पुत्रो ! जब तुम सोम की इच्छा से विचरे तब तुम अपने महत्व से सूर्य के घर में जा पहुँचे ॥२॥ हे ऋभुगण ! सूर्य ने तुमको अमरत्व प्रदान किया, क्योंकि तुमने उस प्रकाशमान पर अपनी इच्छा व्यक्त की और त्वष्टा के सोम भक्षण करने वाले चमस को चार भागों में बाँट दिया ॥३॥ मरण धर्मी ऋभुओं ने अपने निरंतर कर्मों द्वारा अमरत्व पाया । वे सूर्य के समान तेजस्वी हुए, वर्ष भर में ही यज्ञ-कर्म में संयुक्त हुए ॥४॥ निकटस्थों से स्तुति किए गए ऋभुओं ने उत्तम पद माँगते हुए देवत्व की कामना की । बाँस से खेत को नापने के समान चौड़े मुख के पात्र को उन्होंने नापा ॥५॥ [३०]

आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥ ६
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिये भि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ८
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९ । ३१

स्रुच द्वारा घृत डालने के, ऋभुओं के प्रति ज्ञान द्वारा स्तुति अर्पण करें। उन ऋभुओं ने पिता के कर्मों का अनुसरण कर आकाश के अन्न को पाया ॥६॥ ऋभु अपने बल से इन्द्र के समान हुए। वे बलों द्वारा धन देने वाले हैं। हे देवगण! हम तुम्हारी रक्षा में रहकर मन चाहे दिनों में ही सोम-द्रोहियों की सेनाओं को पराजित करें ॥७॥ हे ऋभुओ! तुमने चर्म से गौएँ बनाईं। माता से बछड़े का योग किया, उत्तम कर्मों की इच्छा से वृद्ध माता पिता को युवावस्था दी ॥८॥ हे इन्द्र! ऋभुओं सहित तुम युद्धों में अपनी शक्तियों से हमारी रक्षा करना और अद्भुत धनों को प्रकट करना। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥९॥ [३१]

१११ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता-ऋभवः। छन्द-जगती त्रिष्टुप्,)

तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५ । ३२

ज्ञान द्वारा कर्मों में नियुक्त ऋभुओं ने उत्तम रथ की रचना की। इन्द्र के इस घूमने वाले रथ के लिए घोड़े बनाए। माता पिता के लिए युवा-

हे ऋभुओ ! यज्ञ-कर्मों के निमित्त हमको स्वास्थ्य प्रदान करो। कर्म करने के लिए शक्ति चाहिए, अतः श्रेष्ठ प्रजा युक्त अन्न की रचना करो। हे उत्तम बल धारण करने वालो ! हम वीर सन्तति के लिए विद्यमान हों ॥२॥ हे ऋभुओ हमारे लिए, हमारे रथ के लिए, और हमारे घोड़े के लिए अन्न, धन आदि प्राप्त कराओ। हमको विजय दिलाने वाले और शत्रुओं को दबाने वाले रक्षा-साधनों की वृद्धि करो ॥३॥ अपनी रक्षा तथा सोम-पान के निमित्त इन्द्र, ऋभुगण, वाज मरुद्गण, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमारों का मैं आह्वान करता हूँ। वे धन-प्राप्ति, उत्तम बुद्धि और जय-लाभ के लिए हमें प्रेरित करें ॥४॥ युद्ध के लिए ऋभुगण हमको धन दें। युद्धों को जीतने वाले वाज हमारे रक्षक हों। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥ ५ ॥

(ऋभुगण पहले मनुष्य थे। अङ्गिरा-वंश में सुधन्वा के ऋभु, विभु और वाज नामक तीन पुत्र थे, वे अपने महान कर्मों द्वारा देवता हो गये।

११२ सूक्त

(ऋषि-कुत्स आङ्गिरसः। देवता-आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ, द्वितीयस्य अग्निः, शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ। छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४

रेभं निवृतं सितमद्भ्य उदन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ५ । २३

मैं चैतन्यता के निमित्त आकाश-पृथिवी की स्तुति करता हूँ। फि
श्विनीकुमारों के शीघ्र आगमन के लिए श्रेष्ठ कान्तियुक्त अग्नि का स्तवन
ता हूँ। हे अश्विद्वो! जिन सुन्दर रक्षा साधनों से संग्राम में धन जीतकर
ते हो, उनके साथ यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो! जैसे कर्मों में
सम्पत्ति के लिए विद्वानों के चारों ओर खड़े रहते हैं, वैसे ही तुम्हारे रथ के
चारों ओर खड़े रहकर स्तोतागण गान योग्य स्तोत्रों सहित स्थित होते हैं।
जिन रक्षा-साधनों को अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रेरित करते हो, उनके सहित
यहाँ आओ ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम आकाशस्थ अमृत के बल से
प्रजाओं पर शासन करने में समर्थ हो। जिस उपाय से तुमने वन्ध्या गौओं
को दूध से पूर्ण किया, उसके साथ आओ ॥ ३ ॥ हे अश्वियो! जिन उपायों से
द्विमातृक अग्नि पुत्र रूप यजमान के बल से उत्पन्न होकर तेज से सुशोभित
होते हैं तथा जिन उपायों से "कक्षीवान्" तीन यज्ञों के ज्ञाता विद्वान हुए, उन
उपायों सहित आओ ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वो! जिन उपायों से कुएँ में पड़े हुए
बन्धनयुक्त "रेभ" ऋषि को जल से बाहर प्रकाश में निकाला और इसी प्रकार
"वन्दन" ऋषि को बचाया तथा जिन उपायों से "कण्व" ऋषि की रक्षा की
उनके साथ यहाँ पधारो ॥ ५ ॥ [२३]

याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥
याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।

याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥ १० । ३४

हे अश्विदेवो ! जिन साधनों से कूप में डालकर हिंसा किये जाते "अंतक" ऋषि को बचाया समुद्र में पड़े "भुज्यु" की रक्षा की, "कर्कन्धु" और "वय्य" की रक्षा की, उन साधनों सहित आओ ॥ ६ ॥ हे अश्विदेवो ! जिन साधनों से "शुचन्ति" को उत्तम धन और निवास दिया, "अत्रि" को दग्ध करने वाली अग्नि के ताप से बचाया, "पृश्निगु" और "पुरुकुत्स" की रक्षा की उनके सहित आओ ॥ ७ ॥ हे अश्विदेवो ! जिन यत्नों से अन्धे, लूले "ऋज्राश्व" को नेत्र और पाँव दिए, जिन साधनों से भेड़िया द्वारा ग्रसित "वर्तेरी" की रक्षा की, उनके सहित यहाँ आओ ॥ ८ ॥ हे अजर अश्विदेवो ! जिन साधनों से आपने मधुमयी नदी को प्रवाहित किया, जिन साधनों से "वशिष्ठ", "कुत्स" और "श्रुतर्य" की रक्षा की, उनके साथ आओ ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से धन की इच्छुक और पंगु "विश्पला" को असंख्य धन वाले युद्ध में जाने की शक्ति दी । साधनों से स्तुति करते हुए "अश्वराज" के पुत्र "वश" ऋषि की रक्षा की, उनके साथ आओ ॥ १० ॥ [३४]

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।

याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥ १५ । ३५

हे कल्याणकारी अश्विद्वय ! जिन साधनों से वणिक (वैश्य) 'उशिज' के पुत्र "दीर्घश्रवा" के लिए वर्षा की तथा जिनसे स्तोता 'कक्षीवान्' की रक्षा की, उनके साथ आओ ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से नदी-तटों को तुमने जलपूर्ण किया, जिन साधनों से बिना अश्व के रथ को विजय के लिए चलाया तथा जिन साधनों से 'त्रिशोक' ने गौओं को हाँकने की प्रेरणा पायी, उनके साथ आओ ॥ १२ ॥ हे अश्वियो ! जिन साधनों से दूरवर्ती सूर्य को प्राप्त होते हो। जिन उपायों से 'मान्धाता' की क्षेत्रपति के कार्य में रक्षा की और 'भरद्वाज' ऋषि को जिन उपायों से बचाया, उनके साथ आओ ॥ १३ जिन साधनों से तुमने अतिथि-प्रेमी 'दिवोदास' को 'शम्बर' के साथ युद्ध करते हुए रक्षा की तथा 'त्रसदस्यु' को संग्राम में बचाया, उन साधनों सहित आओ ॥ १४ ॥ हे अश्विदेवो ! जिन साधनों से 'वम्र' ऋषि को, 'उपस्तुत' की, स्त्री पाने पर 'कलि' ऋषि को रक्षा की तथा जिन साधनों से 'व्यश्व' और 'पृथि' को बचाया, उनसे साथ आओ ॥ १५ ॥
[३५]

याभिर्नरा शंयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्य ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥
याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥ २० ।

मधु दिया, उनके साथ आओ ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! जिन साधनों से गवादि धन के लिए युद्ध में मनुष्यों की रक्षा करते हो, जिनसे रथ और घोड़ों की रक्षा करते हो, उनके साथ आओ ॥ २२ ॥ हे महाबली अश्विद्वय ! जिन रक्षा-साधनों से अर्जुनि-पुत्र 'कुत्स', 'तुर्वीति', 'दभीति', 'ध्वसन्ति' और 'पुरुषन्ति' की तुमने रक्षा की, उन साधनों सहित आओ ॥ २३ ॥ हे अश्विदेवो ! हमारे वचन और बुद्धि को कर्म से युक्त करो। मैं, निष्कपट कर्मों में रक्षा के निमित्त तुम्हारा आह्वान करता हूँ। युद्ध में तुम हमारी वृद्धि करो ॥ २४ ॥ हे अश्विदेवो ! दिन और रात में भी विनाश रहित सौभाग्यों द्वारा हमारी सब ओर से रक्षा करो। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें। (त्वष्टा की कन्या सरण्यू ने अश्व का रूप धारण कर अश्वद्वय को जन्म दिया। यह आधि-व्याधि के देवता माने गये हैं।) ॥ २५ ॥ [३७]

॥ सप्तम् अध्याय समाप्तम् ॥

११३ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः। देवता—उषा, द्वितीयस्यार्द्धर्चस्य रात्रिरपि। छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति)

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४
जिह्मश्ये चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वं।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ५ । १

यह ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति प्रकट हुई। अद्भुत प्रकाश सर्वत्र फैल गया। रात्रि ने जैसे सूर्य से जन्म लिया था, वैसे ही उषा के लिए अपना स्थान दे दिया ॥१॥ श्वेतवर्ण के बछड़े के समान चमकती हुई उषा आगई। रात्रि ने इसके लिए स्थान छोड़ दिया। यह दोनों परस्पर बंधी हुई, अमर, आकाश में क्रम पूर्वक गति करती हुई, एक दूसरे के वर्ण को मिटा देती हैं ॥२॥ इन दोनों बहिनों का मार्ग एक ही है, उस पर देवताओं की प्रेरणा से यह बारम्बार यात्रा करती हैं। एक मन वाली यह उषा और रात्रि विभिन्न वर्ण की हैं और परस्पर टकराती नहीं हैं ॥३॥ स्तुतियों से प्राप्त कांतिमती उषा आई। उसने हमारे लिए कर्मक्षेत्र का द्वार खोल दिया। संसार को कार्यों में प्रेरित कर धनों को प्रकट किया। उसने सब भुवनों को प्रकाश से पूर्ण कर दिया ॥४॥ सिकुड़ कर सोते हुए को यह धनेश्वरी उषा चैतन्य करती है। यह भोग, पूजा, धन, इष्टि, आरोग्य की प्रेरणा देती हुई सब भुवनों को प्रकाश से भर देती है ॥५॥ [१]

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७
परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८
उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥ ९
कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० । २

राज्य, यश, यज्ञ, अपेक्षित कार्य और आजीविका की ओर मनुष्यों को प्रेरित करने वाली उषा ने सब भुवनों पर अधिकार कर लिया ॥६॥ यह उज्ज्वलवसना युवती सभी पार्थिव धनों की स्वामिनी है। वह आकाश की पुत्री

ौभाग्य से खिल उठती है। वह आज यहाँ खिले ॥७॥ नित्य आने वाली
पाओं में यह उषा विगत उषाओं के मार्ग पर चलती है। यह जीवित को
रेणा देने वाली उषा मृतवत् को भी चैतन्य प्रदान करती है ॥८॥ हे उषे !
ुमने हवि-दान के लिए अग्नि प्रदीप्त की और सूर्य के प्रकाश से अन्धकार को
मेटाया। यज्ञ में लगे मनुष्यों के लिए प्रकाश दिया। तुम्हारा यह कार्य देव-
गण के लिए भी हितकर है ॥९॥ जो उषायें खिलीं और जो अब खिलेंगी,
यह निकटस्थ उषा कितनी देर ठहरेगी, जो बीती हुई उषाओं का इतना सोच
करती तथा आगे आने वालियों का हर्ष करती है ॥१०॥ [२]

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
असमाभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२
शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३
व्य ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्योदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४
आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ।३

जिन्होंने पुरानी उषाओं को खिलते हुए देखा, वे मर कर चले गए। इसे हम देखते हैं और आगे आने वाली उषाओं को वे देखेंगे जो आगे आवेंगे ॥११॥ हे उषे ! सत्य को पराजित करने वाली, नियमों में अटल स्तुतियों की प्रेरक, देवताओं के लिए हवि धारक सर्व श्रेष्ठ तू आज यहाँ प्रकट हो ॥१२॥ प्राचीन काल में धनयुक्त उषा प्रकट होती थी। आज इस उषा ने संसार को प्रकाशित किया है। भविष्य में भी तू खिलेगी। अजर, अमर यह उषा अपनी इच्छा से गतिमान है ॥१३॥ उषा अपने तेज से आकाश में चमक उठी। उसने काले अन्धकार को दूर कर दिया। जीवों को चैतन्य करती हुई

यह अरुण अश्वों वाले रथ में बैठ कर आती है ॥१४॥ पालक तथा वरणीय धनों को दिलाने वाली यह उषा ज्ञान के उज्वल प्रकाश को करती हुई विगत उषाओं से भी अत्यन्त महत्व वाली है ॥१५॥ [३]

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रा गात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥ १८
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२० ।

हे मनुष्यो ! उठो, हम सब के प्राण रूप सूर्य आ गए । अन्धकार दूर हो गया । उषा ने सूर्य के लिए मार्ग बताया । हम आयु को बढ़ाने वाले स्थान में पहुँच गए ॥१६॥ कोविवदो उषाओं की स्तुति करने वाला सुने हुए शब्दों को निकालता है । हे उषे आज उस स्तोता के लिए प्रकट होकर संतति युक्त आयु को दो ॥१७॥ गौ-धन और वीर संतान वाली उषाएँ हविदाता के लिए प्रकट होती हैं । उन अश्व देने वालियों की स्तुति पूर्ण होने पर सोम निष्पन्नकर्ता वायु वेग से प्राप्त करे ॥१८॥ हे वरणीय उषे ! तुम देव-माता अदिति के मुख रूप और यज्ञ की ध्वजा रूप होकर महत्ता पूर्वक चमको । तुम हमारी मंत्र रूप स्तुतियों की प्रशंसा करती हुई प्रकट होओ और हमें यशस्वी बनाओ ॥१९॥ उषाएँ जिन दिव्य गुणों को लाती हैं, वह यज्ञकर्त्ता और स्तोता को मंगलमय हों । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥२०॥ [४]

(उषा को सब पार्थिव धनों की स्वामिनी इसी दृष्टि से कहा गया है कि उनके प्रकट होने पर मनुष्य उद्योग-धन्धे में लग जाता है ।)

सौभाग्य से खिल उठती है। वह आज यहाँ खिले ॥७॥ नित्य आने वाली उषाओं में यह उषा विगत उषाओं के मार्ग पर चलती है। यह जीवित को प्रेरणा देने वाली उषा मृतवत् को भी चैतन्य प्रदान करती है॥८॥ हे उषे ! तुमने हवि-दान के लिए अग्नि प्रदीप्त की और सूर्य के प्रकाश से अन्धकार को मिटाया। यज्ञ में लगे मनुष्यों के लिए प्रकाश दिया। तुम्हारा यह कार्य देव-गण के लिए भी हितकर है ॥९॥ जो उषायें खिलीं और जो अब खिलेंगी, यह निकटस्थ उषा कितनी देर ठहरेगी, जो बीती हुई उषाओं का इतना सोच करती तथा आगे आने वालियों का हर्ष करती है ॥१०॥ [२]

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२
शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३
व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४
आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ।३

जिन्होंने पुरानी उषाओं को खिलते हुए देखा, वे मर कर चले गए। इसे हम देखते हैं और आगे आने वाली उषाओं को वे देखेंगे जो आगे आवेंगे ॥११॥ हे उषे ! सत्य को पराजित करने वाली, नियमों में अटल स्तुतियों की प्रेरक, देवताओं के लिए हवि धारक सर्व श्रेष्ठ तू आज यहाँ प्रकट हो ॥१२॥ प्राचीन काल में धनयुक्त उषा प्रकट होती थी। आज इस उषा ने संसार को प्रकाशित किया है। भविष्य में भी तू खिलेगी। अजर, अमर यह उषा अपनी इच्छा से गतिमान है ॥१३॥ उषा अपने तेज से आकाश में चमक उठी। उसने काले अन्धकार को दूर कर दिया। जीवों को चैतन्य करती हुई

यह अरुण अश्वों वाले रथ में बैठ कर आती है ॥१४॥ पालक तथा वरणीय धनों को दिलाने वाली यह उषा ज्ञान के उज्वल प्रकाश को करती हुई विगत उषाओं से भी अत्यन्त महत्व वाली है ॥१५॥ [३]

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रा गात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥ १८
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९
यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२०।

हे मनुष्यो ! उठो, हम सब के प्राण रूप सूर्य आ गए। अन्धकार दूर हो गया। उषा ने सूर्य के लिए मार्ग बताया। हम आयु को बढ़ाने वाले स्थान में पहुँच गए ॥१६॥ कांतिमती उषाओं की स्तुति करने वाला चुने हुए शब्दों को निकालता है। हे उषे आज उस स्तोता के लिए प्रकट होकर संतति युक्त आयु को दो ॥१७॥ गो-धन और वीर संतान वाली उषाएँ हविदाता के लिए प्रकट होती हैं। उन अश्व देने वालियों को स्तुति पूर्ण होने पर सोम निष्पन्न-कर्ता वायु वेग से प्राप्त करे ॥१८॥ हे वरणीय उषे ! तुम देव-माता अदिति के मुख रूप और यज्ञ की ध्वजा रूप होकर महत्ता पूर्वक चमको। तुम हमारी मंत्र रूप स्तुतियों की प्रशंसा करती हुई प्रकट होओ और हमें यशस्वी बनाओ ॥१९॥ उषाएँ जिन दिव्य गुणों को लाती हैं, वह यज्ञकर्ता और स्तोता को मंगलमय हों। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥२०॥ [४]

(उषा को सब पार्थिव धनों की स्वामिनी इसी दृष्टि से कहा गया है कि उनके प्रकट होने पर मनुष्य उद्योग-धन्धे में लग जाता है।)

११४ सूक्त

(ऋषि—कुत्स आङ्गिरसः । देवता—रुद्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४
दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ । ५

महान्, वीरों के स्वामी, जटिल रुद्र के निमित्त स्तुतियाँ करते हैं। दुपाये, चौपाये सुखी हों! इस ग्राम के वासी सभी प्राणी निरोग रहते हुए पुष्ट हों ॥ १ हे रुद्र! दया करो, सुख दो। तुम वीरों के स्वामी को हम नमस्कार करें। जिस शांति को यज्ञ द्वारा मनु ने पाया था, उसे हम तुमसे प्राप्त करें ॥ २ ॥ हे रुद्र! हम तुम्हारे उपासक देवार्चन द्वारा तुम वीरों के स्वामी की दया-दृष्टि पावें। तुम हमारी संतति को सुख दो। हर्षित वीरों से युक्त हम तुमको हवि भेंट करें ॥ ३ ॥ दीप्ति, यज्ञ सिद्ध करने वाले, तिर्छी गति वाले मेधावी रुद्र का रक्षा के निमित्त हम आह्वान करते हैं। वे देवताओं के क्रोध का निवारण करें। हम उनका अनुग्रह चाहते हैं ॥ ४ ॥ हम आकाश के घोर रूप वाले, लाल वर्ण वाले, जटाधारी तथा महान् तेजस्वी रुद्र का नमस्कार पूर्वक आह्वान करते हैं। वे वरणीय औषधियों को हाथ में धारण कर हमको सुखी करें तथा अपने रक्षा-साधनों द्वारा निर्भय बनावें ॥ ५ ॥ [५]

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ७
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ८
उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९
आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १०
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः ॥ ११ । ६

मरुद्गणों के जनक रुद्र के निमित्त यह मधुर स्तोत्र हम उच्चारण करते हैं। हे अविनाशी रुद्र ! हमको सेवनीय पदार्थ प्रदान करो। हम पर और हमारी संतति पर दया करो ॥ ६ ॥ हे रुद्र ! हमारे वृद्ध, बालक, वृद्धि को प्राप्त पुत्र और युवावस्था वालों को न मारो। हमारे शरीरों को संताप न दो ॥ ७ ॥ हे इंद्र ! हमारे पुत्र आदि संतान, भृत्यादि, गौओं और अश्वों को मत मारो। तुम हमारे वीरों के नाश के लिए क्रोध न करो। हम सदैव हवि देते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ८ ॥ हे मरुतों के पिता रुद्र ! पशु-रक्षक अपने पशुओं को स्वामी की भेंट करता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे लिए स्तोत्र भेंट किये हैं। तुम हमको सुख दो। तुम्हारी बुद्धि कल्याण करने वाली है। हम तुमसे रक्षा की प्रार्थना करते हैं ॥ ९ ॥ हे वीरों के स्वामी रुद्र ! तुम्हारा पशुओं और मनुष्यों को मारने वाला अस्त्र दूर पहुँचे। हम पर तुम्हारी कृपा रहे। तुम हम पर दया करो और हमारा पक्ष लेते हुए आश्रय प्रदान करो ॥ १० ॥ रक्षा की कामना से 'रुद्र को नमस्कार हो' ऐसा वचन हमने उच्चारण किया है। वे रुद्र मरुद्गण सहित हमारे आह्वान को सुनें। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमो-

त करें ॥ ११ ॥ (इस स्तोत्र में भगवान के विकराल रूप को रुद्र माना
या है । पुराणों में रुद्र को ही शंकर कहा है ।) [६]

११५ सूक्त

(ऋषि–कुत्स आङ्गिरसः । देवता–सूर्य । छन्द–त्रिष्टुप्)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १
सूर्यो देवीमुपसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३
तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ६ ।

देवगण का विचित्र मुख रूप तथा मित्र, वरुण, अग्नि का नेत्र
सूर्य उदय हो गया । जङ्गम-स्थावर के प्राण रूप सूर्य ने आकाश, पृथिवी
अंतरिक्ष को सब ओर से प्रकाशित कर दिया है ॥ १ मनुष्य के स्त्री के
जाने के समान, सूर्य कांतिवती उषा के पीछे जाता है । उस समय उपास
युगों तक कल्याणकारी प्रभाव डालने के लिए कल्याणदाता यज्ञ को
हैं ॥ २ ॥ कल्याण स्वरूप, स्वर्णिम वर्ण वाले, प्रकाशयुक्त मार्ग से
करने वाले, निरन्तर स्तुति किये जाते सूर्य के अश्व आकाश की पीठ
हैं और उसी दिन आकाश और पृथिवी का चक्कर काट लेते हैं
सूर्य का दिव्य कर्म है । जब वह अपने सुन

को हटाते हैं तब रात्रि अपना काला वस्त्र फैलाती है ॥ ४ ॥ मित्र और वरुण के देखने को सूर्य आकाश की गोद में उस प्रसिद्ध-रूप को प्रकट करते हैं। इनके सुनहरी अश्व अपने प्रकाशयुक्त बल को प्रत्यक्ष कर दूसरी ओर अन्धकार कर देते हैं ॥ ५ ॥ हे देवगण ! आज सूर्योदय होने पर हमको पाप कर्मों तथा निन्दा से बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और आकाश हमारी इस प्रार्थना को अनुमोदित करें ॥ ६ ॥ (अदिति के पुत्र होने से आदित्य कहे गये हैं। कर्म, काल और परिस्थिति के अनुसार सूर्य के अनेक नाम रखे गये हैं।)　　　　[७]

११६ सूक्त [सत्रहवाँ अनुवाक]

(ऋषि–कक्षीवान्। देवता–अश्विनौ। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति)

नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः।
याबर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २
तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३
तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४
अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ । ८

सत्य रूप अश्विद्वय के लिए स्तोत्र तैयार करता हूँ और ऐसे प्रेरणा करता हूँ जैसे वायु जलों को प्रेरित करता है। अश्विनीकुमारों ने 'विमद' की स्त्री को, सैन्य प्रेरणा द्वारा 'विमद' के यहाँ पहुँचा दिया ॥ १ ॥ हे असत्य रहित अश्विद्वय ! तुम बलपूर्वक उड़ने वाले, द्रुतवान घोड़ों से उत्साहित हुए थे। यम के प्रिय उस युद्ध प्रतियोगिता में तुम्हारे वाहन ने सहस्रों पर विजय प्राप्त की ॥ २ ॥ हे अश्विद्वयो ! 'तुग्र' ने 'भुज्यु' को समुद्र में उसी प्रकार

त्या जैसे मृतक धन को छोड़ देता है। तुम उसे अपनी अन्तरिक्ष-
नावों (वायुयानों) द्वारा ले आये ॥ ३ ॥ हे असत्य रहित अश्वि-
तुम तीन रात और तीन दिन तक द्रुतगति से चलते हुए रथ द्वारा
' को समुद्र के पार शुष्क स्थान पर ले आये ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! निरा-
समुद्र में पड़े 'भुज्यु' को सौ चप्पे वाली नाव सहित घर पहुँचाया। यह
हारा अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य है ॥ ५ ॥

[८]

मश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६
युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७
हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८
परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्त्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० । ९

हे अश्विद्वय ! दुष्ट घोड़े वाले राजा 'पेदु' को तुमने कल्याणकारी
रङ्ग का अश्व प्रदान किया। तुम्हारा यह महादान प्रशंसा योग्य है। वह
सदा ही युद्धों में विजेता रहा ॥ ६ ॥ हे वीरो ! तुमने स्तुति करते हुए
वान्' की बुद्धि को प्रशस्त किया और वीर्यवान् अश्व के खुर रूप गढ़े
की वर्षा की ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने प्रज्वलित अग्नि को शीतल
शान्त किया। इसे अन्नयुक्त बल दिया। तुमने असुरों द्वारा अन्ध
वारिधि में गिराये हुए अत्रि को प्रकाश में निकाला ॥ ८ ॥ हे
अश्विद्वय ! तुमने मरुभूमि में गौतम ऋषि के पास कुएँ को भेजा।
कर सहस्रों पिपासुओं के लिए जल वर्षा की ॥ ९ ॥ हे सत्य स्व
अश्विद्वय ! तुमने वृद्ध 'च्यवन' का बुढ़ापा कवच के समान हटा

ुओं द्वारा परित्यक्त ऋषि की आयु को बढ़ाकर कन्याओं का पति बना
ा ॥ १० ॥ [६]

तं नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
द्विद्वांसा निधिमिवापगूल्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११
तं नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
ध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२
जोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः ।
ुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३
ास्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
तो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ । १०

हे मिथ्यात्वहीन अश्विदेवो ! कामना के योग्य तुम्हारा रक्षण सामर्थ्य पूजनीय तथा प्रशंसनीय है। तुमने छिपे हुए कोष के समान 'वन्दन' को कुए से निकाला ॥ ११ ॥ हे वीरो ! मेघ का गर्जन वर्षा को प्रकट करता है, वैसे ही मैं तुम्हारे उग्र कर्म को प्रकट करता हूँ। तुम्हारे लिए 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्यङ्' ने अश्व के सिर से मधु-विद्या सिखाई ॥ १२ ॥ बहुतों के पालनकर्ता, असत्य-रहित अश्विद्वय ! तुम्हें वध्रिमती ने आहूत किया। तुमने प्रसन्न होकर हिरण्यहस्त नामक पुत्र उसे दिया ॥ १३ ॥ हे मिथ्यात्व रहित अश्वि-देवो ! तुमने 'वर्तिका' को भेड़िये के मुख से निकाला और रोते हुए 'कण्व' को देखने की शक्ति दी ॥ १४ ॥ राजा 'खेल' की पत्नी का पैर युद्ध में कट गया। तुमने उसके चलने लिए लोहे की जाँघ बना दी ॥ १५ ॥ [१०]

शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७

तं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
वाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८
सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९
रिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वतां अजरयू अयातम् ॥ २० । ११

हे मिथ्यात्व रहित विकराल रूप वाले भिषको ! वृकी को सौ मेष काट कर देने के दण्ड स्वरूप 'ऋज्राश्व' को उसके पिता ने अन्धा कर दिया था। उसके लिए तुमने उत्तम ज्योति वाले नेत्र दिये ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय ! सूर्य-पुत्री तुम्हारे द्वारा विजित हुई, तुम्हारे रथ पर चढ़ गई। उस समय तुम्हारे अश्व तेजी से दौड़ कर सबसे पहले काष्ठ खण्ड (घुड़दौड़ में विजय के लिए चिन्ह स्वरूप) के समीप पहुँचे। तब देवगण ने तुम्हारे कार्य का हार्दिक अनु-मोदन किया ॥ १७ ॥ हे अश्विद्वय ! जब तुम 'दिवोदास' और 'भरद्वाज' के लिए चले तब तुम्हारा रथ ऐश्वर्य से पूर्ण था। उस रथ में बैल और ग्राह जु थे ॥ १८ ॥ हे असत्य रहित अश्विनीकुमारो ! हवि रूप अन्न के तीन भा देने वाले 'जह्नु' की सन्तान को तुमने सुन्दर राज्ययुक्त ऐश्वर्य और पुरुष युक्त आयु को प्रदान किया ॥ १९ ॥ हे मिथ्यात्व रहित अजर अश्वि तुम शत्रु से घिरे जाहुष को रातों-रात सुगम्य मार्ग से ले चले और अप से पर्वतों को चीरकर निकल गये ॥ २० ॥

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१
शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२
अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३
त्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।

विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्ययुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ । १२

हे अश्विदेवो ! इन्द्र सहित तुमने एक दिन में हजारों सुन्दर धनों को पाने के लिए 'वश' ऋषि को सहायता दी और 'पृथुश्रवा' के शत्रुओं को नष्ट किया ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने 'अर्चत्क' के पुत्र 'शर' की प्यास मिटाने को गहरे कुँए के जल को ऊँचा किया और परिश्रान्त 'शयु' के निमित्त वन्ध्या गाय को दूध से पूर्ण कर दिया ॥ २२ ॥ हे अश्विदेवो ! तुम्हारी रक्षा चाहने वाले कृष्ण ऋषि के पुत्र विश्वक को तुमने पशु के समान खोए हुए पुत्र विष्णापू से मिला दिया ॥ २३ ॥ हे अश्विद्वय ! स्रुव के सोम निकालने के समान दस रात और नौ दिन तक जल में पाशों से बँधे हुए आहत 'रेभ' ऋषि को तुमने बाहर निकाला ॥ २४ ॥ हे अश्विदेवो ! मैंने तुम्हारा यश गान किया है मैं सुन्दर गौओं और वीरों से युक्त होकर राष्ट्र का स्वामी बनूँ । नेत्रों से स्पष्ट देखता हुआ, दीर्घायु प्राप्त कर वृद्धावस्था में प्रवेश करूँ ॥ २५ ॥   [१२]

११७ सूक्त

(ऋषि—कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १
यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २
ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३
अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैॠषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ (

ुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३

हे असत्य रहित अश्विदेवो ! प्राचीन आह्वाता तुम्हें मधुर सोम सींचता है। देने योग्य हवि कुशा पर प्रस्तुत है। स्तुति उच्चारण की जा र[ही] हैं। तुम दोनों अन्न बल सहित यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे अश्विदेवो ! मन से भी अधिक वेग वाला सुन्दर अश्वों से युक्त तुम्हारा रथ उपासकों की ओर चलता है, उससे तुम यजमान के घर को प्राप्त होते हो। उसी से हमारे घर आओ ॥ २ ॥ हे पुरुषार्थी अश्विद्वय ! दैत्यों की दुःख रूप माया को दूर करते हुए तुमने समस्त वर्णों से पूजित 'अत्रि' को अन्धकार वाले पाप स्थान (पीड़ा-दायक यन्त्रगृह) से परिवार सहित मुक्त किया ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! अश्वों के समान, दुष्टों द्वारा जल में छिपाये छिन्न-भिन्न शरीर वाले 'रेभ' ऋषि के अङ्गों को तुमने जोड़ दिया। तुम्हारे पुरातन कर्मों में कभी न्यूनता नहीं आती ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! मृत्यु के अङ्क में सोते हुए के समान, अँधेरे [में] छिपे सूर्य के समान, गड़े हुए स्वर्ण के समान 'वन्दन' ऋषि को निकाल [कर] तुमने सुशोभित किया ॥ ५ ॥ [१३

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥
युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥
युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥
पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९
एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
...ासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम्

हे अश्विदेवो ! तुम्हारा सर्वत्र फैला हुआ कर्म "कक्षीवान्" द्वारा प्रशंसा किया गया है । तुमने वेगवान् अश्व के खुर से मनुष्यों के लिए भरपूर जल की वर्षा की ॥६॥ हे अश्विद्वय ! तुमने स्तोता "विश्वक" को उसका पुत्र "विष्णापू" दिया और पिता के घर पर वृद्धा होती हुई "घोषा" को, पति प्रदान किया ॥७॥ हे अश्विद्वय ! तुमने काले वर्ण वाले कण्व को उज्ज्वल वर्ण वाली बड़े घर की पुत्री पत्नी रूप में प्राप्त कराई । तुमने नृषद के पुत्र को यश दिया । तुम्हारा यह कर्म वर्णन करने योग्य है ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुम अनेक रूप धारण करने वाले हो । "पेदु" के निमित्त तुम वेगवान् अश्व को लाए जो कभी पीछे न हटने वाला, बहुत धन देने वाला, शत्रुओं में निर्भय जाकर उन्हें मारने में सहायक तथा विजय दिलाने में समर्थ था ॥९॥ हे कल्याणकारी अश्विदेवो ! तुम्हारे कर्म श्रवण योग्य हैं । वेदमंत्र तुम्हारा स्तोत्र और आकाश पृथिवी वास स्थान है । जब तुम्हें अङ्गिराओं ने बुलाया तब तुम अन्न, बल के साथ आए ॥१०॥ [१४]

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्या रिणीतम् ॥ ११
कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२
युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निःसमुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ ॥ १५ । १५

हे पालनकर्त्ता ! अश्विदेवो ! पुत्र के समान भक्ति से अगस्त्य ने स्तुति की । स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हुए तुमने उस मेधावी "भरद्वाज" को अन्न दिया और "विश्पला" को स्वस्थ किया ॥११॥ हे अश्विद्वय ! "शयु" के रक्षक,

काव्यमय स्तुति से आने वाले तुमने सोने के कलश के समान गड़े हुए "रेभ" को दसवें दिन उबारा ॥१२॥ हे अश्विद्वय ! तुमने वृद्ध "च्यवन" को युवा बनाया । सूर्य की पुत्री ने शोभा से युक्त हो तुम्हारा वरण किया ॥१३॥ हे अश्विद्वय ! तुमको पुरातन स्तोत्र से "तुग्र" ने स्मरण किया । तुम पक्षी की गति से उड़ने वाले अश्वों द्वारा "भुज्यु" को समुद्र से निकाल लाए ॥१४॥ हे अश्विदेवो ! "तुग्र-पुत्र" ने बारम्बार तुम्हारा आह्वान किया । वह समुद्र में बहता हुआ भी पीड़ा से रहित था । उसे अत्यन्त वेगवान् रथ से तुम निकाल लाए ॥१५॥ [१५]

अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६
शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७
शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीनइव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८
मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० । १६

हे अश्विद्वय ! "वर्तिका" ने तुम्हारा आह्वान किया । तुमने उसे भेड़िया के मुख से निकाला । जीतने वाले रथ से पर्वत पर गए । तुमने "विष्वा" के पुत्र को विषयुक्त अस्त्र से मार डाला ॥१६॥ हे अश्विद्वय ! वृकी को सौ भेड़ें देने वाले ऋज्राश्व को उसके पिता ने अन्धा बना दिया । तुमने उसे नेत्र देकर उनमें प्रकाश भर दिया ॥१७॥ वृकी ने अन्धे ऋज्राश्व के लिए प्रार्थना की । ऋज्राश्व ने अल्हड़पन से अमितव्ययी होकर तरुण जार के समान एक सौ एक भेड़ें काट डाली थीं ॥१८॥ हे अश्विद्वय ! तुम सुख देने में समर्थ हो । अङ्ग-हीन को अङ्ग देते हो । इसलिए विश्पला ने तुम्हें बुलाया था, तब तुमने उसकी

रक्षा की थी ॥१६॥ हे अश्विद्वय! तुमने "शयु" के लिए बांझ गाय को दूध से पूर्ण किया। तुमने 'पुरुमित्र' की पुत्री को "विमद" की स्त्री बनाया ॥२०॥ [१६]

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१
आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२
सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम्।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥ २४
एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २५ । १७

हे अश्विद्वय! तुमने खेत जुतवा कर अन्न उपजवा कर, वज्र से दैत्यों को मारते हुए मनुष्यों का परम उपकार किया ॥२१॥ हे अश्विद्वय! तुमने 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्यं' के घोड़े का सिर जोड़ा तब उसने इन्द्र से प्राप्त मधु विद्या तुम्हें सिखाई। वह विद्या तुमको अधिक बल देने वाली हुई ॥२२॥ हे अश्विद्वय! मैं तुम्हारी दया-बुद्धि की याचना करता हूँ। तुम मेरे कार्यों के रक्षक हो। हम को सन्तान युक्त अनिन्द्य धन प्रदान करो ॥२३॥ हे अश्विद्वय! तुमने वध्रिमती को हिरण्यहस्त नामक पुत्र दिया। तुमने तीन टुकड़े हुए 'श्याव' ऋषि को जोड़ कर जीवित कर दिया ॥२४॥ हे अश्विदेवो! तुम्हारे प्राचीन वीर कर्म को ऋषियों ने कहा। तुम्हारी स्तुति करते हुए हम सुन्दर और वीर पुत्रादि से युक्त होकर यज्ञ-कर्म में लगते हैं ॥२५॥ [१७]

११८ सूक्त

(ऋषि—कक्षीवान्। देवता—अश्विनौ। छन्द—

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्व

मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २
प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्ति गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ । १८

हे अश्विद्वय ! बाज के समान उड़ने वाला परम ऐश्वर्यवान् तुम्हारा रथ यहाँ आवे । वह रथ वायु के समान गति वाला और अत्यन्त वेगवान है ॥१॥ हे अश्विद्वय ! तुम तीन काष्ठ वाले रथ से यहाँ आओ । हमारी गौओं को दूध वाली करो, घोड़ों को वेगवान् बनाओ और वीरों की उन्नति करो ॥२॥ अश्विद्वय ! उतरते हुए रथ से सोम कूटने का शब्द सुनो, तुम्हें पूर्वज द... ाश करने वाला कहते हैं ॥३॥ हे अश्विदेवो ! द्रुत वेग वाले घोड़ों युक्त में यहाँ आओ वह आकाश में उड़ते हुए पक्षी के समान आपको यहाँ ... हैं ॥४॥ हे अश्विदेवो ! प्रसन्नवदना सूर्यपुत्री तुम्हारे रथ पर चढ़ी थी रथ को आपके सहित पक्षी रूप अरुण वर्ण के अश्व यहाँ लावें ॥५॥

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥
युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अ...
... श्वेतं पेद्व इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।

जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ६.
ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १०
आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ । १६

हे उपकर्ता अश्विदेवो ! तुमने 'वन्दन' का उद्धार किया, 'रेभ' को बचाया, 'तुग्र' पुत्र को समुद्र से निकाला और 'च्यवन' को युवावस्था दी ॥६॥ हे अश्विद्वय ! तुमने जलाये जाते अत्रि को सुख करने वाला अन्न दिया। कण्व की स्तुति ग्रहण कर उनको नेत्र दिये ॥७॥ हे अश्विदेवो ! प्रार्थी 'शयु' की गौ को दूध वाली बनाया, 'वर्तिका' का दुःख दूर किया और 'विश्पला' की जाँघ ठीक की ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुमने 'पेदु' को इन्द्र द्वारा प्रेरित, शत्रु-नाशक, विकराल ऐश्वर्यशाली श्वेत अश्व प्रदान किया ॥९॥ हे अश्विद्वय ! हम अपनी रक्षा के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हमारी स्तुतियों को स्वीकार कर धनयुक्त रथ से हमारे पास आओ ॥१०॥ हे अश्विद्वय ! तुम बाज की चाल से हमारे पास आओ। मैं इस उषा काल में हवि हाथ में लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥११॥ [१६]

११९ सूक्त

(ऋषि—कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवता—अश्विनौ । छन्द—जगती त्रिष्टुप्)

आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथ सूरिमा वरम् ॥ ३
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४

...रश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
...वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥ ५ । २०

हे अश्विद्वय ! मैं जीवन धारण के निमित्त तुम्हारे बुद्धिमान, वेगवंत, ...त्तम अश्व वाले पूज्य, ध्वजा युक्त, सम्पत्ति से युक्त रथ को हवियों की ओर ...कर्षित करता हूँ ॥१॥ इस रथ के चलने पर हम ऊपर देखते हैं। सब ...ओर से स्तुतियाँ एकत्रित होती हैं। मैं यज्ञ-हवि को सुस्वादु बनाता हूँ। ...ऋत्विज उसकी ओर जाते हैं। हे अश्विद्वय ! तुम्हारे रथ पर सूर्य पुत्री चढ़ी है ॥२॥ हे अश्विदेवो ! परस्पर ईर्ष्यालु परन्तु प्रसन्न चित्त वाले वीर युद्ध द्वारा यश प्राप्ति के लिए एकत्रित होते हैं। तब तुम्हारा रथ नीचे उतरता जाना जाता है। उसी से तुम स्तोता वीर के लिए वरणीय धनों को लाते हो ॥३॥ हे अश्विदेवो ! समुद्र की लहरों में समा कर नष्ट प्रायः हुए 'भुज्यु' को तुमने स्वयं जुड़ने वाले अश्वों द्वारा ले जाकर उसके घर पहुँचाया। "दिवोदास' की जो आपने रक्षा की वह प्रसिद्ध है ही ॥४॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारे सुन्दर अश्वों ने स्वयं जुत कर शोभित रथ को उचित स्थान पर पहुँचाया। सूर्या ने मैत्री भाव के निमित्त आकर 'तुम मेरे पति हो' कह कर तुम्हें वरण किया ॥५॥ [२०]

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६
युवं वन्दनं निऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९
युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० । २१

हे अश्विद्वय ! तुमने 'रेभ' की रक्षा की । 'अत्रि' के लिए अग्नि को शीतल जल से शान्त किया । 'शयु' की गौ को पयस्विनी बनाया और 'वन्दन' को दीर्घायु प्रदान की ॥६॥ हे अश्विद्वय ! तुमने अपनी कुशलता से 'वन्दन' के जीर्ण हुए शरीर को रथ के समान ठीक किया । स्तुतियों से प्रसन्न हुए तुम गर्भस्थ शिशु को भी मेधावी बनाते हो । तुम्हारा कर्म यजमान की रक्षा करे ॥७॥ हे अश्विद्वयो ! दूर देश में रुदन करते हुए 'भुज्यु' के पास तुम गये । तुम्हारी दिव्य रक्षाओं ने वहाँ आश्चर्यजनक कार्य किया ॥८॥ उस मधु-मक्षिका ने मधुर आलाप से तुम्हारी स्तुति की । 'कक्षीवान्' ने सोम के आनन्द में तुम्हें पुकारा । तुमने 'दध्यं' के मन को आकर्षित कर उस पर रखे घोड़े के सिर से मधु विद्या की शिक्षा ली ॥९॥ हे अश्विद्वयो ! तुमने 'पेदु' के लिए संग्राम-विजेता, कुशल, बहुतों द्वारा कामना योग्य, शत्रुओं को वशीभूत करने में इन्द्र के तुल्य, श्वेत रंग का अश्व प्रदान किया ॥१०॥ [२१]

१२० सूक्त

(ऋषिः—उशिक्पुत्रः कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्द—गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप)

का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः । कथा विधात्यप्रचेताः ॥१
विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः । नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥२
ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३
वि पृच्छामि पाक्या न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४
प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् ।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ । २२

हे अश्विद्वयो ! तुम किस स्तुति को चाहते हो ? तुम्हें कौन प्रसन्न कर सकता है ? एक अज्ञानी व्यक्ति तुम्हारी साधना किस प्रकार करे ? ॥१॥ अज्ञानी मनुष्य इन विद्वानों से ही स्तुति और पूजा के ढंगों का ज्ञान प्राप्त करे । इन अश्विनीकुमारों के अतिरिक्त सभी अज्ञानी हैं । यह मनुष्यों पर शीघ्र कृपा करते

॥ हे अश्विद्वय ! तुम विद्वानों का ही हम आह्वान करते हैं। हमको
क योग्य मंत्र बताओ। तुमको हवि देने वाला अत्यन्त भक्ति से नमस्कार
ता है ॥३॥ हे अश्विद्वय ! मैं बालक के समान देवगण से यज्ञ के संबंध में
लाला करता हूँ। अधिक बलवान और भयंकर व्यक्ति से तुम हमारी रक्षा
ती ॥४॥ तुम्हारी स्तुति रूप वाली 'कृपु' के समान आचरण वाले 'घोषा'
क पुत्र में सुशोभित हुई, जिसके द्वारा पज्रवंशी तुम्हारा स्तवन करता है। वह
[२२]
वाणी अत्यन्त ज्ञान से भरी हुई हो ॥५॥

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम्।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम्।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं वृकादघायोः ॥ ६

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८

दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः। तेनाहं भूरि चाकन ॥
अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु। सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११
अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः। उभा ता बस्रि नश्यतः ॥१

हे अश्विदेवो ! तुम मुक मेरी स्तुति श्रवण करो। मैंने तुम्ह
स्तुति की है। तुम अंधों को नेत्रदान करते हो, मेरा भी मनो
करो ॥६॥ हे अश्विद्वय ! तुम विस्तृत धन देते हो। हमारी रक्षा क
पापकर्म वाले चोरों से बचाओ ॥७॥ हे अश्विदेवो ! तुम हमको श
ित न कराओ। हमारी दूध वाली गौएँ बछड़ों से न बिछुड़ें
स्थान को प्राप्त न हों ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारे उपासक, मित्रों
तुमसे याचना करें। तुम हमें बल और धन से युक्त करो। गौओं
को प्राप्ति की सामर्थ्य दो ॥९॥ मैंने अश्विनीकुमारों से बिना वा

वाले रथ को अन्न सहित प्राप्त किया है। मैं उसके द्वारा महान् ऐश्वर्य प्राप्ति की धारणा करता हूँ ॥१०॥ हे धन युक्त रथ! मुझे वहा। यह सुखकारी रथ सोम पीने योग्य स्थानों में पहुँच कर मनुष्यों को प्राप्त होता है ॥११॥ प्रातः कालीन स्वप्न और सम्पदा का उपभोग न करने वाला धनिक दोनों ही प्रकार से उपेक्षा के पात्र हैं। यह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ [२३]

१२१ सूक्त [अठारहवाँ अनुवाक]

(ऋषिः—औशिजः कक्षीवान्। देवता-विश्वेदेवा इन्द्रश्च। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप।)

कदित्था नृँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन्।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १
स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २
नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद्द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४
तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ । २४

मनुष्यों के रक्षक इन्द्र देव भक्त अङ्गिराओं की प्रार्थना कब सुनेंगे? वे जब गृहस्थ यजमान के समस्त यज्ञकर्ताओं को अपने सब ओर देखेंगे तब अत्यंत उत्साह पूर्वक शीघ्रता से प्रकट होंगे ॥१॥ उस मेधावी 'धीर' पुरुष ने आकाश को धारण किया, अन्न के निमित्त गौओं को पुष्ट किया और धन के लिए पृथिवी को सींचा। उसने अपनी महानता से उत्पन्न प्रजाओं पर कृपा की। अश्व (सूर्य) की भी पृथिवी को माता बनाया ॥२॥ उषाओं के स्वामी इन्द्र, अङ्गिराओं के आह्वान पर नित्य आते थे। उन्होंने हननशील वज्र बनाया और दुपाए, चौपायों के लिए आकाश को धारण किया ॥३॥ हे इन्द्र! तुमने इस

सोम से पुष्ट होकर गौओं का समूह सचमुच दान किया। जब तुम्हारा त्रिकोण वज्र शत्रुओं का हनन करता है, तब मनुष्यों को दुःख देने वाले पणि के द्वारों को गौओं के निकलने के लिए खोल देता है ॥४॥ शीघ्र कार्य करने वाले इन्द्र के लिए पिता-माता आकाश और पृथिवी उत्पादन शक्ति युक्त बलप्रद दुग्ध लाए थे। उस समय अमृत रूप दुग्ध वाली गौ का दूध रूप धन तुमको भेंट किया था ॥५॥ [२४]

अव प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७
अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८
त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥ ६
पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥ १० । २५

तब द्रुतगामी सूर्य रूप इन्द्र उषा के समीप प्रकाशित हुए। यह शत्रु-विजयी हमको प्रसन्न करें। जैसे चमकती हुई हवियों से स्रुव के द्वारा सिंचन करता हुआ सोम साधकों के हृदयों को प्राप्त होता है ॥६॥ हे इन्द्र! विद्वानों के यज्ञ में इन्द्रियों को निग्रह करने वाला तेज खूब चमकता है। गाड़ीवान, पशु-रक्षक और शीघ्रता से कार्य करने वाले सभी प्राणी अपने कार्यों को करते हैं, यह तुम्हारे किरण-दान का ही प्रतिफल है ॥७॥ हे इन्द्र! प्रकाश को छिपाने वाले कूप का खंडन करने के लिए तुम विशाल आकाश से आठ घोड़ों को लाए। उस समय साधकों ने तुम्हारे निमित्त दूध में भीगे हुए सोम का रस पाषाणों से कूटा ॥८॥ बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ने त्वष्टा द्वारा प्रयुक्त लौह वज्र को चर्म द्वारा आकाश से फेंका। उस समय शुष्ण को अस्त्रों से घेर कर कुत्स की रक्षा की (वज्र को फेंकते समय चमड़े के दस्ताने पहिन लिए जाते

हैं।) ॥६॥ हे वज्रिन ! सूर्य के अन्धकार में विलीन होने से पूर्व ही वृत्र को घोर वज्र छोड़ो। आकाश के ऊपर 'शुष्ण' (अनावृष्टि रूपी दैत्य) का जो अभेद्य बल है, उसे भेद डालो ॥१०॥ [२५]

अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम ॥ ११
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नृन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥ १२
त्वं सूरो हरितो रामयो नृन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।
प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥ १३
त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।
प्र नो वाजान्रथ्यो अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥ १४
मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥ १५ । २६

हे इन्द्र ! महान् आकाश और पृथिवी तुम्हारे वृत्र-वध के कार्य से अत्यंत पुष्ट हुए हैं। तुमने उस वराह के समान वृत्र को अपने घोर वज्र से मार कर जलशायी कर दिया ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम जिन मनुष्यों का हित करने वाले घोड़ों का पालन करते हो, उन पर चढ़ो। कवि के पुत्र "उशना" ने वृत्र-नाशक वज्र तुम्हें दिया था, उसे तीक्ष्ण करो ॥१२॥ हे इन्द्र ! तुमने सूर्य के स्वर्णिम अश्व को रोक दिया। वह रथ के पहिये को न चला सका। तुमने अयाज्ञिकों और राक्षसों को नब्बे नदियों के पार फेंक दिया ॥१३॥ हे वज्रिन् ! तुम इस निकटवर्ती दारिद्र्य रूप पाप से हमारी रक्षा करो। अन्न, यश, प्रिय एवं सत्यवाणी, रथ, अश्व आदि हमको प्रदान करो ॥१४॥ हे यज्ञों के कारण भूत, प्रतापी, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम्हारी जो दया-बुद्धि हमारी ओर है वह न्यून न हो। हमारे पास सब अन्न रहे। हमको गौएँ प्रदान करो। हम तुम्हारी स्तुति करते हुए अत्यंत प्रसन्नता और पुष्टि प्राप्त करें ॥१५॥ [२६]

॥ अष्टम अध्याय समाप्तम ॥

द्वितीय अष्टक

प्रथम अध्याय

१२२ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषिः—कक्षीवान्। देवता–विश्वेदेवाः। छन्द—पंक्ति—त्रिष्टुप)

प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४
आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ । १

हे द्रुतगामी मरुद्गण ! हम रुद्र के निमित्त अन्न रूप हवि-दान ... करता हूँ। वे अ...
हैं। मैं उन आकाश के वीरों के सहित उनकी स्तुति करता हूँ। वे अ... शत्रुओं को निरस्त...
और पृथिवी के वीरों के समान अस्त्र धारण कर शत्रुओं को निरस्त...
हैं ॥१॥ पति के बुलाने पर पत्नी शीघ्र उपस्थित होती है, वैसे ही अहोरात्र...
हमारे प्रथम आह्वान पर पधारें। रात्रि धूम्र वर्ण के वस्त्र वाली है और...

सूर्य की किरणों से युक्त अत्यंत सुन्दर दिखाई पड़ती है ॥२॥ दिन वाला गतिवान् सूर्य हमको प्रसन्नता देने वाला हो । जल-वर्षक वायु हमको आनन्द-प्रद हो । इन्द्र और पर्वत हमको उत्साहित करें । विश्वेदेवा हमको धन दान करें ॥३॥ हे ऋत्विजो ! मुझ उशिज-पुत्र के लिए हवि-भक्षक और स्तुत्य अश्विनीकुमारों का आह्वान करो । हे मनुष्यो ! तुम जलों के पुत्र की पूजा करो और स्तोताओं की मातृ भूत पृथिवी और आकाश का भी स्तवन करो ॥४॥ मनुष्यो ! मैं उशिज-पुत्र कक्षीवान्, गर्जनशील इन्द्र का तुम्हारे लिए आह्वान करता हूँ । घोषा नामक नारी ने रोग निवृत्ति के लिए अश्विद्वय का आह्वान किया, वैसे मैं भी करता हूँ । मैं दानशील पूषा की स्तुति करता हुआ अग्नि संबंधी धनों की याचना करता हूँ ॥५॥ [१]

श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥ ७
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥ ९
स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० । २

हे मित्र और वरुण ! मेरी पुकार सुनो । यज्ञ-गृह तथा चारों ओर से मेरे आह्वान पर ध्यान दो । हमारे खेतों में जल-वर्षक देव वर्षा करें ॥६॥ हे मित्र-वरुण ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुम मुझ पज्रवंशी को सौ गौएँ दो । सुन्दर रथ में बैठकर शीघ्र यहाँ आओ और मुझे पुष्ट करो ॥७॥ मैं इन महान् वैभवशाली देवों की स्तुति करता हूँ । हम मनुष्य इस सुन्दर धन का उपभोग करें । ये देवता अंगिराओं को बहुत अन्न प्रदान करते और मुझे

रथादि युक्त धन देते हैं ॥८॥ हे मित्र वरुण ! जो द्रोही कुटिलतापूर्वक तुम्हा लिए सोम निष्पन्न नहीं करता, वह अपने हृदय में यक्ष्मा रोग धारण करता है जो नियम पूर्वक रहता हुआ तुम्हारी स्तुतियाँ करता हुआ सोम तैयार करत है वह तुम्हारा कृपा-पात्र होता है ॥९॥ वह व्यक्ति दानवान्, बलवान्, उत्त यश वाला, त्यागी होता हुआ शत्रुओं को परास्त करता है और विकरा मनुष्यों से भी नहीं डरता ॥१०॥ [२]

अध रमन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११
एतं शर्ध धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥ १२
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४
चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥ १५ ।

हे हर्षदाता, अविनाशी देवताओ ! स्तोता का आह्वान सुनो। तुम आकाश में वेग से चलते हुए आकर पुकारने वाले को महत्त्वपूर्ण धनों को दे हो ॥११॥ 'जिस स्तोता ने दस चमसों में रखे हुए सोम के निमित्त हमार आह्वान किया है, उसके लिए बल धारण करेंगे'—देवताओं ने ऐसा कहा। इ देवताओं में यश और धन शोभा पाते हैं। यह देव हमारे यज्ञों में अन्न सेव करें ॥१२॥ ऋत्विज् दश चमसों में रखे सोम रूप अन्न से पुष्ट करते चलते हैं अभीष्ट अश्व और अभीष्ट रासों वाले मनुष्य क्या स्वयं सामर्थ्य वाले हैं? देव ही इन मनुष्यों को और इनके विजयशील घोड़ों को प्रेरित करते हैं ॥१३॥ विश्वेदेवा हमको कानों में स्वर्ण, ग्रीवा में मणि पहनने वाले सुशोभित पुत्र क देने की इच्छा करें। उषा काल में स्तुति और हव्य को ग्रहण करें ॥१४॥ हे मित्र-वरुण ! 'मशर्शार' राजा के चार और 'आयवस' राजा के तीन बाल

गोड़े मिले हैं। तुम्हारा अति सुन्दर सुशोभित रथ सूर्य के समान चमकता है ॥१२॥ [३]

१२३ सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवान् । देवता–उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३
गृहङ्गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४
भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥ ५ । ५

दक्षिण की ओर उषा का रथ जुड़ गया। अमर देवता इस पर चढ़ गए। रोगों का नाश करने वाली उषा आकाश से उठ पड़ी ॥१॥ धन को जीतने वाली उषा सबसे पहिले जागी। यह युवती है, बार बार प्रकट होती है। हमारे आह्वान पर यह सबसे पहले आती है ॥२॥ हे उत्तम प्रकार से उत्पन्न उषे ! तुम मनुष्यों को प्रकाश या यश का भाग देती हो। दान के प्रेरक देव, सूर्योदय होने पर हमको पाप रहित मान कर स्वीकार करें ॥३॥ नित्य प्रति उषा अपने महान् रूप से प्रत्येक घर में जाती है। वह कांतिमती सदा धन देने की इच्छा करती हुई श्रेष्ठ धनों को बाँटती है ॥४॥ हे दयामयि उषे ! तुम भग (सूर्य) की बहिन और वरुण की पुत्री हो। तुम स्तुति की पूर्व सुनो। पापियों को पीछे धकेल दो, उन्हें हम तुम्हारे द्वारा प्रेरित रथ से पराजित करें ॥५॥ [४]

उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।

ार्हा वसूनि तमसापगूव्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६
पान्यदेत्यभ्य न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
रिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७
दृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
नवद्यास्त्रिशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥८
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९
कन्येव तन्वा शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० । ५

हमारे मुख स्तुति गावें, बुद्धियाँ उन्मुख हों, प्रदीप्त अग्नि वृद्धि को प्राप्त हो। अत्यन्त कांति वाली उषा अन्धकार में छिपे हुए धनों को प्रकट करे ॥६॥ एक के हटने पर दूसरा आता है। भिन्न-भिन्न रूप वाले रात और दिन गतिशील हैं। एक सब पदार्थों को छिपाता और दूसरा प्रकाशमान रथ द्वारा प्रकट करता है ॥७॥ उषा जैसी आज है, कल भी वैसी ही थी। यह वरुण के स्थान में बहुत देर तक वास करती है। यह तीसों दिन आकाश की परिक्रमा करती रहती है तथा प्रति दिन अपने नियत स्थान को प्राप्त होती है ॥८॥ दिन के प्रारम्भिक काल को जानती हुई, अन्धकार से चमकती हुई उषा उत्पन्न हुई है। यह युवती प्रतिदिन नियत स्थान पर पहुँच जाती है तथा नियमों का उल्लंघन कभी नहीं करती ॥९॥ हे देवि! तुम कन्या के समान अपने शरीर को विकसित कर प्रकाशमान् सूर्य को प्राप्त होती हो। फिर युवती की तरह कांतिवती तुम मुसकराती हुई हृदय देश को खोल देती हो ॥१०॥ [५]

सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रम्भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ।६

हे उषे ! माता द्वारा उबटन कर स्वच्छ की हुई कन्या के समान रूपवती तुम अपने शरीर को दिखाती हो। हे कल्याण कारिणी ! दूर तक प्रकाशित होओ। विगत उषाऐं अब तुम्हारी कांति को प्राप्त नहीं करेंगी ॥११॥ अश्व, गौ से युक्त, वरणीय, सूर्य की किरणों से स्पर्द्धा वाली उषायें कल्याणकारी रूपों को धारण करती हुई चली जाती और लौट-लौट कर आती हैं ॥१२॥ हे उषा ! ऋत की डोरी के अनुकूल चलती हुई हमें सुमति प्रदान करो। हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम आकाश से भूलोक को भर दो और हमको धन प्रदान करो ॥१३॥ [६]

१२४ सूक्त

(ऋषिः—कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १
अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ । ७

अग्नि के प्रदीप्त होने, उषा के आविर्भूत होने और सूर्य के उदय होने पर विस्तृत प्रकाश फैल गया। फिर सविता देव ने दुपायों और चौपायों को कर्मों में प्रेरित किया ॥१॥ देव-नियमों में अटल, मनुष्यों को क्षीण करने वाली

निरंतर विगत होती हुई उषा साकार हुई । भविष्य में आने वाली उषाओं में यह प्रथम उषा मुसकरा रही है ॥२॥ ज्योतिर्मय वसन धारण किए यह आकाश की पुत्री अकस्मात् ही सामने आ गई । यह नियमों में दृढ़ रहती हुई सब दिशाओं को जानती है और उन्हें विनष्ट नहीं होने देती ॥३॥ जैसे सूर्य अपना वक्षस्थल दिखाते हैं, नोधा अपनी प्रिय वस्तुओं को बनाते हैं, वैसे ही उषा ने अपने को प्रकट किया है । गृहस्थ पत्नी सर्व प्रथम जागती और फिर सब को जगाती है, उषा भी उसी के समान वर्तती है ॥४॥ नद्यादि को उत्पन्न करने वाली उषा ने अंतरिक्ष के मध्य में ध्वजा रूप तेज को प्रकट किया । वह आकाश पृथिवी रूप माता पिता की गोद को भरती हुई सर्वत्र फैलती है ॥५॥ [७]

एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६
अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० । ८

प्रत्यक्ष में महान् यह उषा अपने पराये का ध्यान रखे बिना सभी को प्राप्त होती है । वह पाप रहित शरीर से बढ़ती हुई छोटे या बड़े किसी से भी नहीं हटती ॥६॥ बिना भाई की बहिन के समान उषा पश्चिम की ओर मुख करके चलती है । धन प्राप्ति के लिए रथारूढ़ होने वाले के समान विजयिनी बनी हुई सुन्दर वस्त्र पहिन कर शोभायुक्त नारी के समान अपना स्वरूप दिखाती है ॥७॥ रात्रि रूप बहन, अपनी बड़ी बहन उषा के लिए स्थान

धोवती हुई हरती है। उत्सव में जाने वाली नारियों के समान उषा सूर्य रश्मियों से अपने को सजाती हैं ॥८॥ इन सब बहन रूपिणी उषाओं में पहली दूसरी के पीछे-पीछे नित्य चलती हैं। उन प्राचीन उषाओं के समान नवीन उषा प्रकट होकर हमको धनों से युक्त करें ॥९॥ हे धनवती उषे! दान-शीलों को चैतन्य करो। लोभीजन सोते रहें। तुम मनुष्यों की आयु क्षय करने वाली मनुष्यों को धन से युक्त करो और स्तोता के लिए धनवाली होकर फैलो ॥१०॥ [८]

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ । ९

यह युवती पूर्व दिशा से उतर रही है। इसके रथ में अरुण बैल जुते हैं। जब यह मुसकराएगी तब इसका प्रकाश फैलेगा। और घर-घर में अग्नि प्रदीप्त होगी ॥११॥ हे उषे! तुम्हारे खिलते ही पक्षी भी घोंसला छोड़ देते हैं। मनुष्य भी अन्न के लिए कर्म करने लगते हैं। तुम हविदाता को अत्यंत धन देने वाली हो ॥१२॥ हे स्तुति-पात्र उषाओ! मेरे स्तोत्र तुम्हारी स्तुति करें। तुम वृद्धि को प्राप्त होओ और तुम्हारे रक्षा-साधनों पर निर्भर रहते हुए हम असंख्य धन प्राप्त करें ॥१३॥ [९]

१२५ सूक्त

(ऋषिः—कक्षीवान् दैर्घतमसः । देवता—दम्पती । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १

सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३
उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥ ४
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥ ६
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ । १०

दानशील व्यक्ति प्रातः काल होते ही धन-दान करता है, विद्वान् उसे ग्रहण करते हैं । वह उस धन से सन्तान, आयु और बल युक्त हुआ रक्षित होता है ॥१॥ वह असंख्य गौ, घोड़े, सुवर्ण से युक्त होता है । इन्द्र उस दानी को महान् सामर्थ्य देते हैं । वे प्रातःकाल ही आकर धनों से उसे आबद्ध कर देते हैं ॥२॥ मैं आज शोभन कर्म वाले यज्ञ को देखने के लिए रथ पर चढ़ कर आगया । हे यजमान ! तू बलों के स्वामी इन्द्र को हर्षदायक सोम निचोड़ कर पिला और स्तुति-गान से उन्हें प्रसन्न कर ॥३॥ कल्याणकारिणी गौ रूप नदियाँ यज्ञ की इच्छा करने वाले यजमान के निकट प्रवाहित होती हैं । यज्ञ की इच्छा करने वाले दानी को घृत की धारायें सब ओर से प्राप्त होती हैं ॥४॥ दानी का स्वर्ग में भी सत्कार होता है । वह देवताओं में पहुँचता है । नदियाँ उसके लिए जल रूप घृत प्रवाहित करती हैं । उसकी दी हुई दक्षिणा सदा बढ़ती रहती है ॥५॥ दानियों के पास विभिन्न ऐश्वर्य हैं । दानी के लिए ही आकाश में सूर्य स्थित है । दानी अपने दान रूप अमृत से ही दीर्घायु प्राप्त करता है ॥६॥ दानी दुःख नहीं पाता । उसे पाप नहीं घेरता ।

नियमों में दृढ़ स्तोता क्षीण नहीं होता। उनसे भिन्न व्यक्ति ही पाप के शिका
होते हैं। सब शोक दान-हीन को ही व्याप्त होते हैं ॥७॥ [१०]

१२६ सूक्त

(ऋषिः—कक्षीवान्। देवता-विद्वांसः। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप।)

अमन्दान्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः॥ १
शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्सद्य आदम्।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान॥ २
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम्॥ ३
चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः॥ ४
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः॥ ५
आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता॥ ६
उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका॥ ७ ११

मैं सिंधु नदी के तट पर वास करने वाले राजा भावयव्य के लि
बुद्धि द्वारा स्तोत्र भेंट करता हूँ। उस राजा ने यश की इच्छा से मेरे निमि
सहस्र यज्ञानुष्ठान किए हैं ॥१॥ मुझ कक्षीवान ने भेंट करते हुए राजा के स
स्वर्णहार, सौ सुन्दर अश्व और सौ गायें ग्रहण कीं। उस राजा का अक्षय यश
आकाश तक फैल रहा है ॥२॥ स्वनय के दिए हुए विभिन्न वर्णों के अश्व औ
दस रथ, मुझे प्राप्त हुए। साठ हजार गौयें भी मिलीं, जिन्हें मुझ कक्षीवान् ने
ग्रहण कर अपने पिता को भेंट कर दिया ॥३॥ हजार गौओं की कतार के आगे

स रथ चले आए। स्वर्णाभूषणों से युक्त अश्वों को कक्षीवान के पुत्र मलने
लगे ॥४॥ हे पज्रवंशियो ! मैं प्रथम दान के अनुसार तुम्हारे लिए तीन जुते
हुए रथ और आठ उत्तम गौयें लाया हूँ। कुटुम्ब वाले पज्रवंशी लोग शकट से
युक्त होकर यश के इच्छुक हों ॥५॥ मेरी पत्नी सह स्वामिनी के रूप से युक्त
(स्वनय राजा) को सैकड़ों प्रकार के भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करती
है। वह मेरी अत्यन्त प्रेम रखने वाली सहधर्मिणी है ॥६॥ (पत्नी कहती है)
मुझे पास आकर स्पर्श करो। मुझे अल्प रोम वाली न समझो। मैं गांधारी के
समान रोम वाली और अवयवों से पूर्ण हूँ। (पत्नी कहती है) हे प्रियतम !
तू मेरे समस्त अङ्गों का निरीक्षण कर, मेरे गुण अवगुण पर पूर्ण रूप से विचार
कर। तुम मेरे अङ्गों, गुणों और गृह कार्यों को तनिक भी हानिकारक न
पाओगे ॥७॥ [११]

१२७ सूक्त

(ऋषिः—परुच्छेपः। देवता—अग्नि। छन्द—अष्टि, शक्वरी।)

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं
सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १
[illegible] त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो
भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः।
वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३

द्व्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठा
भिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र: य पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्नानि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः
सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥५ १२

मैं सर्व उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता, बल के पुत्र अग्नि को देवताओं का आह्वान करने वाला मानता हूँ। वे यज्ञ प्रवर्त्तक घृत को अपनी ज्वालाओं से अनुगमण कर देवगण की कृपाओं को प्राप्त कराते हैं ॥१॥ हे मेधावी प्रदीप्तिमान् अग्ने! अङ्गिराओं में तुम सर्वश्रेष्ठ को स्तोत्रों से आहूत करते हैं। वे तुम्हारे ज्वाला रूप धाल हैं। तुम अभीष्टों की वर्षा करते हो और प्रदीप्त हुए आकाश की ओर जाते हो। तुमको यह मनुष्य अपनी रक्षा के लिए धारण करते हैं ॥२॥ यह प्रचंड रूप से दहकते हुए अग्नि शत्रुओं का हनन करते हैं। अत्यन्त दृढ़ भी उनके स्पर्श से छिन्न भिन्न हो जाता है। वे तेजस्वी धनुर्धारी के समान डटे रहते हैं, कभी पीठ नहीं दिखाते ॥३॥ अत्यन्त दृढ़ भी इनके वश में रहते हैं। हविदाता अपनी रक्षा के लिए हवि देते हैं। यह उस द्रव्य को वृक्ष की तरह खा जाते हैं। यह अन्नों को अपने बल से पकाते और दृढ़ द्रव्यों को नष्ट करने में समर्थ हैं ॥४॥ हम इस अग्नि के लिए अन्न धारण करते हैं। यह अग्नि रात्रि में अधिक दर्शनीय होते हैं। यह दिन में पूर्ण तेजस्विता प्राप्त नहीं करते। पुत्र के लिए पिता की शरण के समान आश्रय देते हैं। भक्त या अभक्त सभी का अन्न खाते हैं। हवि-भक्षण करने वाले यह कभी वृद्ध नहीं होते ॥५॥ [१२]

स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरा
स्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।

आदद्व्यान्यददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे
जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६
द्विता यदी कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त
भृगवो मथ्नतोदाशा भृगवः ।
अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधींर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७
विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं
दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८
त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे
देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९
प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे
पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये ।
प्रति यदीं हविष्मान्विश्वासु क्षासु जोगुवे ।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥ १०
स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः
सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।
महि शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥ ११ । १३

मरुतों के समान यह अग्नि उर्वरा और मरुभूमि दोनों में यज्ञ योग्य है। वह यज्ञों में ध्वज रूप हुए हव्य भक्षण करते हैं। अग्नि के उत्तम मार्ग

शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३
स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य
चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।

क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४
क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां
न भोज्येषिराय न भोज्या ।

स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना ।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥ ५

यह पूजनीय होता अग्नि मनुष्यों द्वारा अरणियों से उत्पन्न हुए। साधकों की सब बात सुनते हैं। वे यशस्वी को धन के समान हैं। यह कभी पीड़ित न होने वाले होता रूप से पूजा स्थान में विराजते हैं ॥१॥ हम अत्यंत विनम्र हुये यज्ञानुष्ठान घृतादि युक्त हवि भेंट करते हुये अग्नि का स्तवन करते हैं। वे हमारी हवियों को ग्रहण कर बढ़ेंगे। जैसे मातरिश्वा ने अग्नि को दूर से लाकर मनु के लिए प्रदीप्त किया, वैसे ही हमारे यज्ञ स्थान में अग्नि दूर से आकर प्रदीप्त हों ॥२॥ सदा स्तुत्य, हवियुक्त, अभीष्टदाता, समर्थ अग्नि वेदी के चारों ओर शब्द करते हुए प्राप्त होते हैं। वे स्तोत्र ग्रहण करते हुये उत्तम यज्ञ में तुरन्त प्रदीप्त होते हैं ॥३॥ पुरोहित रूप अग्नि यजमान के घर में अविनाशी यज्ञ के ज्ञाता हैं। वे कर्मों का फल देने की इच्छा से हवि ग्रहण करते हैं। वे अतिथि रूप से घृत भक्षण करने वाले हविदाता को अभीष्ट देते हैं ॥ ४ ॥ जैसे मरुद्गण भक्ष्य द्रव्य को एकत्र करते हैं। वैसे ही मनुष्य भक्ष्य पदार्थों को एकत्र कर अग्नि को हवि देते हैं, तब वह दान की प्रेरणा करते हुए हविदाता को पाप कर्मों से बचाते हैं ॥ ५ ॥ [१४]

विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न
शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत् ।

विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६
स मानुषे वृजने शन्तमो हितोऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो
न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः ।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते ।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७
अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं
न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥ ८ । १५

अग्नि रूप ये सब के स्वामी दर्प हाथ में धन लेकर परोपकारार्थ दौड़ते हैं। ये स्तोता की हवियाँ देवताओं को पहुँचाते हैं। सुकर्म वालों को उत्तम धन भंडारों के द्वार खोल देते हैं ॥६॥ ये अग्नि वेदी में राजा के समान स्थापित किये गए हैं। ये मनुष्यों की स्तुतियों के साथ दी गई हवियों के स्वामी हैं। यह हमें वरुणादि देवगण के कोप से बचाते हैं ॥ ७ ॥ धन-धारक, अत्यंत चैतन्य, प्रिय होता अग्नि की यजमान पूजा करते हैं। सब के प्राण रूप, धनेश, यजन योग्य मेधावी अग्नि के समीप सब देवगण धन की कामना वाले की रक्षा के लिए पहुँचते हैं ॥ ८ ॥   [१५]

१२६ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः। देवता—इन्द्र। छन्द—अष्टिः, शक्वरी।)

यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका
सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य

इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्त ये नृभिः ।
यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २
दस्मो हि्ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं
शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥३
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं
प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥४
नि षू नमातिमतिं कयस्य
चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ । १६

हे बली इन्द्र ! तुम अपने रुके हुए रथ को यज्ञ में पहुँचने के लिए बढ़ाते हो । तुम हमारी रक्षा करो । बल दो और हमारी वाणी को ज्ञानियों की वाणी के समान सुनो ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम संग्राम में आहूत होने पर बल देने में समर्थ हो । बुद्धिमानों के साथ यज्ञ को प्रेरणा करते हो । युद्ध के लिए वेगवान् घोड़े को बुलाने के समान ऐश्वर्यवान् साधक तुम्हारी साधना करते हैं । ॥२॥ हे वीर ! तुम त्वचा रूप मेघ को तोड़ते हो । विरोधियों के पास नहीं जाते । मैं तुम्हारे लिए आकाश, रुद्र, मित्र और वरुण के लिए उस प्रसिद्ध स्तोत्र को कहता हूँ ॥३॥ मनुष्यो ! तुम्हारी रक्षा के लिए सब के प्राण रूप इन्द्र से याचना करते हैं । हे इन्द्र ! सब युद्धों में हमारी रक्षा करो । तुम्हारा बल उल्लंघन योग्य नहीं है । तुम सब शत्रु-समूह पर छा जाते हो ॥४॥ हे उग्र कर्म वाले इन्द्र ! शत्रु के मिथ्याभिमान को भंग करो ।

अपने रक्षा-साधनों से उचित मार्ग पर ले चलो। तुम पाप-रहित हो, फिर भी पाप-रहित होकर मनुष्यों के पाप दूर करते हो। तुम हमारे समीप ठहरो ॥५॥ [१६]

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म
रेजति रक्षोहा मन्म रेजति।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं
रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम्।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो
दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम्।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८
त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ
अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदापाह्यभिष्टिभिः ॥ ९
त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा
सक्षदवसे महे मित्रं नावसे।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १०
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां
देवः सन्दुर्मतीनाम्।

हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ।१७

मैं सोम से प्रार्थना करूँ जो इन्द्र को बुलाने योग्य स्तोत्र की प्रेरणा देते हैं। वह निंदक की कुमति को हमसे दूर करें। पाप का समर्थक नष्ट होकर गिरे ॥६॥ हे इन्द्र ! हम ध्यानपूर्वक वीरतायुक्त, रमणीय, रक्षा वाले धन को मांगते हैं। सुन्दर स्तोत्रों और हवियों से प्रसन्न करते हैं। सत्य हार्दिक आह्वान करते हुए तुम्हें पूजते हैं ॥७॥ मनुष्यो ! तुम्हारे और हमारे रक्षक इन्द्र बुरी बुद्धि वालों को दूर करें। उन्हें चीर डालें। जो वज्र हमारे लिए दैत्यों ने चलाई है, वह लौट कर उन्हीं को मारे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम धन के लिए हमको प्राप्त हो ओ। तुम दूर हो तो भी हमारे साथ रहो दूर या पास जहाँ कहीं हो, हमारी रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे अत्यंत बली, पालक अमर इन्द्र ! तुम हमको धन सहित प्राप्त होओ। यश के लिए बल दो हमारे द्रोहियों को पीड़ित करो ॥ १० ॥ हे स्तुत्य इन्द्र ! पापियों का प... करने वाले, दैत्यों के नाशक, स्तोताओं के रक्षक, पीड़ाओं से हमारी ... करो। हे धनेश, हे वज्रिन् ! इसीलिए तुम प्रकट हुए हो ॥ ११ ॥ [१७

१३० सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः। देवता—इन्द्र । छन्द—अष्टि, त्रिष्टुप्)

एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा
विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्प...
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये
पिवा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन
सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सू...
आविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं

परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३
दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव
तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४
त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो
रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ । १८

जैसे अश्व यज्ञ को प्राप्त होते हैं, वैसे ही हे इन्द्र ! तुम दूर हो तो भी हमको प्राप्त होओ । हम सोम निचोड़ कर यज्ञ के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं । पुत्र द्वारा पिता को बुलाने के समान हम तुम्हें बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! पत्थर से निचोड़े गए इस सोम का पान करो । यह तुम्हारे बल, कीर्ति और पुष्टि का वर्द्धक हो । तुम्हारे अश्व सूर्य के अश्वों के समान यहाँ आवें ॥ २ ॥ अङ्गिराओं में प्रधान इन्द्र ने पर्वत की गुफा में छिपे हुये खजाने को ढूँढ कर पाया । उन्होंने गौओं के गोष्ठ के समान उसे खोल दिया ॥ ३ ॥ इन्द्र ने वज्र को खूब पैनाया । हे इन्द्र ! तुम बल से युक्त होकर उस वृत्र को बढ़ई के समान काटते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुमने नदियों को समुद्र की ओर जाने के लिए रथों के समान छोड़ा है । इन नदियों ने नष्ट न होने वाले धन का सम्पादन किया है, जैसे गौएँ मनुष्यों को पुष्टिप्रद धन देती हैं ॥ ५ ॥   [१८]

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः
स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः ।
शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।

अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६
भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि
दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु
शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८
सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो
मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ६
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥ १० ॥ १६

हे इन्द्र ! धनेच्छुक मनुष्यों ने तुम्हारे लिए स्तोत्र रचे हैं । उसी प्रकार, जैसे चतुर कारीगर रथ बनाता है । वे तुम्हारा श्रृंगार करते हैं, तुम्हारे अश्व को सजाते हैं । धन की प्राप्ति के लिए यह सब करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "पुरु" और "दिवोदास" के लिए शत्रु के दुर्गों को तोड़ा । अपने तेज से "अतिथिग्व" को महान् धन दिया और "शम्बर" को पर्वत से गिरा दिया ॥ ७ ॥ इन्द्र ने अपने साधक की अत्यन्त रक्षा की, व्रतहीनों को दण्ड दिया । वे दस्युओं और लालचियों को नष्ट करने वाले हैं ॥ ८ ॥ सूर्य के उदय होते ही प्रकाश पुञ्ज बढ़ा । उसकी लाली ने पापियों की वाणी छीन ली । हे इन्द्र ! तुम स्नेह वश दूर से रक्षा के लिए यहाँ आये । तुम शीघ्रता से सब धनों को देते हो ॥ ९ ॥ हे शत्रु-दुर्ग भंजक इन्द्र ! तुम नए स्तोत्रों, अनुष्ठानों

और सहायताओं से हमारी रक्षा करो। दिवोदास के वंशजों की स्तुति से दिन से आकाश के बढ़ने के समान वृद्धि को प्राप्त होओ॥ १०॥ [११]

१३१ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—इन्द्र । छन्द—अष्टि)।

इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी
वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः।
इंद्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥ १
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः
पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक्।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता
गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः
सासहानो अवातिरः।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते।
महीममुष्णा पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो
यदाविथ सखीयतो यदाविथ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५

उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य र्कस्य बोधि हविषो
हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः ।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात
मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ । २०

इन्द्र के लिए आकाश नत हुआ, पृथिवी झुक गई, यजमान बहुत अन्न के लिये झुका है। सभी देवताओं ने एक मत होकर इन्द्र को अग्रगण्य बनाया। मनुष्यों द्वारा दी गई सोम युक्त आहुतियाँ इन्द्र को प्राप्त हों ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सभी सोमयागों में यजमान सभी के प्रतिनिधि रूप तुम्हें हव्य देते हैं। नाव के समान पार लगाने वाले इन्द्र को यज्ञों द्वारा चैतन्य करते हुए सेना के आगे स्थापित करते हैं। मनुष्य स्तोत्रों द्वारा उनका चिन्तन करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! रक्षा चाहने वाले गृहस्थ अपनी पत्नी सहित गौओं की प्राप्ति के लिए तुम्हारे चारों ओर इकट्ठे होते हैं। उनके यज्ञादि कर्मों से अभीष्ट फल दो। तुमने अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट किया है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पराक्रम को मनुष्य जानते हैं। तुमने अयाज्ञिकों के गढ़ों को नष्ट किया है। तुमने उन शत्रुओं को दंडित किया है। तुमने विशाल पृथिवी और जलों को जीता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! सोम से आनन्द प्राप्त कर अभीष्ट देने वाले होओ। अपने साधकों के रक्षक बनो। यजमान के लिए तुम युद्धों में प्रवृत्त होते हो। सभी तुम से अन्न प्राप्ति की इच्छा करते हैं ॥ ५ ॥ इन्द्र ! हमारे प्रातःकालीन यज्ञ में हमारी हवियां ग्रहण करें और हमारी स्तुतियों पर ध्यान दें। हे वज्रिन् ! तुम शत्रुओं के हनन कर्त्ता हो। मुझ असाधारण बुद्धि वाले के सुन्दर स्तोत्र को सुनो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारी रक्षा के लिए बढ़ते हुए, उस शत्रु का हनन करो जो हमको पीड़ित करता है। हे वीर ! तुम्हारे वज्र की मार से वे दुष्ट बुद्धि वाले पीड़क दूर भाग जावें ॥ ७ ॥ [२०]

१३२ सूक्त

(ऋषि-परुच्छेपः । देवता—इन्द्र । छन्द-अष्टिः, शक्वरी)

त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम
पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥ १

स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि
क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥ २

तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे
वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् ।
वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप
व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् ।
ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४

सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त
श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः ।
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप
तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् ।

चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ । २१

इन्द्र ! हम तुम्हारे रक्षा-साधनों से सम्पन्न होकर शत्रुओं को पराजित
, उनको अधिक पीड़ा दें । सोम-निष्पन्न कर्ता को उत्साहित करो जिससे
युद्ध में खूब धनों को जीतें ॥ १ ॥ इन्द्र ने प्रातःकाल जाग कर शाश्वत
ने वाले यजमान के लिए प्रकट होकर शत्रुओं का हनन किया है । उन इन्द्र
ो सर्वज्ञ मानकर स्तुति करो । हे इन्द्र ! तुम्हारा दिया हुआ ऐश्वर्य हमारा
ल्याण करे ॥ २ ॥ यह पुष्टिकारक हवियाँ तुम्हारे लिए हैं । हमारे पूर्वजों ने
यज्ञ द्वारा शरीर रूप को बल से रोक दिया । वे इन्द्र यजमानों के लिए गौओं
के देने की इच्छा वाले जाने गए हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! पूर्व के समान तुम्हारे
वर्तमान पराक्रम का भी यश गान करना चाहिये । तुमने अंगिराओं को गौएँ
जीत कर दीं । तुम युद्ध में विजय प्राप्त कराने वाले होओ । यज्ञ विरोधियों को
सोम निष्पन्नकर्ताओं के वश में करो ॥ ४ ॥ इन्द्र मनुष्यों को विवेक बुद्धि देते
हैं । यश की इच्छा से शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं । यजमान यज्ञ करते हुए
तुमसे धन मांगते हैं । उनके स्तोत्र सब देवताओं को तृप्त करते हुए एक
इन्द्र में ही व्याप्त होते हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! हमसे लड़ने की इच्छा करने वाले
को तुम आगे बढ़कर हटाओ । तुम्हारा वज्र दूर से भी शत्रु को नष्ट करने में
समर्थ हैं । हे इन्द्र ! शत्रुओं को सब ओर से चीर डालो ॥६॥ [२१]

१३३ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् अनुष्टुप्, गायत्री, जगती ।

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥
अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥
अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ।

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥
पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण । सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥
अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न
भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः
शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे ।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥
वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ । २

मैं आकाश और पृथिवी को यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूँ। इन्द्र द्रोहियों और उनकी भूमि को जलाता है। उस स्थान पर शत्रु मारे गए और गड्ढों में डाल दिए गए ॥ १ ॥ हे वज्रिन्! शत्रु-सेनाओं को अपने हाथी पाँव से कुचल डालो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! उनकी शक्ति का नाश करो और कुचल कर गहरे खड्डों में डाल दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुमने जिनकी त्रिगुणित पचास (डेढ़ सौ) सेनाओं को नष्ट कर डाला, तुम्हारा वह कर्म महान् है तुम्हारे लिए वह कार्य बहुत छोटा है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! क्रोध से लाल हुए उन दुष्ट पिशाचों का नाश करो। सब राक्षसों को समाप्त कर दो ॥ ५ ॥ हे वज्रिन्! तुम उन विकराल दैत्यों को विदीर्ण करो। हमारी प्रार्थना सुनो प्रदीप्त अग्नि से डर कर जैसे कोई शोक करे वैसे तुम्हारे डर से शत्रु शोक करें। तुम शत्रुओं से युद्ध करने को जाते हो। तुम वीर, किसी से न दबने वाले तथा यजमानों को पीड़ित नहीं होने देते हो ॥ ६ ॥ सोम निष्पन्न यजमान, गृह स्वामी देवताओं के शत्रुओं को भगाता है और अजेय सहस्रों धनों की इच्छा करता है। इन्द्र उसे पर्याप्त धन देते हैं ॥ ७ ॥

१३४ सूक्त (बीसवाँ अनुवाक)

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—वायुः । छन्द—अष्टिः ।)

आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह
पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये ।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता
अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ।
यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः ।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा
धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते
दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु ।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४

तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त
भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५

त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः
पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।

उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ । २३

हे वायो ! सोम-पान के लिए वेगवान् अश्व तुम्हें प्रथम यहाँ लावें । हमारी स्तुति रूप वाणी उन्नत हुई तुम्हारे गुणों को जानती है, वह तुम्हारे अनुकूल हो । तुम जुते हुए रथ से युक्त हुए हविदाता को प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे वायो ! हमारे प्रभावशाली, सुपुष्ट सोम तुम्हें पुष्ट करें । दूध के प्रभाव से युक्त हुए इन सोमों के प्रति चलने के लिए तुम्हारे अश्व बल प्राप्त करें । स्तोताओं की स्तुतियों के प्रति बल से आवें ।२। चलने के लिए लाल रङ्ग के घोड़ों को वायु अपने रथ में जोड़ते हैं । वे रथ की धुरी में सुनहरी द्रुतगामी अश्वों को जोड़ कर प्रेमी द्वारा सोती हुई स्त्री को जगाने के समान पृथिवी को जगाते हैं । वे यश के निमित्त उषा को स्थिर करते हैं ॥ ३ ॥ हे वायो ! चमकती हुई उषाएं दूर देशस्थ घरों में तुम्हारे लिए किरण रूप वस्त्रों को फैलाती हैं । विविध रङ्ग वाली किरणों को बढ़ाती हैं । अमृत रूप दूध वाली गौएं तुम्हारे लिए सब धनों का दोहन करती हैं । तुमने वर्षा के लिए मरुतों को प्रकट किया है ॥ ४ ॥ हे वायो ! यह चमकते हुए पुष्टिकर सोम तुम्हारे लिए प्राप्त हुए हैं । शत्रु के भय से क्षीण होता हुआ यजमान तुम्हारा शीघ्रता से आह्वान करता है । तुम धर्म द्वारा लोकों के रक्षक हो और राक्षसों से उपासकों को बचाते हो ॥ ५ ॥ हे वायो ! हमारे द्वारा निचोड़े इन सोमों को पीने में तुम समर्थ हो । तुम्हारे लिए ही यह अत्यंत दूध देने वाली गौएं सोम में मिलाने के लिए दूध और घृत का दोहन करती हैं ॥ ६ ॥ [२४]

१३५ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः । देवता—वायुः । छन्द—अष्टिः) ।

स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता
नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १

तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः
परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ।
तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥२
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप
याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३
आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि
सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।
पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त
वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् ।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ । २४

हे वायो ! हवि सेवन के लिये बिछी हुई कुशा को प्राप्त होओ । ऋत्विजों ने तुम्हारे सेवन के लिए पहिले से ही सोम तैयार रखा है । निष्पन्न सोम तुम को बल देगा और पुष्ट करेगा ॥ १ ॥ हे वायो ! यह सिद्ध किया सोम बल धारण करता हुआ कलश की ओर जाता है । यह सोम हवियुक्त किया जाता है । हम कामना करने वालों की ओर तुम अपने घोड़ों को प्रेरित करो ॥ २ ॥ हे वायो ! सैकड़ों-हजारों के द्वारा हमारे यज्ञ में आकर हवि ग्रहण करो । यह तुम्हारा भाग सूर्य के समान तेज वाला है । अध्वर्युओं ने तुम्हारे लिये यह सोम अर्पण किए हैं ॥ ३ ॥ हे वायो ! सुन्दर हवि रूप अन्नों की ओर तुम्हारा रथ रक्षार्थ चले । तुम मधुर सोम का पान करो ।

तुम उज्ज्वल धनों से युक्त हुये इन्द्र के साथ यहाँ आओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वायु ! हमारी स्तुतियाँ तुम्हें यज्ञ की ओर आकर्षित करें। ऋत्विजों ने सोम छान कर रखा है उसे यहाँ आकर पीओ और हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [२४]

इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा
अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्र माशवः
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६
अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति
तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता यायो
अध्वरमिन्द्रश्च यायो अध्वरम् ॥ ७
अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त
जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः ।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति
धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८
इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो
महिव्राधन्त उक्षण. ।
धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ । २५

हे वायो ! अध्वर्युओं द्वारा प्राप्त हुए निष्पन्न सोम प्रस्तुत हैं। यह तुम दोनों के लिए ऊनी यज्ञ में छाने गये हैं ॥ ६ ॥ हे वायो ! सब सोते हुओं को जगाते हुए आओ। सोम कूटने के पाषाण के शब्द से आकर्षित होओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम इस मधुर सोम की आहुति ग्रहण करो। इस पीपल रूप सोम को अजेय व्यक्ति पीते हैं। हमारी गौएं पोष

न हों। हमारा अन्न परिपक्व हो जाय ॥ ८ ॥ यह तुम्हारे पराक्रमी बैल नदी रूप प्रवाह में दौड़ते हैं। यह मरुस्थल में भी नष्ट नहीं होते। यह सूर्य रश्मियों के समान अबाध गति वाले हैं ॥ ६ ॥ [२५]

१३६ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—अष्टिः, त्रिष्टुप्)

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता
मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त
रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते
दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे।
ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३

अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो
देवो देवेष्वाभगः।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो
अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्।

उत्पर्यं एनोः परिभूपति व्रतं स्तोमैराभूपति व्रतम् ॥ ५

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय
मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रोवरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ । २६

मनुष्यो ! नमस्कार पूर्वक मित्र और वरुण के लिये हवि-संपादन करो । ये घृत युक्त हवि-योग्य यज्ञों में स्तुति किये जाते हैं और इनका देवत्व कभी नहीं घटता ॥ १ ॥ सूर्य का विस्तृत मार्ग नियम रूप डोरी पर थमा हुआ है । मित्र, अर्यमा और वरुण का स्थान अत्यन्त उज्ज्वल है । ये वहाँ से महान बल प्रदान करते हैं ॥ २ ॥ पृथिवी की धारक और आकाश से युक्त अदिति की, मित्र-वरुण नित्य सेवा करते हैं । यह दान के स्वामी आदित्य तेजस्वी हैं । मित्र, वरुण और अर्यमा तीनों ही मनुष्यों को प्रेरणा देते हैं ॥ ३ ॥ यह सोम मित्र और वरुण को सुख दे । देवता इससे आनन्दित हों । सभी देवता समान इच्छा से इसका सेवन करें । यह हमारी इच्छानुसार कार्य करें ॥ ४ ॥ मित्र वरुण की सेवा करने वाले को ये शत्रु और पापों से बचाते हैं । हविदाता की रक्षा करते हैं । जो इनके नियमों को मानता हुआ स्तुति करता है उसकी अर्यमा रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥ महान आकाश, भूमि मित्र और वरुण को मैं नमस्कार करता हूँ । हम इन्द्र, अग्नि, अर्यमा, भग की निकट से स्तुति करें और पुत्र आदि से युक्त हुये रक्षाओं को प्राप्त करें ॥६॥ देवताओं की रक्षा से हमारी ओर आकर्षित हुए इन्द्र और उनके साथी मरुतों की प्रशंसा करें । अग्नि, मित्र, वरुण हमारे शरणदाता हैं । उनसे हम अभीष्ट धन प्राप्त करें ॥ ७ ॥ [२६]

॥ प्रथम अध्याय समाप्तम् ॥

१३७ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः। देवता–मित्रावरुणौ। छन्द—शक्वरी।)

सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥ १
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये॥ २
तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः॥ ३। १

हे मित्रावरुण! हमने सोम निष्पन्न कर लिया है। तुम दोनों यहाँ आकर इस दूध मिले हुए पुष्टिकारक सोम का पान करो और हमारे रक्षक होओ॥ १॥ हे मित्र वरुण! यह सोम दधि युक्त हैं। तुम दोनों उषा काल होते ही आओ। तुम दोनों के लिये इस यज्ञ- कर्म में सोम निष्पन्न किया गया है॥ २॥ हे मित्र वरुण! तुम दोनों के लिये मनुष्यों ने सोम का गो दुग्ध के समान दोहन किया है। तुम हमारे रक्षक सोम पीने के लिए हमारी ओर आओ। हमने तुम्हारे पीने के लिए यह सोम निष्पन्न किया है॥ ३॥ [१]

१३८ सूक्त

(ऋषि-परुच्छेपः। देवता–पूषा। छन्द–अष्टिः।

प्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो
न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्।

विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व
ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।
हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमांगूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा
बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे ।
तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३
अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ
अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ । २

पूषा (सूर्य) का अत्यन्त महत्त्व है । उसका बल कम नहीं होता । उसका स्तोत्र सदा बढ़ाने वाला है । मैं कल्याण की इच्छा से उसे नमस्कार करता हूँ । उसने सब के मनों को आकर्षित कर लिया है ॥ १ ॥ हे पूषा ! शीघ्रगामी मनुष्य को मार्ग में उचित दिशा बताने के समान मैं तुम्हें स्तोत्र प्रेरण करता हूँ, जिससे तुम हमारे शत्रुओं को दूर करो । मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ । मुझे युद्धों में बलवान बनाओ ॥२ ॥ हे पूषन् ! तुम्हारी स्तुति में लगे हुये व्यक्ति ही तुम्हारी रक्षाओं को प्राप्त कर सकें । हम ज्ञान से सम्पन्न हुये नये स्तोत्र द्वारा तुमसे असंख्य धन की याचना करते हैं । तुम हम पर क्रोध न करो । प्रत्येक युद्ध में हमारे सहायक बनो ॥ ३ ॥ हे अजाश्व पूषन् ! तुम दान के लिये क्रोध रहित हुये यहाँ आओ । हम यश की कामना करते हैं हम तुम्हारा अनादर नहीं करते । आपके मित्र-भाव की उपेक्षा नहीं करते । तुम अद्भुत कर्म वाले हमारे स्तोत्रों पर ध्यान दो ॥ ४ ॥

१३९ सूक्त

(ऋषि—परुच्छेपः। देवता—विश्वेदेवा आदि। छन्द—अष्टिः, बृहती, पंक्ति)

अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो
दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे।
यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः॥ १
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन
मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम्।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः॥२
युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव श्लोकमायवो
युवां हव्याभ्या यवः॥
युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये॥ ३
अचेति दस्रा व्यु नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो
दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु।
अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम्।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन॥ ५॥

मैंने पहले अग्नि को धारण किया। अब दिव्य मरुद्गण को व[रण]
करता हूँ। इन्द्र और वायु का वरण करता हूँ। मेरी स्तुति सूर्य रूप इन्द्र...
प्राप्त हो॥ १॥ हे मित्र वरुण! तुम अपने तेज से असत्य का नि...
करने वाले हो। हमने तुम्हारे स्थान में स्वर्णिम तेज के दर्शन किये हैं॥...
हे अश्विद्वय देवो! साधक तुम्हारी स्तुति करते हैं, हवियाँ देते हैं। स...

और अन्न तुम्हारे आश्रित हैं। तुम्हारे रथ के पहिये की धारा घृत की वर्षा करती है॥ ३॥ हे तेजस्वी अश्विनी कुमारो! तुम ही आकाश मार्गों को प्रशस्त करते और यज्ञों के लिए अश्व जोतते हो। तुम विकराल कर्म वाले हो। तुम सुनहरी रथ की पीठ पर बैठे हुए सीधे मार्ग से चलते हो। तुम अन्तरिक्ष के स्वामी हो॥ ४॥ हे बली ऐश्वर्यशाली अश्विद्वय! दिन में और रात में भी धन दो। तुम्हारा दिया हुआ धन कभी कम न हो और हमारा दान भी बढ़े॥ ५॥ [३]

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास
उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः।
ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे।
गीर्भिर्गिर्वाह स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि॥ ६
ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि
यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः।
यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।
वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा॥७
मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि
मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः।
यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम्॥ ८
दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो
अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः।
तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा॥ ९
होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन
उक्षभिः

गृम्मा दूर आदिशं श्लोकमद्रे रध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥ १०
…ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ ११ । ४

हे इन्द्र ! वीरों के लिए पेय पाषाणों द्वारा निष्पन्न सोम की बूंदें … यहाँ उपस्थित हैं। यह तुम्हें विभिन्न धनों के लिये तृप्त करें। हे स्तुतियों को प्राप्त करने वाले, तुम हमारी ओर आकर हम पर कृपा करो ॥ ६ ॥ हे अग्नि ! हमारी स्तुतियों पर ध्यान दो। देवगण के सामने निवेदन करो। हे देवगण ! जब तुमने गौऐं जीत कर अङ्गिराओं को दीं तब अर्यमा ने उनका कूप में दोहन किया ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे वीर-कर्मों को हम न भूलें। तुम्हारा यश अनुरण रहे। तुम्हारा अद्भुत कर्म युग-युग में गूंजता है। वह दुःख से तारने वाला कर्म हमको धारण कराओ ॥ ८ ॥ प्राचीन ऋषि "दध्यं", "अङ्गिरा", "प्रियमेध" "कण्व", "अत्रि" और "मनु" मेरे जन्म के ज्ञाता हैं। वे दिव्य गुणों से युक्त हैं। उन अत्यंत गौरवशाली इन्द्र और अग्नि की नमस्कार पूर्वक स्तुतियाँ करता हूँ ॥ ९ ॥ होता अग्नि याज्या पढ़… और हवि के देवता हवि डालते हैं। बृहस्पति निष्पन्न सोमों द्वारा यज्ञ कर… हैं। उत्तमकर्मा ब्रहस्पति ने प्रभूत जलों को धारण किया है ॥ १० ॥ … देवगण ! तुम आकाश में ग्यारह हो, पृथिवी पर भी ग्यारह हो, अपने मह… से अन्तरिक्ष में भी ग्यारह हो। इस प्रकार तुम तेतीसों देवता मेरे यज्ञ… स्वीकार करो ॥ ११ ॥ […

१४० सूक्त [इक्कीसवाँ अनुवाक]

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्नि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।)

वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचि ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ।
अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य न्येन वनिनो मृष्ट वारण

कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥ ४
आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ । ५

हे मनुष्यो! वेदी में प्रतिष्ठित, प्रकाशमान् अग्नि के लिए हवियाँ सम्पादन करो। इस पवित्र ज्योति रूप रथ वाले अन्धकार के नाशक अग्नि को अपने स्तोत्रों से वस्त्र के समान ढको ॥ १ ॥ दो बार प्रकट होने वाले अग्नि तीन प्रकार के अन्नों को ग्रास करते और भक्षण किये अन्न को वर्ष भर में ही बढ़ा देते हैं। वह एक मुख से हवि भक्षण करते और दूसरे से वन-वृक्षों को निःशेष करते हैं ॥ २ ॥ इसके प्रज्वलन से काली हुई इसकी दोनों माताएं कम्पित होती हैं। यह आगे जीभ करके शीघ्र प्रकट होते हुये अंधकार का नाश करते हैं। यह पास रह कर रक्षा करने वाले हैं ॥ ३ ॥ स्वच्छन्द गति के इच्छुक, काले मार्ग वाले, वेगवान, भिन्न वर्ण वाले, द्रुतगामी हैं इनके घोड़े वायु की प्रेरणा से जुड़ते हैं ॥ ४ ॥ यह अग्नि पृथिवी को सब ओर से स्पर्श करते हैं। यह शब्दवान जब श्वास लेते हैं, तब इनकी चिनगारियाँ फैलती हुई अन्धकार का नाश करती बढ़ती हैं ॥ ५ ॥ [५]

भूषन्न यो ऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्ममुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८
अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।

वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनी रह ॥ ९
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० । ६

जो अग्नि पीले वर्ण वाली वृद्धियों को आच्छादित करने के समान घेरते हैं, बैल के समान गरजते और बल द्वारा शरीर को चमकाते हैं। वह वश न आने वाले बैल के समान ज्वाला रूप सींगों को हिलाते हैं ॥ ६ ॥ वह अग्नि प्रकट होकर ओषधियों को व्याप्त करते हैं। वे उनके प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त होती हैं। उनमें दिव्य गुण भर जाते हैं। फिर ये अग्नि और औषधियाँ मिलकर पृथिवी और आकाश को दिव्य बनाते हैं ॥ ७ ॥ लम्बी शिखायें अग्नि का स्पर्श करती हैं। वे मृत प्रायः होते हुये भी अग्नि से मिलने के लिये प्राणवान हो उठती हैं। अग्नि उनका वृद्धापन मिटाते हुए गर्जन करते चलते हैं ॥ ८ ॥ पृथिवी रूप माता के परिधान रूप तृण, औषधि आदि को चाटते हुए अग्नि विजयशील के समान चले आते हैं। फिर दुपाए और चौपाए को बल देते हैं। वे जिधर से निकलते हैं, उधर ही उनके पीछे का मार्ग काला होता जाता है ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम दानशील के घर में प्रदीप्त होते हुये बैल के समान श्वास लेते हो। फिर ऐसे लगते हो जैसे कोई किशोरावस्था प्राप्त वीर कवच धारण कर युद्ध की ओर जाता हुआ चमकता है ॥ १० ॥ [६]

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीरां उत नो मघोनो जनांश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ । ७

हे अग्ने ! यह उत्तम प्रकार निवेदन किया गया स्तोत्र तुम्हें अधिक प्रिय हो। तुम्हारा निर्मल और प्रकाश युक्त शरीर दमकता है। हमारे निमित्त

रमणीय धनों के देने वाले होओ ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे घर के मनुष्यों को अथवा रथवान योद्धा के लिए ऐसी यज्ञ रूप नाव प्रदान करो जो हम सबको पार लगाती हुई आश्रय रूप बने ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! स्तोत्र को बढ़ाओ । आकाश, पृथिवी और स्वयं ही गमनशील नदियाँ हमको गवादि पशु, अन्न और दीर्घायु प्रदान करें तथा उपाएं हमको वरणीय अन्न, बल प्राप्त कराने वाली हों ॥ १३ ॥ [७]

१४१ सूक्त

(ऋषि–दीर्घतमाः । देवता–अग्नि । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २
निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३
प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥ ४
आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ । ८

अग्नि जिस बल से उत्पन्न हुए हैं, उसी बल रूप दर्शनीय तेज को धारण करते हैं । उनकी कृपा से ही अभीष्ट सिद्धि होती है । सत्य वाणियाँ प्रवाहित होती हैं ॥ १ ॥ अन्न साधक अग्नि अन्नों में व्याप्त रहते हैं । दूसरे सात कल्याण कारिणी मातृ रूपी धातुओं में व्याप्त होते हैं । तीसरे अग्नि को दश उंगलियाँ घर्षण द्वारा प्रकट करती हैं ॥ २ ॥ ऋत्विजों ने बड़े यज्ञ को सिद्ध करने वाले मूल से अग्नि को उत्पन्न किया । मातरिश्वा प्राचीन काल में अग्नि को जल से श्रम पूर्वक मंथन करते थे ॥ ३ ॥ जब अग्नि को उत्कृष्टता के लिये चारों ओर ले जाते हैं, तब वह औषधियों पर चढ़ते हैं । जब वे

अरणि-मंथन द्वारा प्रकट होते हैं, तब वे पवित्र हुए युवा रूप हो जाते हैं ॥४॥ अग्नि मातृ रूपिणी दिशाओं में बढ़े तथा उन्हीं में व्याप्त हुए। वे सतत वेग-वान बढ़ी हुई तथा नई अब प्रकार की औषधियों की ओर गति करते हैं॥ ५ ॥ [८]

आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६
वि यदस्याद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७
रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥ १०
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम्।
रश्मीरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥११
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२
अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥

विश्व-धारक अग्नि बुद्धि बल द्वारा पोषण के लिए मनुष्यों के स्तोत्र को प्राप्त होते हैं। इसीलिए उन्हें होता रूप में वरण किया जाता है। देवता और यजमान दोनों के लिये अन्न की कामना करते हैं ॥ ६ ॥ ज पूज्य अग्नि वायु की प्रेरणा से बाधा रहित गति करते हैं तब उनकी यात्रा समाप्त होने पर काला मार्ग तथा उसमें धूल ही अवशिष्ट रहती है ॥ ७ ॥

रथ से यात्रा करने वाले तेजस्वी के समान, वे आकाश की यात्रा करते हैं। हे अग्ने ! उस काल दस्युओं को तुम भस्म करते हो। तुम्हारे उपासक वीरों के समान बल प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! व्रतनियमी वरुण, दानशील अर्यमा और मित्र तुम्हारे द्वारा प्रेरणा पाते हैं। जैसे रथ का पहिया अरों (अवयवों) को व्याप्त करके रहता है, वैसे यज्ञ-कर्मों द्वारा अग्नि प्रकट होते हैं ॥ ९ ॥ "हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम सोम निष्पन्न करने वाले स्तोता को वैभव योग्य धन प्रेरित करते हो। हम अपने कार्य के लिए भग के समान तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ १० ॥ हे अग्ने ! हमारे कार्य के लिए धन और घर के लिए सौभाग्य प्रदान करो। तुम दोनों लोकों को रासों के समान वश में रखते तथा यज्ञ में हमारी स्तुति को देवगण [illegible] पास पहुँचाते हो ॥ ११ ॥ अत्यन्त तेजस्वी घोड़ों से युक्त दमकते हुए रथ वाले अग्ने ! हमारे आह्वान को सुनो। तुम हमको काम्य सुख को प्रेरित करते हुए हमारा कल्याण करो ॥ १२ ॥ हमने महान ऐश्वर्य के लिए अत्यन्त बली अग्नि देव का स्तवन किया है। वे अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हों और हम भी उसी प्रकार बढ़ें जैसे सूर्य मेघ के ऊपर बढ़ता है ॥ १३ ॥ [६]

१४२ सूक्त

(ऋषि-दीर्घतमाः। देवता—अग्नि आदि। छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक।)

समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात्।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे।

वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५
वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ । १०

हे अग्ने ! तुम प्रदीप्त होकर बढ़े हुए आज इस यजमान के लिए देवगण को लाओ। इस सोम अभिषवकर्त्ता के लिये प्राचीन यज्ञ को बढ़ाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम युक्त स्तोता हविदाता के घृत-मधु से युक्त यज्ञ में, यज्ञ की समाप्ति तक निवास करो ॥ २ ॥ पवित्रकर्त्ता, प्रकाशमान, देवगण में देव, मनुष्यों द्वारा स्तुत्य यह अग्नि हमारे यज्ञ को तीन बार मधुर रस से सींचें ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम इन्द्र को यहाँ लाओ। मेरा यह स्तोत्र तुम्हारे लिए ही कहा गया है ॥ ४ ॥ स्रुक धारण करने वाले ऋत्विज यज्ञ स्थान में कुशाओं को बिछाते तथा देवताओं को आह्वान करने वाले विशाल यज्ञ मंडप को इन्द्र के लिए सजाते हैं ॥ ५ ॥ यज्ञ को बढ़ाने वाले, पवित्र, कामना के योग्य, विस्तृत यज्ञ द्वार को खोल दो ॥ ६ ॥ [१०]

आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञिया ॥ ९
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरुत्मना ।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १०
अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।

स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२
स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११

सबके स्तुति-पात्र, सुन्दर कांति वाले, श्रेष्ठ अग्नि रूप रात्रि दिवस हमारी कुशाओं पर आकर विराजमान हों ॥ ७ ॥ सुन्दर जिह्वा वाले, स्तोताओं की कामना वाले, मेधावी, अग्नि रूप दोनों होता इस सिद्धि दायक यज्ञ को बढ़ावें ॥ ८ ॥ देवों द्वारा स्थापित, यज्ञों को सिद्ध करने वाली पवित्र वाणी रूप भारती, सरस्वती और इला ये तीनों हमारी कुशाओं पर विराजें ॥ ९ ॥ हमारे मित्र, स्वामी त्वष्टा स्वयं ही हमको पुष्ट करने वाले अन्न के लिए जल-वर्षा करें ॥ १० ॥ हे वनस्पते ! तुम स्वयं देवताओं के समीप जाकर यज्ञ करो । मेधावी अग्नि देवताओं के लिए हवि प्रेरण करते हैं ॥ ११ ॥ पूषा और मरुतों से युक्त विश्वदेव रूप वायु के लिए यज्ञ करो । इन्द्र को लक्ष्य कर हवियाँ दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! हमारे मन्त्रों की ओर आकर हवि सेवन करो । हमारा आह्वान सुनो । हम तुम्हें यज्ञ में बुलाते हैं ॥ १३ ॥ [११]

१४३ सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता-अग्नि । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १
स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥२
अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥४
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।

नर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५
विन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
ोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६
ृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७
अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ । १२

अग्नि बल के पुत्र हैं। उनके लिए नवीन स्तोत्र भेंट करता हूँ। वे जलों से उत्पन्न हैं और होता रूप से धनों के साथ यज्ञ स्थान में विराजमान हैं ॥ १ ॥ वह अग्नि मातरिश्वा के लिए उच्च आकाश में प्रकट हुए। उनके उज्वल कर्म से आकाश और पृथ्वी दोनों प्रकाशित हुए ॥ २ ॥ उनके अजर प्रकाश और चमकती हुई चिंगारी रूप किरणें बलशाली हैं। वे समुद्र के समान रात्रि को पार करते हुए भी कभी काँपते नहीं ॥ ३ ॥ लोकों के स्वामी जिस अग्नि को भृगुओं ने अपने बल से प्रेरित किया, उनकी स्तुति करें। वे वरुण के समान सब धनों के एकमात्र स्वामी हैं ॥ ४ ॥ जो अग्नि मरुतों के शब्द, आक्रमक सेना और आकाश के वज्र के समान बाधा रहित हैं, वे वन को भस्म करते हैं और वनों को योद्धाओं द्वारा शत्रुओं को भून डालने समान ही जला देते हैं ॥५॥ अग्नि हमारे स्तोत्र की कामना करते हमारी धन की इच्छा को पूर्ण करें। हमारे लाभ के लिये कर्मों को प्रे करें। मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ ॥६॥ अग्नि को प्रदीप्त करने वाले यज उस घृत जिह्व को मित्र बनाने के इच्छुक हैं। वे प्रकाश के दुर्ग के समान में प्रज्वलित होकर हमारे मन को श्रेष्ठ स्तुति की ओर प्रेरित करते हैं हे अग्ने! निरंतर विश्राम-रहित कल्याण रूप तुम हमारी रक्षा करें क्लेश-रहित और निद्रा रहित सामर्थ्यों से युक्त हो। हमारी संतान क ओर से रक्षा करो ॥८॥

१४४ सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्नि । छन्द—जगती, पंक्ति)

एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४
तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥७।१३

देवाह्वाता अग्नि यज्ञ की ओर स्तोत्रों को बल देते हुए जाते हैं। वे स्रुचों से आहुति प्राप्त करते हुए उठते हैं ॥१॥ अग्नि की ज्वालायें देवस्थान में, वेदी से घिरे हुये यज्ञ में निकलती हैं। जलों की गोद में अंतर्हित रहे अग्नि ने प्रकट होकर अपना गुण ग्रहण किया ॥२॥ एक रूप वाली दोनों अरणियाँ परस्पर मिलकर उज्वल रूप वाले की कामना करती हैं। वे अग्नि आह्वान के योग्य हैं। सारथी द्वारा रास पकड़ने के समान, अग्नि हमारी घृत धारा को ग्रहण करते हैं ॥३॥ समान अवस्था वाले दो मनुष्य, अग्नि की दिन-रात पूजा करते हैं। वे अग्नि कभी वृद्ध नहीं होते। युवा रहते हुये भी हवि भक्षण करते हैं ॥४॥ दस उङ्गलियाँ उस अग्नि की सेवा करती

न्हें रक्षा के लिये आहूत करते हैं। वे वायु की गति के समान चलते हुये हुए स्तुतियों को धारण करते हैं ॥५॥ हे अग्ने ! तुम आकाश और पृथिवी के प्राणियों के स्वामी हो। यह ऐश्वर्ययुक्त दोनों ही तुम्हारे यज्ञ को प्राप्त होते हैं ॥६॥ हे प्रसन्न मन वाले, स्वेच्छावान, बली, यज्ञोत्पन्न अग्ने ! प्रसन्न होकर उस स्तोत्र को स्वीकार करो। तुम अत्यन्त रमणीक और ऐश्वर्यों से पूर्ण हो ॥७॥ [१३]

१४५ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः। देवता-अग्निः। छन्द—जगती व त्रिष्टुप्,)

तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिपस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥१
तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २
तमिद् गच्छन्ति जुह्व स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३
उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ । १४

वे अग्नि सर्वज्ञाता, सर्वत्र गमनशील, सब के स्तुति-पात्र, अभीष्टयुक्त एवं महाबली हैं ॥१॥ उस अग्नि को सब जानते हैं। उनके सम्बन्ध में पूछना अनुचित नहीं है। स्थिर मन वाला किसी की प्रथम और बाद की बातें नहीं भूलता। इसीलिये अहंकार से शून्य मनुष्य अग्नि का आश्रय लेता है ॥२॥ उसी अग्नि को आहुतियां और स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। वह आह्वानों को सुनने वाला है, यज्ञ को सिद्ध करने वाला तथा बालक के समान बल-वृद्धि को प्राप्त होता है ॥३॥ अग्नि प्रकट होते ही विचरणशील हैं। वह

तुरन्त ही हवियाँ ग्रहण करते हैं और थके मनुष्यों की थकान को मिटा कर प्रसन्नता प्रदान करते हैं ॥४॥ वन में फिरने वाला अग्नि ईंधन में व्याप्त होता है। मेधावी यज्ञ ज्ञाता अग्नि मनुष्यों में रह कर यज्ञ-कर्म में प्रेरित करता हुआ ज्ञान देता है ॥५॥ [१४]

१४६ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १
उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ २
समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥ ३
धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ । १५

हे मनुष्य ! तीन मस्तक वाले, सात किरणों वाले, पूर्ण रूप वाले आकाश और पृथिवी के मध्य विराजमान तथा प्रकाशित नक्षत्रों में तेज रूप से व्याप्त इस अग्नि का स्तवन कर ॥१॥ इस वीर अग्नि ने आकाश और पृथिवी को सब ओर से व्याप्त किया है। यह जरा रहित तथा रक्षा साधनों से युक्त है। पृथिवी के सिर पर अपने पैरों को रखकर खड़े हुये, इसकी ज्वालायें मेघ रूप स्तन को चाटती हैं ॥२॥ यह आकाश पृथिवी रूप गौयें साझे के बछड़े रूप अग्नि को प्राप्त कर सभी कामनाओं को धारण करती हुई विचरती हैं ॥३॥ बुद्धिमान ऋषिगण मनुष्यों की रक्षा करते हुये उनको मार्ग दिखाते हैं। उन्होंने अग्नि की चाहना से समुद्र को सब ओर से देखा

कल्याण करने वाला सूर्य उत्पन्न हुआ ॥४॥ दिशाओं के विजेता अग्नि बड़े-
छोटे शरीर धारियों के लिये जीवन दाता हुये । वे धन और प्रजाओं को प्रकट [१५]
करने में समर्थ हैं ॥५॥

१४७ सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवा. ॥ १
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ।

हे अग्ने ! तुम्हारी प्रकाशित किरणें बल युक्त जीवन देती हैं । वे
पौत्रादि को बढ़ाती हुई पुष्ट करती हैं ॥१॥ हे अत्यन्त युवा अग्ने ! मेरे
आदर योग्य स्तोत्र को सुनो । एक मनुष्य आपको पीड़ा पहुँचाता है
स्तुति करता है । मैं तो आपकी स्तुति करने वाला हूँ ॥२॥ हे अग्ने !
रक्षा से युक्त भक्तों ने ममता के अन्धे पुत्र को बचाया । उन उत्तम कर्म
की तुमने रक्षा की । तुम्हें शत्रु किसी प्रकार छल नहीं सकते ॥३॥ हे
ईर्ष्यायुक्त अदानशील पापी हमको छल से दुःख देता है, उसका वह
उसी को भार स्वरूप हो और वह उसी को नष्ट करे ॥४॥ हे बल
मनुष्य छल से किसी को पीड़ित करना चाहता है, उससे स्तोता
वाली न हों ॥५॥

१४८ सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २
नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ । १७

सब वरणीय देव स्वरूप होता को मातरिश्वा ने मंथन किया और उस सूर्य के समान दैदीप्यमान अग्नि को देवगण ने मनुष्यों में स्थापित किया ॥१॥ स्तोत्र उच्चारण करते हुए मुझे शत्रु पीड़ित न कर सकें। मेरी स्तुति सुन कर अग्नि ने ग्रहण की और मेरे स्तोत्र को सब देवताओं ने स्वीकार किया ॥२॥ यजमानों ने जिसे ग्रहण कर स्तुतियों से स्थापित किया और रथ में घोड़े जोड़ने के समान आगे बढ़ाया ॥३॥ अद्भुत अग्नि वृक्षों का भक्षण करता है और प्रकाश से वन में चमकता है। इसकी चमकती हुई ज्वाला को वायु धनुष बाण के समान बढ़ाता है ॥४॥ जिसे गर्भ में रहने पर हिंसक पीड़ित न कर सकें और अंधे इसके माहात्म्य को न मिटा सकें। इससे प्रीति करने और नित्य धारण करने वाले ही इस अग्नि की रक्षा करते रहे हैं ॥५॥ [१७]

१४९ सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्नि । छन्द—अनु

महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।

उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १
स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो नार्वा ।
सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ । १८

वह अत्यन्त ऐश्वर्यवान, धन-स्वामी देने के लिये यज्ञ में आते हैं। सोम कूटने के पाषाण उनके लिये रस तैयार करते हैं ॥१॥ जो आकाश और पृथिवी में यशस्वी वीर है, उसे त्याग कर जीव दुःख भोगते हैं। वह अग्नि वेदी में वास करते हैं ॥२॥ जिसने मनुष्य शरीर में दीपन किया, वह अग्नि शीघ्रगामी अश्व के समान प्रशंसनीय हैं ॥३॥ दो जन्म वाले अग्नि तीन ज्योतियों और सब लोकों को प्रकाशित करते हैं। यह अत्यन्त पूज्य होता रूप में नियुक्त हुए हैं ॥ ४ ॥ वह दो जन्म वाले देवताओं के बुलाने वाले हैं जो मनुष्य इनको हवि देता है, उसे वह वरणीय धन और यश का देने वाले है ॥ ५ ॥ [१८

१५० सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री, उष्णिक)

पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।
कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ।

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राघन्तमो दिवि ।
प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १९

हे अग्ने ! आपके आश्रय का इच्छुक स्तोता हवि देता हुआ बारबार आह्वान करता है ॥ १ ॥ वे अग्नि देवताओं से द्वेष करने वालों के आग्रहपूर्ण आह्वान पर भी कभी नहीं जाते ॥ २ ॥ हे मेधावी अग्ने ! वह मनुष्य अत्यंत यशस्वी होता है वह सबको प्रसन्न करता है । तुम्हारे साधक हम सदा वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ [१९]

१५१ सूक्त

(ऋषि:-दीर्घतमाः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती ।)

मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १
यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २
आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ । २०

प्रकाश की इच्छा से ध्यान रत देवगण ने जीव-मात्र की रक्षा के लिए मंत्र के समान जिस पूजनीय अग्नि को जलों से उत्पन्न किया, प्रकट होने पर उसके बल और वाणी के प्रभाव से आकाश और पृथिवी काँप गए ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! ऋत्विजों ने तुम्हारे लिये अभीष्टदायी सोमरस को अर्पण किया । इसलिये साधक के घर आकर उसका आह्वान सुनो ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण तुम्हारी वर्णन योग्य उत्पत्ति आकाश पृथिवी से बताई गई है । तुम नियमों का पालन करते और अपने उपासकों के निमित्त प्रकट होने

उत्तम यज्ञों में स्तुतियों द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ हे मित्र, वरुण ! तुमको यह मनुष्य अत्यन्त प्रिय हैं । तुम नियमों की उच्च स्वर से घोषणा करने वाले हो । तुम बैल को धुरे में जोड़ने के समान विशाल आकाश में सामर्थ्य को जोड़ते हो ॥ ४ ॥ हे मित्र और वरुण ! तुम वरणीय धनों को प्राप्त कराने वाले हो । गोष्ठ में रहने वाली गौऐं प्रातः काल और सायंकाल आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के समान सूर्य को देखती हुई रंभाती हैं ॥ ५ ॥ [२०]

आ वामृताय केशनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६
यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छयो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं यन्तमस्मयू ॥ ७
युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८
रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ । २१

हे मित्र और वरुण ! जब तुम धर्म मार्ग की उन्नति करते हो तब यज्ञस्थ ज्वालाऐं तुम्हारा स्तवन करती हैं । तुम ऋषियों के स्तोत्रों के स्वामी हो । हमारी स्तुतियों की वृद्धि करो ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! जो स्तोता यज्ञ में तुम्हारे लिए हवि देता है और जो स्तोत्र रचयिता कवि तुम्हारा स्तवन करता है, तुम दोनों उसे प्राप्त होते हुए उसके यज्ञ को काम्य बनाते हो । अतः हमारी स्तुतियों को सुनकर यहाँ आओ ॥ ७ ॥ हे धृत नियमा मित्रावरुण ! जो मनुष्य अपने यज्ञों में हार्दिक भावना से तुम्हारा पूजन करते हैं, वे स्थिर ध्यान से तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम उन्हें प्राप्त होते हो ॥ ८ ॥ हे मित्रा वरुण ! तुम धन युक्त बल के धारक हो और मानसिक बल से रक्षा-साधन युक्त हुए महान् बनते हो । दिन, रात्रि, नदियाँ और पणि तुम्हें देवत्व नहीं पा सके, पणियों को तुम्हारा हाल भी नहीं मिला ॥ ९ ॥ [२१]

१५२ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३
प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५
आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ । २२

हे मित्र, वरुण ! तुम दोनों तेज रूप वस्त्रों को धारण करते हो, तुम्हारी सृष्टियाँ सुन्दर और छिद्र रहित हैं । तुम हर प्रकार [redacted] असत्य से दूर रहते हुए सत्य के साथी हो ॥ १ ॥ ऋषियों के वाक्य सत्य हैं कि मित्र वरुण चतुर्गुण अस्त्रों से सुसज्जित हैं और वे त्रिगुणात्मक अस्त्रों वालों को नष्ट करते हैं । इनके महत्व को कोई नहीं जानता । देव निंदकों को यह सब से पहले मारते हैं ॥ २ ॥ पद-रहित उषा पद युक्त मनुष्यों के आगे आती है, इसके कर्म को कौन जानता है ! रात्रि का गर्भस्थ पुत्र सूर्य इस संसार का भार वहन करता हुआ सत्य को दृढ़ करता और असत्य को मिटाता है ॥ ३ ॥ हम प्रशस्त तेज रूप वस्त्रधारी मित्रावरुण के स्थान की ओर, उपपतियों की भाँति

क्षीण करने वाले सूर्य को आगे बढ़ता देखते हैं। मित्रावरुण का स्थान पीछे कभी नहीं रहता ॥ ४ ॥ बिना घोड़े और बिना रास वाला आदित्य प्रकट होते ही ऊँचा चढ़ता और शब्द करता है। मित्रावरुण के स्थान रूप सूर्य की मनुष्य गण स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ हे मित्र, वरुण! स्नेह दायिनी गौऐं मुझ ममता के पुत्र को अपने थन से उत्पन्न दूध पिलावें। धर्म मार्ग वाले अन्न माँगें और तुम्हारी सेवा करते हुए यज्ञ को बढ़ावें ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण! मैं अपनी रक्षा के लिए नमस्कार पूर्वक हविदान करूँ। हमारी स्तुतियों के प्रभाव से युद्ध में हमारे शत्रु वशीभूत हों तथा दिव्य वर्षा हमको दुःखों से पार लगावे ॥ ७ ॥ [२२]

१५३ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३
उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ । २३

हे जल रूप घृत वर्षक मित्रावरुण! हम घृत युक्त हवियों से नमस्कार पूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे अध्वर्यु तुमको हवि भेंट करते हैं ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण! तुम्हारी स्तुति तेज की प्रेरक है। इसलिए मैं सुन्दर स्तुतियों से तेज प्राप्त करता हूं। जो होता तुम्हें पूजने की इच्छा करता और तुम्हें प्रसन्न करना चाहता है, वह यज्ञ में तुमको घृत युक्त हवि देता है ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण! "रातहव्य" के यज्ञ-कर्म से प्रसन्न हुए तुमने उसकी गाय को दूधवाली किया था, वैसे ही यजमान तुम्हें हवि देता हुआ अपनी गायों को अत्यन्त दूध वाली होने की याचना करता है ॥ ३ ॥ [२३]

१५४ सूक्त

(ऋषि:—दीर्घतमाः । देवता—विष्णु । छन्द—त्रिष्टुप)

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४
तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ । २४

मैं विष्णु के पराक्रम का वर्णन करता हूँ। उन्होंने तीन पैरों में लोकों को नाप लिया और आकाश को स्थिर किया ॥१॥ विष्णु के तीन पदों में सम्पूर्ण जगत निवास करता है। अतः पर्वत पर रहने वाले भयंकर पशुओं के समान यह संसार विष्णु के पराक्रम की प्रशंसा करता है ॥२॥ जिस विष्णु ने अकेले ही अपने तीन पैरों में तीनों लोकों को नाप लिया, उन महाबली विष्णु की बहुत से जीव स्तुति करते हैं ॥३॥ जिन अकेले ने त्रिगुणात्मक पृथिवी आकाश और सब लोकों को धारण किया है, वे विष्णु अक्षय स्वतंत्रता में प्रसन्न रहते हैं और मनुष्यों को मधुर अन्नादि से युक्त करते हैं ॥४॥ मैं विष्णु के उस विस्तृत पद का आश्रय चाहता हूँ जहाँ देवताओं का स्वामित्व मानने वाले मनुष्य आश्वासन प्राप्त करते हैं। विष्णु ही बन्धु हैं। उनका परमपद ही मधुरता (अमृतादि) का केन्द्र है ॥५॥ हे इन्द्र और विष्णो !

हम, तुम दोनों के उस स्थान की कामना करते हैं जहाँ अत्यन्त शक्ति वाली
सिद्धि रूप गौएँ हैं। स्तुति के योग्य विष्णु का उच्च पद तेज से परिपूर्ण
है ॥६॥ [२४]

१५५ सूक्त

(ऋषि:—दीर्घतमाः । देवता–विष्णु । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णु सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ । २[५]

मनुष्यो ! अपने रक्षक सोम रूप अन्न को इन्द्र और विष्णु के लि[ए]
सिद्ध करो। वे दोनों उच्च कर्म वाले किसी के बहकावे में नहीं आते ॥[१॥]
हे इन्द्र और विष्णो ! तुम कर्मों के फल देने वाले स्वामी हो। तुम्हारे लि[ए]
साधक सोम निचोड़ कर तैयार करता है। तुम शत्रु द्वारा लक्ष्य कर फेंके [गये]
बाणों से उसकी रक्षा करने में समर्थ हो ॥२॥ सभी आहुतियाँ इन्द्र के [...]
वीर्य को पुष्ट करती हैं। इन्द्र वृष्टि से अन्न देते हैं। अन्न रूप वीर्य र[...]
पुत्र प्राप्ति होती है उसी से तृतीय नाम पौत्र का हुआ। प्राणियों की [...]

इन्द्र और विष्णु के आधीन है ॥३॥ सब के स्वामी, रक्षक, शत्रु-रहित युवा विष्णु के बल वीर्य की हम स्तुति करते हैं, जिन्होंने लोक-रक्षा के लिए तीन पाँव रख कर ही सब लोकों को लाँघ डाला ॥४॥ सभी प्राणी इन विष्णु के दो पदों को ही देख सकते हैं। तीसरे पद को पहुँचने का कोई भी साहस नहीं करता। आकाश में गमन करने वाले मरुद्गण भी नहीं प्राप्त कर सकते ॥५॥ विशाल स्तुतियों से युक्त विष्णु ने काल के चौरानवे (६४) अंशों को चक्र की तरह घुमाया। स्तुति करने वाले उन्हें ध्यान में खोजते और आह्वान करते हैं ॥६॥ [२५]

१५६ सूक्त

(ऋषि:—दीर्घतमसः। देवता–विष्णु। छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २
तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ । २६

हे विष्णो! जलोत्पादक, अत्यंत यशस्वी, रक्षक, विस्तृत तुम मित्र के समान सुख देने वाले हो। तुम्हारे स्तोत्र को मेधावी जन पुष्ट करते हैं। तुम्हारा यज्ञ हविदाता यजमान सम्पन्न करते हैं ॥१॥ जो मेधावी स्तुतिपात्र स्वयंभू विष्णु के लिये हवि देता है और इनके यशों का वर्णन करता है वह सभी को जीत लेता है ॥२॥ स्तोताओ! प्रकृति के गर्भ रूप विष्णु को तुम जानते हो। इनके गुणगान कर इन्हें प्रसन्न करो। हे विष्णो! हम तुम्हारी

प्रिया प्राप्त करें ॥३॥ सत्कर्मों को प्रेरणा देने वाले इन त्रिष्णु की इच्छा में वरुण और अश्विनीकुमार सदा तत्पर रहते हैं। विष्णु ही नित्र युक्त दिन को प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ बल को धारण करते हुए अन्धकार को मिटा कर प्रकाश करते हैं ॥४॥ जो उत्तम कर्म वाले विष्णु और इन्द्र की सेवा में तत्पर रहते हैं, वे त्रैलोक्य स्वामी परमात्मा से यजमान को यज्ञ फल का भागी बनाते हैं ॥५॥ [२६]

१५७ सूक्त [बाईसवाँ अनुवाक]

(ऋषि-दीर्घतमाः। देवता—अश्विनौ। छन्द-त्रिष्टुप्, जगती।)

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम्।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या राथ्येभिः।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ । २

अग्निदेव चैतन्य हुए, सूर्य उदित हुए, आनन्द दायिनी उषा प्रकाश के साथ आई। अश्विद्वयों ने रथ जोड़ा और सवितादेव ने संसार को उत्तम प्रेरणा दी ॥ १ ॥ हे रथ जोतने वाले अश्विद्वयो! हमारी मातृ भूमि को मधु और घृत से सिंचित करो। हमारी स्तुतियों को युद्ध में बलिष्ठ करो। हम युद्ध में विशाल धन को जीतें ॥ २ ॥ तुम्हारा तीन पहिये वाला, धनों

युक्त द्रुतगामी रथ हमारी स्तुतियों द्वारा प्रत्यक्ष हो और हमारे दुपाए और चौपायों को सुखी बनावें ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय! तुम हमको बली बनाओ। मधुर रस से हमें सींचो। हमारी आयु की वृद्धि करो। पाप दूर करो, वैरियों को हटाओ और हर प्रकार हमारी सहायता करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय! तुम गौओं में गर्भ धारण करते हो। तुम अग्नि,जल और वनस्पतियों को प्रेरित करते हो ॥ ५ ॥ हे उग्र अश्विद्वय! तुम औषधि वाले वैद्य हो, रथ वाले रथी हो। तुम्हारे निमित्त जो चित्त से हवि देता है, उसे तुम ऐश्वर्यवान् बनाते हो ॥ ६ ॥ [२७]

१५८ सूक्त

(ऋषि-दीर्घतमाः। देवता-अश्विनौ। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २
युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥ ४
न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ । १

हे अश्विदेवो! उचथ पुत्र दीर्घतमा द्वारा माँगे गए रक्षा साधन युक्त धनों को हमें प्रदान करो ॥ १ ॥ हे अश्वियो! तुम वेदिस्थान में हमारे

त्स्कारों से जिस दया-बुद्धि को धारण करते हो, उस धन युक्त बुद्धि को
मारे अभीष्ट पूर्ण होने में लगावें ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! "तुग्र" का जो पुत्र
मुद्र में डाला गया था, उसे पार लगाने के लिए तुम्हारा रथ जोड़ा गया था।
से तुम वीर द्रुतगामी घोड़ों से युद्ध में पहुँचते हो, वैसे ही मैं तुम्हारी शरण
प्त करूँ ॥३॥ हे अश्विद्वय ! यह स्तुतियाँ उचथ पुत्र की रक्षा करें। यह
तिमान दिन रात मुझे क्षीण न करें। दस गुने ढेर वाला ईंधन मुझे न
ला पावे। तुम्हारी शरण को प्राप्त मैं पृथिवी पर झुका हुआ हूँ ॥ ४ ॥ हे
अश्विद्वय ! मातृ रूप नदी का जल भी मुझे न डुबो सका। दस्युओं ने इस
द्ध को बाँध कर फेंक दिया। "त्रैतन" दैत्य ने जब मेरा सिर काटने की चेष्टा
की तब वह स्वयं ही कन्धों से आहत हुआ ॥५॥ ममता का पुत्र दीर्घतमा
दश काल पश्चात् वृद्ध हुआ। कर्म फल की इच्छा से स्तुति करने वाले स्तोता
त्य-युक्त हुए ॥ ६ ॥   [१]

१५६ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—द्यावापृथिवौ । छन्द—जगती ।)

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १
उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३
ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४
तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ । २

यज्ञों को पुष्ट करने वाली, ज्ञान वर्द्धिनी आकाश पृथिवी की मैं पूजा
करता हूँ। यजमान उनके पुत्र रूप हैं। वे देवगण के साथ वरणीय धनों को

देती हैं ॥ १ ॥ मैं आकाश रूप पिता और पृथिवी रूप माता के महत्व का चिन्तन करता हूँ। इन अत्यन्त पुरुषार्थियों ने जीवों को प्रकट किया और उनमें अन्नों को बनाया ॥ २ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! उत्तम कर्म वाले कुशल पुत्र रूप प्रजागण तुम्हें माता मानते हैं। तुम स्थावर जङ्गम में सत्य स्थापित करने के लिए सूर्य के स्थान की रक्षा करती हो ॥ ३ ॥ आकाश और पृथिवी एक स्थान से उत्पन्न हुई सहोदरा हैं। वे प्रज्ञा से युक्त हैं। किरणें उनका विभाजन करतीं और नवीन सूत्रों को प्रकट करती हैं ॥ ४ ॥ हे द्यावा पृथिवी ! सविता की प्रेरणा से स्थिर तुमसे हम उस अत्यन्त उत्तम धन की याचना करते हैं। तुम हमको उत्तम वास तथा गवादि युक्त ऐश्वर्य को प्रदान करो ॥ ५ ॥   [२]

१६० सूक्त

(ऋषि-दीर्घतमाः । देवता—द्यावापृथिव्यौ । छन्द—जगती ।)

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥ ३
अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३

अन्तरिक्ष को अपने बल से धारण करने वाली आकाश पृथिवी सब को सुख देने वाली हैं। उनके बीच सूर्य नित्य नियम पूर्वक गमन शील हैं ॥ १ ॥ अत्यन्त विस्तृत और विशाल आकाश और पृथिवी, पिता और माता रूप से सब लोकों का पालन करते हैं। जैसे पिता अपने शिशु को उत्तम

वर्णों से आच्छादित करता है ॥ २ ॥ वह माता पिता का भार वहन करने वाला सूर्य अपने बल से संसार को पवित्र करता है। वह बहुत रङ्गों वाली पृथिवी रूप धेनु और पौरुष युक्त आकाश रूप बैल को पवित्र करता हुआ, पृथिवी से रस रूप दूध को दोहन करता है ॥ ३ ॥ देवताओं में श्रेष्ठ वह परमात्मा महान्कर्मा है। उसने आकाश-पृथिवी को उत्पन्न किया। उसी ने अपनी प्रज्ञा से दोनों लोकों को नापा और जीर्ण न होने वाले खंभों पर टिका दिया ॥४॥ हे आकाश पृथिवी! तुम हमारे लिए महान् ऐश्वर्य और बल को धारण करो, जिससे हम प्रजाओं का विस्तार करें। तुम हमको बल वाली स्तुति की प्रेरणा करो ॥ ५ ॥ [३]

१६१ सूक्त

(ऋषि—दीर्घतमाः। देवता—ऋभवः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति)

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यङ् कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३
चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या नामभिः
स्परत् ॥ ५ । ४

वे श्रेष्ठ और युवा हमारे पास आए हैं, वे क्या दौत्य कर्म के लिए आए हैं। हे अग्ने! हमने चमस की निन्दा नहीं की है। हमारे उस काष्ठ के कर्मों को ही कहा है ॥ १ ॥ हे सुधन्वा के पुत्रो! मैं देवाज्ञा से तुम्हारे

पास आया हूँ। तुम एक चमस के चार कर दो। ऐसा करने पर देवताओं के साथ तुम भी यज्ञ भाग प्राप्त करोगे ॥ २ ॥ हे देव बन्धुओ! तुमने अग्नि को दूत बनाया है। हमको घोड़ा और गौ बना कर दो। माता-पिता को युवावस्था दो। इन कार्यों के बाद हम तुम्हारे समक्ष उपस्थित होंगे ॥ ३ ॥ हे ऋभुगण! कार्य करने के पश्चात् ही तुमने पूछा कि जो दूत यहाँ आया था वह कहाँ है? जब त्वष्टा ने चमस के चार टुकड़े किये तब स्त्रियों को देख कर वह लज्जा से छिप गया ॥ ४ ॥ त्वष्टा ने कहा कि जिन्होंने देवताओं के पीने के पात्र चमस की निन्दा की, उन्हें हम मार डालें। तब ऋभुओं ने सोम तैयार होने पर दूसरा नाम दिया और त्वष्टा की कन्या ने भी इसी नाम से पुकार कर प्रसन्न किया ॥ ५ ॥ [४]

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८
आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा
उपावतुः ॥ १० ॥ [५]

इन्द्र ने घोड़ों को जोड़ा अश्वि देवों ने रथ को जोड़ा, बृहस्पति ने गौ को पुकारा। ऋभु, विभ्वा और वाज यह देवताओं के पास गए तथा यज्ञ भाग प्राप्त किया ॥ ६ ॥ हे सुधन्वा-पुत्रो! तुमने अपने कर्मों से चर्म द्वारा गौ को पुनर्जीवन दिया। तुमने वृद्ध माता पिता को जवानी दी। तुमने अश्व से अश्व उत्पन्न किया और रथ जोड़ कर देवताओं के समक्ष उपस्थित हुए ॥ ७

ण ! तुमने कहा था कि ' सुधन्वा-पुत्रो ? इस मूंज से निचोड़े रस
ओ या जल पीओ । यदि इन दोनों में से किसी को नहीं पीना चाहते
तीसरे सायंकाल सोम रस का पान करना ॥ ८ ॥ एक ने जल को, दूसरे
ग्नि को और तीसरे ने पृथिवी को सब से श्रेष्ठ कहा । ऐसी सत्य बात
ते हुए उन ऋभुओं ने चमसों की रचना की ॥ ९ ॥ एक ने लंगड़ी गौ
जल को ओर हांका, दूसरे ने मांस को पृथक् किया, तीसरे ने सूर्यास्त से
र्व ही पुरीष को उठा लिया । माता-पिता पुत्रों का क्या उपकार कर सकते
हैं ? ॥ १० ॥

[५]

उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११
सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं वस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३
दिवा यांति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ।

हे ऋभुओ ! तुमने उत्तम कर्म की इच्छा से इन प्राणियों के हि
ऊँचे स्थान में तृणादि को और नीचे स्थान में जलों को प्रकट किया ।
अब तक सूर्य मंडल में सोते रहे । अब तुम वैसा कार्य क्यों नहीं करते ?॥
हे ऋभुगण ! जब तुम भुवनों को छिपाकर चारों ओर फिरते हो, तब
माता पिता कहाँ रहते हैं ? जो तुम्हारा हाथ पकड़ कर याचना करते
उन्हें वचन देते हो । जो तुम्हारी प्रशंसा करता है, उसे तुम अग्रणि
हो ॥ १२ ॥ हे ऋभुओ ! सूर्य मंडल में सोने के पश्चात चैतन्य हो
पूछा कि 'किसने हमें जगाया ?' सूर्य ने कहा कि 'वायु ने तुम्हें जगा
भर बीत गया, अब फिर अपने कर्मों को प्रकाशित करो ॥ १३ ॥ हे
तुम से मिलने को मरुद्गण आकाश से आ रहे हैं । अग्नि पृथि

ु अन्तरिक्ष से तथा वरुण जल रूप समुद्र मार्ग से चले आते ॥ १४ ॥		[६]

१६२ सूक्त

(ऋषि–दीर्घतमाः। दे०–मित्रादयो लिङ्गोक्ताः। छन्दः–त्रिष्टुप्, पंक्ति जगती)

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि॥ १
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः॥ २
एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति॥ ३
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रति वेदयन्नजः॥४
होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम्॥ ५। ७

मित्र, वरुण अर्यमा, वायु, इन्द्र और मरुद्गण हमसे वियुक्त न हों। हम देवताओं के अत्यन्त वेगवान् अश्व के वीरता पूर्ण कर्मों का यज्ञ में वर्णन करते हैं॥ १॥ हम चमकते हुए वस्त्रों और सुवर्ण युक्त आभूषणों से सुसज्जित अश्व के आगे विभिन्न वर्ण वाली सामग्री ले जाते हैं, वह इन्द्र और पूषा के लिए प्रिय हों॥ २॥ सब देवगण के योग्य पूषा का भाग आगे ले जाया जाता है जिसे त्वष्टा अत्यन्त पुष्टिप्रद बनाने के लिए प्रेरित करते हैं॥ ३॥ जहाँ मनुष्य नियत काल में देवगण के प्राप्त कराने योग्य अश्व को घुमाते हैं, वहाँ पूषा का भाग देवताओं के यज्ञ को प्रख्यात करता हुआ चलता है॥ ४॥ होता, अध्वर्यु, प्रति प्रस्थाता, अग्नीद्, ग्राव-स्तुत, प्रशास्ता ये सब अत्यन्त शोभित हुए हमारे हवियों वाले यज्ञ से नदियों को पूर्ण करें॥ ५॥		[७]

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७
यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९
यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० । ८

यूप काटने वाले, यूप ढोने वाले, यूप के लिए चषाल
गढ़ने वाले और यज्ञ के लिए आवश्यक बर्तन तैयार करने वाले, इन
का प्रयत्न हमको उत्साहजनक हो ॥ ६ ॥ उज्वल पीठ वाला अश्व दे
की ओर मुख करके खड़ा है। मेरा स्तोत्र रुचिकर है। मेधावी ऋषि
समर्थन करते हैं। देवगण को पुष्ट करने के लिए हमने यह उत्तम मं
किया है ॥ ७ ॥ वेगवान अश्व की रास और मुख में डाली हुई घ
अथवा अश्व की जो भी वस्तुएं हों, वे सब देवताओं की हों ॥ ८ ॥
भाग मक्खी खाती है और जो भाग तापदायक कर्मों में लग जा
जो भाग कार्य रत पुरुषों के हाथ में लग जाता है, वह सब देवगण
हो ॥ ९ ॥ थोड़े पके अन्न और गंध युक्त खाद्य सामग्री को सि
उत्तम प्रकार से शुद्ध करके प्रस्तुत करें ॥ १० ॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधाव
मा तद्भूम्यामा श्रिपन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रा
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरे
...भिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न

यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४
मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ । ६

हे अश्व ! क्रोधाग्नि द्वारा जलते हुए तेरे शरीर से जो अत्यन्त स्वेद रूप रस टपके, वह भूमिसात न हो जाय, वल्कि उससे देवगण का उत्साह वद्ध न हो ॥ ११ ॥ जो अश्व को अत्यन्त क्रोधित देखते हैं, वे उसके सामने से हट जाने को कहते हैं। तब उसके उत्तम दिखाई देने के कारण सभी वीर उसे प्राप्त करने की याचना करते हैं, इससे भी अश्व-स्वामी वीर का उत्साह वद्ध न होता है ॥ १२ ॥ मन को अच्छे लगने वाले, परिपाक करने वाले, सिंचन योग्य जो पात्र हैं, उनसे अश्व को सुभूषित करते हैं ॥ १३ ॥ अश्व का भागना, बैठना, लेटना, जल पीना, खाना जो कुछ कर्म हैं, वे सब देवताओं के आधीन हों ॥ १४ ॥ हे अश्व ! तुझे अग्नि का आँखों में घुस जाने वाला धुँआ कभी पीड़ित न करे । तुझ सुन्दर अश्व को देवगण स्वीकार करें ॥ १५ ॥ [६]

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६
यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७
चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९

तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते ।
गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २०
उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
ति युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१
व्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
ागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां
हविष्मान् ॥ २२ । १०

जो अश्व को वस्त्र-भूषण से सजाते हैं, वे देवगण को प्रसन्न करते
हैं ॥ १६ ॥ हे अश्व ! तेरे हाँफने अथवा थक जाने पर से तुझे जो कष्ट हुआ
है, उसे मैं मन्त्र द्वारा निवृत्त करता हूँ ॥ १७ ॥ हे वीरो ! वेगवान अश्व के
पीठ की पसलियों पर शस्त्र पहुँच सकता है, इसलिए उसके शरीर को निरा-
वरण न करो । उसे अभ्यास द्वारा पूर्ण शिक्षित बनाओ ॥ १८ ॥ हे अश्व !
चतुर पुरुष तुझ पर नियंत्रण रखे । तेरे अङ्गों को मैं कुशल नियन्ता के
अधिकार में करूँ ॥ १६ ॥ हे अश्व ! चलते समय तुझे कोई पीड़ित न करे ।
तेरे शरीर में शस्त्र प्रविष्ट न हो । कोई मूर्ख मनुष्य लोभ वश तेरे शरीर पर
आघात न करे ॥ २० ॥ हे अश्व ! तू मृत्यु को प्राप्त न हो, पीड़ित भी न
हो, उत्तम मार्गों से गमन कर । युद्ध में इन्द्र और मरुद्गण के अश्व तेरे साथी
रहेंगे । अश्विद्वयों के रथ में रासभ के स्थान पर भी कोई अश्व जोत
जायगा ॥ २१ ॥ यह अश्व सुन्दर गवादि युक्त धनों से, भृत्य, पुत्रादि
युक्त कराने वाला हो । अदिति हमारे पापों को दूर करे । यह अन्न युक्त
हमको बल प्रदान करे ॥ २२ ॥ [१०

१६३ सूक्त

(ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अश्वोऽग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥
... पुनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।

गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ । ११

हे अश्व ! तुम्हारा जन्म भी कथन योग्य है । तुम अन्तरिक्ष या जल से निकल कर अत्यन्त शब्द करते हो । तुम्हारे बाज के समान पङ्ख और हरिण के समान पैर हैं ॥ १ ॥ यम द्वारा दिये गये इस अश्व को त्रित ने जोड़ा । इन्द्र ने इस पर प्रथम बार सवारी की । गंधर्व ने इसकी रास पकड़ी । हे देवताओ ! तुमने इसे सूर्य से प्राप्त किया ॥ २ ॥ हे अश्व ! तू यम रूप है, सूर्य रूप है और गोपनीय नियम वाला त्रित है । तू सोम से युक्त है । आकाश में तेरे बंधन के तीन स्थान बताए जाते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्व ! आकाश, जल और अन्तरिक्ष में तेरे तीन-तीन बंधन स्थान बतलाए जाते हैं । तू ही वरुण है और जहाँ तेरा जन्म स्थान है, उसे बतलाते हैं ॥ ४ ॥ हे अश्व ! यह तुमको पवित्र करने वाले स्थान हैं । यह तुम्हारे पदचिन्हों वाले स्थान हैं । यहाँ तुम्हारी कल्याणकारिणी रासें रखी हैं । यज्ञ-पालक इनकी रक्षा करते देखे जाते हैं ॥ ५ ॥ [११]

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७
अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।

(दे)वा इन्द्रस्य हविरयमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९
(ई)र्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० । १२

हे अश्व ! मैंने तुम्हारे शरीर को अपने मन से ही पहचान लिया है। तुमको आकाश में उड़ते हुए देखा है। तुम धूल रहित मार्गों से जाने का यत्न करते हो। तुम द्रुत गति से चलते हुए सिर को ऊँचा उठाते हो ॥ ६ ॥ हे अश्व ! तुम्हारा श्रेष्ठ शरीर पृथिवी पर अन्नों के जीतने के लिए घूमता है। जब मनुष्य तुम्हारे भक्षणार्थ तृणादि लाता है तब तुम उसे प्रसन्नता से खाते हो ॥ ७ ॥ हे अश्व ! तुम्हारे पीछे रथ चलते हैं। मनुष्य, गौ आदि भी तुम्हारे पीछे ही चलते हैं। नारियों का सौभाग्य तुम्हारे पीछे चलता है। अन्य अश्व तुम्हारे साथ चलते हुए मित्र-भाव रखते हैं। देवगण तुम्हारे वीर्य कर्म के प्रशंसक हैं ॥ ८ ॥ इस अश्व का सिर सोने से सुसज्जित है। इसके पाँवों में लोहे का आवरण चढ़ा है। देवता भी इससे आकर्षित होते हैं। इन्द्र इस अश्व पर सर्व प्रथम सवार हुए ॥ ६ ॥ जब यह घोड़ा भव्य मार्ग में चलता है तब उसके साथी अश्वों के साथ चलती हुई कतार हंसों की पंक्ति जैसी लगती है ॥ १० ॥ [१२

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातइव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२
उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वां अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १

हे अश्व ! तू उड़ने में समर्थ है। तू वायु-वेग से चलता ... विविध स्थानों में भ्रमणशील है ॥ ११ ॥ कुशल अश्व रण क्षेत्र ... जाता हुआ स्तुति के योग्य होता है। अन्य घोड़ा, जो इसके साथ ... हुए भी इसका बन्धु रूप है, साथ चलता है। मेधावी वीर उसके ...

सूत्र की रस्सी प्रकट की, वे क्या हैं ? ("नवयुवक बछड़े" से तात्पर्य ग्रह नक्षत्रादि का है और सात सूत्र की रस्सी का अर्थ सूर्य की आकर्षण शक्ति से है) ॥ ५ ॥ [१४]

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८
युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९
तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १०॥१६

मैं अज्ञानी होने के कारण पूछता हूँ, जिसने इन छै लोकों को स्थिर किया है, वे अजन्मा क्या एक ही हैं ? ॥६॥ कौन इस आदित्य रूप पक्षी के स्थान का ज्ञाता है ! इनकी किरण रूप गौएँ तेज का दोहन करती हैं, वे जल पीने वाली हैं ॥ ७ ॥ पृथिवी माता आकाशस्थ सूर्य को वृष्टि के लिए पूजती है । वह गर्भेच्छा से वर्षा रूप-गर्भ से सींची गई तब मनुष्यों ने इष्ट प्राप्त कर स्तुति की ॥ ८ ॥ प्रदक्षिणा करती हुई पृथिवी गर्भ-भूत जल धारण के लिए ठहरी, तब वृष्टि रूप वत्स ने शब्द किया और विश्व रूप वाली गौ शस्य-श्यामला हुई ॥ ९ ॥ यह आदित्य तीन माता और तीन पिताओं को धारण करता हुआ उच्च स्थान पर स्थित है । वे थकते नहीं । देवगण आकाश की पीठ पर बैठे हुए सूर्य के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं ॥ १० ॥ [१६]

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४
साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि

रूपशः ॥ १५ । १६

सूर्य का बारह राशि रूप अरों से युक्त रथ चक्र आकाश के चारों ओर बारंबार फिरता है । वह कभी पुराना नहीं होता । इस चक्र में सात-सौ बीस पुत्र रूप बंधु स्थित हैं ॥ ११ ॥ पाँच पैर और बारह रूप से युक्त जलों के स्वामी को आकाश के परले अर्द्ध भाग में स्थित बताते हैं । अन्य व्यक्ति उन्हें सात पहिये और छै अरों वाले से युक्त रथ पर सवार बताते हैं ॥ १२ ॥ उस घूमते हुए पाँच अरों वाले रथ-चक्र में सब लोक स्थित हैं । उसका धुरा बहुत भार वहन करने पर भी क्षीण नहीं होता ॥ १३ ॥ अक्षय चक्र घूमता है । ईषा में जुते हुए दस घोड़े इसे चलाते हैं । अन्धकार से घिरा हुआ सूर्य का नेत्र चमकता है । उसी में सब भुवन स्थित हैं ॥ १४ ॥ सहजात ऋतुओं में अधिक मास वाली सातवीं ऋतु अकेली ही रहती है । छै ऋतु ही परस्पर जुड़ी हुई हैं और क्रमशः गमन करती हैं । वे रूप भेद से युक्त हुई अपने स्वामी के निमित्त घूमती हैं ॥ १५ ॥ [१६]

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ १६
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७

वः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० । १३

किरणों को स्त्री होकर भी पुरुष के समान हैं। उन्हें नेत्रवान्, मेधावी ही जानते हैं। जो जान लेते हैं, वे पितामह के समान अनुभवी हैं ॥ १६ ॥ आकाश के नीचे, पृथिवी के ऊपर वत्स को धारण करती हुई किरणें ऊपर उठी हैं। वे कहाँ जाती और कहाँ सोती हैं? ॥ १७ ॥ जो आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी पर स्थित अग्नि की उपासना करते हैं, वे अवश्य ह विद्वान् हैं। इन बातों को किसने बताया? कहाँ से यह दिव्यावरण वाला म उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥ जो इधर आते हैं, वे उधर जाने वाले भी कहे जा हैं। जो उधर जाते हैं उन्हें इधर आने वाला कहा जाता है। सोम और इ ने जो लोक बनाये वे प्राणी मात्र का भार वहन करते हैं ॥ १९ ॥ दो वृक्ष पर रहते हैं। उनमें से एक स्वादिष्ट फल खाता है और दूसरा कुछ खाता, केवल देखता है (जीवात्मा और परमात्मा दो पक्षी हैं एक भो भोगों में लिप्त है और दूसरा केवल देखता है।) ॥ २० ॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ।
यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २
यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ।
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४
जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥ १८

जिसमें प्राणी अमर भाव के चिन्तनार्थ निरन्तर स्तुति करते हैं, वह लोक पालक, सब का स्वामी मुझ मूर्ख में भी विद्यमान है ॥ २१ ॥ जिस वृक्ष में सभी मधुर रस के इच्छुक निवास करते और प्रजोत्पत्ति में लगे रहते हैं, उसके अग्रभाग में स्वादिष्ट फल लगे बताते हैं। जो व्यक्ति पिता को नहीं जानता, वह इसके फल को नहीं पा सकता ॥ २२ ॥ पृथिवी पर गायत्री छन्द, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप छन्द और आकाश में जगती छन्द जिसने स्थापित किया, उसे जो जानता है, वह देवत्व प्राप्त कर चुका है ॥ २३ ॥ गायत्री छंद से जिन्होंने ऋचाएं बनाईं, ऋचाओं से साम को रचा, त्रिष्टुप् छन्द से यजुर्वाक्य बनाया, दो पद और चार पद वाली वाणी से वाक् रचना की। अक्षर से सात छन्द बनाये ॥ २४ ॥ जगती से आकाश में जलों को स्थापित किया, रथन्तर साम में सूर्य को देखा। गायत्री के तीन चरण हैं, अतः यह बल और महत्व में सबसे बड़ी हुई है ॥ २५ ॥ [१८]

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥ २६
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९
अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३०

मैं इस सरलता से दुही जाने वाली गौ को बुलाता हूँ। कुशल दोहन

कर्त्ता इसे दुहे। सविता हमको उत्साहित करें। मैं उनके तेज के लिए आह्वान करता हूँ ॥ २६ ॥ बछड़े की इच्छा से रंभाती हुई दुग्धवती धेनु हमको प्राप्त हुई। वह हिंसा के अयोग्य, अश्विनी कुमारों के लिए दूध दे, सौभाग्य-लाभ के लिए बढ़े ॥ २७ ॥ आँखें मींचते हुए बछड़े के पीछे शब्द करती हुई धेनु बछड़े के मुख को चाटती है। उसके होठों को थन से लगाने की इच्छा से बढ़ती हुई रंभाती है। उसके थनों में दूध पूर्ण हो जाता है ॥ २८ ॥ बछड़ा निःशब्द गौ के चारों ओर घूमता है। गौ रंभाती हुई अपनी पशु-चेष्टाओं से मनुष्य को लजाती परन्तु उज्वल दूध देकर उसे प्रसन्न करती है ॥ २९ ॥ चंचल मन वाला, श्वास युक्त जीव अपने घर में अविचल रूप से रहता है। मरण धर्म वालों के अन्न से युक्त होता हुआ वह अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ रहता है ॥ ३० ॥ [१९]

अपश्यं गोपमनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४
इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं
व्योम ॥ ३५ । २०

मैंने इन रक्षक आदित्य को अन्तरिक्ष में गमन करते देखा है। वे किरण युक्त वस्त्रों से आच्छादित हुए सब लोकों में विचरते हैं ॥ ३१ ॥ जिसने इसे रचा, वह भी इसे नहीं जानता। जिसने इसे देखा उससे वह छिपा है। वह मातृ गर्भ में टिका हुआ बहुत प्रजावाला नाश के स्थान को पहुँचा

है ॥ ३२ ॥ आकाश मेरा पालनकर्त्ता पिता है, विस्तीर्ण पृथिवी मेरी माता है। आकाश पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष योनि रूप है, वहाँ पिता गर्भस्थापन करता है ॥ ३३ ॥ मैं तुमसे पृथ्वी का छोर पूछता हूँ। संसार की नाभि कहाँ है? यह जानना चाहता हूँ। अश्व का वीर्य कहाँ है और वाणी का परम स्थान कौनसा है? ॥ ३४ ॥ वेदि पृथिवी का अन्त है। यज्ञ संसार की नाभि है। सोम अश्व का वीर्य है। ब्रह्मा वाणी का परम स्थान है ॥ ३५ ॥ [२०]

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥ ३८
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ३९
सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ४० ॥ २१

लोक के वीर्य रूप सात आधे गर्भ विष्णु की आज्ञा से नियमों में रहते हैं। वे बुद्धि और मन के द्वारा लोक को सब ओर से घेर लेते हैं ॥३६॥ मैं नहीं जानता कि मैं क्या हूँ? मैं मूर्ख और अर्द्ध विक्षिप्त के समान हूँ। जब मुझे ज्ञान का प्रथमांश प्राप्त होता है, तभी मैं किसी वाक्य को समझ पाता हूँ ॥ ३७ ॥ अमर, मरणधर्मा के साथ रहता है। अन्नमय शरीर पाकर यह कभी ऊपर, कभी नीचे जाता है। यह दोनों विरुद्ध गति वाले हैं। मनुष्य उनमें एक को पहचानता है, परन्तु दूसरे को नहीं जानता। (जीव अमर है और शरीर मर जाता है। संसार शरीर को तो भली प्रकार जानता है पर जीव के विषय में भ्रम में पड़ा है।) ॥ ३८ ॥ ऋचायें उच्च स्थान को प्राप्त हैं। सब देवता उन पर आश्रय लिये हुए हैं जो इस बात को नहीं जानते

प्रत्या से क्या लाभ उठायेगा ? जो इसे जानता है, वही प्रसन्न रहता
॥ ३९ ॥ हे हिंसा के अयोग्य, सुन्दर भाग्य वाली धेनु ! तू तृण सेवन
करने वाली है। हमको भी भाग्यशाली बना। तू घास खाती हुई निर्मल
जल पीने वाली हो ॥ ४० ॥ [२१]

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥४२॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥ । २२

जलों को प्रेरणा करने वाली बिजली शब्दवान् हुई। वह उन्नत आकाश में एक, दो, चार, आठ और नौ पदों से युक्त सहस्र अक्षर वाली हुई है ॥ ४१ ॥ उसी बिजली से समुद्र प्रवाहित है, उससे चारों दिशाएँ रक्षित हैं। उससे मेघ जल-वर्षा करते हैं और उसी से संसार प्राणवान है ॥ ४२ ॥ मैंने गोबर से उत्पन्न धूम को दूर से देखा। चारों दिशाओं में व्याप्त धूम के मध्य अग्नि को देखा। ऋत्विजों ने यहाँ सोम पाक किया। यह उनका प्रथम कर्म है ॥ ४३ ॥ केश युक्त तीन देवता नियम-क्रम से दर्शन देते हैं। एक वर्ष में बोता है, एक बलों से संसार को देखता है और एक का रूप दिखाई नहीं पड़ता, केवल गति ही दिखाई पड़ती है (यहाँ सूर्य, अग्नि और वायु से अभिप्राय है ।) ॥ ४४ ॥ वाणी चार प्रकार की है

विद्वान उसके ज्ञाता हैं। उसके तीन पद अज्ञात और चौथे पद को मनुष्य बोलते हैं ॥ ४५ ॥ उसे इन्द्र, मित्र या वरुण कहते हैं। वही आकाश में सूर्य है। वही अग्नि, यम और मातृरिश्वा है। मेधावी जन एक ब्रह्म का अनेक रूप में वर्णन करते हैं ॥ ४६ ॥ [२२]

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९
यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ ५०
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥ ५१
दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ ५२ ।२३

काले मेघ रूप घोंसले में किरण रूप सुनहरी पक्षी जल को प्रेरित करते हुए आकाश में उड़ते हैं। जब वे आकाश से लौटते हैं तब पृथिवी जल से भीग जाती है ॥ ४७ ॥ जिस रथ के बारह घेरे, एक चक्र और तीन नाभियाँ हैं, उस रथ का ज्ञाता कौन है? उसमें तीन सौ साठ मेखला ठुकी हैं, वे कभी ढीली नहीं होती (इसका आशय वर्ष और उसके दिनों की संख्या से है) ॥ ४८ ॥ हे सरस्वती! तुम्हारा शरीरस्थ गुण सुखदायक और वरणीय वस्तुओं का पोषक है। वह रत्नधारक और दानशील है। उसे हमारी ओर प्रेरित करो ॥ ४९ ॥ यजमानों ने अग्नि से यज्ञ किया। वही प्रथम धर्म था, वे कर्मवान् अपने महत्व से स्वर्ग पा सके। वहीं साध्य देवता निवास करते हैं ॥ ५० ॥ जल का एक ही रूप है। यह कभी ऊपर जाता क

है। मेघ वर्षा द्वारा पृथिवी को तृप्त करते हैं और अग्नियाँ आकाश को प्रस करती हैं ॥ ५१ ॥ जलों और ओषधियों के कारणभूत, सम्मुख प्राप्त हु स्तोताओं के लिए मैं वर्षा से तृप्त करने वाले, रस युक्त, आकाश में स्थि दर्शनीय सूर्य का बारंबार आह्वान करता हूँ ॥ ५२ ॥ [२३]

१६५ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ १
कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥ ३
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५ । २४

(इन्द्र) सम वयस्क और सम स्थान वाले मरुद्गण समान शोभा से युक्त हैं। ये किस मति से, किस देश से आये हैं? क्या यह वीर धन-लाभ की इच्छा से बल की पूजा करते हैं ॥ १ ॥ तरुण मरुद्गण किस की हवियाँ ग्रहण करते हैं। उनको यज्ञ से कौन हटा सकता है? अन्तरिक्ष में विचरने वाले बाज पक्षी के समान इन मरुतों का किस श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा स्तवन करें ॥ २ ॥ (मरुद्गण) हे श्रेष्ठ कर्म वालों का पालन करने वाले इन्द्र! तुम अकेले कहाँ जाते हो? तुम्हारा अभीष्ट क्या है? हे शोभनीय तुम सब की बात पूछते हो। हमसे जो कहना चाहो, कहो ॥ ३ ॥ (इन्द्र) यह स्तुतियाँ और निष्पन्न सोम मुझे सुख देते हैं। मेरा दृढ़ वज्र शत्रुओं पर व्यर्थ नहीं

जाता। मनुष्य मेरी पूजा करते और उनके स्तोत्र मुझे प्राप्त होते हैं। यह दोनों अश्व मुझे ले जाते हैं ॥ ४ ॥ (मरुद्) हे इन्द्र! निकट रहने वालों के साथ रहते हुये हम अपनी शक्ति से शरीरों को सजाते हैं। अपने बल से इन अश्वों को रथ में जोतते हैं। तुम हमारे स्वभाव को जानते ही हो ॥ ५ ॥ [२४]

क्व स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९
एकस्य चिन्मे विभ्वस्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्युग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०।२५

(इन्द्र) हे मरुद्गण! वृत्र वध के कार्य में तुमने मुझे अकेला ही लगाया, तब तुम्हारा पूर्ववत् स्वभाव कहाँ था? मैं विकराल बली और दुर्जय हूँ। मैंने अपने शत्रुओं पर वज्र से विजय प्राप्त करली है ॥ ६ ॥ (मरुद्) हे वीर! तुमने हमारे साथ मिलकर बहुत वीर कर्म किया है। हे महाबली इन्द्र! हम मरुद्गण भी अपने मनोबल से जो चाहें वह कर सकते हैं ॥ ७ ॥ (इन्द्र) हे मरुतो! मैंने अपने क्रोध के बल से वृत्र का वध किया। मैंने ही वज्र धारण कर मनुष्यों के लिए जल-वृष्टि की ॥ ८ ॥ (मरुद्) हे ऐश्वर्यशीलन्! हे इन्द्र! तुम से बढ़ कर कोई धनी नहीं है। तुम्हारे समान कोई प्रसिद्ध देवता नहीं है। तुम अत्यन्त बलवान् हो। तुम्हारे कर्मों की समानता न कोई पहिले कर सका और न अब कर सकता है ॥ ९ ॥ (इन्द्र) हे मरुद्गण! एक मेरा बल ही सर्वत्र व्याप्त है। मैं अत्यन्त मेधावी और प्रसिद्ध उग्र कर्मा हूँ। मैं जो चाहूँ वही करने में समर्थ हूँ। जो धन संसार में हैं उनका मैं स्वामी हूँ ॥ १० ॥

अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
सञ्चक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२
को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखींरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ १३
आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ । २६

(इन्द्र) हे मरुतो ! तुम्हारे स्तोत्र से मैं आनन्दित हुआ हूँ । व
स्तोत्र तुमने मुझे पूज्य मान कर रचा है । मैं तुम्हारा मित्र और अभीष्ट फ
देने वाला हूँ ॥ ११ ॥ (इन्द्र) हे मरुतो ! तुमने अनिंद्य यश और
बलों को धारण कर मेरे निमित्त प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया । मैं
भी तुम्हारे कर्मों से हर्षित हूँ ॥ १२ ॥ (अगस्त्य) हे मरुतो ! यहाँ
तुम्हारी स्तुति करता है ? तुम सब के मित्र हो । अपने मित्र उपासक के
जाओ । तुम उत्तम धनों की प्राप्ति में लिए कारणभूत बनते हुए कर्म
प्रेरण करो ॥ १३ ॥ सेवा करने वाले से प्रसन्न होकर पारितोषिक
समान इन्द्र ने मुझे कवित्व प्रदान किया । हे मरुद्गण ! तुम स्तुतिक
सामने आओ ॥ १४ ॥ हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य कवि का यह
तुम्हारे निमित्त हो । तुम मेरे शरीर को बल देने के लिये अन्न
पधारो । हम अन्न, बल और दान-बुद्धि को प्राप्त करें ॥१५॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्तम् ॥

१६६ सूक्त

(ऋषिः—मैत्रावरुणाऽगस्त्यः । दे०—मरुत । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति)

तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥ १
नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥ २
यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥ ३
आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ४
यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥ ५ । १

हे महान् गर्जनशील मरुतो ! तुम इन्द्र के ध्वज रूप एवं वेगवान गण हो । हम तुम्हारे पुरातन महत्व को कहते हैं । हे समर्थ ! तुम तेजवंत हुए योद्धाओं के समान वीर-कर्म करते हो ॥ १ ॥ युद्धों में शत्रुओं का घर्षण करने वाले, शिशु के समान मधुर क्रीड़ा युक्त रुद्र-पुत्र मरुद्गण नमस्कार करने वाले की रक्षा करते हैं । वे हविदाता को दुःखी नहीं होने देते ॥ २ ॥ मृत्यु से रक्षा करने वाले मरुद्गण हविदाता को अत्यन्त धन देते हैं । उसके प्रदेश को मित्रों के समान, वर्षा से सींचते हैं ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! तुमने अपने बल से देशों का भ्रमण किया है । तुम्हारे वाहन आगे बढ़ते हैं तब सब लोक कंपित होते हैं । हथियार उठा कर चलने वाले वीर को देखकर सब काँपते हैं, वैसे ही यह घर तुम्हारी गति से काँपते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुतो ! तुम तेजवान, गतिवान, मनुष्यों के हितकारी और पर्वतों को गुंजाने वाले हो । तुम आकाश की पीठ को कँपाते हो । तुम्हारे डर से वृक्ष रथ पर चढ़ी हुई स्त्री के समान इधर से उधर हिलते हैं ॥ ५ ॥

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९
भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ।

हे विकराल मरुतों ! हमारे कल्याण की इच्छा से अपनी बुद्धि को दया की ओर प्रेरित करो । जब तुम्हारी विद्युत रूप तलवार चमकती है, तब वह वर्छी के समान पशुओं को नष्ट करती है ॥ ६ ॥ जिनका दिया हुआ धन स्थिर रहता है, वह कभी क्षीण नहीं होता । जिनकी यज्ञों में स्तुति की जाती है, वे मरुद्गण सोम पान के लिए इन्द्र की प्रशंसा करते हुए उनकी शक्ति और कर्मों के जानने वाले हैं ॥ ७ ॥ हे विकराल कर्म, बल वाले मरुद्गण ! तुमने जिस पर कृपा की है, उसे तुम असंख्य घातों से बचाते हो और उसकी पुत्रादि साधन द्वारा रक्षा करते हो ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! सभी कल्याण, समस्त बल तुम्हारे रथ पर स्थापित हैं । तुम्हारे कन्धे पर स्पर्द्धा युक्त आयुध रहते हैं । तुम्हारा धुरा दोनों पहियों को ठीक प्रकार घुमाता है ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी भुजाऐं मनुष्यों के हित साधन में तत्पर रहती हैं । तुम्हारा हृदय देश कल्याणकारी स्वर्णहारों से सुसज्जित और कंधे भयंकर आयुधों से युक्त हैं । पक्षी जैसे पङ्ख धारण करते हैं वैसे ही तुमने शक्ति धारण कर रखी है ॥ १० ॥ [२]

महान्तो मह्ना विभ्वो विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११

तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इंद्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२
तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥ १४
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ । ३

महान् महिमा वाले बलवान, ऐश्वर्यवान्, आकाश के नक्षत्रों के समान देदीप्यमान, गम्भीर ध्वनि युक्त, सुन्दर जिह्वा और मधुर गान वाले मरुद्गण गर्जनशील हुए, इन्द्र के सहयोगी हैं ॥ ११ ॥ उत्तम प्रकार से प्रकट हुए मरुतो ! तुम्हारा दान अदिति के नियम के समान स्थिर है। इसलिए तुम महान् हो। जिस उत्तम कर्म वाले को तुम धन देते हो, उसके धन को इन्द्र भी नहीं छीनते ॥ १२ ॥ हे अविनाशी मरुतो ! तुमने अपने बंधुभाव के कारण प्राचीन स्तोत्रों की भली भाँति रक्षा की है। तुमने मनुष्यों की स्तुति स्वीकार कर उन्हें कर्मों का ज्ञान दिया ॥ १३ ॥ हे वेगवंत मरुद्गण ! हम तुम्हारी कृपा से चिरकाल तक वृद्धि को प्राप्त हों। जिन कर्मों से मनुष्य यजयी होता तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है, अपनी उस अभिलाषा को मैं इन यज्ञों से प्राप्त करूँ ॥ १४ ॥ हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य कवि का यह स्तोत्र और वाणी तुम्हारे निमित्त हो। तुम हमारे शरीर को बल देने के लिए अन्न, के साथ आओ। हम अन्न, बल और दानशील स्वभाव को प्राप्त करें ॥ १५ ॥ [३]

१६७ सूक्त

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता–इन्द्र मरुत । छन्द–पंक्ति, त्रिष्टुप)

सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥

आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४
जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ । ४

हे अश्व-सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे असंख्य रक्षा-साधन हमको प्राप्त हों । बहुत-सा अन्न और प्रचुर धन-राशि हमको असीमित बल के साथ मिलें ॥१॥ अत्यन्त मेधावी मरुद्गण अपने रक्षा-साधनों और महान धन के साथ हमारी ओर पधारें । उनके घोड़े समुद्र के पार हिनहिनाते हुए प्रतीत होते हैं ॥ २ ॥ मनुष्यों की गुप्त रूप से रहने वाली पत्नी के समान उन मरुद्गण की चमकती हुई स्वर्णिम कटार, म्यान में रहती और निकलती है । वह विद्युत रूपा विदुषी के समान ओजस्विनी वाणी से युक्त है (बिजली कभी चमकती कभी छिपती और कभी कड़कती है ।) ॥ ३ ॥ द्रुत गतिवान मरुद्गण को यह एकांत निवासिनी पत्नी के समान अथवा यज्ञ में उच्चारण की जाने वाली वेदवाणी के समान प्राप्त होती है ॥ ४ ॥ साधारण नारी के समान इस दमकती हुई विद्युत ने मरुद्गण को वरण किया । तब वह सूर्या के समान गतिवाली मरुद्गण के रथ को प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ [४]

आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७
पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८

नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९
वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १०
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥५

हे मरुद्गण ! तुमने अत्यन्त तेज वाली [illegible] रोदसी को अपने रथ पर चढ़ाया उस समय सोम अभिषव कर्त्ता हवि देते हुए स्तुति गान करने लगे ॥ ६ ॥ इन मरुद्गण के कथन योग्य पराक्रम का मैं [illegible] करता हूँ । उसकी साथिनी यशंसाभिलाषिणी, दृढ़ विचार वाली है । वह मानिनी सौभाग्य वाली हुई प्रजाओं को धारण करती है ॥ ७ ॥ मित्र और वरुण यज्ञ निंदकों से रक्षा करते हैं । अर्यमा उनको नष्ट करते हैं । हे मरुद्गण ! जब तुम्हारा जल छोड़ने का समय आता है तब [illegible] हिल जाते हैं ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारा बल अपरिमित है । उसका अन्त न पास में लगता है, न दूर में । तुम अत्यन्त सामर्थ्यवान हो । [illegible] के समान बढ़ कर धर्षणशाली हुए शत्रुओं को पराजय करते हो ॥ ९ ॥ आज हम इन्द्र के अत्यन्त प्रिय बनेंगे । कल हम उन्हीं को बुलावेंगे । [illegible] बुलाते रहे हैं । वे महान् इन्द्र हमारे अनुकूल हों ॥ १० ॥ हे मरुद्गण ! मान-पुत्र मान्दार्य का यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त है । तुम शरीर की [illegible] के निमित्त पुष्टि सहित यहाँ आओ और हम, बल तथा [illegible] को प्राप्त कराओ ॥ ११ ॥ [५]

सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ॥ ५ । ६

हे मरुद्गण ! सभी यज्ञों में तुम अपने एकाग्र मन वाले यजमान को प्रत्येक स्तोत्र में बढ़ाते और उसे देवकर्मों के निमित्त धारण करते हो। मैं आकाश, पृथिवी की रक्षा के लिए श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा तुम्हें अपनी ओर बुलाता हूँ॥ १ ॥ हे मरुतो ! तुम स्वयं उत्पन्न, स्वयं बलशाली अन्न के लिए प्रकट होते हो। वे जल की लहरों के समान तथा पयस्विनी गौओं के समान दान करते हैं॥ २ ॥ उत्तम शाखा वाले सोम पीने के लिए अत्यन्त आनन्दप्रद होते हैं वैसे ही मरुद्गण कल्याणकारी हैं। उनके कन्धों पर आयुध तथा हाथों में कङ्कन और कटार सुशोभित है॥ ३ ॥ परस्पर मिले हुए मरुद्गण आकाश से आते हैं। हे अविनाशी मरुतो ! अपने ओजस्वी शब्दों से हमारा उत्साह वर्द्धन करो। अनेक यज्ञों में आने वाले तुम दृढ पर्वतों को भी कम्पित करते हो॥ ४ ॥ हे आयुधों से सुसज्जित मरुतो ! तुम्हें कौन प्रेरणा देता है ! जैसे मेघ स्वयं चलता है, वैसे ही तुम स्वयं परिचालित होते हो। यजमान तुम्हें अन्न प्राप्ति के लिए बुलाता है॥५॥ [६]

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६
सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८

असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० । ७

हे मरुद्गण ! उस मेघ मंडल का आदि अन्त किधर है ? जब तुम तृणों के समान मेघों को छिन्न भिन्न करते हो तब जलों को उनसे पृथक् कर पृथिवी पर वर्षा करते हो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे रक्षा-साधन सशक्त, चमकते हुए, दृढ़ तथा शत्रुओं को पीस देने वाले हैं । तुम्हारा दान यजमान की दक्षिणा के समान कल्याणप्रद और वर्षा के समान स्थायी प्रभाव वाला है ॥ ७ ॥ मेघों के गर्जन की प्रतिध्वनि करती हुई नदियाँ वेगवती होती हैं । विद्युत नीचे मुख करके मुस्कराती हैं और मरुद्गण पृथिवी पर जल-वर्षा करते हैं ॥ ८ ॥ पृश्नि ने महायुद्ध के लिए चपल मरुद्गण को प्रसव किया । उन समान रूप वाले मरुतों ने जल को प्रकट किया और मनुष्यों ने बलदाता अन्न के दर्शन किए ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! मान के पुत्र मान्दार्य कवि का यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त है । तुम शरीर को बल देने वाले अन्न के सहित यहाँ आओ । हम अन्न, बल और दानशील बुद्धि को प्राप्त करें ॥ १० ॥　　　　　　　　[७]

१६९ सूक्त

(ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति, उष्णिक्, त्रिष्टुप ।)

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २
अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि

सहस्त्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३
अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः ॥ ५ । ६

हे मरुद्गण ! सभी यज्ञों में तुम अपने एकाग्र मन वाले यजमान को प्रत्येक स्तोत्र में बढ़ाते और उसे देवकर्मों के निमित्त धारण करते हो। मैं आकाश, पृथिवी की रक्षा के लिए श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा तुम्हें अपनी ओर बुलाता हूँ ॥ १ ॥ हे मरुतो ! तुम स्वयं उत्पन्न, स्वयं बलशाली अन्न के लिए प्रकट होते हो। वे जल की लहरों के समान तथा पयस्विनी गौओं के समान दान करते हैं ॥ २ ॥ उत्तम शाखा वाले सोम पीने के लिए अत्यन्त आनन्दप्रद होते हैं वैसे ही मरुद्गण कल्याणकारी हैं। उनके कन्धों पर आयुध तथा हाथों में कङ्गन और कटार सुशोभित हैं ॥ ३ ॥ परस्पर मिले हुए मरुद्गण आकाश से आते हैं। हे अविनाशी मरुतो ! अपने ओजस्वी शब्दों से हमारा उत्साह वर्द्धन करो। अनेक यज्ञों में आने वाले तुम दृढ़ पर्वतों को भी कम्पित करते हो ॥ ४ ॥ हे आयुधों से सुसज्जित मरुतो ! तुम्हें कौन प्रेरणा देता है ! जैसे मेघ स्वयं चलता है, वैसे ही तुम स्वयं परिचालित होते हो। यजमान तुम्हें अन्न प्राप्ति के लिए बुलाता है ॥५॥ [६]

क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६
सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८

प्रसूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० । ७

हे मरुद्गण ! उस मेघ मंडल का आदि अन्त किधर है ? जब तुम तृणों के समान मेघों को छिन्न भिन्न करते हो तब जलों को उनसे पृथक कर पृथिवी पर वर्षा करते हो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे रक्षा-साधन सशक्त, चमकते हुए, दृढ तथा शत्रुओं को पीस देने वाले हैं । तुम्हारा दान यजमान की दक्षिणा के समान कल्याणप्रद और वर्षा के समान स्थायी प्रभाव वाला है ॥ ७ ॥ मेघों के गर्जन की प्रतिध्वनि करती हुई नदियाँ वेगवती होती हैं । विद्युत नीचे मुख करके मुसकराती हैं और मरुद्गण पृथिवी पर जल-वर्षा करते हैं ॥ ८ ॥ पृश्नि ने महायुद्ध के लिए चपल मरुद्गण को प्रसव किया । उन समान रूप वाले मरुतों ने जल को प्रकट किया और मनुष्यों ने बलदाता अन्न के दर्शन किए ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण ! मान के पुत्र मान्दार्य कवि का यह स्तोत्र तुम्हारे निमित्त है । तुम शरीर को बल देने वाले अन्न के सहित यहाँ आओ । हम अन्न, बल और दानशील बुद्धि को प्राप्त करें ॥ १० ॥ [७]

१६६ सूक्त

(ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति, उष्णिक्, त्रिष्टुप ।)

महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १
अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २
अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३

न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
त्व यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४
राय इंद्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
पु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ । ८

हे रचना करने वाले इन्द्र ! तुम उद्वेग और क्रोध से बचाते हो। पु हम पर कृपा करो और सुखी बनाओ ॥ १ ॥ म मरुतों के स्वामी हो। हम पर कृपा करो और सुखी बनाओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे दान को जानने वाली प्रजाऐं तुम्हें प्राप्त होती हैं। मरुतों की सेना युद्ध में तुम्हें अत्यन्त युद्ध-साधन प्राप्त कराती है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा प्रसिद्ध आयुध वज्र मेघ की ओर जाता है। मरुद्गण हमारे लिए जलों को गिराते हैं। जैसे अग्नि काष्ठ में शीघ्र जलती है और जल टापुओं के चारों ओर रहते हैं, वैसे ही मरुद्गण हमको अन्नों से पूर्ण कराते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! दक्षिणा की समान बड़ा हुआ जो धन अपने मित्र को दिया जाता है, वही धन हमको दो। मधुर दुग्ध से जैसे स्त्री के स्तन पुष्ट होते हैं, वैसे ही हमारी स्तुतियों से तुम हमें अन्नादि से पुष्ट करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा धन अत्यन्त सत्यवाप्रद, पुष्टिप्रद तथा आगे बढ़ाने वाला है। जो मरुद्गण प्राचीन समय से ही नियमों पर दृढ़ रहते आए हैं, वे हम पर अत्यन्त अनुग्रह करें ॥ ५ ॥

[८

त प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नृन्महः पार्थिव सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैॠणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८

हे इन्द्र ! तुम पुरुषार्थी मेघों के पास जाकर अपना पुरु... करो। मरुतों के वाहन मेघों पर आक्रमण करने को प्रस्तुत हैं ॥ ... अधम यो... ...स्थिर द्रुतगामी मरुतों का गर्जन सुनाई देता है।

के समान मरुद्गण शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! मरुतों
सहित आकर मान-पुत्रों के निमित्त सब के उपभोगकर्त्ता जलों को मेघादि
प्रकट करो । तुम स्तुत्य देवगण के साथ स्तुति किये जाते हो । हम अन्न,
और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ॥८॥ [४]

१७० सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता-इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप्, पंक्ति ।)

न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ । १०

(इन्द्र) आज और कल कुछ नहीं है । जो नहीं हुआ उसे कौन जानता है ? जिन मनुष्यों का चित्त चंचल है, वह निश्चय किए हुए को भी भूल जाते हैं ॥ १ ॥ (अगस्त्य) हे इन्द्र ! तुम क्या हमें मारना चाहते हो ? मरुद्गण तुम्हारे भाई हैं उनके साथ श्रेष्ठ प्रकार यज्ञ-भाग ग्रहण करो । हमको युद्ध-काल में नष्ट मत करना ॥ २ ॥ (इन्द्र) हे अगस्त्य ! मित्र होकर हमारा अनादर क्यों करते हो ? हम तुम्हारे मन को जानते हैं । तुम हमें देना नहीं चाहते ॥ ३ ॥ ऋत्विजो ! वेदी को सजाओ । अग्नि को प्रदीप्त करो । फिर हम अमृत के समान तुम्हारा यज्ञ का विस्तार करें ॥ ४ ॥ (अगस्त्य) हे धनपते ! तुम धनों के स्वामी हो । हे मित्रपते ! तु

आश्रय रूप हो। हे इन्द्र ! तुम मरुतों के साथ समानता वाले हो, हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥ ९ ॥ [१०]

१७१ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः। देवता-मरुत । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४
येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ । ११

हे मरुतो ! मैं नमस्कार करता हुआ तुम्हारे पास आता हूँ। तुम वेगवानों से दया-याचना करता हूँ। तुम स्तुतियों से प्रसन्न होकर क्रोध को शांत करो। अपने रथ से घोड़ों को खोल दो ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! नमस्कारों से युक्त तुम्हारा यह स्तोत्र हृदय से रचा गया और मन से धारण किया गया है। इसलिए इसे स्वीकार करते हुए स्नेहवश यहाँ आओ। तुम निश्चय ही हव्यान्न को बढ़ाते हो ॥ २ ॥ स्तुति किए जाने पर मरुद्गण हम पर कृपा करें। स्तुति करने पर इन्द्र भी शांतिदाता हों। हे मरुतो ! हमारी आयु के दिन रमणीय सुख से युक्त, श्रेष्ठ और विजय-पूर्ण रहें ॥ ३॥ हे मरुद्गण !

तैयार रखा था, उसे हमने दूर कर दिया। अब तुम हम पर कृपा करो ॥ ४ ॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! तुम्हारे बल से प्रेरित हुईं उषाएं नित्य खिलती और प्राणियों को जगाती हैं। तुम विकराल कर्म वाले, उन मरुतों के साथ हमारे लिए अन्न धारण करो ॥ ५ ॥ हे अजेय इन्द्र ! तुम उन मेधावी मरुतों सहित अपने क्रोध को शांत करो। शत्रुओं को नष्ट करते हुए हमारी रक्षा करो। हम अन्न, बल प्राप्त करें और हमारा स्वभाव दानशील हो ॥ ६ ॥ [११]

१७२ सूक्त

(ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत । छन्दः-गायत्री ।

चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥ १
आरे सावः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ ॥२
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ । १२

हे कल्याणकारी मरुतो ! तुम्हारा आगमन हमारी रक्षा का प्रत्यक्ष कारण बने ॥ १ ॥ हे कल्याणदाता मरुद्गण ! तुम्हारे विनाशक अस्त्र हमसे दूर रहें। जिस आयुध को फेंकते हो, वह हमसे दूर गिरे ॥ २ ॥ हे मंगलमय मरुद्गण ! तृण के समान अवनति को प्राप्त होने पर भी हमारी सन्तान की रक्षा करना। हमें ऊँचा उठाओ जिससे हम पूर्णायु तक जीवित रह सकें ॥ ३ ॥ [१२]

१७३ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप, बृहती)

गायत्साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १
अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २

अद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
न्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३
ा कर्मापतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
ुजोपदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४
तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ । १३

गायक पक्षी के समान दिव्य साम को गावे। हम उससे ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करते हुए उसका सम्मान करें। हिंसा से रहित पयस्विनी गायें कुश पर विराजमान इन्द्र की सेवा करती हैं ॥ १ ॥ हविदाता यजमान अध्वर्युओं के साथ हव्य देते हुए इन्द्र को पूजते हैं। हे इन्द्र! तुम अत्यन्त पूज्य हो। तुम्हारी स्तुति की आकांक्षा से मनुष्य होता यज्ञानुष्ठान करते हैं ॥ २ ॥ होता रूप सूर्य चारों ओर व्याप्त हैं। वे शरद् से पूर्व गर्भ रूप अन्न को पृथिवी में धारण करते हैं। अश्व की तरह शब्द करते हुए अन्न युक्त हुए आकाश और पृथिवी के मध्य दूत के समान कार्य करते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र के निमित्त यह हव्य अधिक रुचिकर किया गया है। यजमान श्रेष्ठ स्तोत्रों को अर्पित करते हैं। अश्विनीकुमारों के समान तेजस्वी रथी इन्द्र इन्हें स्वीकार करें ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो! उस महाबली स्थिर इन्द्र की स्तुति करो। वे सब से अधिक पराक्रमी तथा अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं ॥ ५ ॥ [१३]

प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७
एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८
असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।

प्रसद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९
विप्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।
मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० । १४

जो इन्द्र अपनी महिमा से अग्रगण्य हैं, उनकी पूर्ति के लिए आकाश और पृथिवी भी पर्याप्त नहीं है। उन इन्द्र ने पृथिवी को थालों के समान और आकाश को मुकुट के समान धारण किया है ॥ ६ ॥ हे वीर इन्द्र ! पृथिव्यादि लोक तुम एक चित्त वाले सत्पुरुषों के वरण करने योग्य वीर को सुसज्जित करते हैं और तुम्हारे उपास्य को अन्नादि से युक्त करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! सोम की आहुतियाँ अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर प्रजा को सुखी करें। यह स्तुतियाँ तुम्हें प्रसन्न करती हैं, उप वाणी तुम्हारी सेवा करती है। तुम स्तोताओं की स्तुतियों की कामना. करते हो ॥ ८ ॥ हे स्वामिन् ! तुम वही करो, जिससे हम तुम्हारे मित्र हो सकें और हमारी स्तुतियाँ तुम से अभीष्ट प्राप्त करा सकें। तुम हमारी स्तुतियों को सुनते हुए कर्म-सम्पादन कराने वाले बनो ॥ ९ ॥ जैसे प्रशंसा करने पर स्पर्द्धी मनुष्य सदय हो जाता है, वैसे ही वज्रधारी इन्द्र हमारे प्रति हों। जैसे नगर के योग्य अधिपति के सुशासन से सभी उनकी स्तुति करते हैं, वैसे ही हम इन्द्र की पूजा करेंगे ॥१०॥ [१४]

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।
तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११
मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।
महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२
एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।
आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३।१५

यदि कोई व्यक्ति मन में कुटिल हुआ यज्ञ में इन्द्र की पूजा करता है, तो लम्बे मार्ग में प्यासे को शीघ्र जल प्राप्त न होने के समान उस कुटिल मन वाले का यज्ञ फल की ओर नहीं जाता ॥ ११ ॥ हे वली इन्द्र ! तुम युद्ध में हमसे वियुक्त न होओ। देवगण के साथ तुम्हारा हव्य भाग भी

तुम्हारे साथी मरुद्गण को भी हम हवि देते हुए पूजते हैं ॥ १२ ॥ हे अश्वों से युक्त इन्द्र ! यह स्तोत्र तुम्हारा ही है। इसके द्वारा हमारे मार्ग पर आओ। कल्याण के निमित्त हमारी ओर घूमो। हम अन्न, बल को प्राप्त करते हुए उदार स्वभाव वाले हों ॥ १३ ॥ [१५]

१७४ सूक्त

(ऋषिः—अगस्त्य। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति।)

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पाह्यसुर त्वमस्मान्।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त्।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम्।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३
शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना।
सृजदर्णास्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४
वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ । १६

हे इन्द्र ! तुम सब संसार के स्वामी हो। तुम हमारा पालन करो। हमारे वीरों की रक्षा करो। तुम सत्कर्म वालों के उद्धारकर्त्ता हो। तुम धन और बल के दाता हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुमने निरादर करने वाले मनुष्यों को निर्धन और निर्बल बना दिया। तुमने उनके गढ़ों को तोड़ा और जल को प्रवाहित किया। युवा "पुरुकुत्स" के शत्रु को उसके आधीन कराया ॥ २ ॥ हे बहुतों द्वारा आहूत इन्द्र ! तुम वीरों द्वारा रक्षित सेनाओं को प्रेरित करो। तुम जिस अग्नि से प्रकाश को प्राप्त होते हो उस सिंह के समान अग्नि को हमारे घर में स्थापित करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी प्रशंसा के लिए वज्र के बल से वे शत्रु मर कर सो गए। उस समय तुमने जलों को और गौओं को छोड़ा तथा शत्रु को धन-हीन बनाया ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम "कुत्स"

की कामना करते हुए शीघ्रगामी, सुखदायक अश्वों को चलाते हो ! तब सूर्य अपने रथ चक्र को समीप लाते हैं और तुम वज्र धारण कर शत्रुओं से सामना करते हो ॥ ५ ॥ [१६]

जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६
रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९
त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० । १७

हे इन्द्र ! तुमने अपने मित्रों को संताप देने वाले अदानशीलों को नष्ट किया। जो तुम्हें मनुष्यों के मित्र रूप से देखते हैं, वे सन्तानयुक्त हुये सदा स्थिर रहते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! अन्न की प्राप्ति के लिए ऋषियों ने तुम्हारी स्तुति की। तुमने पृथिवी को शय्या रूप दिया। तुमने तीन भूमियों का अद्भुत दान दिया। युद्ध में "दुर्योणि" के लिए "कुयवाच" को मार डाला ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राचीन पराक्रम की नवीन ऋषियों ने स्तुति की। तुमने दुर्गों को तोड़ कर दस्युओं को छिन्न-भिन्न किया तथा देव शून्य निंदक का शस्त्र नीचे झुकाया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को कंपाने वाले हो। तुमने जलों को नदियों के रूप में प्रवाहित किया। तुमने समुद्र को परिपूर्ण किया तब "तुर्वश" और "यदु" को पार लगाया ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे हो। तुम मनुष्यों की हिंसा से रक्षा करते हो। तुम हमको ... में विजय प्राप्त कराते हो। हम अन्न, बल और ...
... करें ॥ १० ॥

१७५ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः। देवता—इन्द्र । छन्द—अनुष्टुप, त्रिष्टुप् उष्णिक)

स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १

आ नस्ते गन्तुमत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।
सहावान्दस्युमव्रतमोपः पात्रं न शोचिषा ॥ ३

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।
वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ । १

हे इन्द्र ! आह्लादकारी सोम का पान किया, तुम पुष्ट होगये । य
वीर्यवान, पौष्टिक, विजेता सोम तुम्हारे लिए ही है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हम
यह पौष्टिक एवं आह्लादकारी पेय तुम्हें प्राप्त हो । तुम बली, धन प्राप्त क
वाले, शत्रु को वश करने वाले और अमर हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र !
पराक्रमी और धन प्राप्त करके मनुष्यों की ओर प्रेरणा करने वाले हो ।
को ज्वाला से जलाने के समान तुम दैत्यों को दग्ध करते हो ॥ ३
मेधावी इन्द्र ! तुम ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए सूर्य के रथ से वेग प्राप्त क
"शुष्ण-वध" के लिए वायु वेग से वज्र के साथ प्राप्त होओ ॥ ४ ॥ हे
तुम्हारी प्रसन्नता ही बल है । तुम्हारा संकल्प यश है । तुम अश्वादि
वृत्र-नाशक और धन प्राप्त करने वालों के स्वामी हो ॥ ५ ॥ हे इ
प्राचीन स्तोताओं को सुख दिया, वैसे ही प्यासे को जल देने

मुझे भी सुख दो। मैं तुम्हारा बारंबार आह्वान करता हूँ। तुम मुझे अन्न, बल और दानशीलता प्राप्त कराओ ॥ ६ ॥ [१८]

१७६ सूक्त

(ऋषिः—अगस्त्यः। देवता—इन्द्र। छन्द—अनुष्टुप, त्रिष्टुप्, उष्णिक।)

मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १
तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम्।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृ षद्वृषा ॥ २
यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३
असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४
आवो यस्य द्विबर्हसो ऽर्केषु सानुषगसत्।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५
यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूय।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ । १६

हे इन्द्र! हमको कल्याण प्राप्त कराने के लिए आह्लादयुक्त होओ। यह सोम तुम्हारे शरीर में प्रवेश करे। तुम क्रोध में भर रहे हो परन्तु शत्रु तुम्हारे सामने नहीं आता ॥ १ ॥ उस इन्द्र को स्तुतियाँ भेंट करो, उस मनुष्यों के अद्वितीय अधीश्वर को हवियाँ दो। वे हमारे कार्य सिद्ध करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे हाथों में मनुष्यों की पाँच जातियों के सम्पूर्ण धन हैं। वह इन्द्र, हमारे द्रोहियों को वज्र से नष्ट करें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! सोम का अभिषव न करने वाले तथा कठिनाई से वश में आने वालों का वध करो। क्योंकि वे तुम्हें सुखी नहीं कर सकते। उनका धन हमको दो। स्तोता धन प्राप्त करने के योग्य है ॥ ४ ॥ हे सोम! इन्द्र के स्तोत्र

र प्रवृत्त रहता है, तुम उसकी सहायता करते हो। तुम उस वेगवान
की युद्ध में रक्षा करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्यासे को पानी के समान
ीन स्वोता को सुख देने वाले हुए। मैं भी उसी स्तुति से तुम्हारा आह्वान
ता हूँ। हम अन्न, बल और दानशील स्वभाव प्राप्त करें ॥६ ॥ [१६]

१७७ सूक्त

(ऋषिः—अगस्त्य । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इंद्र सोमे ॥ २
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥
ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ । २

मनुष्यों के पालक, श्रेष्ठ, स्वामी, स्तुत्य, यश की कामना वाले
अपने पुष्ट घोड़ों को रथ में जोड़ कर रक्षा के लिये यहाँ आवें ॥ १
इन्द्र ! तुम्हारे पुष्ट, उन्नत, बलवान, मंत्र द्वारा रथ में जुतने वाले
उन पर चढ़ कर आओ। हम सोम निचोड़ कर तुम्हारा आह्वान करते
हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये मधुर सोम अभिषव किया गया है, तुम घ
रथ पर चढ़ो। बलवान अश्वों से युक्त रथ को यहाँ लाओ ॥ ३ ॥
देवताओं को जाने वाला यह यज्ञ, यह स्तोत्र, यह सोम और
आसन है। तुम शीघ्रता से यहाँ आकर अपने अश्वों को खोलो।
... सोम-पान करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम मान के पुत्र

सुनकर प्रत्यक्ष होओ। हम स्तुति करते हुए तुम्हारी रक्षाएं प्राप्त करें और अन्न, बल तथा दानशील स्वभाव को प्राप्त करें ॥ ५ ॥ [२०]

१७८ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप् ।)

यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३
एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ । २१

हे इन्द्र ! तुम अपने जिस रक्षा साधन से स्तोता की रक्षा करते हो, उसे रोकने से हमारी कामना नष्ट होजायगी, अतः ऐसा न करो । मैं मनुष्य और उपभोग्य वस्तुओं को प्राप्त करूँ ॥ १ ॥ जिन मंगलों की दात्री रात्रि और उषा दोनों यदिनें जो कर्म करती हैं, इन्द्र उनके उन कर्मों को न रोकें । इन्द्र हमको मैत्री और अन्न दें ॥ २ ॥ इन्द्र विजेता, याचक की पुकार सुनने वाले, उपासक के सामने रथ ले जाने वाले हैं । ये स्वयं ही स्तुतियों को प्रेरित करते हैं ॥ ३ ॥ उत्तम यश की इच्छा वाले इंद्र अपने यजमान की हवियों को रुचि-पूर्वक ग्रहण करते हैं । यजमान की प्रार्थना को सत्य सिद्ध करने वाले वे अनेक शब्दों के स्तोत्र से स्तुत किये जाते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे बल को प्राप्त कर शत्रुओं को वशीभूत करें । तुम हमारे रक्षक और वृद्धिकर्ता हो, हम अन्न, बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ॥ ५ ॥ [२०]

१७९ सूक्त

(ऋषिः—लोपमुद्राऽगस्त्यौ । देवता-दम्पती । छन्द—त्रिष्टुप् , बृहती ।)

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २
न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ । २२

(लोपमुद्रा) मैं वर्षों से दिनरात जरा की संदेश वाहिका उषाओं
तुम्हारी सेवा करती रही हूँ। बुढ़ापा शरीर के सौंदर्य को नष्ट करता
इसलिए यौवन काल में ही पति-पत्नी, ग्रहस्थ-धर्म का पालन करके
उद्देश्य को पूर्ण करें ॥ १ ॥ धर्म :पालक पुरातन ऋषि देवताओं
बात कहते थे, वे भी क्षीण होगए और जीवन के परम प्राप्य फल
नहीं हुए। इसलिए पति-पत्नी को संयमशील और विद्याध्ययन में र
को भी उपयुक्त अवस्था में काम-भाव प्राप्त होता है और वह अनु
को प्राप्त कर सन्तानोत्पादन का कर्म करता है ॥ २ ॥ (अगस्त्य
व्यर्थ परिश्रम नहीं किया। देवगण हमारे रक्षक हैं। हम स्पर्द्धा
को वश में करते और सैकड़ों साधनों का उपभोग करते हैं।
सम्मिलित रूप से गृहस्थ धर्म निभावें ॥ ३ ॥ (शिष्य) मैं
... सोम की स्तुति करता हूँ। हम से कोई भूल हुई

ये समा करें। क्योंकि मनुष्य विभिन्न कामनाओं से युक्त होता है ॥ ५
विभिन्न साधनों से अगस्त्य ऋषि ने अनेक संतान और बल की इच्छा से दो
वरणीय वस्तुओं को पुष्ट किया और देवगण के सच्चे आशीर्वादों
पाया ॥ ६ ॥ [२१]

१८० सूक्त

(ऋषि–अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १
युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २
युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४
आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वा मक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५।२

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे अश्व आकाश में वर्तमान हैं। तुम्हारा
रथ समुद्र के चारों ओर चलता हुआ मधुर वर्षक होता है। तुम मधुर र
का पान करते हुए उषाओं के साथ चलते हो ॥ १ ॥ हे मधुरपायी अश्विद्वय
तुम स्तुतियों के योग्य हो। जब उषा प्रकट होती है, तब तुम अत्यन्त पूज
नीय रथ पर सवार होकर यजमान की अन्न, बल प्राप्ति की स्तुतियों के प्र
जाते हो ॥ २ ॥ हे सत्य स्वरूप अश्विद्वय ! तुमने गायों को पयस्विनी बनाय
है। वन-वृक्षों के मध्य सदैव जागरूक यजमान तुम्हारे लिए हवि देता हुआ
पूजता है ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने सहायता के इच्छुक "अत्रि" के लि
अग्नि के ताप को जल के समान शीतल कर दिया। इसलिए अग्नि में तुम्हा
निमित्त यज्ञ किया जाता है और रथ के पहिये की तरह

ाता है ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! मैं पुरातन काल में हुए "तुग्र" राजा के
ह समान स्तुति करता हुआ, गौओं के लिए अपनी ओर बुलाता हूँ।
ारी महिमा से पृथिवी जलों से पूर्ण होती और तुम्हारी कृपा से पाप
फंदा भी छूट जाता है ॥ ५ ॥ [२३]

यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
पद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८
प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९
तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमि परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० । २४

हे कल्याणदाता अश्विद्वय ! जब तुम घोड़ों को जोतते हो, तब अन्न
वाली बुद्धि देते हो। उस समय सुखी हुआ स्तोता अपने महत्व के लि
अन्न बल प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! हम सत्यभाषी स्तोता अ
पूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम अभीष्टदाता और अनिंद्य हो, देवताओं
समीप बैठ कर सोम-पान करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! श्रेष्ठ कर्मवान् अग
दुःख निवारक स्तोत्र की प्राप्ति के लिए शंखों के समान गर्जते हुए स
स्तुतियों से तुम्हें चैतन्य करते हैं ॥ ८ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम महिमा वाले
से यात्रा करते हो और होता के समान आते हो। स्तोताओं को सुन्द
देते हो। तुम असत्य रहित हो, हमको धन प्राप्त कराओ ॥ ९
अश्विद्वय ! आकाश में घूमने वाले तुम्हारे रथ का हम आह्वान करते हैं
अन्न, बल और आयु-लाभ करें ॥ १० ॥ [

१८१ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३
इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ । २५

हे अश्विद्वय ! अन्न, धन और जलों में [illegible] क्या है, जिसे तुम [illegible] पूर्ण करने की इच्छा करते हुए ऊपर ही उठाए हुए हो ! इस यज्ञ से तुम्हारी ही प्रशंसा होती है ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! वायु के समान प्रचंड, शीघ्रगामी वेगवान्, शोभनीय, उज्ज्वल अश्व तुम्हें यहाँ लावें ॥ २ ॥ हे प्रशंसनीय [illegible] वाले अश्विद्वय ! तुम्हारा रथ कल्याण के लिए यहाँ आवे । वह [illegible] वेगवान, बड़ा और पूजनीय है ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम [illegible] में प्रकट होकर स्तुतियों [illegible] करते हो । तुम में से एक [illegible] संसार का [illegible] है तथा दूसरा आकाश का पुत्र हुआ [illegible] करता है ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दोनों में से एक का [illegible] रथ कामना वालों के [illegible] और दूसरे के [illegible] हुए हमारी स्तुतियों के [illegible]

असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७
उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८
युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ । २६

हे अश्विद्वय ! तुम दोनों में से एक का रथ अन्नों में विचरण करता है तथा दूसरे के गमन से फूलती हुई जल धाराएँ हमको सींचती हैं ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारी स्थिरता के लिए स्तुतियाँ बनाई जाती हैं । वे तीन प्रकार से तुम्हें प्राप्त होती हैं । तुम याचना करने वाले यजमान के रक्षक होओ, और चलते हुए अथवा रुक कर मेरी पुकार को सुनो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दोनों के प्रदीप्त रूप का गान करने वाली वाणी यज्ञ-गृह के मनुष्यों को बढ़ाने वाली है । तुम्हारा मेघ जल वर्षा द्वारा गौ के समान मधुर वर्षक हो ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! पूषा की तरह अत्यन्त मेधावी हविदाता अग्नि और उषा के समान तुम्हारी स्तुति करता है । मैं तुम्हारी सेवा करता हुआ आह्वान करता हूँ । मैं अन्न, बल और दानशीलता प्राप्त करूँ ॥९॥ [२६]

१८२ सूक्त

(ऋषि-अगस्त्यः । देवता-अश्विनौ । छन्द-जगती त्रिष्टुप् , पंक्ति ।)

अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २
किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३
जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।

वाचंवाचं जरितू रत्निनी कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४
युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ । २७

हे विद्वानो ! अश्विनी कुमारों के उत्तम रथ को खूब सजाओ । वे बुद्धि को प्रेरित करने वाले, स्तुत्य, "विश्पला" का भला करने वाले तथा उत्तम कर्म वालों के लिए नियमों में विद्यमान रहते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम इन्द्र और मरुद्गण के समान, रथियों में श्रेष्ठ रथी, विकराल कर्म वाले हो । तुम मधुर रस से पूर्ण रथ सहित हविदाता की ओर प्राप्त होओ ॥ २ ॥ हे अश्विदेवो ! तुम यहाँ क्या करते हो ? जो कोई हवि न देने वाला पूजनीय बन गया हो, उसे हराओ । उसका वध करो । मुझ स्तोता को प्रकाश दो ॥३॥ हे असत्य रहित अश्विदेवो ! हिंसक कुत्तों के समान हम पर आक्रमण करने वालों को मिटा दो । तुम उन्हें जानते हो । मेरे स्तोत्र को सत्य करते हुए रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने "तुग्र" के पुत्र के लिए नाव बना कर रक्षा की उस देवताओं को चाहने वाले को समुद्र से उबार लिया ॥५॥ [२७]

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६
कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७
तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ । २८

जलों में सिर के बल गिरे हुए निराश्रित "तुग्र" के पुत्र को अश्विनीकुमारों की चार नावें प्राप्त हुईं ॥ ६ ॥ वह कौन सा वृक्ष था जिससे समुद्र में गिरा हुआ "तुग्र" का पुत्र चिपट गया। हे अश्विदेवो ! तुमने यश प्राप्ति के लिए उसे बचाया ॥ ७ ॥ हे असत्य से परे अश्विदेवो ! मान के पुत्रों द्वारा सोम-याग में गाया गया स्तोत्र तुम्हारे अनुकूल हो और हम अन्न, बल तथा दानमय स्वभाव को प्राप्त करें ॥८ ॥ [२८]

१८३ सूक्त

(ऋषि-अगस्त्यः । देवता-अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १
सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २
आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ । २९

हे अश्विदेवो ! उस मन से भी अधिक वेग वाले रथ के द्वारा उत्तम कर्म वाले यजमान के घर को पक्षी के समान गति से प्राप्त होओ ॥ १ ॥ अश्विदेवो ! सरलता से मुड़ने वाला तुम्हारा रथ तुम दोनों मेधावियों को चढ़ाकर पृथिवी पर हव्य के निमित्त जाता है । तुम दोनों आकाश की पुत्री उषा से युक्त होओ और मेरी स्तुति शोभायुक्त हो ॥ २ ॥ हे असत्य रहित अश्विदेवो ! सरलता से घूमने वाले अपने रथ पर चढ़ो । वह हविदाताओं के कर्मानुष्ठानों के अनुसार चलता है । उस पर सवार होकर तुम यजमान और उसके पुत्र के हित के लिये यज्ञ में जाते हो ॥ ३ ॥ हे अश्विदेवो ! मुझ पर वृक-वृकी का आक्रमण न हो । तुम हमको उलांघ कर न जाओ । हमारे स्थान को न त्यागो । यह यज्ञ भाग, मधुर-रस युक्त पात्र और स्तुतियाँ तुम्हारे निमित्त ही हैं ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! "गौतम", "पुरुमीढ़" और "अत्रि" हवि के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं । जैसे सीधे मार्ग पर चलने वाला

लक्ष्य पर पहुँच जाता है, वैसे ही तुम मेरे आह्वान की ओर शीघ्र आओ ॥५॥ हे अश्विदेवो ! हम इस अंधेरे से पार लग गए हैं। हमने तुम्हारे स्तोत्र को धारण किया है। तुम यहाँ देव मार्ग से आओ। हम अन्न, बल और दान-मय स्वभाव को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ [२१]

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्तम् ॥

१८४ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । पंक्ति, त्रिष्टुप् ।)

ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुपसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणींर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४
एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ । १

हे असत्य रहित अश्विदेवो ! तुम प्रसिद्ध धन दाता हो। उषा के प्रकट होने पर हम तुम्हारा स्तुतियों द्वारा आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ हे अश्विदेवो ! तुम सोम धारा से अत्यन्त आह्लादमय होकर लोभियों को नष्ट करो। मेरी स्तुतियों की कामना वाले तुम यहाँ आकर स्वयं मेरे स्तुति वचनों को सुनो ॥ २ ॥ हे संसार पालक अश्विदेवो ! जलोत्पन्न महान अ सूर्या के विवाहोत्सव की ओर ले जाते हैं। वरुण की संतुष्टि के लि

वाली स्तुति तुम्हें प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ हे माधुर्यमय कल्याण करने
श्विदेवो ! तुम्हारा दिया हुआ धन हम पर रहे। तुम मान के पुत्र के स्तोत्र
त करो । साधक गण यश की इच्छा से पराक्रम के लिए उस स्तोत्र को
हैं ॥ ४ ॥ हे अश्विदेवो ! तुम्हारे लिए मान के पुत्रों ने इस बल युक्त
की रचना की । तुम मुझ अगस्त्य पर प्रसन्न होकर मेरे और मेरे पुत्र
लिए घर पर पधारो ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! हम अँधेरे से पार लग गए
तुम्हारे लिए स्तोत्र प्रारंभ किया है इसके प्रति देवताओं के योग्य मार्ग
यहाँ आओ । हम अन्न, बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त
हैं ॥ ६ ॥ [१]

१८५ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—द्यावापृथिव्यौ । छन्द—त्रिष्टुप् ।)

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २
अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३
अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४
सङ्गच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५

हे ऋषियो ! आकाश और पृथिवी में कौन पहले और कौन
उत्पन्न हुई ? इस बात का जानने वाला कौन है ? यह दोनों स्वयं
पदार्थों को धारण करतीं और दिन-रात्रि के समान घूमती हैं ॥ १ ॥
चलने वाली, बिना पैरों की आकाश पृथिवी पाँव वाले शरीर धारि
... के समान गोद में धारण करती हैं । हे आकाश, पृथिवी !

भय से रक्षा करो ॥ २ ॥ हे आकाश पृथिवी ! मैं पवित्र, अक्षय, प्रकाशित, अमर, स्तुत्य धन की याचना करता हूँ। स्तोता के लिए उसे उत्पन्न करो और भयों से रक्षा करो ॥ ३ ॥ दिन रात्रि सहित, देवताओं में पीड़ा रहित, अन्न से युक्त रक्षा वाली, दिव्य गुण युक्त आकाश पृथिवी मेरे अनुकूल हों। हे आकाश पृथिवी महान् भयों से हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥ साथ चलने वाली, सदा तरुण, समान सीमा युक्त, भगिनी भूत आकाश-पृथिवी माता पिता की गोद रूप हैं। हे आकाश-पृथिवी ! महान भय से हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [२]

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६
उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७
देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १०
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ । ३

विस्तीर्ण धाम स्थान, महान, रक्षाओं से युक्त आकाश पृथिवी का देवताओं की प्रसन्नता के लिए आह्वान करता हूँ। यह आश्चर्य रूप वाली जल धारण में समर्थ हैं। यह हमारी महान पाप से रक्षा करें ॥ ६ ॥ मैं इस यज्ञ में विस्तीर्ण, बहुत रूप वाली, असीमित आकाश पृथिवी की पूजा करता हूँ। यह सौभाग्यवती समस्त पदार्थ और प्राणियों को धारण करती हैं। हे आकाश-पृथिवी ! हमें महापाप से बचाओ ॥ ७ ॥ हे आकाश पृथिवी !

देवगण, वन्धुगण, जामाता आदि के प्रति हमने जो पाप किया है, वह इस स्तोत्र या यज्ञ से दूर हो। तुम हमको महापाप से बचाओ॥ ८॥ मनुष्यों का हित करने वाली आकाश-पृथिवी मुझे आश्रय प्रदान करें और पालन करती हुई मेरे साथ रहें। हे देवगण! हम तुम्हारे स्तोत्र, हवि रूप अन्न देकर तुम्हें प्रसन्न करते हैं और दान के लिये धन की याचना करते हैं॥ ९॥ मैंने विद्वान होकर आकाश पृथिवी से संबंधित मुख्य सत्य को सब के लिए सुनाया है। वे आकाश पृथिवी निंदा और अनिष्ट से हमारी रक्षा करें और पिता के समान हमारा पालन करें॥ १०॥ हे पिता माता रूप आकाश-पृथिवी मैंने जो कुछ तुम्हारे समीप कहा है, वह सत्य हो। तुम देवताओं के साथ रक्षा वाली होओ। हम अन्न, बल और दानमय स्वभाव को प्राप्त करें॥ ११॥ [३]

१८६ सूक्त

(ऋषि-अगस्त्यः। देवता—विश्वेदेवा। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा॥ १
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः॥ २
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः॥ ३
उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन्॥ ४
उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति॥ ५। ४

सर्व प्रेरक सवितादेव हमारी स्तुतियों के प्रति यज्ञ में आवें। हे युवा देवताओ! तुम यहाँ आकर प्रसन्न होते हुए हमें भी सुखी करो॥ १॥ मित्र, अर्यमा और वरुण यह एक से मन वाले देवगण एक साथ इस यज्ञ में

आवें। यह हमारी वृद्धि के कारण हों और प्रयत्न पूर्वक हमारा बल क्षीण न होने दें ॥ २ ॥ मनुष्यो ! मैं तुम्हारे प्रिय अग्नि की स्तुति करता हूँ। वे हमारी स्तुति द्वारा शत्रुओं को जीतें और हमसे स्नेह करें। स्तुति करने पर वरुण हमको अन्नों से पूर्ण कर यशस्वी बनावें॥ ३ ॥ हे विश्वे देवताओ! हम स्तुति करते हुए दिन रात्रि विजय की इच्छा से पयस्विनी गौ के समान उपस्थित होते हैं। मैं भी उसी प्रकार नमस्कार के साथ तुम्हारी पूजा करता हूँ ॥ ४ ॥ आकाश में स्थित सर्प के समान आचरण वाली विद्युत हमको सुखी करे। सिंधु बछड़े के समान हमारा पोषण करे। उसके द्वारा हम जल एवं अग्नि को प्राप्त करें! मन के समान वेग वाले अश्व उन्हें ले जाते हैं ॥ ५ ॥   [४]

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९
प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥ १०
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ । ५

स्तोताओं के साथ समान प्रीति रखने वाले त्वष्टा हमारी ओर आवें वृत्र के हननकर्ता, मनुष्यों के रक्षक, महाबली इन्द्र यहाँ पधारें ॥ ६ ॥ गौओं द्वारा बछड़ों को चाटने के समान अश्व संयोजन करने वाला हमारी स्तुतियाँ इन्द्र से स्नेह करें। प्रजनन में समर्थ पत्नियों के पति को प्राप्त हो

के समान हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को प्राप्त होती हैं ॥ ७ ॥ उन्नत मन वाले, शत्रु-भक्षक, मित्रों के पक्षपाती मरुद्गण आकाश और पृथिवी से मिल कर ऋषियों के समान यज्ञ में बैठें। उनके विन्दु रूप अश्व जल प्रवाह के समान हैं ॥ ८ ॥ जब से इन मरुतों की महिमा का ठीक प्रकार ज्ञान हुआ, तभी से कुशा विछाने वाले यजमान यज्ञ कर्मों में प्रयुक्त हुए। इनकी सेनाऐं बाण के समान वेग से मरु भूमि को सींचने में समर्थ हैं ॥ ९ ॥ हे मनुष्यो! रक्षा के निमित्त अश्विदेवों को आगे बढ़ाओ। पूषा को भी आगे करो। द्वेष रहित विष्णु, वायु और ऋभुओं के स्वामी इन्द्र सब बलों को अपने आधीन रखते हैं। सुख के निमित्त मैं सब देवताओं को सामने बुलाता हूँ ॥ १० ॥ हे पूजनीय देवताओ! तुम्हारी भक्ति हमको जीवन देने वाली हो। हम उत्तम स्थान प्राप्त करें। तुम्हारी कल्याण दात्री शक्ति देवताओं को प्रेरित करे जिससे हम अन्न, बल और उदार वृत्ति वाले हों ॥११॥ [५]

१८७ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्य। देवता—ओषधयः। छन्दः—उष्णिक्, गायत्री।)

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥१
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे। अस्माकमविता भव ॥ २
उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३
तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः। दिवि वाताइव श्रिताः ॥ ४
तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवाइवेरते ॥ ५ । ६

अब मैं अत्यन्त बलदाता अन्न का स्तवन करता हूँ, जिसके बल से "त्रित" ने वृत्र के जोड़-जोड़ को तोड़ कर मार डाला ॥ १ ॥ हे सुस्वादु अन्न! तू मधुर है, हमने तेरा वरण किया है तू हमारा रक्षक हो ॥ २ ॥ हे अन्न! तू कल्याण स्वरूप है। अपनी रक्षाओं सहित हमारी ओर आ। तू

स्वास्थ्यदाता हमको हानिप्रद न हो और अद्वितीय मित्र के समान सुखकर हो ॥ ३ ॥ हे अन्न ! वायु के अंतरिक्ष में आश्रय लेने के समान तेरा रस संसार में व्यापक है ॥ ४ ॥ हे पालक और सुस्वादु अन्न ! तेरा दान करने वाले तुम्हारी कृपा चाहते हैं। तुम्हारे सेवनकर्त्ता तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। तुम्हारा रस आस्वादन करने वालों की ग्रीवा उन्नत और दृढ़ करता है ॥ ५ ॥ [६]

त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ६
यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥ ७
यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ८
यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥ ९
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥ १०
तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ । ७

हे अन्न ! महान् देवों का मन तुझ में ही रमा है। तुम्हारे आश्रय में सुन्दर कर्म किए जाते हैं। तुम्हारी रक्षा से ही इन्द्र ने वृत्र का वध किया था ॥ ६ ॥ हे अन्न ! मेघों में जो प्रसिद्ध जल रूप धन है, उसके द्वारा मधुर हुए हमारे सेवन के निमित्त प्राप्त हो ॥ ७ ॥ हे अन्न ! हम जलों और औषधियों का थोड़ा अंश सेवन करते हैं। तू वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ८ ॥ हे सोम ! हम तुम्हारे दुग्धादि से मिश्रित खिचड़ी रूप अन्न का सेवन करते हैं। अतः तू वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ९ ॥ हे औषध रूप अन्न ! तू शरीर-रचना के अनुकूल, पुष्टिकारक, रोगनाशक और उद्दीपन करने वाला है। तू वृद्धि को प्राप्त हो ॥ १० ॥ हे अन्न ! गाएं जैसे सेवनीय दूध को बहाती हैं, वैसे ही तुमसे स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं। तू देवताओं को प्रसन्न करने वाला हमको भी पुष्ट करता है ॥ ११ ॥ [७]

१८८ सूक्त

(ऋषि-अगस्त्यः । देवता—अग्नियः । छन्द—गायत्री ।)

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥ १
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥३
प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः ।
द्वुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ । ८

हे सहस्रों के विजेता अग्ने ! तुम ऋत्विकों द्वारा सुशोभित किए जाते हो। तुम हवि वाहक दौत्य कर्म में निपुण हो ॥ १ ॥ नियम पालक मनुष्य के लिए यज्ञ माधुर्य युक्त होता है। शरीरों के रक्षक अग्नि सहस्रों प्रकार के रसों को धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम आहूत होकर यज्ञ में भाग ग्रहण करने वाले देवों को बुलाओ। तुम असीम अन्नों के दाता हो ॥ ३ ॥ हे आदित्यो ! जिस सहस्र वीरों के योग्य अग्नि रूप कुश को ऋत्विक् मंत्रों द्वारा बिछाते हैं उस पर तुम विराजमान हो ॥ ४ ॥ सब के शासक, बलो, सशक्त अग्नि रूप यज्ञ द्वारों पर घृत-वर्षा करते हैं ॥ ५ ॥ [८]

सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥ ६
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७
भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे ।
तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ६
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते ।
स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ । ६

सुन्दर रूप और शोभा से युक्त उषा-रात्रि सुशोभित होती हैं, यहाँ विराजें ॥ ६ ॥ प्रियभाषी, मेधावी, प्रमुख, दिव्य होता अग्नि हमा यज्ञ में पधारें ॥ ७ ॥ हे भारती, इला और सरस्वती देवियो ! तुम्हा समीप उपस्थित होकर स्तुति करता हूँ । जिससे मुझे यश प्राप्त हो सके, व करो ॥ ८ ॥ अग्नि स्वरूप त्वष्टा रूप देने वाले हैं । उन्होंने पशुओं व प्रकट किया । हे त्वष्टा यज्ञ द्वारा हमारे पशुओं की वृद्धि करो ॥ ६ ॥ अग्नि रूप वनस्पते ! अपनी शक्ति से दिव्य अन्न उत्पन्न करो । हे अग्ने हमारे हव्य को सुस्वादु बनाओ ॥ १० ॥ देवों में अग्रणि अग्नि गायत्र छन्द द्वारा संयोजित किये जाते हैं । वह स्वाहा करने पर प्रदीप्त हों हैं ॥ ११ ॥ [६]

१८६ सूक्त

(ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्ति विधेम ॥ १
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥ २
अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुवितार्य देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४
मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥ ५ ॥ १०

अग्निदेव ! तुम नियमों के ज्ञाता हो । हमको सुमार्गगामी बनाओ पाप को दूर करो । हम तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! स्तु किए जाने पर तुम हमको दुःखों से पार लगाओ । तुम हमारे लिए प्रशस

तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २
उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ । १२

हे मनुष्यो ! द्वेष-रहित, स्तुत्य बृहस्पति की स्तोत्रों से पूजा करो। वे स्तोता से वियुक्त नहीं होते । देवों में पूज्य उनके वचनों को देवता और मनुष्य सभी आदर से सुनते हैं ॥ १ ॥ वर्षा के समान स्तुतियाँ बृहस्पति को प्राप्त होती हैं । वे संसार को व्यक्त करने वाले हैं, तथा मातरिश्वा के समान .फलदाता हैं ॥ २ ॥ सविता द्वारा प्रकाश और ताप देने के समान बृहस्पति साधकों की स्तुति और नमस्कार को ग्रहण करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। इन हिंसा-रहित बृहस्पति के बल से ही सूर्य भयंकर वन-पशु के समान घूमते हैं ॥ ३ ॥ आकाश और पृथिवी पर बृहस्पति का सुयश सर्वत्र फैला है। वे सूर्य के समान हवि धारण करते हैं। उनका शस्त्र मायामृगों के पीछे प्रतिदिन दौड़ता है ॥ ४ ॥ हे बृहस्पते ! जो धन के मद में युक्त हुआ पापी, तुम्हें बूढ़ा बैल मानकर अपने अहंकार से जीवित हैं, तुम उन मूर्खों को वरणीय धन नहीं देते । तुम उन दुष्टों से दूर रहते हो ॥ ५ ॥ [१२]

सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७
एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।

नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ १३

हे बृहस्पते ! तुम सुमार्ग पर चलने वाले मनुष्यों के लिए मार्ग रूप र दुष्टों पर शासन करने वाले के मित्र के समान हो । जो हमसे द्वेष ते हैं, वे क्लेशों से घिरे रहें ॥ ६ ॥ निर्मल शुद्ध गंभीर जल वाली प्रवा त नदियाँ जैसे समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे हमारी स्तुतियाँ बृहस्पति को प्त होती हैं । वे तट और जल दोनों के समान हमारे कर्मों को गिद्ध ष्टि से देखते हैं ॥ ७ ॥ बलवान्, श्रेष्ठ, पूज्य बृहस्पति पशुओं के उपकार के लिए प्रकट होते हैं । वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमको वीर संतान तथा गवादि धन प्रदान करें और हम अन्न, बल तथा उदार स्वभाव वाले हों ॥ ८ ॥ [१३]

१९१ सूक्त

(ऋषि—अगस्त्यः । देवता—अबोषधिसूर्याः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥१
अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥२
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३
नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ ४
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ । १४

अत्यन्त विषैले और विष रहित, जल में रहने वाले अल्प विष दोनों प्रकार के जलचर और थलचर, जलन करने वाले मच्छर और छोटे जीव मुझे विष-द्वारा घेरे हुए हैं ॥ १ ॥ औषधि इन अदृश्य जीवों को

नके विष को मारती है। वह कूटी, पीसी जाकर भी विषैले जीवों को नष्ट र देती है ॥ २ ॥ शर, कुशर, दर्भ, सैर्य, मौंज और वैरिण नामक घासों ने छिपे हुए जीव विष युक्त करते हैं ॥ ३॥ जब गायें गोष्ट में बैठती हैं, हरिण पने स्थानों पर विश्राम करते हैं, मनुष्य सुप्तावस्था में होता है तब यह दृश्य विषैले जीव विष युक्त करते हैं ॥ ४ ॥ वे अदृश्य और प्रकट विषैले ीव चोरों के समान रात्रि की प्रतीक्षा करते हैं। इसलिए उनसे सावधान हना चाहिये ॥ ५ ॥　　　　[१४]

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।
अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६
ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रङ्कताः ।
अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७
उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।
अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८
उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९
सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु
त्वा मधुला चकार ॥ १० । १५

हे विषैले प्राणियो ! आकाश तुम्हारा पिता, पृथिवी माता और सोम भ्राता तथा अदिति बहिन है। तुम प्रकट और अप्रकट दोनों प्रकार के जीव अपने स्थान पर ही रहो सुख पूर्वक वहीं सोओ ॥ ६ ॥ हे विषैले प्राणियो ! तुम कंधे से चलने वाले, शरीर में गमनशील, सुई के समान डंक वाले, अत्यन्त विषयुक्त अदृश्य एवं प्रत्यक्ष, तुम जितने प्रकार के भी हो, वे सब हमारे पास से दूर चले जाओ ॥ ७ ॥ सब के सामने प्रत्यक्ष, अदृष्ट जीवों को भी दिखाने वाले, अदृश्य विषधरों और राक्षसी वृत्ति वाले हिंसक पशुओं का विनाश करने वाले सूर्य पूर्व में उदय होते हैं ॥ ८ ॥ सब के

जाने वाले, अदृष्ट प्राणियों के नाशक अदिति पुत्र सूर्य बहुत प्रकारों से सब विषों का नाश करने के लिए पर्वतों से भी ऊँचे उठे हुए हैं ॥ ९ ॥ शौण्डिक के गृह में मद्य पात्र के समान मैं सूर्य मंडल में विष को प्रेरित करता हूँ। सूर्य का उससे नाश नहीं होगा। हम भी नहीं मरेंगे। वे अश्वारूढ़ सूर्य विष को अमृत में बदल देते हैं ॥ १०॥

[१५]

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।
सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा
मधु त्वा मधुला चकार ॥ १

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षन् ।
ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा म
त्वा मधुला चकार ॥

नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव
इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ।
कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६

जैसे क्षुद्र शकुनि (पक्षी) ने तेरा विष खाकर उगल दिया, व मरी नहीं, वैसे ही हम भी नहीं मरेंगे। अश्वारूढ़ सूर्य दूर रह कर से विष को दूर करते हैं तथा विष को माधुर्य कर देते हैं ॥ ११ ॥ इक्कीस प्रकार के विषों के बल का भक्षण कर लिया। उनकी ज्वाल हैं। हम भी नहीं मर सकते। अश्वारूढ़ सूर्य ने दूरस्थ विष को दिया और विष को मधुरता प्रदान की ॥ १२ ॥ मैंने विष नाशक क्रियाओं को जान लिया है। रथारूढ़ सूर्य दूर से भी विष को अम

ते हैं ॥ १३ ॥ हे विषयुक्त प्राणी ! जैसे घड़े में स्त्रियाँ जल ले जाती हैं, से ही इक्कीस मोरनियाँ और भगिनी रूप सात नदियाँ तुम्हारे विष को र करती हैं ॥ १४ ॥ यह छोटा-सा नकुल तुम्हारे शरीर का विष खींच ले. न्यथा उस नीच को मैं ढेले, पत्थर से मार डालूँगा । शरीर का विष हट कर र देशों को चला जाय ॥ १५ ॥ नकुल ने पर्वत से निकल कर कहा—विच्छू का विष प्रभाव से शून्य है । हे वृश्चिक ! तेरे विष में प्रभाव नहीं है (जल, औषधि और सूर्य में विष-शामक शक्ति है । इसलिए यहाँ इनकी स्तुति की गई है ।) ॥ १६ ॥   [१६]

॥ अथ द्वितीय मण्डलम् ॥

१ सूक्त

(ऋषि-गृत्समदः । देवता-अग्नि । छन्द-पंक्ति, जगती, त्रिष्टुप् ।)

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ १ ॥
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥ २ ॥
त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥ ३ ॥
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः । ४ ॥
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः
॥५॥ [१७]

हे अग्ने ! तुम यज्ञ-काल में प्रकट होकर दीप्तियुक्त और पवित्र होओ। तुम जल से उत्पन्न हुए हो। पाषाण, वन और औषधि से उत्पन्न होते हो॥ १॥ हे अग्ने ! होता, पोता आदि कर्म तुम्हारा ही है। यज्ञ की अभिलाषा करने पर प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा भी तुम्हीं होते हो। हमारे घरों के तुम्हीं पालक हो॥ २॥ हे अग्ने ! तुम सज्जनों का मनोरथ पूर्ण करने वाले एवं बहुतों द्वारा स्तुत्य हो। तुम विष्णु रूप, स्तुतियों के स्वामी तथा मंत्रों के अधीश्वर एवं बुद्धि-प्रेरण में समर्थ हो॥ ३॥ हे अग्ने ! तुम नियमों में अटल वरुण स्वरूप हो। तुम शत्रुओं के हनन कर्त्ता, साधुओं के पालक हो। तुम्हीं अर्यमा रूप से व्यापक दान के स्वामी हो। तुम ही सूर्य हो। हमारे यज्ञ में अभीष्ट फल दो॥ ४॥ हे अग्ने ! तुम साधक के पुरुषार्थ रूप, स्तुतियों के स्वामी और त्वष्टा हो। तुम मित्र भाव से युक्त, प्रेरणाप्रद एवं तेजवान हो। तुम अत्यन्त धनी और बल के स्वरूप हो। उत्तम अश्व युक्त धनों के देने वाले हो॥ ५॥ [१७]

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥ ६ ॥
त्वमग्ने द्रविणोदा अरङ्कृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥ ७ ॥
त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥ ८ ॥
त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥ ९ ॥
त्वमग्न ऋभुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥१०॥[१८]

हे अग्निदेव ! तुम उग्रकर्मा रुद्र एवं मरुद्गण की शक्ति स्वरूप हो। तुम अन्नों के स्वामी, सुख के आधार हो। रक्त वर्ण के अश्व पर गमन करने वाले हो। तुम ही पूषा रूप से मनुष्यों की हर प्रकार रक्षा करते हो॥ ६॥

हे अग्ने ! तुम यजमान को [illegible]
रत्न रूप धनों के आधार एवं [illegible]
यजमान के पालनकर्त्ता हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! [illegible]
करते हैं । तुम रक्षक, [illegible]
असंख्य फलों के देने वाले हो ॥ ८ ॥ हे [illegible]
समान तृप्त किये जाते हो । [illegible]
अपने सेवक के पुत्र रूप होते हुए [illegible]
रूप से रक्षा करो ॥ ९ ॥ हे पावक ! तुम [illegible]
तुम अन्न, धन के स्वामी एवं प्रकाशमय हो । तुम [illegible]
फल को बढ़ाने वाले हो ॥ १० ॥ [१८]

त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥ ११ ॥
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२॥
त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४॥
त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्मान्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे
सुवीराः ॥ १६ ॥ [१९]

हे अग्ने ! तुम अदिति रूप हो, होता और वाणी भी हो । स्तुति
द्वारा बढ़ते हो । तुम्हीं धनों के रक्षक एवं वृत्र हनन कर्ता हो ॥ ११ ॥
अग्ने ! तुम्हीं अन्न रूप एवं ऐश्वर्यवान हो । हम [illegible]

सर्वव्यापी हो ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! तुम आदित्यों के मुख एवं देवताओं के जीभ रूप हो। यज्ञों में अभीष्ट देने के लिए एकत्रित हुए देवता तुम्हारी चाहना करते हुए तुममें दी गईं हविर्यां ग्रहण करते हैं ॥ १३ ॥ पावक ! सभी अमरधर्मा देवता तुम्हारे मुख में दी हुईं हवियाँ खाते हैं। मरणधर्मा वाले जीव तुम्हारे अन्न दान को प्राप्त करते हैं। तुम औषधादि के गर्भ रूप हो ॥१४॥ अग्ने ! तुम देवताओं से मिल कर भी अलग रहते हो। तुम उत्तम प्रकार से उत्पन्न होकर बल ग्रहण करते हो। तुम्हारी महिमा से आकाश-पृथिवी के मध्य वस्तु स्थित अन्न व्याप्त होता है ॥ १५ ॥ हे अग्निदेव ! विद्वान साधकों को गवादि धन दान करने वालों को श्रेष्ठ निवास दो। हम वीर संतान से युक्त हुए यज्ञ में श्रेष्ठ स्तुतियाँ करते हैं ॥ १६ ॥ [१९]

२ सूक्त

(ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।)

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥ १ ॥
अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥
तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४॥
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी
अनु ॥ ५ ॥ [२०]

प्रदीप्त, सुन्दर अन्न युक्त, यज्ञ-सम्पादक, शक्तिदाता अग्नि को यज्ञ में बढ़ाओ। यज्ञ के निमित्त उनका पूजन करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! गौओं द्वारा बछड़ों की चाहना करने के समान यजमान दिन-रात्रि में तुम्हारी कामना करते

हैं तुम अनेकों के पूज्य, आकाशव्यापी और यज्ञों में निवास करने वाले हो ॥ २ ॥ अग्नि देव ! तुम प्रदीप्त हुए धन युक्त रथ वाले, आकाश-पृथिवी के स्वामी, कार्यों को सिद्ध करने वाले हो और स्तुत्य हो। देवगण तुमको ही जगत के मातृभूत रूप से स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम अपनी गगनचुम्बी ज्वालाओं से चन्द्रमा के समान लगने वाले चैतन्यताप्रद हो। तुम जलों के समान रक्षक आकाश पृथिवी में व्यापक होते हो। तुम को यज्ञ मंडप में यजमान स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥ हवि संपादक अग्नि यज्ञों को प्राप्त करें। यह औषधियों में प्रज्वलित होकर नक्षत्रों के समान आकाश-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं। यज्ञों में साधकगण उन्हें सजाते हैं ॥ ५ ॥ [२०]

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वान्‌रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥६॥
दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतुः ॥७॥
स इधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८॥
एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥ ९ ॥
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥ १०॥
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥
उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥ १२॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्मान्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥ [२१]

हे अग्ने ! तुम कल्याण रूप से धन दान करते हुए प्रदीप्त होओ ।
आकाश और पृथिवी में अन्न रूप धन व्याप्त करो । मनुष्यों द्वारा दी गईं
हवियाँ देवताओं को प्राप्त कराओ ॥ ६ ॥ हे अग्निदेव ! गवादि धन, संतान
आदि बहु संख्यक ऐश्वर्य देकर यशस्वी बनाओ । तुम्हें उषाएं प्रकाशित करती
हैं । इस यज्ञ द्वारा आकाश-पृथिवी को हमारे अनुकूल बनाओ ॥ ७ ॥ उषा-
वेला में प्रज्वलित अग्नि सूर्य के समान तेजस्वी होते हुए स्तुतियों द्वारा पूजे
जाते हैं । वे यज्ञकर्त्ता के पास यज्ञ स्वामी और अतिथि के रूप में आ
हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम तेजवंत हो । मनुष्यों कृत स्तुतियाँ तुम्हें व्याप्त
बनाती हैं । पयस्विनी धेनु के समान, यज्ञ में की हुई स्तुति असंख्य
प्रदात्री हैं ॥ ९ ॥ हे अग्निदेव ! तुम्हारे द्वारा प्रचुर सामर्थ्य पाकर हम
से पार हों । दूसरों को अप्राप्य धन जो हमारे पास असंख्य रूप में है
के समान यशस्वी हो ॥ १० ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति सुनो । तुम
कराने वाले हो । अन्न, धन, संतान प्राप्ति के लिये मनुष्य तुम्हारी
पूजा करते हैं ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! बुद्धिमान स्तोता और यजमान सु
के लिए तुम्हारे आश्रित हुए हैं । तुम हमको उत्तम निवास, प्रसन्नत
संतान आदि प्रदान करो ॥ १२ ॥ हे अग्ने जो बुद्धिमान यजमान
को गवादि धन दान करते हैं, उनको और हमको उत्तम निवा
वीर संतान वाले होकर यज्ञ में श्रेष्ठ स्तोत्रों को गायेंगे ॥ १३ ॥

३ सूक्त

(ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्,

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्य
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन्
नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना
...मन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान्

ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥ ३ ॥
देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥ ५ ॥ ॥२२

वेदी में प्रतिष्ठित अग्नि सम्पूर्ण यज्ञ-स्थान में व्याप्त हैं। वे यज्ञ सम्पादक, पावक, प्रकाशित होकर देवताओं का पूजन करने वाले हों ॥ १ ॥ नराशंस नाम वाले अग्नि देव अपनी महत्ता से प्रदीप्त हुए तीनों लोकों को व्याप्त करते हैं। वह हवियुक्त घृत-सिंचन की कामना वाले, देवताओं को यज्ञ में बुलावें ॥ २ ॥ प्रसन्न, मन वाले अग्नि यज्ञ में समर्थ होते हुए देवताओं का यजन करें। ऋत्विजों, मरुद्गण और अविनाशी इन्द्र के प्रति वाणी रूप स्तुति करो। कुश पर स्थित इन्द्र का पूजन करो ॥ ३ ॥ हे कुश स्थित अग्ने! हमको विस्तृत धन दिलाने के लिए बढ़ो। तुम बुद्धिमय और वीरता युक्त हो। हे वसुदेवताओ, विश्वेदेवो, आदित्यो तुम घृत सिंचित कुश पर विराजो ॥ ४ ॥ हे प्रकाशित अग्निदेव! तुम यज्ञ द्वार का उद्घाटन करो। मनुष्यों तुम महान के प्रति हवि देते हुए सामीप्य प्राप्त करते हैं। तुम वीरता युक्त, यशस्वी, व्यापक और वरण करने योग्य एवं अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त हो ॥ ५ ॥   [२२]

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥ ६
दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७
सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८
पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते

प्रजां त्वष्टा वि ष्युतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥ १०
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ११ । २३

उत्तम कर्म में प्रेरित करने वाली उषा और रात्रि दो स्त्रियों की तरह परस्पर अनुकुल हुई यज्ञ का स्वरूप बनाती हुई पट बुनने वाली के समान चलती है। वह जल सींचने वाली तथा अभीष्ट फल देने वाली हैं ॥ ६ ॥ विद्वानों में देवता के समान पूज्य अग्नि होता रूप हैं। वे स्तुतियों द्वारा पूजन करते हुए देव-यज्ञ सम्पन्न करते हैं। वे पृथिवी की नाभि रूप उत्तम वेदी में तीनों वरणीय धर्मों के निमित्त सुसंगत होते हैं ॥ ७ ॥ हमारी बुद्धि को कर्मों में प्रेरित करती हुई सरस्वती, इला और भारती यज्ञ मंडप में अन्नाश्रय प्राप्त करती हुई हमारे यज्ञ की रक्षा करें ॥ ८ ॥ अग्नि रूप त्वष्टा के अनुग्रह से हमें शीघ्र कार्यकारी, अन्नोत्पादक, यज्ञ और देवताओं की कामना वाला वीर पुत्र प्राप्त हो। हमारी संतान अपने कुल का पालन करने वाली हो और हमें अन्न की प्राप्ति हो ॥ ९ ॥ हमारे कर्मों के ज्ञाता अग्नि हमको प्राप्त हों। वे अपने उत्तम कर्मों से हव्यान्न का परिपाक कर देवों को पहुँचावें ॥ १० ॥ घृत अग्नि का आश्रय स्थान एवं प्रकाश है। मैं अग्नि में घृत होमता हूँ। हे मनोरथ वर्षक अग्ने! हविदान के समय देवों को बुलाकर उनकी प्रसन्नता प्राप्त करते हुए हव्य उनको पहुँचाओ ॥ ११ ॥ [२३]

४ सूक्त

(ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्, उष्णिक ।)

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ।

एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥ २
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः सन्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत् ॥५ ।

यजमानो ! अतिथि स्वरूप अग्नि को तुम्हारे निमित्त आहूत हूँ। वे सब प्राणियों के ज्ञाता और मनुष्य एवं देवगण के धारक हैं ॥ भृगुवंशियों ने जिन अग्नि को जल-स्थान, अन्तरिक्ष और मनुष्यों में स्थ किया, वे द्रुतगामी अश्व वाले हमारे शत्रुओं को हरावें। २ ॥ देवग अग्नि को मनुष्यों में मित्र के समान स्थापित किया। वे अग्नि हविदा गृह में निवास कर रात्रियों में प्रकाश करते हैं ॥ ३ ॥ जैसे अपने शरी पुष्टि करते हैं, वैसे अग्नि को पुष्ट करो। जब वे अग्नि अधिक पदा काष्ठादि का भक्षण करते हैं, उस समय वे अत्यन्त तेजस्वी हो जाते हैं। रथ में जुड़ा हुआ घोड़ा अपनी पूंछ हिलाता है, वैसे उनकी ज्वालाऐं पर हिलती हैं ॥ ४ ॥ अग्नि की महानता का गुणगान करने पर रूप प्र करते हैं। वे हव्य ग्रहण करने की लपटों से युक्त होते हैं तथा वे कभी वस्था को प्राप्त नहीं करते ॥५॥ [

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥ ७

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥ ९ । २५

प्यासे के समान अग्नि वनों को जलाते और जलों के समान भ्रमण करते हैं। वे रथ में जुते अश्व के समान शब्द करते और अपने काले मार्ग को प्रकट करते हुए भी सूर्य मंडल के समान शोभायमान होते हैं ॥ ६ ॥ विश्व व्यापक अग्नि पृथिवी पर बढ़ते और स्वामी-हीन पशु के समान घूमते हैं। वही प्रदीप्त अग्नि वनों को भस्म कर, पीड़ा देने वाले काँटों को भी मिटा देते हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम्हारे प्रथम सवन की रक्षा को याद करके आज हम तृतीय सवन में रमणीय स्तुतियाँ करते हैं। तुम हमको वीरत्व, यश और सुन्दर धन प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने! गुफा में बैठे हुए ऋषिगण तुम्हारे द्वारा रचित हुए स्तोत्र उच्चारण करते हुए दिव्य धन प्राप्त करते हैं। वे श्रेष्ठ संतानादि पाकर शत्रुओं को हराने में समर्थ होंगे। तुम विद्वान स्तोताओं को वरणीय धनों को दो ॥ ९ ॥ [२५]

५ सूक्त

(ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः। देवता—अग्निः। छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्)

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥ १

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥ २

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥ ३

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानु रोहते ॥ ४

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ५

यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ ६
स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम्।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥ ७
यथा विद्वाँ अरं करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ । २६

होता रूप, चैतन्यतापद, पिता के समान अग्नि पूर्व पुरुषों की रक्षा के लिए प्रकट हुए थे। हम भी हवियुक्त होकर पूज्य विजेता और रक्षा-साधन सम्पन्न, अग्नि से धन प्राप्त करेंगे ॥ १ ॥ यज्ञ के नायक अग्नि में सात रश्मियाँ जुड़ी हैं। देवों के पोता तुल्य अग्नि, मनुष्यों में पोता रूप हुए, यज्ञ के आठवें स्थान में व्याप्त होते हैं ॥ २ ॥ इस यज्ञ में ऋत्विजों द्वारा धारण किये हव्यांश और गायी हुई स्तुतियों को वे अग्निदेव भले प्रकार जानते हैं ॥ ३ ॥ यह अग्नि धम्यम्न पवित्रता से उत्पन्न हुए हैं। एक डाल से दूसरी डाल पर जाकर फल तोड़ने के समान, यजमान यज्ञ को अभीष्ट-दाता जानते हुए एक के पश्चात् दूसरा यज्ञ करते हैं ॥ ४ ॥ नेष्टा अग्नि की सेवा में दस अंगुलियाँ धेनु रूप से सींचने वाली होती हैं तथा इनके गार्हपत्य आदि रूपों की पूजा में लग जाती हैं ॥ ५ ॥ मातृभूत वेदी के पास भगिनी के समान जुहू को घृत से पूर्ण करके रखते हैं, तब वृष्टि से बढ़ने वाले जौ के समान अग्नि भी पुष्टि को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ यह अग्नि उत्तम कर्म के लिए ऋत्विक के समान होते हैं। हम उनके लिए स्तोत्र और हवि देते हुए यज्ञ करें ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम्हारी महत्ता को जानने वाला यजमान सब देवताओं को तृप्त कर सके, यह कार्य करो। हम जिस यज्ञ को करते हैं, वह तुम्हारा ही है ॥ ८ ॥ [२६]

६ सूक्त

(ऋषिः-सोमाहुतिर्भार्गवः। देवता—अग्नि। छन्द—गायत्री।)

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ १

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषांसि ॥४॥
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् ।
स नः सहस्रिणीरिषः ॥ ५ ॥
ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥ ६ ॥
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७॥
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् ।
आ चास्मिन्सत्सि बर्हिषि ॥ ८ ॥ ॥२७

हे अग्ने ! मेरी समिधा और आहुतियों को ग्रहण करो । मेरे स्तोत्र को सुनो ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! हम तुम्हें आहुतियों से प्रसन्न करें । तुम उत्तम जन्म वाले, बल के पुत्र हो । यज्ञ का विस्तार करते हो । हमारी स्तुति से प्रसन्न होओ ॥२॥ हे धनदाता अग्ने ! तुम यज्ञ की कामना वाले, स्तुति के योग्य हो । हम तुम्हारे साधक स्तुतियों से साधना करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी धन देने वाले हो । उठ कर हमारे शत्रुओं को भगा दो ॥ ४ ॥ अग्नि, हमारे लिये, अन्तरिक्ष से जल-वर्षा करते हैं । वह हमें महाबली बनावें और असंख्य अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥ हे अति युवा अग्ने ! मेरी स्तुतियों के प्रति आओ । मैं तुम्हारे आश्रय की इच्छा से पूजन करता हूँ ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के मनों की बात जानते हो । तुम उनके दोनों जन्मों की बात जानते हो । तुम ज्ञानी, मित्रों का हित करने वाले तथा दूत रूप हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञानी हो, हमारी अभिलाषाऐं पूरी करो । तुम चैतन्यताप्रद हो । देवताओं का यज्ञ करने के लिए कुश पर विराजो ॥ ८ ॥ [२७]

७ सूक्त

(ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२॥
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्याइव । अति गाहेमहि द्विषः ॥३॥
शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४ ॥
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥
द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६।२८

हे अतियुवा अग्ने ! तुम पालक, पोषक, प्रशंसनीय और प्रकाशमान हो । बहुतों द्वारा इच्छित धनों को यहाँ लाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं का पक्ष लेकर हमको न हराओ । शत्रुओं से हमारी हर प्रकार रक्षा करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से हम अपने शत्रुओं से पार होने में स्वयं समर्थ हो सकेंगे ॥ ३ ॥ हे पावक ! तुम पूजनीय हो । घृत की आहुतियों द्वारा तुम अत्यन्त प्रकाशमान हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम पालनकर्ता हो । हो । हमारी सुन्दर गौओं, बैलों और बछड़ों द्वारा पूजित हुए हो ॥ ५ ॥ मेधावी, बल के पुत्र, यज्ञ-सम्पादक, प्राचीन, समिधा रूप अन्न वाले, घृत-सिंचन के इच्छुक अग्नि अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ [२८]

८ सूक्त

(ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप् ।)

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥ १ ॥
यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥ २ ॥
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा ।
अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥
अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५॥
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥६॥ ॥२९

जो अग्नि अश्व के समान आचरण वाले, रमणीय अन्न वाले तथा

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषांसि ॥४॥
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् ।
स नः सहस्रिणीरिषः ॥ ५ ॥
ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥ ६ ॥
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७॥
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् ।
आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥ ८ ॥ ॥२७

हे अग्ने ! मेरी समिधा और आहुतियों को ग्रहण करो। मेरे स्तोत्र को सुनो ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! हम तुम्हें आहुतियों से प्रसन्न करें। तुम उत्तम जन्म वाले, बल के पुत्र हो। यज्ञ का विस्तार करते हो। हमारी स्तुति से प्रसन्न होओ ॥२॥ हे धनदाता अग्ने ! तुम यज्ञ की कामना वाले, स्तुति के योग्य हो। हम तुम्हारे साधक स्तुतियों से साधना करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी धन देने वाले हो। उठ कर हमारे शत्रुओं को भगा दो ॥ ४ ॥ अग्नि, हमारे लिये, अन्तरिक्ष से जल-वर्षा करते हैं। वह हमें महाबली बनावें और असंख्य अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥ हे अति युवा अग्ने ! मेरी स्तुतियों के प्रति आओ। मैं तुम्हारे आश्रय की इच्छा से पूजन करता हूँ ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के मनों की बात जानते हो। तुम उनके दोनों जन्मों की बात जानते हो। तुम ज्ञानी, मित्रों का हित करने वाले तथा दूत रूप हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञानी हो, हमारी अभिलाषाएं पूरी करो। तुम चैतन्यताप्रद हो। देवताओं का यज्ञ करने के लिए कुश पर विराजो ॥ ८ ॥ [२७]

७ सूक्त

(ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता—अग्नि । छन्द—गायत्री ।)

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२॥
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्याइव । अति गाहेमहि द्विषः ॥३॥
शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥
द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६।२

हे अतिथिरूप अग्ने ! तुम पालक, पोषक, प्रशंसनीय और प्रकाशमान हो। यज्ञों द्वारा इच्छित धनों को यहाँ लाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं का पक्ष लेकर हमको न हराओ। शत्रुओं से हमारी हर प्रकार रक्षा करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से हम अपने शत्रुओं से पार होने में स्वयं समर्थ हो सकेंगे ॥ ३ ॥ हे पावक ! तुम पूजनीय हो। घृत की आहुतियों द्वारा तुम अत्यन्त प्रकाशमान हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम पालनकर्त्ता हो। हो। हमारी सुन्दर गौओं, बैलों और यज्ञों द्वारा पूजित हुए हो ॥ ५ ॥ मेधावी, बल के पुत्र, यज्ञ-सम्पादक, प्राचीन, समिधा रूप अन्न वाले, घृत-सिंचन के इच्छुक अग्नि अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ [२८]

८ सूक्त

(ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप् ।)

वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥ १ ।
यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिं । चारुप्रतीक आहुतः ॥ २ ॥
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा ।
अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥
अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५॥
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥६॥ ॥२९

जो अग्नि अश्व के समान आचरण वाले, रमणीय ...

अग्नि होता और पिता रूप हैं। वे मनुष्यों द्वारा यज्ञ स्थान में प्रदीप्त किये जाते हैं। वे प्रकाशमान, अमर, मेधावी अन्न और बल से युक्त सब के द्वारा सेवा करने योग्य हैं ॥ १ ॥ बुद्धिमान, अद्भुत प्रकाश वाले अविनाशी अग्नि मेरे आह्वान को सुनें। उनके लाल रंग के घोड़े उन्हें विभिन्न स्थानों में पहुँचाते हैं ॥ २ ॥ अध्वर्युओं ने दो अरणियों से अग्नि को उत्पन्न किया। वे विविध भेषजों में गर्भ रूप से व्याप्त होते और रात्रि में अत्यन्त प्रकाश से युक्त होते हैं। वे अंधेरे से छिप नहीं पाते ॥ ३ ॥ सर्वत्र गमनशील अग्नि महान और सब लोकों के पालक हैं। वे वृद्धि को प्राप्त हुए हवियों द्वारा व्याप्त होते हैं। हम उन दर्शनीय अग्नि का घृत युक्त हवियों से पूजन करते हैं ॥ ४ ॥ सर्वव्यापी, यज्ञ की कामना वाले अग्नि को हम घृत से सींचते हैं। वे शांतिपूर्वक उसे सेवन करें। अग्नि के पूर्ण प्रदीप्त होने पर उन्हें स्पर्श करने में कोई समर्थ नहीं ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! अपने तेज से शत्रुओं को हराते हुए हमारी कामना योग्य स्तुतियों को समझो। तुम्हारे आश्रय में हम मनु के समान स्तुति करते हैं। तुम धन दाता हो, हाथ में जुहू लेकर मैं तुम्हें स्तोत्रों से बुलाता हूँ ॥ ६ ॥ [२]

११ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्र। छन्द—पंक्ति, बृहती, त्रिष्टुप्।)

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २
उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।

उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ । ३

हे इन्द्र ! मेरी स्तुति श्रवण करो। मेरा निरादर न करो। हम तुमसे धन लेने के योग्य हैं। यह नदी की तरह प्रवाहयुक्त हवि यजमान के लिए धन की कामना करती है। यह तुम्हें बढ़ावे ॥ १ ॥ हे वीर इन्द्र ! तुम्हारे द्वारा वर्षित जल पर वृत्र ने आक्रमण किया, तुमने उस जल को मुक्त कर दिया। वह वृत्र अपने को अमर समझता था, परन्तु स्तुतियों से वृद्धि प्राप्त कर तुमने उसे धराशायी किया ॥ २ ॥ हे वीर इन्द्र ! तुम जिन सुखकारी स्तोत्रों की कामना करते हो, वे स्तोत्र प्रकाशमान हुए यज्ञ में तुम्हारे निमित्त प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! स्तुतियों से हम तुम्हारा बल बढ़ाते और वज्र भेंट करते हैं। तुम उन दस्युओं को सूर्य के समान तेज से हराते हो ॥४॥ हे इन्द्र ! गुफा में छिपे हुए जिस वृत्र ने अपनी अद्भुत शक्ति से अन्तरिक्ष और आकाश को आश्चर्यान्वित किया, उसे तुमने अपने वज्र से मार डाला ॥ ५ ॥ [२]

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९
अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥ १० । ४

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे महान् यश को गाते हैं और इन नवीन अद्भुत कर्मों की भी प्रशंसा करते हैं। तुम्हारे चमकने हुए वज्र की, ध्वजा

अश्वों की स्तुति करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे द्रुतगामी अश्व
कि मेघ की ध्वनि वाले हैं । समतल भूमि, मेघ की गर्जना से प्रसन्न
और मेघ भी सर्वत्र वर्षा करते हुए सुशोभित होते हैं ॥७॥ मेघ
रिक्ष में पहुँच कर जल के साथ घूमने लगा । मरुद्गण ने उसके शब्द
बढ़ाते हुए सर्वत्र व्याप्त किया ॥८॥ महाबली इन्द्र ने संचारी मेघ में
पे हुए वृत्र का वध किया । इन्द्र के वज्र द्वारा जलवर्षक शब्द से आकाश
थिवी भयभीत हुई काँप गईं ॥९॥ जब मनुष्यों का हित करने वाले इन्द्र
ने वृत्र को मारने की इच्छा की तब उनका वज्र गर्जने लगा । इन्द्र ने सोम
पीकर उस दैत्य की माया को छिन्न भिन्न कर दिया ॥१०॥ [४]

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥ १२ ॥
स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥ १३ ॥
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥ १४ ॥
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥ १५ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! इस निचोड़े हुए सोम को पीओ—वह तुम्हें प्रसन्न
उससे तुम्हारी उदर-पूर्ति हो । उदर को पूर्ण करने वाला सोम तु
दे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! हम बुद्धिमान तुम्हारे हृदय में स्थान प्राप्त
कर्मफल की इच्छा से तुम्हारा यज्ञ करेंगे । तुम्हारे आश्रय के लि
स्तुति करते हैं जिससे हम तुम्हारा दिया हुआ धन शीघ्र पा सकें
हे इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय की कामना से तुम्हें हवियों से बढ़ाने वाले
तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें । तुम हमको हमारा इच्छित,

धन प्रदान करो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! हमको निवास, धन और महान पौरुष दो। वायु के साथ बल वाले देवगण इस सोमरस को पीवें ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे सहायक मरुद्गण सोम-पान करें। तुम भी इस तृप्ति देने वाले सोम को पीओ। तुम शत्रुओं का हनन करने वाले हो। पूज्य मरुतों के साथ हमको युद्ध में बढ़ाओ ॥ १५ ॥ [५]

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥
धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१ ॥६

हे इन्द्र ! तुम अनिष्ट का निवारण करते हो। तुम्हारा सेवक शीघ्र ही महानता प्राप्त करता है। कुश बिछा कर तुम्हारी पूजा करने वाले तुम्हारे आश्रय से गृह और अन्नादि पाते हैं ॥ १६ ॥ हे वीर इन्द्र ! तुम तीनों लोकों में सूर्य के समान हुए सोम पिओ। फिर अपनी मूँछों को पोंछ कर प्रसन्नता पूर्वक अश्वों के द्वारा यहाँ आओ ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! जिस बल से तुमने उस दानव वृत्र को कीड़े की तरह मार डाला, उसी बल को धारण करो। तुमने मनुष्यों के लिए सूर्य का प्रकाश दिखाया और दस्युओं को हटा दिया ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे जिस आश्रित ने अहंकारियों या दस्युओं को भगा दिया, हम उसकी स्तुति करते हैं। तुमने "त्रित" की मित्रता के

लिए "त्वष्टा" के पुत्र "विश्वरूप" को नष्ट किया था। हमारे निमित्त भी वैसे ही मित्रभाव वाले होओ ॥ १६ ॥ "त्रित" द्वारा बढ़े हुए इन्द्र ने "अर्बुद" को मारा। सूर्य द्वारा अपने रथ के पहिये को चलाने के समान इन्द्र ने अङ्गिराओं की सहायता से वज्र घुसाकर शत्रु को नष्ट किया ॥ २० ॥ हे इन्द्र ! वह तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तुति करने वालों का अभीष्ट पूर्ण करती है, उसे हमको प्रदान करो। उसे हमारे सिवाय किसी अन्य को मत देना। हम संतानयुक्त हुए इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करें ॥ २१ ॥ [६]

१२ सूक्त [दूसरा अनुवाक]

(ऋषि-गृत्समदः । देवता—इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १॥
यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२॥
यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्र ॥ ५ ॥७

जो अपनी शक्ति सहित प्रकट होकर मनुष्यों में अग्रगण्य हुए और जिन्होंने देवगण को वीर कर्मों से विभूषित किया। आकाश और पृथिवी जिनके बल से डर गयीं, ये इन्द्र हैं ॥ १ ॥ जिन्होंने काँपती हुई पृथिवी को दृढ़ता दी और भड़कते हुए पर्वतों को शांत किया, जिन्होंने अन्तरिक्ष को बना कर आकाश को सहारा दिया, वे इन्द्र हैं ॥ २ ॥ जिन्होंने वृत्र-वध करके सप्त नदियों को बहाया और राक्षस द्वारा रोकी हुई गायों को मुक्त किया, जो मेघों में अग्नि उत्पन्न करते और युद्ध में शत्रुओं को मारते हैं, वह इन्द्र

हैं ॥ ३ ॥ जिन्होंने संसार को रचा और दुष्टों को निम्न गुफाओं में बसाया, जो शत्रु के धनों को जीतते हैं, वे इन्द्र हैं ॥ ४ ॥ जिनके संबंध में लोग जिज्ञासा करते और जिनकी चर्चा करते हैं। जो शत्रुओं के धन को शासक के समान छीन लेते हैं, वे इन्द्र हैं ॥ ५ ॥ [७]

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० । ८

अत्यन्त धन देने वाले, दरिद्र याचक और स्तुति करने वाले को धनदाता, सुशोभित, यजमानों के पालक जो हैं, वही इन्द्र हैं ॥ ६ ॥ जिनकी आज्ञा में अश्व, गौ, ग्रह, रथादि हैं, जो सूर्य और उषा के नियामक और जल प्रेरण करने वाले हैं, वह इन्द्र हैं ॥ ७ ॥ युद्ध में जिन्हें आहूत करते हैं, ऊँच नीच, शत्रु-मित्र सभी जिन्हें बुलाते हैं, वे इन्द्र हैं ॥ ८ ॥ जिनकी उपेक्षा से जय-लाभ नहीं होता, रक्षा केलिए जिनका आह्वान किया जाता है, जो दृढ़ पर्वतों को भी नष्ट करने में समर्थ हैं, वही इन्द्र हैं ॥ ९ ॥ जिन्होंने पापियों, अकर्मवानों को नष्ट किया, जो स्वाभिमानी को सिद्धि देते और दुष्टों को मारते हैं, वे इन्द्र हैं ॥ १० ॥ [८]

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥

य: सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १४
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १५ । ६

जिन्होंने पृथिवी में छिपे "शम्बर" नामक दैत्य तथा सोते हुए महाबली "अहि" को मारा, वे इन्द्र हैं ॥ ११ ॥ जो वराह रूप वाले, महान्, विद्युत के समान तेजस्वी, रश्मिवंत, इच्छित वर्षक एवं सात नदियों के प्रवाहित करने वाले, बाहु में वज्र धारण करते हैं तथा जिन्होंने स्वर्गाकांक्षिणी "रोहिणी" को रोक दिया वह इन्द्र हैं ॥ १२ ॥ जिनके सामने पर्वत कम्पायमान होते हैं, आकाश पृथिवी जिन्हें प्रणाम करती है, जो सोमपायी, दृढ़ अङ्ग वाले और वज्रबाहु हैं, वह इन्द्र हैं ॥ १३ ॥ जो सोम छानने वाले के रक्षक और पुरोडाश सिद्ध करने वाले स्तोता के पालक हैं। तथा जिनके स्तोत्र हमारे लिए अन्न के समान हैं, वे इन्द्र हैं ॥ १४ ॥ हे इन्द्र! तुम सोम छानने वाले और यजमान को अन्न देते हो, तुम सत्य स्वरूप हो। हम प्रिय सन्तानादि से युक्त हुए तुम्हारी स्तुति-गान करेंगे ॥ १५ ॥ [६]

१३ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् , जगती ।)

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ १
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २

अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ४
अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ । १०

सोम वर्षा से उत्पन्न होता है, जल में बढ़ता है। जल की सारभूत सोमलता बढ़ती हुई निचोड़े जाने के योग्य होती है। वही अमृत तुल्य सोम इन्द्र का पेय है ॥ १ ॥ जल बहाने वाली नदियाँ सर्वत्र प्रवाहित होती हुई समुद्र में जाती हैं। जल निचले मार्ग पर चलता है। हे इन्द्र! तुम यह सब कार्य कर चुके हो, अतः प्रशंसा के योग्य हो ॥ २ ॥ एक यजमान दान करता है, दूसरा उसका गुणगान करता है। एक जल उत्तम पदार्थों को नष्ट करता, दूसरा अवगुणों का शोधन करता है। हे इन्द्र! इन कर्मों के कर चुकने के कारण ही तुम प्रशंसित हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! गृहस्थ जैसे अभ्यागतों को धन-दान करते हैं, वैसे ही तुम्हारा धन प्रजाओं में व्याप्त है, मनुष्य जैसे भोजन को चबाता है, वैसे ही तुम प्रलय काल में इस सृष्टि को चबा जाते हो। हे इन्द्र! अपने कर्मों से ही तुम स्तुति के पात्र हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुमने आकाश-पृथिवी को सुन्दर बनाया। नदियों के मार्ग को बनाया। तुम वृत्र के मारने वाले हो। जैसे तुम अश्व को पानी पिलाते हो, वैसे ही साधक तुम्हें स्तुतियाँ भेंट करते हैं ॥ ५ ॥ [१०]

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥ ८

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च सन्दृशः परि परो अभवः
सास्युक्थ्यः ॥ १० । ११

हे इन्द्र ! तुम अन्न और धन देने वाले हो । गीले वृक्ष से सूखे फल उपजाते तथा वर्षा से सूखा अन्न प्राप्त कराते हो । तुम्हारे समान अन्य कोई नहीं हैं, इसलिए स्तुति के योग्य हो ॥ ६ ॥ कर्म द्वारा फूल फल युक्त वनस्पति की रक्षा करते हो, सूर्य को ज्योति देकर उसे प्रकाशित करते हो । तुमने अपनी महत्ता से ही सब प्राणियों को प्रकट किया, इसलिये प्रशंसा के योग्य हो ॥ ७ ॥ हे असंख्यकर्मा इन्द्र ! हवि ग्रहण करने और असुरों का नाश करने के निमित्त तुमने वज्र का मुख खोला । तुम प्रशंसा के योग्य हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सहस्रों धनों के स्वामी हो । ऋषि के लिये तुमने राक्षसों को बिना रस्सी ही घेर कर मार डाला । इसलिए तुम प्रशंसा- योग्य हो ॥ ६ ॥ सब नदियाँ इन्द्र के बल से चलती हैं । साधक इन्द्र को हवि देते हैं । हे इन्द्र ! तुमने आकाश, पृथिवी, दिवस, रात्रि, जल तथा औषधि आदि को स्थापित किया है । अतः तुम प्रशंसा के पात्र हो ॥ १० ॥ [११]

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥ ११
अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥ १२
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ । १२

तुम्हारा पुरुषार्थ आदर के योग्य है । तुम शत्रु के धन को कर्म से प्राप्त करते हो । तुमने सभी उत्पन्न हुओं को अन्न दिया । इन सब कार्यों के कारण तुम स्तुति के पात्र हो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "तुर्वीति" और

"वम्य" को जल से पार किया और अन्धे तथा पंगु परावृज का उद्धार किय तुम स्तुति के योग्य हो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! हमको उपभोग्य धन दो। तुम्हा दान धास योग्य तथा दिव्य है। हम नित्य प्रति उसकी कामना करते हैं। संतानादि से युक्त हुए स्तुति करते हैं॥ १३ ॥ [१२]

१४ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ १
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम्।
तस्मा एतं भरत तद्वशाय एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३
अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून्।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥ १३

हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के निमित्त सोम लाओ। चमस द्वारा अग्नि में हवि दो। सोम-पान के इच्छुक इन्द्र को सोम भेंट करो॥ १ ॥ वज्र द्वारा जल को रोकने वाले वृत्र के वधकर्त्ता इन्द्र के निमित्त सोम लाओ। इन्द्र सोम पीने के योग्य हैं ॥ २ ॥ जिस इन्द्र ने गायों का उद्धार किया और राक्षसों को मारा, उस इन्द्र के लिए सोम को व्याप्त करो और वस्त्र से आच्छादित करने के समान इन्द्र को सोम से ढक दो ॥ ३ ॥ जिस इन्द्र ने भुजा वाले "उरण" तथा "अर्बुद" का हनन किया, उसी इन्

सिद्ध होने पर भेंट करो ॥ ४ ॥ जिस इन्द्र ने "अश्व" को मारा, "शुष्ण" के कंधे काट डाले, "पिप्रु", "नमुचि" और 'सधिक्रा' का हनन किया, उन्हीं इन्द्र को हवि दो ॥ ५ ॥ जिस इन्द्र ने वज्र से "शम्बर" के पाषाण नगरों का विध्वंस किया तथा "वर्चो" के एक लाख अनुयायिओं को धराशायी किया, उन्हीं इन्द्र के निमित्त सोम रस ले आओ ॥ ६ ॥ [१३]

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥ ७

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८

अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९

अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १०

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्धयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १२ । १४

जिस रिपुनाशक इन्द्र ने एक लाख दैत्यों को धराशायी किया तथा "कुत्स", "आयु" और "अतिथिग्व" के द्वेषियों को मारा, उसी इन्द्र के लिए सोम लेकर आओ ॥ ७ ॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र को सोम भेंट करने पर तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी हाथों से सिद्ध किए उस सोम को लाकर इन्द्र को दो ॥ ८ ॥ अध्वर्युओ ! इन्द्र को हर्षित करने वाला सोम तैयार करो। जल में शुद्ध किये सोम को लाओ। इन्द्र तुमसे सोम चाहते हैं, उन के लिए आह्लादकारी सोम भेंट करो ॥ ९ ॥ अध्वर्युओ ! गौओं के निचले अङ्ग में दूध भरे रहने के समान, इन्द्र को सोम से भर दो। मैं सोम के स्वभाव का ज्ञाता हूँ। इन्द्र उससे हर्षित होकर यजमान को सुखी करते हैं ॥ १० ॥

इन्द्र आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष के ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। जैसे जौ से वर्तन भरा जाता है, वैसे ही सोम से इन्द्र को भर दो ॥ ११ ॥ हे उत्तम वास देने वाले इंद्र ! हमको भोगने योग्य धन दो। तुम्हारा दान अद्भुत है, हम नित्य ही उसकी इच्छा करते हैं। श्रेष्ठ संतानों से युक्त हुए हम इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करें ॥ १२ ॥ [१४]

१५ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता-इन्द्र। छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १
अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथा सृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३
स प्रवोळ्हृन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४
स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ । १५

मैं शक्तिशाली हूँ। सत्य विचार वाले इन्द्र के महान यशों का बखान करता हूँ। इन्द्र ने सोम-पान से उत्पन्न बल से बढ़ कर "अहि" को मारा ॥ १ ॥ इन्द्र ने सूर्य मंडल को रोक रखा है। आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को तेज दिया है। इन्द्र ने यह सब कार्य सोम से उत्पन्न हुई शक्ति द्वारा किये हैं ॥ २ ॥ इन्द्र ने इस अखिल विश्व का मुख पूर्व की ओर रखा है। उन्होंने वज्र से नदी के द्वारों को खोल कर दीर्घकाल तक प्रवाहित रहने योग्य मार्गों पर बहाया। इन्द्र ने ये कार्य सोम से उत्पन्न बल से किये ॥ ३ ॥ "दभीति" ऋषि को नगर से बाहर ले जाते हुए राक्षसों को रं

शत्रों को इन्द्र ने भस्म किया । फिर दभीति को गवादि धन दिया । सोम द्वारा उत्पन्न शक्ति से इन्द्र ने यह कार्य किया ॥ ४ ॥ इन्द्र ने, पार जाने के लिए नदी को शांत कर असमर्थ व्यक्तियों को पार लगाया । वे धन को लक्ष्य करते हुए नदी से पार हुए । इन्द्र ने सोम के आनन्द में यह कार्य किया ॥ ५ ॥ [१५]

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेषे ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६
स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १०

इन्द्र ने अपनी महिमा से सिंधु नदी को उत्तर की ओर प्र[...] किया । वज्र द्वारा उषा के रथ को तोड़ा । यह कार्य इन्द्र ने सोम के [...] किया ॥ ६ ॥ अपने विवाह को आई हुई कन्याओं को भागता देख कर [...] पंगु होते हुए भी उठ कर दौड़ पड़े । नेत्र-विहीन होने पर भी देखने [...] हुए उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें पांव और नेत्र दिए । [...] उन्होंने सोम जनित प्रसन्नता में किया ॥ ७ ॥ अङ्गिरावंशियों की [...] इन्द्र ने वल को विभक्त किया और पर्वत के द्वार को खोला त[...] बाधाएँ दूर कीं । सोम के हर्ष में इन्द्र ने यह कार्य किया ॥ ८ ॥ [...] चुमुरि और धुनि नामक दैत्यों को तुमने मारा तथा दभीति अ[...] [...]ती । सोम के हर्ष में तुमने यह किया ॥ ९ ॥ हे इंद्र ! तुम्हारी [...]

दक्षिणा स्तोता का अभीष्ट पूरा करती है, वही हमें दो। किसी अन्य को न देना। हम संतान युक्त होकर यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥१०॥ [१६]

१६ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्र। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्।)

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥ १
यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधि वीर्या।
जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ । १

हम तुम्हारे निमित्त उन महानतम इन्द्र के प्रति प्रदीप्त अग्नि में ह[वि] देते हैं। और सुन्दर स्तुति गाते हैं। उन अजर, परन्तु विश्व को बुढ़ापा दे[ने] वाले सोमपायी इन्द्र का हम आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र के बिना जग[त्] कैसा? यह इन्द्र सर्वशक्तिमान और विराट हैं। सोम-रस धारण करने वा[ले] बली और तेजस्वी हैं। वे ज्ञानी और वज्रधारी हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! ज[ब] तुम अपने अश्व पर सुदूर गमन करते हो तब आकाश और पृथिवी तुम्ह[ारे] बल को जीत नहीं सकती। समुद्र और पर्वत तुम्हारे रथ को नहीं रो[क] सकते। तुम्हारे बल का सामना कोई नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ यजन यो[ग्य] शत्रुहन्ता वर्षक इन्द्र का सभी यज्ञ करते हैं। हे विद्वान्! तुम सो[म] देने वाले हो। इन्द्र के लिए यज्ञ करो। हे इन्द्र! कामनाओं की वर्षा कर[ने] वाले अग्नि के साथ सोम पियो ॥ ४ ॥ मदकारी और इच्छितवर्षी सो[म]

दान करने वालों के निमित्त इन्द्र की ओर जाता है। अध्वर्यु पाषाण
। सोम को कूटते छानते हैं ॥ ५ ॥ [१७]

। ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥ ६
ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
विद्वो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७
रा सम्बाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
तकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ । १८

हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र, रथ, अश्व और आयुध सभी अभीष्ट वर्षण करने वाले हैं। तुम हर्षकारी सोम के अधिकारी हो अतः उसके द्वारा तृप्ति को प्राप्त करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम रिपुहन्ता हो। स्तोता को युद्ध में नाव की तरह बचाते हो। यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करता हुआ मैं तुमको प्राप्त होता हूँ। हमारे स्तोत्र को भले प्रकार जानो। हम तुम्हें सींचेंगे ॥ ७ ॥ जैसे घास खाकर गाय बछड़े को लौटाती है, वैसे ही हमें भी अनिष्ट से लौटाओ। हे शतकर्मा इन्द्र ! जैसे पत्नियाँ पतियों को प्रसन्न करती हैं, वैसे ही हम भी .ने रुचिकर स्तोत्र द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी ..र्यवाली दक्षिणा स्तोता के अभीष्ट पूर्ण करती है, वह दक्षिणा हमें प्रदान करो, किसी अन्य को नहीं। हम संतान युक्त हुए इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥ ९ ॥ [१८]

१७ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इन्द्र । छन्द—जगती, पंक्ति, त्रिष्टुप्)

तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥ १

स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥ २
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्य क् पृथक् ॥ ३
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥ ४
स प्राचीनान्पर्वतान्दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ । १६

मनुष्यो ! अङ्गिराओं के समान नवीन स्तोत्रों से इन्द्र की पूजो। इन्द्र का तेज सूर्य रूप से उदय होता है। सोम से उत्पन्न हर्ष के कारण इन्द्र ने वृत्र द्वारा रोके हुए मेघ को खोला ॥ १ ॥ इन्द्र ने युद्ध काल में, शत्रु-नाश की इच्छा से सोम-पान के निमित्त अपनी महिमा को बढ़ाया, वे इन्द्र प्रसन्न हों। उन्होंने अपने मस्तक पर सूर्य लोक को धारण किया ॥ २ ॥ इन्द्र ! तुम पुरुषार्थी हो। स्तुति से प्रसन्न होकर तुमने शत्रु को नष्ट करने वाली शक्ति प्रकट की। तुम्हारे रथ में जुड़े हुए घोड़ों के कारण दुष्ट लोग दलबद्ध होकर और कुछ छिन्नभिन्न होकर भाग गये ॥ ३ ॥ बहुत अन्न वाले इन्द्र सब संसार के स्वामी हैं। उन्होंने आकाश-पृथिवी को व्याप्त किया। उन्होंने अन्धकार को सर्वत्र प्रेरित करते हुए विश्व को ढक दिया ॥ ४ ॥ इन्द्र ने गमनशील पर्वतों को अचल किया। मेघ से जलों को गिराया। संसार का धारण करने वाली पृथिवी को अपने बल से धारण किया और आकाश को इस प्रकार स्थापित किया, जिससे वह गिर न सके ॥५॥ [१६]

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥ ६
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो येन मामहः ॥ ७

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ । २

इन्द्र अखिल विश्व के रक्षक और समस्त प्राणियों के प्रकट करने वाले हैं। यशस्वी इन्द्र ने "क्रिवि" को वज्र मार कर धराशायी किया ॥ ६ ॥ हे इंद्र ! माता-पिता के घर पर सदा रहने वाली पुत्री जैसे अपने पितृकुल से भरण-पोषण के लिए धन-भाग चाहती है, वैसे ही मैं तुमसे धन माँगता हूँ। उस धन को प्रकट करो। मुझे उपभोग्य धन दो और स्तुति करने वालों को भी धन से संतुष्ट करो ॥ ७ ॥ हे पालनकर्त्ता इन्द्र ! तुम कर्म और अन्न के प्रेरक हो। हम तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हमको विविध रक्षा साधनों द्वारा आश्रय दो। तुम अभीष्ट वर्षण में समर्थ हो, हमको अत्यन्त धनवान बनाओ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी धनयुक्त दक्षिणा सब इच्छा पूर्ति करती है। तुम भजन के योग्य हो। हमको वही दक्षिणा दो, अन्य को नहीं। हम संतान युक्त हुए यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥ ९ ॥ [२०]

१८ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इन्द्र । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥ ३
आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४

आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङ् चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ । २१

यह स्तुति के योग्य पवित्र यज्ञ उषाकाल में प्रारंभ हुआ। इसमें चा पाषाण, तीन स्वर, सात छन्द और दश प्रकार के पात्र हैं। यह मनुष्यों को दिव्यता प्रदान करता है। यह रमणीय स्तोत्र और हवियों से सिद्ध होगा ॥१ यह यज्ञ तीनों सवनों में इन्द्र को संतुष्ट करने वाला है। यह मनुष्यों के लिए शुभ फल वाला है। ऋत्विगण सिद्ध स्तोत्र प्रकट करते हैं। अभी पूरक यज्ञ अन्य देवताओं से सुसंगत होता है ॥ २ ॥ नवीनस्तोत्रों द्वार इन्द्र के रथ में अश्व संयोजित किये जाते हैं। इस यज्ञ में अत्यन्त बुद्धिमा स्तोता हैं। हे इन्द्र! अन्य यजमान तुम्हारी तृप्ति करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! आहूत हुए तुम अपने विभिन्न संख्यक अश्व द्वारा सोम पान के लिए आओ। यह सोम तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत है, इसे त्यागन नहीं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ और सत्त गति वाले घोड़ों को रथों में जोड़ कर सोम पीने के लिए यह आओ ॥ ५ ॥   [२१

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङ् शतेन हरीभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७
न म इन्द्रेण सख्यं वि योपदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ २

हे इन्द्र! अस्सी, नब्बे और सौ अश्वों द्वारा हमको प्राप्त होओ तुम्हारी प्रसन्नता के लिए पात्र में सोम प्रस्तुत है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! मेरी स्तुति से प्रत्यक्ष होओ। संसार व्यापी अपने दोनों अश्वों को रथ में जोड़ो

तुम्हें वहुत से यजमान बुलाते हैं। तुम इस यज्ञ में बल प्राप्त करो ॥ ७ ॥ इन्द्र की मैत्री कभी न छूटे। यह दक्षिणा हमको इच्छित फल दे। हम इन्द्र के विपत्ति को दूर करने वाले हाथ को चाहते हैं। हम सभी युद्धों में जीतें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तुति करने वाले की इच्छा पूर्ण करने वाली है, वह हमारे सिवाय अन्य को प्राप्त न हो। तुम स्तुति के योग्य हो। हम संतान युक्त हुए इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥ ९ ॥ [२२]

१९ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्र। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विददगा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३
स अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥ ४
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ । २३

सोम छानने वाले यजमान को हर्ष वर्द्धक हवियों को प्रसन्नता के लिए इन्द्र सेवन करें। इससे बढ़े हुए इन्द्र इसी में वास करते हैं। इन्द्र के स्तोत्रों की कामना वाले ऋत्विक् भी इसमें वास किये हुए हैं ॥ १ ॥ इस हर्ष सम्पन्न सोम से आह्लादित इन्द्र ने वज्र धारण कर जल रोकने वाले "अहि" को छेद डाला। उस समय पक्षियों के पुष्करिणी के सामने जाने के समान प्रसन्नताप्रद जल-राशि समुद्र के सामने पहुँचने लगी ॥ २ ॥ पूजनीय एवं अहिमर्दक इन्द्र ने जल-प्रवाह को समुद्र के सामने भेजा। समुद्र को

बना कर उससे गौएं प्राप्त की और अपने तेज की शक्ति से सूर्य को प्रकाशित किया ॥ ३ ॥ हविदाता यजमान को इन्द्र ने श्रेष्ठ धन दिया। वृत्र को मारा और सूर्य को पाने के लिए स्तुति करने वालों में विरोध होने पर इन्द्र ने अपने साधकों को शरण दी ॥ ४ ॥ सोम छानने वाले "एतश" के लिए, स्तुति किए, जाने पर इन्द्र सूर्य को लाए। क्योंकि पुत्र को पिता द्वारा धन देने के समान एतश ने यज्ञ में इन्द्र को भेंट किया था ॥५॥ [२३]

स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ । २४

इन्द्र ने अपने सारथि "कुत्स" के लिए "शुष्ण", 'अशुष', और "कुयव" को वश में किया और "दिवोदास" के लिए "शम्बर" के निन्यानवे नगरों को तोड़ा ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! अन्न की इच्छा से हम तुम्हें स्तुतियों से बलवान बनाते हैं। तुम्हें प्राप्त कर हम सप्त पदी मैत्री का लाभ पावें। देव-विरोधी "पीयु" के प्रति वज्र चलाओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! जाने के लिए मार्ग साफ करने वाले के समान हम तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोत्र रचते हैं। तुम्हारे स्तोत्रों की कामना कर अन्न, बल, निवास और सुख की प्राप्ति करें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी धनवाली दक्षिणा स्तोता की इच्छाऐं पूर्ण करती है। यह हमारे सिवा अन्य को न मिले। हम संतान युक्त हुए इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥ ९ ॥ [२४]

तुम्हें बहुत से यजमान बुलाते हैं। तुम इस यज्ञ में बल प्राप्त करो ॥ ७ ।
इन्द्र की मैत्री कभी न छूटे। यह दक्षिणा हमको इच्छित फल दे। हम इन्द्र
के विपत्ति को दूर करने वाले हाथ को चाहते हैं। हम सभी युद्धों में
जीतें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तुति करने वाले की
इच्छा पूर्ण करने वाली है, वह हमारे सिवाय अन्य को प्राप्त न हो। तुम
स्तुति के योग्य हो। हम संतान युक्त हुए इस यज्ञ में स्तुति
करेंगे ॥ ९ ॥ [२२]

१९ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्र। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विददगा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३
स अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥ ४
स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ । २३

सोम छानने वाले यजमान को हर्ष वर्द्धक हवियों को प्रसन्नता के लिए इन्द्र सेवन करें। इससे बढ़े हुए इन्द्र इसी में वास करते हैं। इन्द्र के स्तोत्रों की कामना वाले ऋत्विक् भी इसमें वास किये हुए हैं ॥ १ ॥ इस हर्ष सम्पन्न सोम से आह्लादित इन्द्र ने वज्र धारण कर जल रोकने वाले "अहि" को छेद डाला। उस समय पक्षियों के पुष्करिणी के सामने जाने के समान प्रसन्नताप्रद जल-राशि समुद्र के सामने पहुँचने लगी ॥ २ ॥ पूजनीय एवं अहिमर्दक इन्द्र ने जल-प्रवाह को समुद्र के सामने भेजा। समुद्र को

बना कर उससे गौएं प्राप्त कीं और अपने तेज की शक्ति से सूर्य को प्रकाशि
किया ॥ ३ ॥ हविदाता यजमान को इन्द्र ने श्रेष्ठ धन दिया। वृत्र को मा
और सूर्य को पाने के लिए स्तुति करने वालों में विरोध होने पर इन्द्र
अपने साधकों को शरण दी ॥ ४ ॥ सोम छानने वाले "एतश" के लि
स्तुति किए, जाने पर इन्द्र सूर्य को लाए। क्योंकि पुत्र की पिता द्वारा ध
देने के समान एतश ने यज्ञ में इन्द्र को भेंट किया था ॥५॥   [२३]

स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

इन्द्र ने अपने सारथि "कुत्स" के लिए "शुष्ण", 'अशुष', औ
"कुयव" को वश में किया और "दिवोदास" के लिए "शम्बर" के निन्यान
नगरों को तोड़ा ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! अन्न की इच्छा से हम तुम्हें स्तुतियों
बलवान बनाते हैं। तुम्हें प्राप्त कर हम सप्त पदी मैत्री का लाभ पावें। दे
विरोधी "पीयु" के प्रति वज्र चलाओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! जाने के लिए म
साफ करने वाले के समान हम तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोत्र रचते हैं। तुम्ह
स्तोत्रों की कामना कर अन्न, बल, निवास और सुख की प्राप्ति करें ॥ ८
हे इन्द्र ! तुम्हारी धनवाली दक्षिणा स्तोता की इच्छाएं पूर्ण करती हैं। व
हमारे सिवा अन्य को न मिले। हम संतान युक्त हुए इस यज्ञ में तुम्हा
स्तुति करेंगे ॥ ९ ॥   [२४]

२० सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नृन् ॥ १
त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २
स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥ ३
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥४
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ५ । २५

हे इन्द्र ! अन्न प्राप्ति के लिए ही रथ बनाने वाला, रथ बनाता है, वैसे ही हम तुम्हारे लिये अन्न प्रस्तुत करते हैं । तुम हमसे भली भाँति परिचित हो । हम स्तुति से तुम्हें प्रकाशमान बनाते हैं और तुमसे सुख की याचना करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हमारे पालक और रक्षक होओ । तुम अपने उपासकों की शत्रुओं से रक्षा करते हो । तुम हविदाता के स्वामी हो और उसके शत्रु को भगाते हो । हवि से सेवा करने वाले के लिए तुम यह कार्य करते हो ॥ २ ॥ हम यज्ञानुष्ठान करते हैं । स्तुति के योग्य, मित्र के समान सुख के देने वाले युवा इन्द्र हमारे रक्षक हों । स्तोता, हविदाता और कर्मवान् व्यक्ति को इन्द्र आश्रय देते और कर्मों में निपुण बनाते हैं ॥ ३ ॥ मैं इन्द्र का स्तोता और उनका प्रशंसक हूँ । उनके स्तोता प्रथम वृद्धि को प्राप्त हुए और फिर शत्रु का नाश कर पाये । जो नवीन स्तोता इन्द्र के निकट स्तुति-पाठ करते हैं, उनकी धन की कामना को इंद्र पूर्ण करते हैं ॥ ४ ॥ अङ्गिरावंशियों के स्तोत्रों से प्रसन्न हुए इन्द्र ने उन्हें गौएँ लाने का मार्ग

दिखा कर उनकी स्तुति पूर्ण की। स्तोताओं की प्रार्थना पर इन्द्र ने सूर्य द्वारा उषा को छिपा कर "अशन" के नगरों का नाश किया ॥ ५ ॥ [२५]

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥ ६
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७
तस्मै तवस्य मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत् ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ । २६

तेजस्वी, यशस्वी एवं दर्शनीय इन्द्र साधक के लिए सदा तैयार रहते हैं। वे रिपुहन्ता बली इंद्र प्राणियों को दुःख देने वाले दस्यु का मस्तक छिन्न कर फेंक देते हैं ॥ ६ ॥ वृत्र को मारने वाले तथा पुर तोड़ने वाले इन्द्र ने अन्धकार को उत्पन्न करने वाले दस्युओं को नष्ट किया। उन्होंने मनुष्य के लिए पृथिवी और जल बनाया। वह यजमान की सुन्दर कामनाओं को पूर्ण करें ॥ ७ ॥ जल की प्राप्ति के लिए स्तोताओं ने सदा इन्द्र को बढ़ाया। जब इंद्र ने हाथ में वज्र लिया, तब उससे असुरों को मार कर उनके लौह-दुर्गों को तोड़ डाला ॥ ८ ॥ हे इंद्र ! तुम्हारी ऐश्वर्य वाली दक्षिणा स्तोता का अभीष्ट पूर्ण करती है। उस दक्षिणा को हमारे सिवा अन्य को नहीं देना। हम संतान युक्त हुए इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥९॥ [२६]

२१ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इंद्र छंद—त्रिष्टुप्, जगती)

विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ १
अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।

प्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २
सासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
संचयः सद्गुरिर्विक्षवारित इंद्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥ ३
नानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषस स्वर्जनत् ॥ ४
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ । २७

संसार को जीतने वाले, धन, मनुष्य, भूमि, अश्व, गौ और जल आदि
को जीतने वाले, अजेय इंद्र के प्रति उनका इच्छित सोम लाओ ॥ १
सब के हराने वाले, विकराल कर्म द्वारा विनाशक, किसी के द्वारा उल्लं
न करने योग्य, संसार के रचयिता, सदा जयशील इंद्र के लिए नमस्कार
अभिवादन करो ॥ २ ॥ बहुतों को हराने वाले, भजन योग्य, विजेता,
संहारक, सोम से आह्लादित, प्रजा का पालन करने वाले इन्द्र के पुरुषा
यशगान करते हैं ॥ ३ ॥ जिनके दान की तुलना न हो सके, हिंसकों क
करने वाले, इच्छित वर्षा करने वाले, दर्शनीय, कर्मों में कभी न हार
कर्मवान् को उत्साह देने वाले, संसारव्यापी, महान् इंद्र ने उषा
को प्रकट किया ॥ ४ ॥ इंद्र की स्तुति करने वाले अङ्गिराओं ने
जल को प्रेरित करने वाले इंद्र से अपहृत गायों का मार्ग ज्ञात कि
उन्होंने इंद्र की रक्षा प्राप्ति की कामना से स्तुति और पूजा
प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे इंद्र ! हमको उत्तम धन और ख्याति
सौभाग्य-दान कर धन बढ़ाओ । हमारी वाणी में माधुर्य भरो,
... हमारे लिए सभी दिन सुख से पूर्ण हों ॥ ६ ॥

२२ सूक्त

(ऋषि–गृत्समदः । देवता–इंद्र । छंद—अष्टिः,शक्वरी)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना
सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं
सत्य इन्दुः ॥ १
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य
मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य
इन्दुः ॥ २
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः
सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य
इन्दुः ॥ ३
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ४ । २८

अत्यंत बली पूज्य इंद्र ने अपनी इच्छानुसार "त्रिकद्रु" को यव मिलाया। सोम ने इंद्र को महान् कार्य सिद्ध करने के लिए प्रसन्न किया। सत्य रूप उज्वल सोम तेजस्वी इंद्र को प्रसन्न करे ॥ १ ॥ तेजस्वी इंद्र ने "क्रिवि" को अपने बल से जीता। अपने तेज से आकाश- पृथिवी को पूर्ण किया। वे सोम के बल से वृद्धि को प्राप्त हुए। इंद्र ने सोम का एक भाग अपने उदर में धारण किया तथा शेष भागों को देवताओं के लिए दिया। यह सत्य रूप उज्वल सोम इंद्र को पुष्ट करे ॥ २ ॥ इंद्र ... सहित ... यज्ञ में प्रकट हुए। तुमने पौरुष में वृद्धि प्राप्त कर ...

विजय पाई। तुम सत्यासत्य के ज्ञाता हो। स्तोता को कर्म सिद्ध करने वाला इच्छित ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम संसार को नचाते हो। तुमने जो हितकारी कार्य पहिले किए थे वे सूर्य मंडल में प्रशंसा योग्य हुए। अपने बल से वृत्र को मार कर तुमने जल को बहाया। तुम शतकर्मा हो। अन्न और बल के ज्ञाता हो ॥ ४ ॥ [२८]

२३ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—ब्रह्मणस्पति। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥१
देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः।
उस्राइव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि।
बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥ ४
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि
ब्रह्मणस्पते ॥ ५ । २९

हे ब्रह्मणस्पते! तुम देवताओं में दिव्य और कवियों में श्रेष्ठ हो। तुम्हारा अन्न सब से उत्तम है। तुम प्रशंसा किए हुओं में सर्वश्रेष्ठ एवं स्तोत्रों के स्वामी हो। तुम हमारी स्तुति से आश्रय देने के लिए यज्ञ स्थान में विराजो। हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १ ॥ राक्षसों का वध करने वाले, ज्ञानवान ब्रह्मणस्पते! देवताओं ने तुम्हारा यज्ञ-भाग पाया है। जैसे सूर्य अपनी ज्योति से रश्मियाँ उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम स्तोत्र उत्पन्न करो ॥२॥ हे ब्रह्मणस्पते! सब ओर से निंदकों और अंधेरे को मिटा कर तुम दमकते हुए विकराल, शत्रु-नाशक, मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले दिव्य रथ पर

धारुद हुए हो ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम हविदाता को उत्तम मार्ग पर ले जाने वाले हो। उसकी पाप से रक्षा करते हो। तुम अपनी महिमा से स्तुति न करने वालों को दुःख देते और क्रोधी का नाश करते हो ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मणस्पति, तुम जिसके रक्षक हो, उसे कोई दुःख नहीं दे सकता। उसे पाप नहीं व्यापता। उसे शत्रु नहीं मार सकते, वंचक ठग नहीं सकते। तुम उसके लिए सभी हिंसा करने वालों को दूर भगा दो ॥ ५ ॥ [५]

त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥ ६
उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥ ७
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥ ८
त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९
त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १०।३

हे ब्रह्मणस्पते ! तुम अद्भुत कर्म वाले, उत्तम मार्ग पर चला कर हमारी रक्षा करते हो। तुम्हारे प्रति यज्ञ करते हुए हम मंत्र-रूप [illegible] करते हैं। हमारे प्रति कुटिलता करने वाले की बुद्धि [illegible] शीघ्र नष्ट कर दे ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मणस्पति, जो अहंकारी [illegible] हमको मारना चाहे, उसे उत्तम मार्ग से हटा कर, यज्ञ के [illegible] मार्ग सुगम कर दो ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मणस्पते, हमको विघ्नों में रक्षित करो। हमारी संतान को पालो। हम पर प्रसन्न होकर मधुर वचन बोलो। देव-नि[illegible] नष्ट करो जिससे मूर्ख व्यक्ति सुखी न हों। हम तुम्हारा आह्वान करते हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम्हारी वृद्धि होने पर हम धन पावें। जो [illegible] दूरस्थ शत्रु हम पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, उन सब [illegible]

का नाश करो ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम पवित्र हो, अभीष्ट पूर्ण करने वाले हो। तुम्हारी सहायता से हम श्रेष्ठ अन्न पायेंगे। हमको हराने की इच्छा वाला दुष्ट, शत्रु हमारा स्वामी न बन जाय। हम उत्तम स्तोत्र द्वारा पुनीत हुए अपने को उन्नत बनावें ॥ १० ॥ [३०]

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ११
अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनन्धनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँइव ॥ १३
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४
बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १५ । ३१

हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम्हारा दान अनुपम है। तुम इच्छित देते हो। युद्ध में शत्रुओं को दुःख देते और मारते हो। तुम अटूट बल वाले, उग्र एवं अहंकारियों को दबाते हो ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मणस्पते ! जो देवताओं से रहित मन वाला अहंकारी हमें मारना चाहता है, उसका शस्त्र हमारा स्पर्श न कर पावे। हम बलयुक्त हों और शत्रु के क्रोध को नष्ट करने में सामर्थ्यवान हों ॥ १२ ॥ जो ब्रह्मणस्पति युद्ध काल में नमस्कार पूर्वक बुलाए जाने के योग्य हैं, वे युद्ध में करते तथा सर्व प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। वे सब के स्वामी, हिंसक शत्रु की सेना का रथ को तोड़ने के समान विध्वंस करते हैं ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मणस्पते ! संताप देने वाले तीक्ष्ण शस्त्र से दैत्यों को पीड़ित करो। इन्होंने, तुम्हारे महाबली होने पर भी तुम्हारी निन्दा की थी। तुम अपने उसी प्राचीन पराक्रम को प्रकट कर निन्दकों को विनष्ट कर दो ॥ १४ ॥ हे यज्ञ में उत्पन्न ब्रह्मणस्पते ! आर्यों द्वारा पूजित, दैदीप्यमान

यश वाला धन सुशोभित होता है, उसी तेज युक्त धन को हमें प्रदान करो ॥ १५ ॥ [३१].

मा नः स्तेनेभ्यो ये ग्रभि दुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
श्रा देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नः साम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ १७!
तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो ग्रर्णवम् ॥ १८
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ । ३२

हे ब्रह्मणस्पति देव ! विद्रोही, शत्रु, परधनाकांक्षी, देवताओं से विमुख साम-गान से रहित राक्षसों के लिए हमको मत सौंप देना ॥ १६ ॥ हे ब्रह्मणस्पति, तुम सर्व श्रेष्ठ को त्वष्टा ने उत्पन्न किया है अतः तुम सम्पूर्ण साम का उच्चारण करने वाले हो। यज्ञ-कर्म द्वारा तुम ऋण का परिशोध और विद्रोही का संहार करते हो॥ १७ ॥ हे अङ्गिरावंशी ब्रह्मणस्पते ! पर्वतों ने गौओं को छुपा लिया। जब वह भेद खुला तब तुमने गौओं को निकाला और इन्द्र की सहायता से वृत्र द्वारा रोकी हुई जल राशि को गिराया ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मणस्पते ! तुम विश्व के नियामक हो हमारे स्तोत्र को जानते हुए हमारी संतानों को सुखी बनाओ। देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, वही कल्याण को वहन करने वाला होता है। हम पुत्र पौत्र युक्त हुए इस यज्ञ में स्तोत्र गायेंगे ॥ १६ ॥ [३२]

॥ इति षष्टमोऽध्यायः ॥

२४ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता-ब्रह्मणस्पतिः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा ।

अथा नो मीढ्वान्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥१
यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥ २
तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता ।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥ ३
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥ ४
सना ता का चिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ । १

हे ब्रह्मणस्पति देव ! तुम विश्व के अधीश्वर हो । हमारी स्तुति को स्वीकार करो । हम इस नवीन स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं । हम तुम्हारे मित्र हैं, हमको इच्छित फल दो । यह स्तोता तुम्हारा स्तवन करता है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मणस्पति देव ! तिरस्कार योग्य व्यक्तियों को तुमने अपनी महत्ता से तिरस्कृत किया । शम्बर को चीर डाला । रुके हुए जल को चलाया और जहाँ गौएं छिपी थीं, उस पर्वत में घुस गए ॥ २ ॥ देवों में श्रेष्ठ ब्रह्मणस्पति के पराक्रम से पर्वत शिथिल हो गया तथा स्थिर वृक्ष टूट पड़ा । उन्होंने गौओं को छुड़ाया और मन्त्र से वल नामक असुर को हटा दिया । सूर्य को प्रकट कर अन्धकार को दूर कर दिया ॥ ३ ॥ पाषाण के समान दृढ़ और मधुर जलों से युक्त जिस मेघ का ब्रह्मणस्पति ने भेदन किया, सूर्य की किरणों ने उससे रस-पान कर जल-मय वृष्टि को पृथिवी पर सींचा ॥ ४ ॥ मनुष्यो ! ब्रह्मणस्पति ने तुम्हारे लिए ही सनातन और अद्भुत वर्षा का द्वार खोला । उन्हीं ने मन्त्रों को दिव्यता दी और आकाश-पृथिवी को सुख बढ़ाने वाली बनाया ॥ ५ ॥ [१]

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥ ६
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आ तस्थुः कवयो महस्पथः ।

ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥ ८
स सन्नयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥ ९
विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः १०।

विद्वान अङ्गिराओं ने खोज कर "पणियों" के दुर्गों में छिपाये गए ध
को प्राप्त किया। फिर माया को देख कर पूर्व स्थान को प्राप्त हुए ॥ ६
विद्वान अङ्गिराओं ने माया को देख कर उसी ओर गमन किया। उन्हों
अग्नि को प्रज्वलित कर पर्वत पर फेंका। वे पर्वतों को जलाने वाले अ
देव पहले वहाँ नहीं थे ॥ ७ ॥ ब्रह्मणस्पति बाण फेंकने में कुशल हैं। ध
अपना इच्छित अभीष्ट धनुष द्वारा प्राप्त कर लेते हैं। उनका फेंका हुआ बा
कार्य सिद्ध करने में समर्थ होता है। वे बाण दर्शनार्थ कान से प्रकट हु
हैं ॥ ८ ॥ ब्रह्मणस्पति पुरोहित रूप हैं। वे सब पदार्थों को पृथक करते औ
मिलाते हैं। सब उनका स्तवन करते हैं। वे संग्राम में प्रकट होते हैं।
जब अन्न-धन धारण करते हैं तभी सूर्योदय होता है ॥ ९ ॥ बृहस्पति पू
देने वाले हैं। उनका धन सर्वत्र व्याप्त और श्रेष्ठ है। उन्हीं ने यह अन्न यु
सम्पूर्ण धन दिया है। यजमान और स्तोता दोनों ही इस धन का ध्यान-
रहते हुए भोग करते हैं ॥ १० ॥ [२

यो ऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥ ११
विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥ १२
उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे

स्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
ा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥१४
ग्रणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
रिषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ । ३

सब ओर रसे हुए स्तुति योग्य ब्रह्मणस्पति अपने बल से विद्वान और
बली दोनों प्रकार के मनुष्यों की रक्षा करते हैं। वे दानशील स्वभाव वाले
देवताओं के प्रतिनिधि रूप से प्रसिद्ध हैं और वे सभी जीवों के स्वामी
हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! हे ब्रह्मणस्पते ! तुम ऐश्वर्यवान् हो। सम्पूर्ण धन
तुम्हारा है। तुम्हारे उद्देश्य को कोई रोक नहीं सकता। रथ में जुते अश्वों के
अन्न के प्रति दौड़ने के समान तुम भी हमारी हवियों के प्रति दौड़े हु
आओ ॥ १२ ॥ ब्रह्मणस्पति के अश्व हमारी स्तुति श्रवण करते हैं। विद्व
अध्वर्यु सुन्दर स्तोत्र युक्ति हवि देते हैं। ब्रह्मणस्पति हमारे निकट अ
मन्त्र स्वीकार करें ॥ १३ ॥ ब्रह्मणस्पति के किसी कर्म में लगने पर उ
मंत्र फलदायक होता है। उन्होंने गौओं को निकाला, सूर्य लोक के
उनका भाग किया। वे गौएँ महान् स्तोत्र के समान पृथक् पृथक् अप
से गतिवती हुईं ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मणस्पति देव ! हम श्रेष्ठ नियम वा
युक्त धन के स्वामी बनें। तुम हमारे योद्धा पुत्र को संतान दो। तु
स्वामी हमारी स्तुति और अन्न रूप हवि की कामना करते हो
हे ब्रह्मणस्पते ! तुम विश्व के नियामक हो। हमारे स्तोत्र को स
हमारी संतानों को सुखी बनाओ। देवगण जिसकी रक्षा करते हैं,
वाहक है। पुत्र-पौत्र युक्त हुए हम इस यज्ञ में स्तवन करेंगे ॥ १

२५ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—ब्रह्मणस्पतिः। छन्द—ज

ग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य

जातेन जातमति स प्र सर्स्रते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १
वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रींरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३
तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४
तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ।

अग्नि को प्रज्वलित करने वाला यजमान शत्रु-वध में समर्थ हो स्तुति और हवि-दान द्वारा समृद्ध हो। जिस यजमान से ब्रह्मणस्पति सख्य भाव रखते हैं, वह पौत्र से भी अधिक समय तक जीवित रहता है ॥ १ ॥ यजमान अपने वीर पुत्रों द्वारा शत्रु के पुत्रों पर विजय प्राप्त करावे। वह गोधन युक्त प्रसिद्ध एवं सर्वज्ञाता है। जिसे ब्रह्मणस्पति सखा मानते हैं उसके पुत्र पौत्र भी समृद्ध होते हैं ॥ २ ॥ नदी के वेग से कगार टूटते हैं, सांड बैलों को हराता है, उसी प्रकार ब्रह्मणस्पति का सेवक अपने बल से शत्रुओं के बल को तोड़ता हुआ पराजित करता है। अग्नि की शिखा को जैसे कोई रोक नहीं सकता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति से सख्य-भाव पाए हुए यजमान को कोई नहीं रोक सकता ॥ ३ ॥ ब्रह्मणस्पति की सेवा करने वाला यजमान सर्व प्रथम गोधन पाता है। वह अपने बल से शत्रुओं को मारता है। जिसे वे सखा रूप में स्वीकार करते हैं, वह दिव्य रसास्वादन करने में समर्थ होता है ॥ ४ ॥ जिस यजमान को ब्रह्मणस्पति सखा-भाव से देखते हैं, उसकी ओर सभी रस प्रवाहित होते हैं। वह विविध सुखों का उपभोग करने वाला श्रेष्ठ भाग्य से युक्त हुआ समृद्धि प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ [४]

अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९
त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥ १० । ७

हे अर्यमा, मित्र, वरुण, तुम्हारा मार्ग सुगम और निष्कंटक है। हे आदित्यो! हमको उसी मार्ग पर चलाओ। मधुर वचन कहते हुए दिव्य सुख प्रदान करो ॥ ६ ॥ माता अदिति हमको शत्रुओं से पार लगावें। अर्यमा हमको सुगम मार्ग पर ले चलें। हम बहुत से वीरों से युक्त हुए अहिंसक रहें तथा मित्र और वरुण हमको सुख दें ॥ ७ ॥ यह आदित्य पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, मर्त्य, जन तथा सत्य लोकों के धारक हैं। यह तीन सवन युक्त यज्ञ वाले, यज्ञ से ही महिमावान हुए हैं। हे अर्यमा, मित्र और वरुण तुम्हारा कर्म प्रशंसनीय है ॥ ८ ॥ स्वर्ण के समान तेजस्वी वर्ण वाले, दीप्तिमान, वृष्टि के कारणभूत, सचेष्ट, न झुकने वाले नेत्रों से युक्त, अहिंसित, स्तुत्य आदित्यगण जगत के निमित्त अग्नि, वायु और सूर्य का रूप धारण करते हैं ॥ ९ ॥ वरुण ! तुम देवता हो या मनुष्य, सब के स्वामी हो। हमको सौ वर्ष देखने के योग्य करो, जिससे हम पूर्वजों की आयु को भोग सकें ॥ १० ॥ [७]

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्यां चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ ११
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२
शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३
अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥ १४
उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।

ा वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
श्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥ १६
ाहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
ा रायो राजन्त्सुयमादव स्यां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १७ । ८

यास देने वाले आदित्यो ! हम दाहिने, बांये, सामने, पीछे संदेह में हीं पड़ते । मैं कच्ची बुद्धि वाला, अधीर होकर भी भ्रम में न पड़ूँ । मैं म्हारे द्वारा सुगम मार्ग पर चलाया जाता हुआ आनन्द रूप तेज प्राप्त रूँ ॥ ११ ॥ यज्ञ-स्वामी आदित्यगण को हवि देने वाले यजमान को उनकी पा से पोषण सामर्थ्य प्राप्त होती है । वह धन युक्त, प्रसिद्ध एवं प्रशंसित हुआ रथ पर चढ़ कर यज्ञ स्थान को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ वह यजमान ाजवान, अहिंसित, अन्नवान, पुत्रवान हुआ श्रेष्ठ जल के निकट वास करता है । ादित्यों के आश्रय में रहने वाले को कोई शत्रु मार नहीं सकता ॥ १३ ॥ हे अदिति, मित्र, वरुण ! हम यदि तुम्हारे प्रति कोई अपराध करें तो भी उसे क्षमा करो । हे इन्द्र ! हम विस्तृत तेज और अभय प्राप्त करें । हमको अँधेरी रातें नष्ट न करें ॥ १४ ॥ आदित्यों का अनुसरण करने वाले को आकाश-पृथिवी पुष्ट करते हैं । वह भाग्यवान दिव्य रस प्राप्त कर समृद्ध होता है । युद्ध में शत्रु को हराता हुआ चलता है । संसार के आधे भाग में (पृथिवी पर) वह कर्म-साधन करने वाला होता है ॥ १५ ॥ हे पूज्य आदित्यो ! विद्रोहियों को तुमने माया पूर्वक वश किया और शत्रुओं के लिए पाश रचा, हम उस माया और पाश को घोड़े पर सवार मनुष्य के समान लाँघें और हिंसा-रहित हुए, परम सुख से सुन्दर गृह में रहें ॥१६॥ हे वरुण ! मुझे किसी ऐश्वर्यवान् व्यक्ति के समक्ष अपनी दारिद्रय-गाथा न कहनी पड़े । मुझे आवश्यक धन की कमी कभी न खटके । हम संतानयुक्त हुए इस यज्ञ में स्तुति करेंगे ॥ १७ ॥ [८]

२८ सूक्त

(ऋषि—कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदोवा । देवता—वरुण । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।

अति यो मन्द्रो यजथाय देव. सुकीर्ति भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥ १
तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२
तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा अदिते रदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥ ३
प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥ ४
वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥ ५ । ६

स्वयं प्रकाशित और अपनी महिमा से संसार के जीवों को रचने वाले वरुण के लिए यह हवि रूप अन्न है। वे अत्यन्त तेजस्वी वरुण यजमान को सुख देते हैं। मैं उनका स्तवन करता हूँ॥ १ ॥ हे वरुण! हम तुम्हारी स्तुति ध्यान और सेवा करते हुए भाग्यवान बनें। रश्मिवाली उषा के प्रकट होने पर प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करते हुए हम तेजस्वी बनें॥ २ ॥ हे विश्व के स्वामी वरुण! तुम वीरों के अधिपति की बहुत-से साधक पूजा करते हैं। हम तुम्हारे दिए हुए वास स्थान को प्राप्त करें। अहिंसक, तेजस्वी आदित्यो! हमारे प्रति मित्र भाव रखो और हमारे दोष दूर करो॥ ३ ॥ विश्व को धारण करने वाले अदिति वरुण जल की रचना करते हैं और उन्हीं की महिमा से नदियाँ बहती हैं। ये सदा चलती रहती हैं और पीछे की ओर लौटती नहीं। यह वेग सहित पृथिवी पर आती हैं॥ ४ ॥ हे वरुण! मैं पाप के बंधन में रस्सी के समान बंधा हूँ। उससे मुझे मुक्त करो। हम तुम्हारे द्वारा नदियों को जल से पूर्ण करें। हमारा बुनने का तार कभी न टूटे। हमारे यज्ञ की समृद्धि असमय में न रुके॥ ५ ॥ [६]

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६
मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर श्रीणन्ति ।

मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥ ७
नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥ ८
पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥ ९
यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥ १०
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्यां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ११ । १०

हे वरुण ! मेरा भय मिटाओ । हे सत्य से युक्त स्वामिन् ! हम प[र] कृपा करो । रस्से से गोवत्स को छुड़ाने के समान मुझे पाप से छुड़ाओ [।] तुम्हारी कृपा के बिना कोई समर्थ नहीं हो पाता ॥ ६ ॥ हे वरुण ! यज्ञ [में] अपराध करने वालों को जो शस्त्र दंडित करते हैं, वे हमको दंडित न करें [।] हम प्रकाश से वंचित न हों । हमारे हिंसक को हमसे दूर करो ॥ ७ ॥ [हे] बहुकर्मा इन्द्र ! हमने भूतकाल में तुमको नमस्कार की, वर्तमान और भवि[ष्य] काल में भी तुमको प्रणाम करेंगे । तुम हिंसा के योग्य नहीं हो । तुम [में] सभी पराक्रम युक्त कर्म पर्वत के समान निहित हैं ॥ ८ ॥ हे वरुण ! हमा[रे] पूर्वजों ने जो ऋण किया था, उससे उऋण करो । अब मैंने जो ऋण किय[ा] है, उससे भी छुड़ाओ । मुझे दूसरे से धन मांगने की आवश्यकता न पड़े [।] उषाओं को इस प्रकार प्रकट करो कि वे ऋण ही न होने दें । हम ऋण-रहि[त] उषाओं में जीवित रहें ॥ ९ ॥ हे वरुण ! मैं भयभीत हूँ । मित्रों द्वारा बताय[ी] गयी भयंकर स्वप्न की वार्ता से मेरी रक्षा करो । मैं उनमें न पड़ूँ । मु[झे] जो दस्यु मारना चाहे उससे भी- रक्षा करो ॥ १० ॥ हे वरुण ! किसी उदा[र] धनिक से मुझे अपनी दारिद्रय गाथा न सुनानी पड़े । आवश्यक धन की कम[ी] मुझे कभी न व्यापे । हम संतान वाले होकर इस यज्ञ में स्तु[ति] करेंगे ॥ ११ ॥

[१०

२६ सूक्त

(ऋषि-कूर्मो, गार्त्समदो, गृत्समदोवा । देवता—विश्वेदेवाः छन्द—त्रिष्टुप्)

घृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥ १
यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥ २
किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥ ३
हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥ ४
प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥ ५
अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥ ६
माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ७ । ११

हे व्रतयुक्त देवो ! तुम शीघ्रगामी और सब के द्वारा प्रार्थना किये जाते हो । गुप्त रहस्य को छिपाने के समान मेरा अपराध दूर फेंको । हे मित्र ! हे वरुण ! मैं तुम्हारी कल्याणकारी भावनाओं को जानता हूँ इसलिए रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूँ । हमारे स्तोत्र को सुनो ॥ १ ॥ हे देवो ! तुम अनुग्रहपूर्वक शक्ति प्रदान करो । वैरियों को हमसे हटाओ । हिंसा करने वाले शत्रुओं को हराओ । वर्तमान तथा भविष्य में भी हमको सुख दो ॥२॥ हे विश्वेदेवताओ ! हम तुम्हारा कौन-सा कार्य-साधन कर सकेंगे ? हे मित्र, वरुण, अदिति, इन्द्र और मरुतो ! हमारा कल्याण करो ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! तुम तुम्हारे मित्र हो । हम पर कृपा करो । हम तुम्हारी स्तुति

...नहीं हुई थी ॥ १ ॥ वृत्र को पुष्ट बनाने वाले की बात अदिति ने इन्द्र ... बताई । यह नदियाँ नित्य प्रति अपने मार्ग पर चलती हुई इन्द्र की ...च्छानुसार समुद्र में जाती हैं ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष में उठ कर सब पदार्थों को आच्छादित कर लेने के कारण वृत्र पर इन्द्र ने वज्र चलाया । वृष्टिप्रद मेघ से ढका हुआ वृत्र इन्द्र के सामने आया, तब तीखे शस्त्र वाले इन्द्र ने उसे परास्त किया ॥ ३ ॥ हे बृहस्पते ! वज्र के समान चमकते हुए आयुध से वृक द्वारा दस्यु-पुत्रों को मारो । हे इन्द्र ! जैसे पुरातन समय में तुमने अपने वज्र से शत्रुओं का वध किया था, वैसे ही हमारे शत्रुओं को मारो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम उन्नत हो । स्तुति करने वालों के मन्त्र से तुमने अपने जिस पाषाण-वज्र से शत्रुओं को मारा था, उसी वज्र को आकाश से नीचे की ओर चलाओ । जिस समृद्धि को पाकर हम पुत्र, पौत्र तथा गवादि धन प्राप्त कर सकें, वही हमको दो ॥ ५ ॥ [१२]

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥ ६
न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमं ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥
सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥
यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९
अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १०
तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥

हे इन्द्र ! हे सोम ! तुम जिसे मारना चाहते हो, उ... अपने साधकों को प्रेरणा दो । तुम...
...ओं के विरुद्ध...

धया इस स्थान से भय को भगा दो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! मुझे क्लेश औ
ग्लानि से बचा कर आलस्य-रहित करो। हम सोम के अभिषव का सद
समर्थन करें। तुम मेरा अभीष्ट पूर्ण करते और हब्दिव देते हो। तुम य
को जान कर अभिषव करने वाले के समक्ष गौओं सहित आते हो ॥ ७
हे सरस्वते! हमारी रक्षा करो। मरुद्गण सहित जाकर शत्रुओं पर विज
प्राप्त करो। इन्द्र ने वीरता का अहंकार करने वाले युद्धाभिलाषी "शयद्रामर्क
का वध किया था ॥ ८ ॥ बृहस्पते! जो छिपकर हमको मारना चाहता है
उसे ढूँढ कर अपने आयुध से छेद डालो। हमारे शत्रुओं पर अपने शस्त्र से
विजय प्राप्त करो। विद्रोहियों पर सब ओर से प्राणघातक वज्र का प्रहा
करो ॥ ६ ॥ हे वीर इन्द्र! शत्रु का संहार करने वाले हमारे वीर कर्मों क
सम्पादन करो। हमारे शत्रुओं ने सिर उठा लिया है। उनको मार कर उनक
धन हमको प्रदान करो ॥ १० ॥ हे मरुद्गण! सुख प्राप्ति की कामना से
नमस्कार युक्त स्तुति द्वारा हम तुम्हारे दिव्य बल का स्तवन करते हैं, जिससे
द्वारा हम वीरों वाले होकर प्रशंसा पावें और ऐश्वर्य का भोग करने में समर्थ
हों ॥ ११ ॥ [१२]

३१ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥ १
अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम्।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥
उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३
उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम्।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥ ४
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।

स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५
उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्यो जो एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६
एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥ ७ । १४

अन्न की इच्छा से वनों में घूमने वाले पक्षियों के समान हमारा रथ एक से दूसरे स्थान को प्राप्त होता है। हे मित्रावरुण ! आदित्य, रुद्र और वसुओं सहित तुम उस समय हमारे उस रथ की रक्षा करते हो (यहाँ रथ से मनुष्य के शरीर का तात्पर्य है) ॥१॥ हे समान स्नेहवाले देवताओ ! अन्न के लिए गए हुए हमारे रथ की रक्षा करो। इस रथ में जुते घोड़े पैरों से चलते हुए ऊँची भूमि पर भी चढ़ जाते हैं ॥ २ ॥ सब को देखने वाले इन्द्र मरुद्गण की सहायता से दिव्य लोक से आते हुए अपनी हिंसा रहित शरण द्वारा परम ऐश्वर्य और अन्न की प्राप्ति के साधन हमारे रथ के उपयुक्त हों ॥ ३ ॥ वे संसार द्वारा सेवा करने योग्य त्वष्टा देव, देव-नारियों सहित हमारे रथ को गति दें। इला, तेजस्वी भग, आकाश-पृथिवी, पूषा और सूर्या के स्वामी अश्विद्वय हमारे रथ का संचालन करें ॥ ४ ॥ विख्यात, तेजस्विनी, सुन्दर, परस्पर देखने वाली, प्राणियों को प्रेरणा देने वाली उषा और रात्रि हमारे रथ को चलावें। हे आकाश ! हे पृथिवी ! नवीन स्तोत्र से तुम्हारा स्तवन करता हूँ। अन्न रूप हवि देता हूँ। औषधि, सोम, पशु यह तीन प्रकार के धन मेरे पास हैं ॥ ५ ॥ हे देवताओ ! तुम हमारी स्तुति चाहते हो। हम भी तुम्हारी स्तुति चाहते हैं। अन्तरिक्ष के देवता अहि, सूर्य, त्रित, इन्द्र और सविता हमको अन्न दें। द्रुतगामी अग्नि हमारे स्तोत्र से हर्ष को प्राप्त हों ॥ ६ ॥ हे यजन योग्य विश्वेदेवाओ ! तुम स्तुत्य हो। हम तुम्हारी स्तुति करने के इच्छुक रहते हैं। अन्न और बल चाहने वाले मनुष्यों ने तुम्हारा स्तोत्र रचा। रथ के घोड़े के समान तुम्हारा बल हमको प्राप्त हो ॥७॥ [१४]

३२ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः देवता—द्यावापृथिव्यौ प्रभृति । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप)

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासत. ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वा महो दधे ॥ १
मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥ २
अहेळता मनसा श्रुष्टिमावह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३
राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४
यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५
सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६
याः सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७
या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ । १५

हे द्यावापृथिवी ! जो स्तुति करने वाला यज्ञ कर्म द्वारा तुम्हें प्रसन्न करने की कामना करे, उसको आश्रय दो। तुम्हारा अन्न सर्वश्रेष्ठ है। सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं। मैं भी श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करूँगा ॥१॥ हे इन्द्र ! दिन या रात्रि में कभी भी शत्रु की माया हमारे लिए घातक न हो। त्रास देने वाली शत्रु-सेना के वश में हमको न करना। हमारे मैत्री भाव को मत तोड़ना। हमारी मित्रता को याद रखते हुए हमको सुख देना, यही हमारी अभिलाषा है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मन में प्रसन्न हुए तुम दुग्ध देने

वाली हृष्ट पुष्ट गौ को लेकर आना। तुम्हारा आह्वान सभी करते हैं। तुम द्रुतवान एवं द्रुतभाषी हो। मैं दिन-रात तुम्हारा स्तवन करता हूँ ॥ ३ ॥ आह्वान के योग्य पूर्ण रात्रि का मैं आह्वान करता हूँ। वे शोभनीय हमारे आह्वान को सुनें। वे हमारी कामना को समझकर हमारे कर्मों को सुगठित करें और बहुधनयुक्त वीर पुत्र दें ॥ ४ ॥ हे रात्रिदेवी ! तुम अपनी कृपा से हविदाता को श्रेष्ठ धन देती हो, प्रसन्न मन से उसी कृपा सहित आओ। हे सुन्दर भाग्यवाली ! तुम विविध प्रकार से हमारी रक्षा करने वाली हो ॥५॥ हे स्थूल अन्धकारयुक्त रात्रि ! तुम देवताओं की बहिन हो। हमारे दिए हुए हव्य को ग्रहण करो और हमको सन्तान दो ॥ ६ ॥ घोर अन्धकार युक्त रात्रि शोभनीय भुजा और अंगुलियों वाली उत्तम प्राकट्य और बहु प्रजनन से युक्त हैं। लोकों की रक्षा करने वाली उस देवी के निमित्त हवि प्रदान करो ॥ ७ ॥ गुङ्गू, कुहू देव पत्नी, अन्धकार वाली रात्रि और सरस्वती देवी का आह्वान करता हूँ। मैं इन्द्राणी को उत्तम आश्रय के लिए आहूत करता हूँ तथा सुख की कामना से वरुणानी का आह्वान करता हूँ ॥ ८ ॥ [१४]

३३ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—रुद्र । छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति)

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १
त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्य स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षिणः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४
हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।

ऋद्रूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ । १६

हे मरुद्गण के जनक रुद्र ! तुम्हारा सुख-दान हमको प्राप्त हो। हम सूर्य के दर्शन से कभी वंचित न रहें। हमारे वीर पुत्र शत्रुओं से सदा जीतें। हम अनेक पुत्र-पौत्र वाले हों॥ १ ॥ हे रुद्र ! हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख देने वाली औषधि से सौ वर्ष की आयु भोगें। तुम हमारे शत्रुओं को नष्ट करो। हमारे पाप को बिल्कुल मिटा दो। शरीर में व्यापने वाले सभी रोगों को हमसे दूर करो॥ २ ॥ हे रुद्र ! तुम ऐश्वर्यवालों में श्रेष्ठ हो। तुम्हारी भुजा में वज्र रहता है। तुम अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हो। तुम हमको पाप से पार लगाओ, पाप हमसे सदा दूर रहे॥ ३ ॥ हे रुद्र ! तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो। हम नियम विरुद्ध नमस्कार एवं अमयुक्त स्तुति तथा तुम्हारे असहयोगी को आह्वान कर तुम्हें कुपित न करें। तुम श्रेष्ठ भिषक् हो अतः औषधि द्वारा हमारी संतान को बलवान बनाओ॥ ४ ॥ मैं हवियुक्त आह्वान से बुलाये जाने वाले रुद्र का स्तुति द्वारा क्रोध निवारण करूँगा। कोमल उदर, पीतवर्ण और सुन्दर नाक वाले शोभायमान रुद्र हमारी हिंसा न करें॥ ५ ॥ [१६]

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६
क स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥ ९
अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ १० । १७

मरुद्-जनक रुद्र अभीष्टवर्षी हैं। उत्तम अन्न देने की उनसे प्रार्थना

...ा हूँ । धूप से व्याकुल मनुष्य द्वारा छाया का आश्रय ग्रहण करने के
...ान, मैं भी पाप-रहित हुआ रुद्र का दिया हुआ सुख ग्रहण करूँगा । मैं
...की सेवा करूँगा ॥ ६ ॥ हे रुद्र ! तुम्हारा सुख-दान करने वाला बाहु
...हाँ है ? उसके द्वारा औषधि देते हुए सबको सुखी बनाते हो । तुम अभीष्ट
...र्पण में समर्थ हो । मेरे पाप को हटा कर मुझे क्षमा-दान दो ॥ ७ ॥ अभीष्ट
...वर्षा करने वाले पीत वर्ण और श्वेत आभायुक्त रुद्र के प्रति हम महत्व वाली
स्तुति कहते हैं । हे स्तोता ! तेजवान् रुद्र को नमस्कार द्वारा पूजो । हम
उनके गुणों का गान करते हैं ॥ ८ ॥ बहुत रूप वाले, दृढ़ शरीर वाले,
विकराल, पीतवर्ण युक्त रुद्र उज्वल तेज से प्रकाशित हैं । वे सब भुवनों के
स्वामी और भरण-पोषण करने वाले हैं । वे सदा बल से युक्त रहते हैं ॥ ९ ॥
हे धनुर्धारी पूजनीय रुद्र ! तुम अनेक रूप वाले हो । तुम पूज्य निष्क के
धारक हो । तुम अर्चनीय हो । समस्त संसार में व्याप्त हुए रक्षा करते हो ।
तुम्हारे समान बली अन्य कोई नहीं ॥ १० ॥ [१७]

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥ ११
कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२
या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥ १४
एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ । १८

स्तोताओ ! प्रसिद्ध रथ पर आरूढ़ हुए विकराल रूप वाले
संहारक युवा रुद्र का स्तवन करो । हे रुद्र ! तुम स्तुति करने पर
...ले हो । तुम्हारी सेना हमारे शत्रु का संहार करे ॥ ११ ॥ पि...

आशीर्वाद देने पर पुत्र नमस्कार करे, उसी प्रकार हे रुद्र ! तुम्हारे आने पर हम तुमको नमस्कार करते हैं। तुम अनेक धनों के देने वाले और सज्जनों के पालक हो। स्तुति किए जाने पर तुम्हारा दान चलता है ॥ १२ ॥ मरुद्गण ! तुम्हारी स्वच्छ औषधि अत्यन्त सुख के देने वाली है। जिस औषधि की हमारे पूर्वज मनु ने खोज की थी, वह भय को नष्ट करने वाली थी। उसी औषधि की हम कामना करते हैं ॥ १३ ॥ रुद्र का अस्त्र हम पर न पड़े। तेजस्वी रुद्र की भीषण क्रोध बुद्धि हमारी ओर न हो। हे सेचन समर्थ रुद्र ! अपने यजमान के प्रति धनुष की प्रत्यंचा ढीली करो। हमारे पुत्र-पौत्रों को सुख प्रदान करो ॥ १४ ॥ हे अभीष्ट-वर्षक सामर्थ्य वाले रुद्र ! तुम पीत वर्ण वाले, हमारे आह्वान को सुनते हो। तुम यह कृपा करो कि हम पर कभी क्रोध न करो। हमारी हिंसा न करो। हम पुत्र-पौत्रादि सहित इस यज्ञ में स्तुति उच्चारण करेंगे ॥ १५ ॥ [१८]

३४ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—मरुतः । छन्द जगती, त्रिष्टुप्)

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणोभृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥ २
उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥ ३
पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥ ४
इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥ ५

यह मरुद्गण जल धारा द्वारा आकाश को आच्छादित । उनका बल शत्रु को डराता है। वे पशु के समान विकराल हैं

उनके बल द्वारा व्याप्त हैं। वे अग्नि के समान प्रदीप्तियुक्त और जलमय हैं। वे गतिशील मेघों को प्रेरित कर वर्षा करते हैं ॥ १ ॥ हे उज्वल हृदय वाले मरुद्गण! रुद्र से तुम उत्पन्न हुए हो। नक्षत्रों से आकाश के सुशोभित होने के समान अपने गुणों से तुम भी सुशोभित हो। तुम शत्रु का संहार करने वाले और जल को प्रेरणा देने वाले हो। तुम मेघ में जैसे बिजली शोभा पाती हैं, वैसे ही शोभा को प्राप्त होओ ॥ २ ॥ अश्व के समान मरुद्गण विशाल क्षेत्र को सींचते हैं। वे अश्वारोही, शब्द करते हुए मेघ के निकट से वेग से गमन करते हैं। हे मरुद्गण! तुम स्वर्ण मुकुट वाले और समान क्रोध करने वाले हो। तुम वृक्षादि को कँपाते हो। तुम बिन्दु-चिन्हित मृग पर अन्न के निमित्त पहुँचते हो ॥ ३ ॥ हविदाता यजमान के लिए यह मरुद्गण मित्र के समान जल वाहक हैं। वे उदार मन वाले बिन्दु चिन्हित मृग से युक्त, अन्न से युक्त हुए सरल चाल वाले घोड़े के समान चलते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुतो! तुम समान क्रोध वाले हो। तुम्हारे आयुध चमकते हुए हैं। जिस प्रकार हंस अपने निवास पर जाता है उसी प्रकार तुम भी अत्यन्त जल-स्रोत वाले मेघों के साथ निर्विघ्न मार्ग से सोम जनित हर्ष के निमित्त गौओं सहित आओ ॥ ५ ॥ [१६]

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६
तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥ ७
यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥ ८
यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥ ९
चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० । २०

हे मरुद्गण ! स्तोत्र के प्रति आने के समान हमारे छाने हुए सोम के प्रति आओ । घोड़ी के समान गाय का नीचे का भाग पुष्ट करो । यजमान का यज्ञ अन्नयुक्त हो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमें अन्न और पुत्र दो । तुम्हारे आने पर यह तुम्हारा यशोगान किया करेगा । स्तुति करने वालों को तुम अन्न देते हो । स्तोता को उदारता, रण-कुशलता तथा अप्रतिहत शक्ति प्रदान करो ॥ ७ ॥ मरुद्गण के हृदय उज्वल हैं । उनका दान सब का कल्याण करता है । वे जब अपने रथ में अश्व संयोजन करते हैं तब बछड़े को गाय द्वारा दूध देने के समान हविदाता को अभीष्ट अन्न प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! जो हिंसक हमसे वृक के समान शत्रुता करता है, उससे रक्षा करो । उसे अपने ताप में भस्म दो । हे रुद्रो ! तुम उसके आयुधों को मार्ग में ही लक्ष्य भ्रष्ट कर दो ॥ ९ ॥ हे मरुतो ! जब तुमने "पृश्नि" के नीचे के भाग को दोहा था, तब स्तोता की निन्दा करने वाले का वध किया था । "त्रित" के द्रोहियों का भी संहार किया था । उस समय तुम्हारी सामर्थ्य सब पर विदित हुई ॥ १० ॥　　　　[२०]

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥ ११
ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥ १२
ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ १३
तां इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान्पञ्च होतृनभिष्टय आववर्तदवरांश्चक्रियावसे ॥ १४
यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ १५ । २१

हे उत्तम कर्म वाले मरुद्गण ! तुम यज्ञ में महान् [illegible] सोम के सिद्ध होने पर तुम बुलाए जाते हो । स्तोतागण स्रुक हाथ में [illegible]

श्रेष्ठ धन माँगते हैं ॥ ११ ॥ दिव्यलोक प्राप्त करने वाले अङ्गिरा रूप मरुतों प्रथम यज्ञ को ढोया। वे हमको उषा काल में यज्ञ-कर्म में लगावें। जैसे पा, रात्रि को दूर करती है, वैसे ही मरुद्गण अपनी जल सींचने वाली काशित ज्योति से अँधेरे को मिटाते हैं ॥ १२ ॥ वे रुद्रपुत्र मरुत्, विशेष वनि और अरुण वर्ण वाले हुए जल के आधारभूत मेघ में बढ़ते हैं। वे सदा प्रतिभावान रहते हुए अपनी शक्ति से जल लाते हुए अत्यन्त सुशोभित होते हैं ॥ १३ ॥ उन मरुद्गण से वरण करने योग्य धनों को माँगते हुए हम अपनी रक्षा के निमित्त प्रार्थना करते हैं। अभीष्ट सिद्ध करने के निमित्त प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान इन पाँच होताओं का त्रित द्वारा संचालित करते हैं ॥ १४ ॥ हे मरुद्गण! तुम जिस साधन से यजमान की पाप से रक्षा करते हो तथा स्तुति करने वाले को शत्रु से बचाते हो, तुम्हारा वही साधन हमको प्राप्त हो ॥ १५ ॥ [२१]

३५ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—अपान्नपात। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोपिपद्धि ॥ १
इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेमकुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २
समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३
तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिकभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिपन्त्यन्नम्।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ ५ ।

अन्न की कामना से मैं इस स्तोत्र को बोलता हूँ। शीघ्रगाम

शब्दवान् जल पौत्र अग्नि हमको प्रचुर अन्न और मनोहर रूप दें। वे स्तुति की कामना करते हैं, इसलिए मैं उनकी स्तुति करता हूँ ॥१॥ हम उनके निमित्त हार्दिक भाव से रची यह स्तुति करेंगे। वे हमारी स्तुति को भले प्रकार जानें। उन्होंने जीवों को हितकारी बल द्वारा समस्त संसार की रचना की है ॥ २ ॥ जलों के साथ जल मिलते हैं। वे सब समुद्र में वड़वानल को बढ़ाते हैं। निर्मल और पवित्र जल अपान्नपात् नामक देवता को घेरे रहता है ॥ ३ ॥ अहंकार रहित युवती, शृङ्गार से सज्जित हुई अपने तेजस्वी पति को प्राप्त होती हैं, वैसे ही ईंधन-रहित, घृत से सिंचित अग्नि धनयुक्त अन्न की प्राप्ति के लिए जलों के मध्य तेज से प्रदीप्त होते हैं ॥ ४ ॥ इला, सरस्वती, भारती यह त्रिदेवियाँ त्रास रहित अपान्नपात् देव के निमित्त अन्न धारण करती हैं। वे जलमें उत्पन्न पदार्थ को बढ़ाती हैं। अपान्नपात् (सर्व प्रथम प्रकट जल) के सार सोम का हम पान करते हैं ॥ ५ ॥　　　[२२]

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वद्रु॑हो रिपः सम्पृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६
स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ७
यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८
अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥९
हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥ १० । २३

अपान्नपात् युक्त समुद्र में उच्चैःश्रवा अश्व उत्पन्न हुआ। हे विद्वान् तुम द्रोही हिंसकों से स्तोताओं को बचाओ। अदानशील, मिथ्याचारी व्यक्ति इस देवता को प्राप्त नहीं होते ॥ ६ ॥ जो देवता अपने गृह में निवास करते हैं, उनका दोहन सरलता से किया जाता है। वे देवता वर्षा के लिए जलों

की वृद्धि करते और उत्तम अन्न सेवन करते हैं। वे जल में सशक्त हुए, यजमान को धन-दान के लिए भले प्रकार सुशोभित होते हैं ॥ ७ ॥ जो अपान्नपात् सत्य रूप, विस्तीर्ण, पवित्र, तेजस्वी, जलों में सदा समान रूप से वास करने वाले प्रकाशित होते हैं, सभी प्राणी उनके अंश मात्र हैं। फल-फूल युक्त औषधियों को उन्हीं ने उत्पन्न किया है ॥ ८ ॥ वे अपान्नपात् टेढ़ी चाल वाले मेघ के मध्य ऊँचे होकर विद्युत को धारण करते हैं। उनके यश को गाती हुईं नदियाँ बहती हैं ॥ ९ ॥ उनका रूप, आकृति और वर्ण सुवर्ण के समान हैं। उनका स्थान भी हिरण्ययुक्त है। सुवर्ण दान वाले उन्हें अन्न भेट करते हैं ॥ १० ॥ [२३]

तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥ ११
अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
सं सानु मार्जिम दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥ १२
स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥ १३
अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥ १४
अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ । २४

अपान्नपात् का किरण-रूप शरीर सुन्दर नाम वाला है। यह गंभीर होते हुए भी बढ़ते हैं। जल सहित विद्युत उन्हें अन्तरिक्ष में दीप्तियुक्त करती है। उनका अन्न, जल ही है ॥ ११ ॥ हम अपने मित्र रूप अपान्नपात् को यज्ञ, हवि-दान और नमस्कार से पूजा करेंगे। मैं उनके उच्च भाग को सजाऊँगा। मैं उन्हें काष्ठ और अन्न द्वारा धारण करता हुआ स्तोत्र उच्चारण करता हूँ ॥ १२ ॥ उन सेचन समर्थ अपान्नपात् ने जल में गर्भ प्रकट किया। वे पुत्र रूप से जल-पान करते हैं। कभी जल उनको चाटता है। वे प्रदीप्त

दिव्य अपान्नपात् नामक अग्नि पृथिवी पर अन्य रूप से रहते हैं ॥ १३ ॥ अपान्नपात् का स्थान श्रेष्ठ हैं। ये तेजस्वी और प्रदीप्त हैं। जल-समूह उनके लिए अन्न वहन करते और गतिमान रहते हुए उनको ढके रहते हैं ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम सुन्दर हो। पुत्र-प्राप्ति के लिये मैं तुम्हारे समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। यजमान के हित के लिए सुन्दर स्तोत्र लाया हूँ। देवगण का समस्त कल्याण हमको प्राप्त हो। हम पुत्र पौत्र वाले होकर इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥ १५ ॥ [२४]

३६ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्रो मधुश्च। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥ १
यज्ञैः सम्मिश्लाः पृषतीभिरृष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २
अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ४
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥ ५
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ । २

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे निमित्त दूध और रस से युक्त है। यज्ञ में विद्वज्जन इसे पत्थर से कूट कर सिद्ध करते हैं। तुम जगत के स्वामी हो। सब देवों में प्रथम तुम अग्नि में स्वाहाकार द्वारा डाले सोम का पान करो ॥ १ ॥ हे मरुतो ! तुम रथारूढ़, यज्ञ से युक्त, अश्वों से सुशोभित, रुद्र के पु

अन्तरिक्ष में अग्रणि हो। तुम कुश पर विराजमान होकर पोता से सोम को ग्रहण करो ॥ २ ॥ हे उत्तम आह्वान वाले विद्वानो ! हमारे साथ आकर कुश पर विराजमान होते हुए प्रसन्न होओ। हे त्वष्टा ! तुम सपत्नीक देवताओं के समूह के साथ अन्न सेवन कर तृप्त होओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम विद्वान हो। इस यज्ञ में देवताओं के आह्वान के लिए यजन करो। तुम देवताओं को बुलाने वाले हो, हमारे हवि की कामना से गार्हपत्यादि तीनों स्थानों को प्राप्त होओ। उत्तम वेदी को प्राप्त सोम रूप मधु को ग्रहण करो। अग्नि के रखने के स्थान से अपने अंश में सोम-पान कर तृप्त होओ ॥ ४ ॥ हे धनेश इन्द्र ! तुम प्राचीन हो। तुम जिस सोम से शत्रु को जीतने वाली शक्ति और सामर्थ्य पाते हो, वही तुम्हारे लिए छाना जाकर लाया गया है, तुम ऋत्विज के पास से सोम पीते हुए तृप्त होओ ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारे यज्ञ का सेवन करो। होतागण स्तोत्र-पाठ करते हैं। हमारा आह्वान सुनो। ऋत्विकों द्वारा सुसंस्कारित अन्न उपस्थित है, तुम सुशोभनीय इस सोम को प्रशास्ता के पास से ग्रहण करो ॥ ६ ॥ [२५

॥ इति सप्तमोध्यायः समाप्तम् ॥

३७ सूक्त

(ऋषि-गृत्समदः। देवता-द्रविणोदाः आदि। छन्द-जगती, त्रिष्टुप

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतु
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतु
अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम्।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५॥
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम्।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ
उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥ ॥१

हे धनदाता अग्ने! होता द्वारा किये गये यज्ञ में अन्न ग्रहण कर हृष्ट बनो। अध्वर्युओं। अग्नि पूर्णाहुति की कामना करते हैं, उन्हें सोम भेंट करो। यह धनदाता अग्नि मनोरथ पूर्ण करते हैं। हे अग्ने! होता के यज्ञ में ऋतुओं सहित सोम को पियो ॥ १ ॥ हमने पूर्वकाल में जिनका आह्वान किया था, अब भी उन्हीं का आह्वान करते हैं। वे दाता और सब के स्वामी आह्वान करने योग्य हैं। अध्वर्युओं ने उनके लिए मधुर सोम सिद्ध किया है। हे द्रव्यदाता अग्ने पोता! के यज्ञ में ऋतुओं सहित सोम-पान करो ॥२॥ हे द्रव्यदाता अग्ने! तुम्हारा वाहन ;अश्व तृप्त हो। हे वनस्पते! तुम दृढ एवं अहिंसक होओ। नेष्टा के यज्ञ से ऋतुओं सहित सोम पान करो ॥ ३ ॥ हे धनदाता अग्ने! जिन्होंने होता के यज्ञ में सोम पिया और पिता के यज्ञ में हृष्ट हुए, नेष्टा के यज्ञ में अन्न सेवन किया, वे सुवर्ण देने वाले ऋत्विक् के मृत्यु निवारक सोम-रस को पीवें ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय! शीघ्रगामी, इच्छित स्थान पर पहुँचाने वाला जो तुम्हारा वाहन रथ है, उसी को आज इस यज्ञ में जोड़ो। हमारी हवि को स्वादिष्ट बनाओ। तुम अन्न वाले हो, हमारे सोम-रस का पान करो ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तुम समिधा, आहुति, स्तोत्र द्वारा स्तुति प्राप्त करो। तुम हमारी हवियों की कामना वाले सब के आश्रयदाता हो। हमारी हवि की कामना वाले सब देवताओं, ऋतुओं और विश्वेदेवाओं के के साथ सोम पान करो ॥ ६ ॥ [१]

२८ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—सविता। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात्।

नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ॥
विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२॥
आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥
पुनः समव्यद्वितत वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५॥ ॥ २

संसार को वहन करने वाले प्रकाशमान सवितादेव प्रसव के निमित्त नित्यप्रति प्रकट होते हैं। यही उनका नित्य नियम है। वे स्तुति करने वालों को रत्नादि धन देते और यजमान को कल्याण का भागी बनाते हैं ॥ १ ॥ लम्बी भुजा और प्रकाश से युक्त सवितादेव संसार को आनन्दित करने के लिए हाथ फैलाते हैं। उनके निमित्त अत्यन्त पवित्र जल बहता और वायु अन्तरिक्ष में विचरता है ॥ २ ॥ जब सवितादेव द्रुतगामी किरणों द्वारा छोड़े जाते हैं, तब निरन्तर चलने वाले पथिक भी रुक जाते हैं। शत्रु के विरुद्ध आक्रमण के निमित्त जाने वालों की इच्छा भी उस समय निवृत्त हो जाती है। सविता के कर्म कर लेने पर रात्रि का आविर्भाव होता है ॥ ३ ॥ वस्त्र बुनने वाली स्त्री के समान रात्रि आलोक को छिपा लेती है। बुद्धिमानों के किए हुए कर्म भी मध्य मार्ग में रुक जाते हैं। ऋतुओं का विभाजन करने वाले सूर्य जब पुनः उदय होते हैं, तब लोग विस्तरों को त्याग देते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि-गृह में उत्पन्न तेज यजमान के अन्न-कोष्ठों में व्याप्त होता है। उषा माता सविता द्वारा प्रेरित यज्ञ का उत्तम भाग अग्नि को दे चुकी है ॥५॥ [२]

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६॥

त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७ ॥
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥
भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य सङ्गथेरयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥
अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११॥ ॥३

सविता के दिव्य व्रत की समाप्ति पर रथ में विजय की कामना करने वाला नृप वापिस लौटता है। सभी जंगम पदार्थ अपने निवास स्थान की इच्छा करते और कार्यों में लगे व्यक्ति अपने कार्य को अपूर्ण रहने पर भी घर की ओर चल देते हैं ॥ ६ ॥ हे सवितादेव! अन्तरिक्ष में तुम्हारे द्वारा स्थित जल भाग को खोज करने वाले पाते हैं। तुमने पक्षियों के निवास के लिए वृक्षों का विभाजन किया। तुम्हारे कार्य को कोई नहीं रोक सकता ॥ ७ ॥ सूर्यास्त होने पर गतिवान वरुण सभी जंगम पदार्थों को सुख देने वाले, आवश्यक और सुगम निवास देते हैं। जब सविता सब को पृथक् पृथक् कर देते हैं तब पशु-पक्षी भी अपने निवास को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, रुद्र तथा शत्रु भी जिनके व्रत को नहीं रोक सकते, उन्हीं प्रकाशमान सूर्य को, मंगल के लिए, हम नमस्कार पूर्वक बुलाते हैं ॥ ९ ॥ सब मनुष्य जिनकी स्तुति करते हैं, जो देव पत्नियों की रक्षा करते हैं, वे सूर्य हमारी रक्षा करें। भजन और ध्यान के योग्य अत्यन्त मेधावी सूर्य को हम प्रसन्न करते हैं। धन और पशु को पाकर सुरक्षित रखने की इच्छा से हम सवितादेव का सद्भाव चाहते हैं ॥ १० ॥ हे भास्कर! तुमने हमको जो विख्यात और मनोरम धन दिया है, वह दिव्यलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष में हमको मिले। जो धन स्तुति करने वालों के वंशजों के लिए कल्याणकारी है

वही धन मुझे दो। मैं तुम्हारी भले प्रकार अत्यन्त स्तुति करता हूं ॥ ११ ॥ [३]

३९ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता-अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥
शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥ ॥४

हे अश्विनीकुमारो ! पत्थर की दो शिलाओं की भांति शत्रुओं को बाधा दो। वृक्ष पर दो पक्षी के आकर बैठने के समान तुम दोनों भी यजमान के निकट विराजमान होओ। मंत्रोच्चारणकर्त्ता ब्रह्मा पद वाले ऋत्विज और दो राजदूतों की तरह तुम आह्वान करने योग्य हो ॥ १ ॥ हे अश्वियो ! तुम प्रातःकाल में चलने वाले दो रथियों के समान श्रेष्ठ, सहजन्मा के समान यमज, दो सुन्दरियों के समान कांतिवान् दम्पति के समान सहकर्मी तथा सब कर्मों के ज्ञाता हो। तुम दोनों अपने उपासक को प्राप्त होओ ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम देवताओं में प्रथम हो। तुम पशु के दो सींगों के समान बलिष्ठ और अश्वादि के खुरों के समान वेगवान हुए पधारो। तुम शत्रुओं के मारने वाले और अपने कर्म में सामर्थ्य वाले हो। जैसे दिन में चकवा चकवी आते हैं, वैसे ही हमारे समक्ष आओ ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे नौका पार लगाती है, वैसे हमको पार लगाओ। रथ के दोनों पहियों की तरह

हमको ढोकर पार करो। हमारी हिंसा से रक्षा करो और बुढ़ापे से बचाओ ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम वायुओं के समान अक्षय, नदियों के समान वेग वाले तथा मंत्रों के समान दर्शनीय हो। हमारे यहाँ पधारो। तुम दोनों हाथ और दोनों पाँवों के समान शरीर को सुख देने वाले हो। तुम हमको उत्तम धन प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥ [४]

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥
हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं स शिशीतम् ॥७॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥ ॥५

हे अश्विद्वय ! जैसे दोनों ओष्ठों से मधुर वचन निकलते हैं, वैसे मीठी बात कहो । जैसे दोनों स्तनों से दूध निकलता है वैसे जीवन को रस युक्त करो । नाक के दोनों स्वरों के समान हमारी रक्षा करो। दोनों कानों के समान हमारी स्तुति सुनो ॥ ६ ॥ हे अश्वियो ! दोनों हाथों के समान हमको बल दो। आकाश-पृथिवी के समान जल प्रदान करो। यह स्तुतियाँ तुम्हारी कामना करती हैं। जैसे धार रखने वाला यंत्र तलवार को तीक्ष्ण करता है, वैसे ही तुम स्तुतियों को तीक्ष्ण करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! गृत्समद ऋषि द्वारा बनाए गए यह स्तोत्र तुम्हारी वृद्धि करने वाले हैं। तुम सब के स्वामी और स्नेही हो। यह स्तुतियाँ तुमको प्राप्त हों। हम पुत्र-पौत्र से युक्त हुए इस यज्ञ में अत्यन्त स्तुति करेंगे ॥ ८ ॥ [५]

४० सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—सोमापूषणौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ १ ॥

वही धन मुझे दो। मैं तुम्हारी भले प्रकार अत्यन्त स्तुति करता हूँ ॥ ११ ॥ [३]

३९ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता-अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥
प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥
शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥ ॥४

हे अश्विनीकुमारो ! पत्थर की दो शिलाओं की भांति शत्रुओं को बाधा दो। वृक्ष पर दो पक्षी के आकर बैठने के समान तुम दोनों भी यजमान के निकट विराजमान होओ। मंत्रोच्चारणकर्त्ता ब्रह्मा पद वाले ऋत्विज और दो राजदूतों की तरह तुम आह्वान करने योग्य हो ॥ १ ॥ हे अश्वियो ! तुम प्रातःकाल में चलने वाले दो रथियों के समान श्रेष्ठ, सहजन्मा के समान यमज, दो सुन्दरियों के समान कांतिवान् दम्पति के समान सहकर्मी तथा सब कर्मों के ज्ञाता हो। तुम दोनों अपने उपासक को प्राप्त होओ ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम देवताओं में प्रथम हो। तुम पशु के दो सींगों के समान बलिष्ठ और अश्वादि के खुरों के समान वेगवान हुए पधारो। तुम शत्रुओं के मारने वाले और अपने कर्म में सामर्थ्य वाले हो। जैसे दिन में चकवा चकवी आते हैं, वैसे ही हमारे समक्ष आओ ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे नौका पार लगाती है, वैसे हमको पार लगाओ। रथ के दोनों पहियों की तरह

हमको ढोकर पार करो। हमारी हिंसा से रक्षा करो और बुढ़ापे से बचाओ ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम वायुओं के समान अजय, नदियों के समान वेग वाले तथा मंत्रों के समान दर्शनीय हो। हमारे यहाँ पधारो। तुम दोनों हाथ और दोनों पाँवों के समान शरीर को सुख देने वाले हो। तुम हमको उत्तम धन प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥ [४]

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥
हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥ ॥५

हे अश्विद्वय ! जैसे दोनों ओष्ठों से मधुर वचन निकलते हैं, वैसे मीठी बात कहो। जैसे दोनों स्तनों से दूध निकलता है वैसे जीवन को रस युक्त करो। नाक के दोनों स्वरों के समान हमारी रक्षा करो। दोनों कानों के समान हमारी स्तुति सुनो ॥ ६ ॥ हे अश्वियो ! दोनों हाथों के समान हमको बल दो। आकाश-पृथिवी के समान जल प्रदान करो। यह स्तुतियाँ तुम्हारी कामना करती हैं। जैसे धार रखने वाला यंत्र तलवार को तीक्ष्ण करता है, वैसे ही तुम स्तुतियों को तीक्ष्ण करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! गृत्समद ऋषि द्वारा बनाए गए यह स्तोत्र तुम्हारी वृद्धि करने वाले हैं। तुम सब के स्वामी और स्नेही हो। यह स्तुतियाँ तुमको प्राप्त हों। हम पुत्र-पौत्र से युक्त हुए इस यज्ञ में अत्यन्त स्तुति करेंगे ॥ ८ ॥ [५]

४० सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—सोमापूषणौ। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥

मुझे दो। मैं तुम्हारी भले प्रकार अत्यन्त स्तुति करता
॥ [३]

३९ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

णेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ।
णेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥
र्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे।
ना इव तन्वा शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥
ङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभिः।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक्।
हस्ताविव तन्वे शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥ ॥४

हे अश्विनीकुमारो ! पत्थर की दो शिलाओं की भांति शत्रुओं को बाधा दो। वृक्ष पर दो पक्षी के आकर बैठने के समान तुम दोनों भी यजमान के निकट विराजमान होओ। मंत्रोच्चारणकर्त्ता ब्रह्मा पद वाले ऋत्विज औ दो राजदूतों की तरह तुम आह्वान करने योग्य हो ॥ १ ॥ हे अश्वियो ! तु प्रातःकाल में चलने वाले दो रथियों के समान श्रेष्ठ, सहजन्मा के सम यमज, दो सुन्दरियों के समान कांतिवान् दम्पति के समान सहकर्मी तथा कर्मों के ज्ञाता हो। तुम दोनों अपने उपासक को प्राप्त होओ ॥ २ ॥ अश्विद्वय ! तुम देवताओं में प्रथम हो। तुम पशु के दो सींगों के स बलिष्ठ और अश्वादि के खुरों के समान वेगवान हुए पधारो। तुम शत्रु मारने वाले और अपने कर्म में सामर्थ्य वाले हो। जैसे दिन में चकवा आते हैं, वैसे ही हमारे समक्ष आओ ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जै पार लगाती है, वैसे हमको पार लगाओ। रथ के दोनों पहियों

हमको ढोकर पार करो। हमारी हिंसा से रक्षा करो और बुढ़ापे से बचाओ ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम वायुओं के समान अजय, नदियों के समान वेग वाले तथा मंत्रों के समान दर्शनीय हो। हमारे यहाँ पधारो। तुम दोनों हाथ और दोनों पाँवों के समान शरीर को सुख देने वाले हो। तुम हमको उत्तम धन प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥   [४]

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥
हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥ ॥५

हे अश्विद्वय ! जैसे दोनों ओष्ठों से मधुर वचन निकलते हैं, वैसे मीठी बात कहो । जैसे दोनों स्तनों से दूध निकलता है वैसे जीवन को रस युक्त करो । नाक के दोनों स्वरों के समान हमारी रक्षा करो। दोनों कानों के समान हमारी स्तुति सुनो ॥ ६ ॥ हे अश्वियो ! दोनों हाथों के समान हमको बल दो । आकाश-पृथिवी के समान जल प्रदान करो। यह स्तुतियाँ तुम्हारी कामना करती हैं। जैसे धार रखने वाला यंत्र तलवार को तीक्ष्ण करता है, वैसे ही तुम स्तुतियों को तीक्ष्ण करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! गृत्समद ऋषि द्वारा बनाए गए यह स्तोत्र तुम्हारी वृद्धि करने वाले हैं। तुम सब के स्वामी और स्नेही हो। यह स्तुतियाँ तुमको प्राप्त हों। हम पुत्र-पौत्र से युक्त हुए इस यज्ञ में अत्यन्त स्तुति करेंगे ॥ ८ ॥   [५]

४० सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः। देवता—सोमापूषणौ। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ २ ॥
सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥ ३ ॥
दिव्य न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥ ४
विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५॥
धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ६ ॥ ॥६

तुम धन, आकाश और पृथिवी के पिता हो। जन्म लेने के उपरां ही तुम विश्व के रक्षक बन गये। देवताओं ने तुम्हें अमरत्व देने वाला बनाया ॥ १ ॥ तेजस्वी सोम और पूषा के जन्म लेते ही देवताओं ने उनकी सेवा की। इन दोनों ने अप्रिय अन्धकार को मिटाया। इनके सहयोग से इन्द्र युवती गौओं के निम्न भाग में दूध उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥ हे इच्छित वर्षी सोम और पूषा! तुमने संसार का विभाग किया। मन से गमन सहि सातों ऋतुओं से युक्त विश्व के लिए पंच रश्मि युक्त हो। कामना वर्षी अपना जुता हुआ रथ हमारे सामने लाते हो ॥ ३ ॥ पूषा उन्नत आकाश में सोम औषधि रूप से पृथिवी पर तथा चन्द्रमा रूप से अन्तरिक्ष में वास कर हैं। तुम दोनों प्रशंसा योग्य, वरण करने योग्य, सुन्दर पशु-रूप धन प्रदा करो ॥ ४ ॥ हे सोम और पूषन्! तुममें से सोम ने सब भूतों को प्रक किया। पूषा सब संसार को देखते हैं। तुम दोनों हमारे कर्मों के रक्षक हो। तुम्हारे बल से हम शत्रु-सेना को जीत लें ॥ ५ ॥ जगत को सुखी करने वा पूषा हमारे कर्म से संतुष्ट हों। धन-सम्पन्न सोम हमको धन दें। तेजस्वि अदिति शत्रुओं से हमें बचावें। हम पुत्र-पौत्र युक्त होकर इस यज्ञ में अत्यन स्तोत्र पाठ करेंगे ॥ ६ ॥ [६]

४१ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—इन्द्रवायु, मित्रावरुणौ प्रभृति
छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक, बृहती)

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ।१।
नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ।२।
शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आ यातं पिबतं नरा ॥३॥
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ।४।
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते । ५ । ॥७

हे वायो ! अपने सहस्ररथ द्वारा, नियुतगण से युक्त होकर सोम-पान के निमित्त पधारो ॥ १ ॥ हे वायो ! नियुत्‌गण सहित पधारो । तुमने तेजयुक्त सोम का पान किया है । तुम सोम सिद्ध करने वाले के गृह को प्राप्त होते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वायो । तुम नियुत्‌गण से युक्त हुए सोम के लिए यहाँ आओ और दुग्ध मिश्रित सोम का पान करो ॥३॥ हे मित्रावरुण ! यह सोम तुम्हारे निमित्त सिद्ध किया गया है । तुम सत्य की वृद्धि करने वाले हो । हमारे आह्वान को सुनो ॥ ४ ॥ द्वेष रहित, सब के स्वामी मित्र और वरुण इस सर्व श्रेष्ठ, स्थिर तथा सहस्र स्तम्भ वाले स्थान पर विराजमान हों ॥ ५ ॥ [७]

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६
गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७
न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८
ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०

सब के सम्राट्, घृत रूप अन्न का सेवन करने वाले, दानशील, अदितिपुत्र मित्र और वरुण सरल स्वभाव वाले यजमान का कार्य करते हैं ॥ ६ ॥ अश्विनीकुमार, असत्य रहित दोनों, रुद्रद्वय यज्ञ में अग्रणि जो सोम-रस पीवेंगे, उस सोम को गौ और अश्व युक्त रथ पर यहाँ लाओ ॥७॥ धन की वर्षा करने वाले दोनों अश्विनीकुमार दूर या समीप के उस धन को जिसे मनुष्यों का शत्रु छीन नहीं सकता, हमको प्रदान करें ॥ ८ ॥ हे अश्विनी-कुमारो ! तुम हमारे निमित्त विभिन्न प्रकार का, पालन करने वाला उत्तम धन लेकर पधारो ॥ ६ ॥ वे इन्द्र अत्यन्त मेधावी हैं। वे हमको संसार के अप-मानजनक और पराजयकारी भय से छुड़ाते हैं ॥१०॥ [८]

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥११

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।

जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥१२

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥१३

तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥१४

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।

विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५ ।६

इन्द्र हमको सुख देने की इच्छा करें तो पाप हमारे पास नहीं आवेगा हमको कल्याण प्राप्त होगा ॥ ११ ॥ इन्द्र बुद्धिमान हैं। वे शत्रुओं को जीतने की सामर्थ्य रखते हैं। वे ही हमको निर्भय बनावें ॥ १२ ॥ हे विश्वे देवताओ ! यहाँ पधारो। हमारे आह्वान को सुनते हुए इस कुश पर विराज-मान होओ ॥ १३ ॥ हे विश्वेदेवताओ ! गृत्समद वंशवालों के पास अत्यन्त हर्षप्रदायक रसयुक्त पुष्टि वर्द्धक सोम तुम्हारे निमित्त है। इस बलयुक्त सुन्दर सोम-रस का पान करो ॥ १४ ॥ जिन मरुद्गण में इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जिनको पूषा दान देने वाले हैं, वे मरुद्गण हमारे आह्वान को श्रवण करें ॥१५॥ [६]

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।

या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।

यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २०

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।

इहाद्य सोमपीतये ॥२१ ।१०

माताओ, नदियों और देवियों में श्रेष्ठत्व प्राप्त सरस्वती हम धनहीनों को धनी बनावें ॥ १६ ॥ हे सरस्वती ! तुम कांतिमती हो । तुम्हारे आश्रय में अन्न का वास है । यज्ञ में सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त करो । हे सरस्वती, तुम हमको पुत्र रूप संतति दो ॥ १७ ॥ अन्न और जल से युक्त श्रेष्ठ देवी सरस्वती इस हवि को स्वीकार करें । यह हवि रमणीय है । देवगण इसे चाहते हैं । गृत्समद वंशी इस हवि को तुम्हें देते हैं ॥ १८ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम यज्ञ को सुसम्पादिका हो । इस यज्ञ में पधारो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं तथा हवि वाहक अग्निदेव का भी स्तवन करते हैं ॥ १९ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम स्वर्ग आदि की साधना सुफल करने वाले और देवताओं की ओर गमन करती हो । हमारे इस यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचाने वाली होओ ॥ २० ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम द्वेष और शत्रुता से रहित हो । इस यज्ञ में आने वाले देवगण आज सोम पीने के लिए तुम्हारे पास आकर विराजमान हों ॥ २१ ॥ [१०]

४२ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता-कपिञ्जल इवेन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।

सब के सम्राट्, घृत रूप अन्न का सेवन करने वाले, दानशील,
दितिपुत्र मित्र और वरुण सरल स्वभाव वाले यजमान का कार्य करते
॥ ६ ॥ अश्विनीकुमार, असत्य रहित दोनों, रुद्रद्वय यज्ञ में अग्रणि जो
ोम-रस पीवेंगे, उस सोम को गौ और अश्व युक्त रथ पर यहाँ लाओ ॥७॥
न की वर्षा करने वाले दोनों अश्विनीकुमार दूर या समीप के उस धन को
जिसे मनुष्यों का शत्रु छीन नहीं सकता, हमको प्रदान करें ॥ ८ ॥ हे अश्विनी-
कुमारो ! तुम हमारे निमित्त विभिन्न प्रकार का, पालन करने वाला उत्तम धन
लेकर पधारो ॥ ९ ॥ वे इन्द्र अत्यन्त मेधावी हैं। वे हमको संसार के अप-
मानजनक और पराजयकारी भय से छुड़ाते हैं ॥१०॥

[८]

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥११

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥१२

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥१३

तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥१४

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५ ।८

इन्द्र हमको सुख देने की इच्छा करें तो पाप हमारे पास नहीं आ
हमको कल्याण प्राप्त होगा ॥ ११ ॥ इन्द्र बुद्धिमान हैं। वे शत्रु ओ
जीतने की सामर्थ्य रखते हैं। वे ही हमको निर्भय बनावें ॥ १२ ॥ हे
देवताओ ! यहाँ पधारो। हमारे आह्वान को सुनते हुए इस कुश पर वि
मान होओ ॥ १३ ॥ हे विश्वेदेवताओ ! गृत्समद वंशवालों के पास
हर्षप्रदायक रसयुक्त पुष्टि वर्द्धक सोम तुम्हारे निमित्त है। इस बलयुक्त
सोम-रस का पान करो ॥ १४ ॥ जिन मरुद्गण में इन्द्र श्रेष्ठ हैं,
पूषा दान देने वाले हैं, वे मरुद्गण हमारे आह्वान को श्रवण करें ॥१५

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७
इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८
प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे । अग्नि च हव्यवाहनम् ॥१९
द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २०
आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥२१ ।१०

माताओं, नदियों और देवियों में श्रेष्ठय प्राप्त सरस्वती हम धनहीनों को धनी बनायें ॥ १६ ॥ हे सरस्वती ! तुम कांतिमती हो । तुम्हारे आश्रय में इस का वास है । यज्ञ में सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त करो । हे सरस्वती तुम हमको पुत्र रूप संतति दो ॥ १७ ॥ अन्न और जल से युक्त श्रेष्ठ देवी सरस्वती इस हवि को स्वीकार करें । यह हवि रमणीय है । देवगण इसे चाहते हैं । गृत्समद वंशी इसः हवि को तुम्हें देते हैं ॥ १८ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम यज्ञ की सुसम्पादिका हो । इस यज्ञ में पधारो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं तथा हवि वाहक अग्निदेव का भी स्तवन करते हैं ॥ १९ ॥ आकाश-पृथिवी ! तुम स्वर्ग आदि की साधना सुफल करने वाले और देवताओं की ओर गमन करती हो । हमारे इस यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचाने वाली होओ ॥ २० ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम द्वेष और शत्रुता से रहित हो । इस यज्ञ में आने वाले देवगण आज सोम पीने के लिए तुम्हारे पास आकर विराजमान हों ॥ २१ ॥ [१०]

४२ सूक्त

(ऋषि—गृत्समदः । देवता—कपिञ्जल इवेन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१
मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३ ।११

वारम्वार शब्द करने वाला, भविष्य का निर्देश करने वाला कपिञ्जल जैसे नाव को चलाता है, वैसे ही वाणी को प्रेरणा देता है। हे शकुनि, तुम मंगलप्रद होओ। किसी प्रकार की भी पराजय, कहीं से भी आकर तुमको प्राप्त न हो॥ १॥ हे शकुनि! वाज पक्षी तुम्हारी हिंसा न करे। गरुड़ भी तुमको न मारे। वह वीर, बली हाथ में धनुष बाण लेकर भी तुम्हें प्राप्त न कर सके। तुम दक्षिण दिशा में वारंवार शब्द करते हुए कल्याण सूचक हुए हमारे निमित्त प्रिय वचन बोलो ॥ २ ॥ हे शकुनि! तुम घर की दक्षिण दिशा में मधुर वाणी से कल्याण की सूचना देने वाले शब्द उच्चारण करो। दुष्ट वंचक अथवा असुर हमारे स्वामी एवं शासक न बन बैठें। पुत्र-पौत्र युक्त होकर हम इस यज्ञ में स्तोत्र उच्चारण करेंगे॥ ३॥ [११]

४३ सूक्त

(ऋषि–गृत्समदः। देवता–कपिञ्जल इवेन्द्रः। छन्द–जगती, शक्करी)

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१
उदगातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥२
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ । १२

समय-समय अन्न को खोज करने वाले पक्षिगण स्तुति करने वालों की तरह परिक्रमा करते हुए सुन्दर शब्द उच्चारण करें। साम गायकों द्वारा गायत्री छन्द और त्रिष्टुप् छन्द उच्चारण करने के समान, शकुन्तक भी दोनों प्रकार की वाणी उच्चारण करता हुआ सुनने वालों को मोहित कर लेता है ॥ १ ॥ हे शकुनि ! साम के उद्गाता जैसे साम-गान करते हैं, वैसे ही तुम भी सुन्दर गान करो। यज्ञ में ऋत्विग्गण जैसे शब्द करते हैं, तुम भी वैसा ही शब्द करो। घोड़ा अपनी स्त्री के पास जाकर जैसे शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो। तुम सब ओर हमारे लिए पुण्य बताने वाला कल्याण-सूचक शब्द सुनाओ ॥ २ ॥ हे शकुनि ! तुम्हारा शब्द सुन कर हम अपने कल्याण की सूचना प्राप्त करते हैं। जब तुम मौन धारण कर बैठते हो तब हम प्रसन्न नहीं रहते जान पड़ते। जब तुम उड़ते हो तब कर्करि के समान मधुर शब्द करते हो। हम पुत्र और पौत्रवान् हुए इस यज्ञ में रचो हुई स्तुतियों का गान करेंगे ॥३॥ [१२]

॥ द्वितीय मंडल समाप्तम् ॥

॥ अथ तृतीय मण्डलम् ॥

१ सूक्त [प्रथम अनुवाक]

(ऋषि-गाथिनो विश्वामित्रः । देवता-अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१ ॥
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीयुः ॥ २ ॥
मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥ ३ ॥
अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ ४ ॥

...ः कविभिः पवित्रैः ।
...भिरङ्क्तं रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
...चिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥ ॥१३

हे अग्ने ! यज्ञ के लिए तुमने मुझे सोम को प्रस्तुत करने को कहा, ...सलिए मुझे शक्ति दो। मैं तेजस्वी होता हुआ देवों के प्रति सोम कूटने के लिए पत्थर हाथ में लेता और स्तुति करता हूँ। तुम मेरे देह की रक्षा करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हमने उत्तम रीति से यज्ञ किया है, हमारी स्तुति बढ़े। समिधा और हवि से हम अग्नि की सेवा करें। आकाशवाली देवों ने स्तुति करने वालों को स्तोत्र बताया। स्तोता, स्तुति के योग्य अग्नि की स्तुति करना चाहते हैं ॥२॥ जो बुद्धिमान अत्यन्त बली और जन्मजात श्रेष्ठ मित्र हैं, जो आकाश में सुख को स्थापित करते हैं, उन दर्शनीय अग्निदेव को देवताओं ने नदियों के जल में से यज्ञ के लिए प्राप्त किया ॥ ३ ॥ सुशोभित धन से युक्त, उज्वल, महिमावान् प्रदीप्त अग्नि को प्रकट होते ही सप्त नदियों ने बढ़ाया। जैसे घोड़ी नवजात बालक को प्राप्त होती है, वैसे ही नदियाँ सद्यः उत्पन्न अग्नि के समीप पहुँची। अग्नि के उत्पन्न होते ही देवता... ने उन्हें प्रकाश से युक्त किया ॥ ४ ॥ उज्वल वर्णं के तेज से अन्तरिक्ष ... व्याप्त कर यह अग्नि स्तोता को तेज से पवित्र करते तथा उसे अन्न-धन देते हैं ॥ ५ ॥ [१३

वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥ ६ ॥
स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥७॥
बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८
पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥
... पर्वरिको अवयत्पीप्यानाः ।

वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये नि पाहि ॥१०॥ ॥१

अग्नि जल के सब ओर गमन करते हैं। वह जल अग्नि को नहीं बुझाता और अग्नि द्वारा नहीं सूखता। अन्तरिक्ष के पुत्र रूप अग्नि धूम्र द्वारा ढके नहीं जाते। परन्तु जल से ढके होने के कारण नग्न भी नहीं हैं। सनातन नित्य और तरुण सप्त नदियाँ अग्नि को गर्भ रूप से धारण करती हैं॥ ६ जल वर्षा के पश्चात् जल के गर्भरूप अग्नि की विभिन्न रूप वाली किरणें व्याप्त होती हैं। इस विद्युत रूप अग्नि में जल रूप गौएँ सबके निमित्त पय रूप दुग्ध देती हैं। इस सुन्दर अग्नि के माता पिता पृथिवी और आकाश हैं॥ ७ ॥ हे बल के पुत्र अग्ने! सब के द्वारा धारण करने पर तुम उज्ज्वल और वेगयुक्त रश्मियों द्वारा प्रकाशित होओ। जब अग्नि यजमान के स्तोत्र से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, तब श्रेष्ठ जल की वर्षा होती है॥ ८॥ प्रकट होते ही अग्नि ने अन्तरिक्ष के निचले स्तन, जल प्रदेश को जान लिया और सूर्य के निमित्त वज्र को गिराया। यह अग्नि उत्तम कर्म वाले वायु आदि बांधव के साथ चलते और अन्तरिक्ष के संतानभूत जलों के साथ रहते हैं। उस अग्नि को कोई नहीं जान सकता॥ ९॥ अग्नि पिता-माता की गोद को अकेले ही भर देते हैं। वही बढ़े हुए अग्नि औषधियों को खाते हैं। समान रूप से पति-पत्नी के समान आकाश पृथिवी अग्नि के पालनकर्त्ता हैं। हे अग्ने! तुम आकाश और पृथिवी की रक्षा करो॥१०॥　　　　[१४]

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः।
उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम्।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३
बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१

ईळे विच त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५ ।१५

यह महान अग्नि विस्तार वाले अन्तरिक्ष में बढ़ते हैं। वहाँ बहुत अन्न वाला जल उनको भले प्रकार बढ़ाता है। जल के गर्भ स्थान अन्तरिक्ष में वास करने वाले अग्नि अपनी बहन रूप नदियों के जल में शांति पूर्वक रहते हैं ॥ ११ ॥ जो अग्नि संसार के पिता, जल से उत्पन्न, मनुष्यों की रक्षा करने वाले, शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, युद्ध में अपनी सेना की रक्षा करने वाले, सब के देखने योग्य तथा अपने तेज से प्रकाशित हैं, उन्होंने यजमान के लिए पोषण-सामर्थ्य दी ॥ १२ ॥ सुन्दर अरणि ने जल और औषधियों के गर्भभूत तेजस्वी अग्नि को उत्पन्न किया। सब देवता स्तुति के योग्य, बढ़े हुए, तुरन्त उत्पन्न अग्नि के समीप स्तुतियुक्त हुए पहुँचे और अग्नि की उन्होंने सेवा की ॥ १३ ॥ विद्युत के समान अत्यन्त कांतियुक्त सूर्य अत्यन्त गंभीर समुद्र में अमृत मंथन कर गुहा के समान अपने घर अन्तरिक्ष में बढ़ते हुए प्रकाशमान अग्नि का आश्रय प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥ मैं यजमान हवियों सहित तुम्हारी स्तुति करता हूँ। धर्म कार्य में बुद्धि प्रेरणा के निमित्त तुम्हारी मैत्री के लिए याचना करता हूँ। हे अग्ने! देवताओं सहित मुझ स्तुति करने वाले के पशु आदि की तथा मेरी, दमन करने योग्य सेना से रक्षा करो ॥ १५ ॥ [१९].

उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥१६
आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान्।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७
नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन्।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन्।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः॥१९

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०
जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१
इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३ ।१६

हे नीतिवन्त अग्ने ! हम तुम्हारी शरण माँगते हैं। हम सब धनों को प्राप्त करने वाला कर्म करते हुए हवि देते हैं। हम तुमको पुष्टिदायक हवि देकर देव विरोधी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं से प्रशंसित उनके दूत हो। तुम सब स्तोत्रों को जानते हो। तुम मनुष्यों को बसाने वाले रथी हो। तुम देवताओं का कार्य साधन करने के लिए उनका अनुसरण करते हो ॥ १७ ॥ राजा के समान अग्नि यज्ञ-साधन करते हुए साधक के घर में विराजमान होते हैं। वे सब स्तोत्रों के ज्ञाता हैं। अग्नि का शरीर घृत से प्रदीप्त होता है। वे अग्नि सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं ॥ १८ ॥ गमन करने के इच्छुक अग्नि कल्याणमयी मैत्री और महती रक्षा से युक्त हुए हमारे पास पधारो और हमको अधिक संख्या में, सुखदायक सुशोभित प्रशंसा योग्य धन प्रदान करो ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! तुम पुरातन हो। तुम्हारे प्रति हम प्राचीन और नवीन स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। सब प्राणियों में व्याप्त अग्नि मनुष्यों में वास करते हैं। उन अभीष्टवर्षी अग्नि के प्रति ही हमने यह स्तुति की है ॥ २० ॥ सब मनुष्यों में रमे हुए, सब प्राणियों में व्याप्त अग्नि को विश्वामित्र ने चैतन्य किया। हम उनकी कृपा से यज्ञ योग्य अग्नि के प्रति उत्तम भाव रखें ॥ २१ ॥ हे अग्ने ! तुम बलवान् और उत्तम कर्म वाले हो। तुम हमारे यज्ञ को देवों के निकट पहुँचाओ। हे देवताओं का आह्वान करने वाले अग्निदेव ! हमको अन्न और धन प्रदान [illegible]
हे अग्ने ! स्तुति करने वाले को अनेक कर्मों की साधक तथा

म दो। हमारे वंश की वृद्धि करने वाला और संतान को जन्म देने
ला पुत्र दो। हे अग्ने ! हम पर कृपा करो ॥२३॥ [१६]

२ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः। देवता-अग्निर्वैश्वानरः। छन्द-जगती)

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१
स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः।
हव्यवाळग्निरजश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२
क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम्।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५ ।१७

यज्ञ के बढ़ाने वाले वैश्वानर देव के प्रति हम शुद्ध घृत के समान सु
देने वाली स्तुति करेंगे। जैसे कुठार से रथ को ठीक किया जाता है, वैसे
यजमान और ऋत्विक् देवताओं का आह्वान करने वाले गार्हपत्य और आ
नीय रूपों वाले अग्नि को संस्कारित करते हैं ॥ १ ॥ वे अग्नि प्रकट
ही आकाश पृथिवी को प्रकाशमान करते हैं। वे माता-पिता के प्रेम-
पुत्र हैं। हवि वहन करने वाले, अजर, अहिंसित, अन्न देने वाले, कांति
अग्नि मनुष्यों में अतिथि के समान पूजनीय हैं ॥ २ ॥ मेधावी जन
से बचाने वाले बल से अग्नि को यज्ञ में प्रकट करते हैं। जैसे बोझा ढोने
अश्व की प्रशंसा होती है, वैसे ही मैं अन्न की कामना से कांतियुक्त अ
स्तवन करता हूँ ॥ ३ ॥ स्तुति के योग्य वैश्वानर के उत्तम, प्रशंसनीय
की अभिलाषा से भृगुओं की इच्छा पूर्ण करने वाले, इच्छा कर
मेधावी, दिव्य तेज से सुशोभित अग्नि की सेवा करता हूँ ॥ ४ ॥

कामना वाले ऋत्विगण कुश को बिछाते और स्रुक को उठा कर अन्न देने वाले, तेजस्वी, हितकारी, दुःखत्राता तथा यज्ञ-साधक अग्नि का स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥ [१७]

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीरृतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥८

तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१० १८

पवित्र तेज वाले देव-आह्वाक अग्निदेव ! तुम्हारी सेवा करने के इच्छुक यजमान यज्ञ में कुश बिछाकर तुम्हारे यज्ञ स्थल को सजाते हैं। उनके लिए धन प्रदान करो ॥ ६ ॥ अग्नि ने आकाश और पृथिवी को पूर्ण किया। यजमानों ने उन तुरन्त प्रकट अग्नि को धारण किया। सर्व व्यापक, अन्न देने वाले अग्नि देव घोड़े के समान अन्न प्राप्त कराने को प्रदीप्त किये जाते हैं ॥७॥ यज्ञ के स्वामी दर्शनीय अग्नि देवताओं को प्राप्त हुए। वे हवि देने वाले, सुन्दर यज्ञ से युक्त तथा यजमान का हित करने वाले हैं। उन अग्नि को नमस्कार पूर्वक सेवा करो ॥ ८ ॥ अमरत्व प्राप्त देवताओं ने अग्नि की इच्छा से त्रिभ्यापी अग्नि को पार्थिव, विद्युत और सूर्य रूप दिये। उन्होंने उन तीनों में से संसार के पालन कर्त्ता पार्थिव अग्नि को पृथिवी पर तथा शेष दोनों को आकाश में स्थापित किया ॥ ९ ॥ धन की कामना वाले मनुष्यों ने अपने स्वामी अग्निदेव को तलवार के समान तीक्ष्ण करने के लिए संस्कारित

किया। वे ऊँचे नीचे स्थलों को व्याप्त कर चलते और सब लोकों में सब जीवों को धारण करते हैं ॥ १० ॥ [१८]

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥ ११
वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥ १२
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥ १४
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम्।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥ १५ । १६

सद्यःजात वैश्वानर अग्नि अभीष्टवर्षक हैं। वे सिंह के समान गर्जते हुए बढ़ते हैं। वे अविनाशी अत्यन्त तेज वाले हैं। यजमान को उपभोग्य वस्तु प्रदान करते हैं॥ ११ ॥ स्तोताओं से स्तुत्य अग्नि अन्तरिक्ष की पीठ सूर्य लोक पर चढ़ते हैं। प्राचीन ऋषियों के समान चैतन्य होकर यजमान को धन देते हुए वे सूर्य रूप से घूमते हैं॥ १२ ॥ महाबली, मेधावी, स्तुत्य, आकाशवासी जिन अग्नि को वायु ने आकाशसे लाकर पृथिवी पर प्रतिष्ठित किया, उन्हीं विभिन्न गति वाले, पीत वर्ण तेजस्वी अग्नि से हम नवीन धन की याचना करते हैं ॥ १३ ॥ यज्ञ में प्रेरित करने वाले, ज्ञान के कारणभूत, प्रदीप्त, ध्वज रूप, सूर्य रूप से अवस्थित, उषाकाल में चैतन्य होने वाले अग्नि की स्तोत्र द्वारा पूजा करता हूँ ॥ १४ ॥ स्तुति के योग्य, देवताओं का आह्वान करने वाले, पवित्र, सीधे, श्रेष्ठ सर्वदाता, दर्शनीय, विभिन्न वर्ण वाले, मनुष्यों के लिए कल्याणकारी अग्निदेव से मैं धन माँगता हूँ ॥ १५॥ [१६]

३ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः। देवता–वैश्वानरोऽग्निः। छन्द–जगती, पंक्ति,)

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत्॥ १
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः॥ २
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः।
अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके॥ ३
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम्।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः॥ ४
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम्।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः॥ ५

सन्मार्ग प्राप्ति के निमित्त बुद्धिमान स्तोता अत्यन्त बली वैश्वानर के प्रति यज्ञ में सुन्दर स्तुति करते हैं। अविनाशी अग्निदेव हवि वहन करते हुए देवताओं की सेवा करते हैं। इस पुरातन यज्ञ को कोई अपविघ्न नहीं कर सकता॥ १॥ प्रकाशमान होता अग्नि देवताओं के दूत हुए आकाश-पृथिवी के मध्य गमन करते हैं। देवताओं द्वारा प्रेरित बुद्धिमान अग्नि स्तोता के समक्ष स्थापित हुए यज्ञशाला को सुशोभित करते हैं॥ २॥ यज्ञों को बताने वाले, यज्ञ-कार्य के साधन करने वाले अग्नि को विद्वज्जन अपने कर्म द्वारा पूजते हैं। स्तोतागण अपने कर्मों को जिन अग्नि को भेंट करते हैं, उन्हीं अग्नि में यजमान की कामनाएं आश्रय प्राप्त करती हैं॥ ३॥ यज्ञ-पिता, स्तुति करने वालों को बल देने वाले, ज्ञान के कारण तथा कर्मों के मापक अग्नि अपने पार्थिव और विद्युतादि रूप से लोकों में व्याप्त होते हुए, यजमान द्वारा पूजित होते हैं॥ ४॥ सब को आनन्द देने वाले, सुवर्णमय रथ वाले, पीतवर्ण वाले, जल में वास करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, द्रुतगामी, बली, पोषक, प्रदीप्त वैश्वानर अग्नि को देवताओं ने स्थापित किया॥५॥ [२०]

किया। वे ऊँचे नीचे स्थलों को व्याप्त कर चलते और सब लोकों में सब जीवों को धारण करते हैं ॥ १० ॥ [१८]

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥ ११
वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥ १२
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥ १४
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥ १५ । १६

सद्यःजात वैश्वानर अग्नि अभीष्टवर्षक हैं। वे सिंह के समान गर्जते हुए बढ़ते हैं। वे अविनाशी अत्यन्त तेज वाले हैं। यजमान को उपभोग्य वस्तु प्रदान करते हैं ॥ ११ ॥ स्तोताओं से स्तुत्य अग्नि अन्तरिक्ष की पीठ सूर्य लोक पर चढ़ते हैं। प्राचीन ऋषियों के समान चैतन्य होकर यजमान को धन देते हुए वे सूर्य रूप से घूमते हैं ॥ १२ ॥ महाबली, मेधावी, स्तुत्य, आकाशवासी जिन अग्नि को वायु ने आकाशसे लाकर पृथिवी पर प्रतिष्ठित किया, उन्हीं विभिन्न गति वाले, पीत वर्ण तेजस्वी अग्नि से हम नवीन धन की याचना करते हैं ॥ १३ ॥ यज्ञ में प्रेरित करने वाले, ज्ञान के कारणभूत, प्रदीप्त, ध्वज रूप, सूर्य रूप से अवस्थित, उषाकाल में चैतन्य होने वाले अग्नि की स्तोत्र द्वारा पूजा करता हूँ ॥ १४ ॥ स्तुति के योग्य, देवताओं का आह्वान करने वाले, पवित्र, सीधे, श्रेष्ठ सर्वदाता, दर्शनीय, विभिन्न वर्ण वाले, मनुष्यों के लिए कल्याणकारी अग्निदेव से मैं धन माँगता हूँ ॥ १५॥ [१६]

जाते हो ॥ २० ॥ वैश्वानर अग्नि की दुःख नाशिनी क्रिया द्वारा महान् धन प्राप्त होता है। वे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की कामना से यजमानों को धन दिया करते हैं। वे पौरषयुक्त अग्नि आकाश-पृथिवी रूप पिता माता का सेवन करते हुए प्रकट होते हैं ॥२१॥ [२१]

४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—आप्रियः छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप् ।)

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १
यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥ २
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥ ३
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥ ४
सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभी मं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥ ५ । २२

हे अग्ने! तुम समृद्धि को प्राप्त होओ, अनुकूल मन से ऐश्वर्य प्राप्त करो। तुम द्रुतगति वाले हो। अपने तेज से हम पर धन-युक्त दृष्टि करो। देवताओं को इस यज्ञ में लाओ, क्योंकि तुम देवताओं के मित्र हो। उत्तम मन से अपने मित्र देवताओं का यजन करो ॥ १ ॥ वरुण, मित्र और अग्नि जिन का प्रतिदिन तीनों समय यज्ञ करते हैं वे तनूनपात अग्नि हमारे जल की कामना वाले यज्ञ का फल वर्षा के रूप में दें ॥ २ ॥ देवों का आह्वान करने वाले अग्नि को सब की प्रिय स्तुति प्राप्त हो। सुख उत्पन्न करने के लिए इला अभीष्ट पूरक पूज्य अग्नि के पास पहुँचे। यज्ञ-कुशल अग्निदेव हमारे निमित्त यजन करें ॥ ३ ॥ यज्ञ में अग्नि के लिए एक उन्नत मार्ग निश्चित है। उज्ज्वल हवि ऊपर उठती है। प्रकाशमान यज्ञशाला के नाभि

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥ ६
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥ ७
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८
विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥ ६
वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ।
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥ ११ । २

जो यज्ञ साधन करने वाले देवताओं और ऋत्विजों की संग विविध यज्ञ कर्मों को सम्पादित करते हैं। जो द्रुतगामी, दानी, अग्रणि शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, वे अग्नि आकाश-पृथिवी के मध्य गमन हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! हमको सुन्दर पुत्र और दीर्घायु प्राप्त कराने वे देवताओं का स्तवन करो। हवि द्वारा उन्हें प्रसन्न करो। अन्न के वृष्टि माँगो। तुम सदा चैतन्य रहते हो। इस यजमान को अन्न कराओ। तुम श्रेष्ठ कर्म वाले देवताओं के मित्र हो ॥ ७ ॥ मनु स्वामी, अतिथि रूप, महान्, बुद्धि-प्रेरक, ऋत्विजों के स्नेही, यज्ञ क करने वाले, वेगवान् अग्नि की श्रेष्ठ पुरुष नमस्कार पूर्वक पू हैं ॥ ८ ॥ प्रकाशमान्, सुन्दर, रथ युक्त अग्नि देव शक्ति से अपनी व्याप्त करते हैं। उन वहुतों के पालनकर्त्ता अग्नि के सब कर्मों को हम द्वारा प्रदीप्त करेंगे ॥ ६ ॥ हे मेधावी वैश्वानर अग्ने! तुम अपने द्वारा सर्वज्ञ बने, मैं तुम्हारे उसी तेज को प्रणाम करता हूँ। तुम ही आकाश पृथिवी आदि सब लोकों में व्याप्त होते हुए जीव म

वैसा ही पुष्ट वीर्य हमको प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे वनस्पते ! तुम देवों को यहाँ ले आओ । प्राणी को संस्कारित करने वाले अग्निदेव देवाह्वाक यज्ञ करें, क्योंकि वे ही देवताओं के ज्ञाता हैं ॥ १० ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हुये इन्द्रादि देवताओं के सहित एक रथ पर चढ़ कर शीघ्रता से यहाँ आओ । पुत्रों सहित अदिति हमारे कुश के आसन पर विराजमान हों । अग्नि रूप से स्वाहाकार युक्त हुए देवगण तृप्त हों ॥ ११ ॥   [२३]

५ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १
प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीरृतस्य सन्दृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥ ३
मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥ ४
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ ५ । २४

अग्नि उषा के ज्ञाता हैं । वे विद्वानों का अनुसरण करने के लिए चैतन्य होते हैं । वे अत्यन्त तेजस्वी हैं । देवताओं की कामना करने वाले व्यक्ति उन्हें प्रज्वलित करते हैं तब वे ज्ञान का द्वार खोलते हैं ॥ १ ॥ पूजनीय अग्नि स्तुति करने वालों के स्तोत्र, वाणी और मन्त्र से बढ़ते हैं । वे अग्नि देवताओं के दूत रूप से प्रदीप्त होने के अभिलाषी हुए उषा काल में प्रज्वलित होते हैं ॥ २ ॥ यजमानों के मित्र रूप अग्नि यज्ञ द्वारा अभीष्ट फल देने के निमित्त मनुष्यों में विराजमान होते हैं । वे स्पृहणीय अग्नि यज्ञ के योग्य हैं, वे उच्च पद वाले हैं । वे मेधावी अग्नि स्तुति करने वालों की स्तुति

पृथिवी पर कुश बिछावेंगे ॥ ४ ॥
स्थित हैं। हम देवताओं के लिए पृथिवी पर कुश बिछावेंगे ॥ ४ ॥
प्रसन्न करने वाले सात देवता जल द्वारा यज्ञ को प्राप्त होते हैं।
त मन वाले, याचना किये जाने पर अग्निरूप द्वार से हमारे यज्ञ में
प्रकट हों ॥ ५ ॥ [२२]

न्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।
नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥ ६
ा होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
तं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७
ा भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
रस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु । ८
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १०
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ । २३

प्रकाशमान दिवस और रात्रि परस्पर मुसकाते हुए विकसित हों। मित्र, वरुण और इन्द्र जिस रूप से हम पर कृपा करते हैं, वे तेजस्वी उसी रूप को हमारे निमित्त धारण करें ॥ ६ ॥ दिव्य और मुख्य अग्नि रूप दोनों होताओं का मैं स्तवन करता हूँ। यज्ञ की इच्छा से अन्न चाहने वाले ऋत्विक् हवि देकर अग्नि को बढ़ाते हैं। व्रत के पालन करने वाले ऋत्विक् यज्ञ रूप अग्नि की प्रशंसा करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य की दीप्ति के साथ अ... रूप भारती प्राप्त हों। देवताओं के साथ मनुष्यों को इला प्राप्त हों। ते... विद्वानों के साथ सरस्वती भी यहाँ आवें। यह तीनों देवियां कुश के आ... पर विराजमान हों ॥ ८ ॥ हे त्वष्टा ! जिस वीर्य से कर्मवान, वीर, सोम... करने वाला, देवताओं का पूजक पुत्र उत्पन्न हो सके, तुम प्रसन्न...

समान सुशोभित औषधियाँ जल द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती और फलयुक्त होती हैं। पृथिवी में आकाश तक उठते हुए अग्नि हमारे रक्षक हों ॥ ८ ॥ हमारे द्वारा प्रदीप्त और स्तुत्य अग्नि ने पृथिवी की नाभि पर प्रतिष्ठित हो अन्तरिक्ष को प्रकाशमान किया। वे अग्नि सब के मित्र, स्तुत्य और अरणियों द्वारा प्रदीप्त होते हैं। वे देवताओं के दूत होकर हमारे यज्ञ में उन्हें बुलावें ॥ ९ ॥ जब मातरिश्वा ने भृगुओं के निमित्त गुफा में विराजमान हवि-वाहक अग्नि को चैतन्य किया तब तेजस्वी-श्रेष्ठ अग्नि ने अपने तेज से सूर्य लोक को भी स्तब्ध कर दिया ॥ १० ॥ हे अग्ने! तुम अपने स्तोता को अनेक कर्मों के फल रूप गवादि धन युक्त भूमि सदा देते रहो। हमारे वंश की वृद्धि करने वाला संतानोत्पादन में समर्थ पुत्र हो। यह सब तुम्हारी कृपा से ही होगा ॥ ११ ॥ [२५]

६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥ २
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४
व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥ ५ । २६

हे यज्ञ करने वालो ! तुम सोम की कामना करते हो। मंत्र से प्रेरणा पाकर देवोपासना में साधन रूप स्रुक को यहाँ लाओ। जिसे आह्वनीय अग्नि की दक्षिण दिशा में ले जाते हैं, जिसका अग्रभाग पूर्व में रहता है,

के पात्र हैं ॥ ३ ॥ जब अग्नि प्रवृद्ध होते हैं, तब वे सखा भाव से युक्त होते हैं, वे मित्र होता और सब को जानने वाले वरुण हैं। वे मित्रभाव वाले दानमय स्वभाव युक्त अध्वर्यु और प्रेरणा देने वाले वायु रूप हैं। वे नदियों और पर्वतों से भी सख्य भाव रखते हैं ॥ ४ ॥ सर्वव्यापक अग्नि पृथिवी के प्रिय स्थान के रक्षक हैं। वे सूर्य के घूमने के स्थान की रक्षा करते हैं। अंतरिक्ष में मरुद्गण का पालन करते और देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ को पुष्ट करते हैं ॥५॥ [२४]

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६
आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मातरा नव्यसी कः ॥ ७
सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥ ८
उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥ ९
उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वो ग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥ १०
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ । २५

सब ज्ञानों के ज्ञाता महान् अग्नि प्रशंसा योग्य रमणीय जल को उत्पन्न करने वाले हैं। अग्नि के सुप्त रहने पर भी उनका रूप चमकता रहता है। वे अग्नि सावधानी से अपने रूप की रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥ स्तुति किए हुए, प्रकाशयुक्त अपने स्थान से प्रेम करने वाले अग्निदेव विराजमान हुए। वे प्रकाशमान, तेजस्वी, पवित्र अग्नि आकाश-पृथिवी रूप अपने पिता-माता को अभिनवता प्रदान करते हैं ॥ ७ ॥ अग्नि अपने जन्म से औषधियों द्वारा धारण किये जाते हैं। उस समय मार्ग में बहते हुए जल के

समान सुशोभित औषधियाँ जल द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती और फलयुक्त होती हैं। पृथिवी से आकाश तक उठते हुए अग्नि हमारे रक्षक हों ॥ ८ ॥ हमारे द्वारा प्रदीप्त और स्तुत्य अग्नि ने पृथिवी की नाभि पर प्रतिष्ठित हो अन्तरिक्ष को प्रकाशमान किया। वे अग्नि मत्र के मित्र, स्तुत्य और अरणियों द्वारा प्रदीप्त होते हैं। वे देवताओं के दूत होकर हमारे यज्ञ में उन्हें बुलावें ॥ ६ ॥ जब मातरिश्वा ने भृगुओं के निमित्त गुफा में विराजमान हवि-वाहक अग्नि को चैतन्य किया तब तेजस्वी-श्रेष्ठ अग्नि ने अपने तेज से सूर्य लोक को भी स्तब्ध कर दिया ॥ १० ॥ हे अग्ने! तुम अपने स्तोता को अनेक कर्मों के फल रूप गवादि धन युक्त भूमि सदा देते रहो। हमारे वंश की वृद्धि करने वाला संतानोत्पादन में समर्थ पुत्र हो। यह सब तुम्हारी कृपा से ही होगा ॥ ११ ॥ [२१]

६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति।)

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीची नयत देवयन्तः।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥ २
द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय।
यदी विशो मानुपीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४
व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥ ५ । २६

हे यज्ञ करने वालो! तुम सोम की कामना करते हो। मंत्र से प्रेरणा पाकर देवोपासना में साधन रूप स्रुक को यहाँ लाओ। जिसे आहवनीय अग्नि की दक्षिण दिशा में ले जाते हैं, जिसका अग्रभाग पूर्व में रहता है,

घृत युक्त स्रुक अग्नि के निमित्त अन्न धारण करता है ॥ १ ॥ हे अग्ने !
प्रकट होते ही आकाश-पृथिवी को पूर्ण करो। यज्ञ के योग्य, महिमा से
हुए तुम अन्तरिक्ष और पृथिवी पर उठो और तुम्हारे अंश भूत पार्थिव
ग्नि की सप्त जिह्वायें पूजी जायें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम होता हो। जब
वताओं की कामना वाले हविदाता मनुष्य तुम्हारे तेज की प्रशंसा करते हैं,
त्र अन्तरिक्ष, पृथिवी और देवता, यज्ञ कार्य को सफल करने के लिए तुम्हें
पूजते हैं ॥ ३ ॥ यजमानों के मित्र महान् अग्नि आकाश और पृथिवी के
मध्यस्थ हुए विराजमान हैं। समान प्रीति वाली, अजर, अहिंसिता आकाश-
पृथिवी गतिवान अग्नि के निमित्त दूध देने वाली गाय के समान हैं ॥ ४ ॥
हे अग्ने ! तुम सर्व श्रेष्ठ हो। तुम महान् कर्म वाले हो। तुमने आकाश-
पृथिवी को यज्ञ-कर्म द्वारा विस्तार दिया है। तुम दौत्य कर्म में निपुण हो।
तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले, जन्म से ही यजमान के पूज्य बनते
हो ॥ ५ ॥ [२६]

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ६
दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७
उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥ ८
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥ १०
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ । २

... हे अग्ने ! तुम सुन्दर बाल वाले, रस्सी से युक्त,

अश्वों को यज्ञ के सामने जोड़ो। फिर सब देवताओं को बुलाओ। तुम सब को यज्ञ-मय बनाओ ॥ ६ ॥ हे अग्ने! जब तुम जंगल में जल को सुखाते हो तब तुम्हारा प्रकाश -सूर्य से भी अधिक प्रतीत होता है। तुम सुन्दर कांतिमती उषा के पीछे प्रकाशित होते हो। स्तोतागण, स्तुति के पात्र होता रूप अग्नि का स्तवन करते हैं ॥ ७ ॥ जो देवगण विस्तृत अन्तरिक्ष में सुखी हैं, जो देवता प्रकाशमान आकाश में वास करते हैं, जो 'उम' संज्ञक पितर-गण आह्वान पर आते हैं, वे सब रथ-युक्त अग्नि के अश्व रूप हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने! उन सभी देवताओं के सहित रथारूढ़ हुए हमारे पास आओ। तुम्हारे अश्व तुम्हें यहाँ लाने में समर्थ हैं। तेंतीस देवताओं को पत्नियों सहित अन्न के निमित्त यहाँ लाकर सोम द्वारा बलिष्ट बनाओ ॥ ९ ॥ विशाल आकाश और पृथिवी सभी यज्ञों में जिन अग्निदेव की समृद्धि के निमित्त स्तुति करती हैं, वे देवताओं के होता, जल सम्पन्न, सुन्दर रूप वाली, सत्य रूपिणी आकाश-पृथिवी, यज्ञ के समान, सत्य द्वारा प्रकट अग्नि का समर्थन करती हैं ॥ १० ॥ हे अग्ने! तुम स्तुति करने वाले को विविध कर्मों की कारणभूत गौयुक्त भूमि सदा प्रदान करो। हम को वंश की वृद्धि करने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र दो। यही तुम्हारा अनुग्रह होना चाहिए ॥ ११ ॥ [२०]

॥ इति द्वितीयोऽष्टकः समाप्तम् ॥

तृतीय अष्टक

प्रथम अध्याय

७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः।
रिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १
दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥ २
आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान् रयिविद्रयीणाम्।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥ ३
महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥ ५। १

उज्वल पीठ वाले सर्व धारक अग्नि की लपटें उत्तमता से उन्नत होती हैं, वे आकाश-पृथिवी रूप पिता माता की सब दिशाओं में व्याप्त होती हैं। आकाश-पृथिवी रूप माता-पिता सब ओर विस्तीर्ण हुई यज्ञ के निमित्त अग्नि को लम्बी आयु प्रदान करते हैं ॥ १ ॥ आकाशवासी गौ ही अग्नि के अश्व हैं। मधुर जल को बहाने वाली उज्वल नदियों में अग्नि का वास है। हे अग्ने ! तुम सत्य में वास करना चाहते हो। हे अग्ने ! तुम्हारी प्रेरणा से ही यह पृथिवी सत्य व्यवहार पर दृढ़ रहती है ॥ २ ॥ उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी ज्ञानी अग्निदेव बड़वानलों में चढ़े रहते हैं। उज्वल पीठ वाले अग्नि ने गतिवान रहने के लिए बड़वानलों को विमुक्त कर दिया ॥ ३ ॥ बहने

नदियाँ अग्नि का पालन करती हैं। वे त्वष्टा के पुत्र, अजर, महान तथ सम्पूर्ण जगत को धारण करने की इच्छा करते हैं। युवा पुरुष के पत्नी के निकट जाने के समान जल के निकट प्रदीप्त हुए अग्नि आकाश और पृथिवी में व्याप्त होते हैं ॥ ४ ॥ कामनाओं के वर्षक, अहिंसक अग्नि के आश्रय से उत्पन्न सुख को जानने वाले उपासक उनके आदेश में उपस्थित रहते हैं। जिन स्तोताओं की स्तुति रूप वाणी उल्लेख योग्य होती है, वे आकाश को प्रकाशित करने वाले सुशोभित हुए स्वयं भी प्रकाशमान होते हैं ॥५॥ [१]

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६
अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ८
वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥ ९
पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्या कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥ १०
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ । २

मातृ-पितृ भूता आकाश पृथिवी के प्रति को जाने वाली स्तुति से प्रकट कल्याण भावनायें अग्नि को प्राप्त होती हैं। जल सींचने में समर्थ अग्नि देव रात्रि में प्रकाशित अपने तेज को स्तुति करने वाले के प्रति प्रेरित करते हैं ॥ ६ ॥ पाँच अध्वर्युओं युक्त सप्त होता अग्नि के प्रिय निवास यज्ञ की रक्षा करते हैं। सोम प्राप्ति की इच्छा से पूर्व की ओर गमन करने वाले सोम-रस को सींचने वाले, परिश्रम से न हारने वाले स्तोता [illegible] त करते हैं। क्योंकि उन देवताओं के समान स्तोताओं के यज्ञ [illegible] यारते

हैं ॥ ६ ॥ दिव्य होता स्वरूप दो अग्नियों को मैं सजाता हूँ । सप्त होता, सोम सिद्ध होने पर प्रसन्न होते हैं । वे होता स्तुति करते हुए, यज्ञ की रक्षा करते हुए अग्नि को ही सत्य बतलाते हैं ॥ ८ ॥ देवाह्वानकर्त्ता एवं प्रकाशमान अग्नि महान् एवं अभीष्टवर्षक हैं । हे अग्ने ! तुम्हारी आज्ञाकारिणी ज्वालायें विस्तृत होती हुई सर्वत्र व्यापती हैं तथा वृषभ तुल्य प्रभाव वाली होती हैं । तुम हर्षयुक्त एवं ज्ञानवान् हो । हमारे यज्ञ कर्म में देवताओं और आकाश-पृथिवी के बुलाने वाले हो ॥ ९ ॥ सदा गतिमान् अग्नि के लिए जिस उषा काल में हविदेते हुए यज्ञ किया जाता है, वह उषा काल सुशोभित स्तुति रूप वाणी तथा पक्षियों और मनुष्यों के श्रेष्ठ शब्दों से सुगुंजित है, वह उषा काल धनैश्वर्य से युक्त हुआ प्रकाशित होता है । हे अग्ने ! तुम अपनी महती कृपा द्वारा यजमान कृत पाप कर्म का नाश करने में समर्थ हो ॥ १० ॥ हे अग्ने ! स्तुति करने वाले को विविध कर्म की हेतु और गवादि धन युक्त भूमि दो । हमें वंश बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र दो । तुम्हारा यही अनुग्रह हम चाहते हैं ॥ ११ ॥ [२]

८ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–विश्वेदेवाः । छन्द–त्रिष्टुप, पंक्ति)

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १
समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २
उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३
युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥ ४
जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥ ५ । ३

हे वनस्पते ! देवताओं की कामना करने वाले अध्वर्यु दिव्य सोमरस द्वारा तुम्हें सींचते हैं। तुम चाहे बीज रूप से पृथिवी में शयन करो अथवा ऊँचे उठो, हमको धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे यूप ! तुम अग्नि की पूर्व दिशा में रहते हुए सुन्दर, जरा रहित संतान युक्त अन्न दो। हमारे पापों को दूर करो। हमको महान् धन प्राप्त कराने के लिए उठो ॥ २ ॥ हे वनस्पते ! तुम पृथिवी के जलादियुक्त श्रेष्ठ स्थान पर बढ़ो। तुम माप-योग्य बनो। यज्ञ के पालक यजमान को अन्न प्रदान करो ॥ ३ ॥ दृढ़ अङ्ग से युक्त, सुन्दर जीभ वाला यूप प्रकट होता है। वह यूप, सब वनस्पतियों में उत्तम प्रकार वाला है। ज्ञानवाने, मेधावी जन देवताओं की कामना से निश्चल ध्यानपूर्वक हृदय से उसे बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥ वृक्ष रूप से पृथिवी पर उत्पन्न हुआ यूप यज्ञ स्थान में मनुष्यों के साथ सुशोभित हुआ दिवसों को मंगलमय बनाता है। कर्मवान् मेधावी अध्वर्यु गण अपनी बुद्धि के अनुसार यूप को जल से धोकर शुद्ध करते हैं। देवताओं का यजन करने वाले विप्र होता स्तोत्र का उच्चारण करते हैं ॥ ५ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　[१]

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष ।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥ ६
ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः ।
ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥ ७
आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥ ८
हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥ ९
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥ १०
वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥ ११।४

हे यूपो ! देवताओं की कामना करने वाले, कर्मों के पालक अध्वर्यु-
तुम्हें गढ़े में फेंकते हैं। हे वनस्पते ! तुम कुठार से काटे गए हो। तुम
उज्वल काष्ठ वाले हो। हमको संतानयुक्त श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥ ६ ॥
कुठार से काटे जाकर ऋत्विजों द्वारा गढ़े में डाल दिए जाते हैं तथा जो
यज्ञ का साधन करने वाले हैं, वे यूप हमारी हवियों को देवताओं के समीप
पहुँचावें ॥ ७ ॥ आदित्यगण, रुद्र, वसु भले प्रकार संगत होकर सूर्य मंडल
पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों में व्याप्त हों और यज्ञ का पालन करें
वे ही यज्ञ की ध्वजा रूप को बढ़ावें ॥ ८ ॥ सुन्दर त्वचा से ढके हुए, हंस
समान श्रेणीबद्ध, खण्डयुक्त यूप हमको प्राप्त हों। विद्वान अध्वर्युओं के
द्वारा यज्ञ के पूर्व की ओर उठे हुए उज्वल यूप देवताओं के मार्ग पर जाते
हैं ॥ ९ ॥ काँटे आदि हटाने के पश्चात् सुन्दर हुए यूप पृथिवी पर उत्पन्न
सींग वाले पशुओं के सींगों की भाँति लगते हैं। यज्ञ में ऋत्विजों के स्तोत्र
श्रवण करने वाले यूप, युद्ध में हमारे रक्षक बनें ॥ १० ॥ हे वनस्पते ! तुम
मूल से पृथक् हुए, तीक्ष्ण धार वाले कुठार ने तुम्हें अत्यन्त भाग्यवान् बनाया
तुम सहस्र शाखाओं से युक्त हुए उत्तम प्रकार से उत्पन्न होओ। हम भी
सहस्र शाखा वाले होते हुए उत्तम प्रकार से बढ़ें ॥ ११ ॥ [४]

९ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द—बृहती, पंक्ति)

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १
कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥ २
अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥ ३
ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः।
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४

ससवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ । ५

हे अग्ने तुम श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाले, अविनाशी, प्रकाशमान, उपद्रव-रहित विश्व को प्राप्त होने वाले हो। हम मनुष्य तुम्हारे मित्र के समान हैं। हम तुमको अपने रक्षक रूप से वरण करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने! तुम सब जंगलों के रक्षक हो। तुम अपने आश्रयभूत जलों में वास कर शांत होओ। तुम अपने शांत भाव से जब ऊब जाते हो, तब दूर रहते हुए भी हमारे काष्ठ में प्रकट होते हो ॥ २ ॥ हे अग्ने! स्तुति करने वाले की कामना की पूर्ति का तुम विशेष रूप से विचार करते हो। तुम सदा तृप्त रहते हो। तुम्हारे मित्र भाव को प्राप्त करने वाले सोलह ऋत्विज हविदान करते और तुम्हारे चारों ओर बैठते हैं ॥ ३ ॥ गुफा में रहने वाले, शत्रु और उनकी सेनाओं को पराजित करने वाले अग्नि को, द्वेष-शून्य विश्वेदेवताओं ने प्राप्त किया ॥ ४ ॥ स्वेच्छाचारी पुत्र को पिता अपनी ओर आकर्षित करता है, वैसे ही स्वेच्छापूर्वक रमे हुए अग्नि को मथ कर मातरिश्वा देवताओं के लिए ले आए ॥ ५ ॥ [५]

तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥ ६
तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥ ७
आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८
त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ९ । ६

मनुष्यों के हित साधक, सतत युवा अग्नि देव! तुम अपनी महत्ता से यज्ञ की रक्षा करते हो। तुम हवि वहन करने वाले को मनुष्यों ने देवताओं के निमित्त वरण किया ॥ ६ ॥ हे अग्ने! सायंकाल...

प्त होने पर सब पशु तुम्हारे आश्रय में बैठते हैं। तुम्हारा श्रेष्ठ कर्म शिश
समान मूर्ख को भी अभीष्ट देकर तृप्त करता है ॥ ७ ॥ उन काष्ठादि में
स, उत्तम कर्म वाले तथा पवित्र प्रकाश वाले अग्नि का यजन करो।
तगामी, प्राचीन, सर्व व्याप्त, दूतरूप, स्तुत्य अग्नि का पूजन करो ॥ ८ ॥
न अग्नि को तेतीस सौ उन्तालीस देवताओं ने पूजा है। घृत से उन्हे
सींचा है और उनके लिए कुश बिछाये हैं। फिर उन्होंने अग्नि को होता रू
में वरण कर कुश पर प्रतिष्ठित किया है ॥ ६ ॥ [६]

१० सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक्, गायत्री)

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ १
त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥२
स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे ।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३
स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् ।
अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥

हे प्रजास्वामी अग्निदेव! तुम प्रकाशमान हो। तुम्हें मेधावी
चैतन्य करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने! तुम होता हो। तुम्हीं ऋत्विक्
अध्वर्युगण यज्ञ में तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम यज्ञ गृह में प्रकाशित
यज्ञ की रक्षा करो ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम जन्म से ही मेधावी हो
यजमान तुमको हवि देते हैं, वे उत्तम वीर्यवान् पुत्र प्राप्त करते हुए
पुत्र एवं ऐश्वर्य द्वारा समृद्ध होते हैं ॥ ३ ॥ यज्ञ को प्रकाशित करने
अग्निदेव सात होताओं द्वारा घृत से सींचे जाते हैं। वे देवताओं
यजमान के पास आवें ॥ ४ ॥ हे ऋत्विजो! मनुष्यों में बुद्धि रूप तेज

करने वाले, जगत के रचयिता, देवताओं के आह्वानकर्त्ता अग्नि के लिए पुरातन और महान स्तोत्रों का सम्पादन करो ॥ ५ ॥ [७]

अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः ।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७
स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् ।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८
तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ । ८

अग्निदेव अन्न और धन के लिए दर्शन करने योग्य हैं। जिस वाणी से उनकी प्रशंसा होती है, हमारी वही वाणी स्तुति रूप में उन अग्नि को बढ़ावे ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! यज्ञ कर्त्ताओं में तुम सर्वश्रेष्ठ हो। यजमानों के निमित्त यज्ञ में देवताओं के प्रति यजन करो। तुम यजमानों को सुख देने वाले होता रूप हो और शत्रुओं को पराजित कर सुशोभित होते हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम पवित्र हो। हमको अत्यन्त शोभायमान दमकता हुआ ऐश्वर्य प्रदान करो। स्तुति करने वालों का मंगल करने के लिए उन्हें प्राप्त होओ ॥८॥ हे अग्ने ! तुम हविवाहक हो। अविनाशी हो। मंथन रूप बल से बढ़े हुए हो। अत्यन्त विद्वान स्तुतिकर्त्ता तुमको भले प्रकार चैतन्य करते हैं ॥ ९ ॥ [८]

११ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–अग्निः । छन्द–गायत्री)

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १
स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २
अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ३

न

ग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥ ४

दाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।

तूर्णी रथः सदा नवः ॥ ५ । ६

अग्नि यज्ञ के होता, पुरोहित और विशेष द्रष्टा हैं। वे यज्ञ-क्रम के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥ १॥ वे हविवहन करने वाले, अविनाशी, देवताओं के दूत, अन्न रूप हवियों की कामना वाले अग्नि देव अत्यन्त मेधावी हैं ॥ २ ॥ यज्ञ में कर्त्ता रूप पुरातन अग्नि अपनी बुद्धि के बल से सब कर्मों के ज्ञाता हैं। इनका तेज अँधेरे को नष्ट करने में समर्थ है ॥ ३ ॥ प्राचीन रूप में प्रसिद्ध, जन्म से ही बुद्धिमान, बल के पुत्र उन अग्निदेव को देवताओं ने हवि वहन करने वाला बनाया ॥ ४ ॥ मनुष्यों के नायक, शीघ्रता से का हवि वहन करने वाला बनाया ॥ ४ ॥ करने वाले, रथ के समान और सतत युवा अग्नि की हिंसा करने में को समर्थ नहीं है ॥ ५ ॥ [६]

साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ।

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः

परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः

अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥ ९

शत्रु की समस्त सेना को जीत लेने वाले, शत्रुओं द्वारा अ तथा देवताओं को पुष्ट करने वाले अग्निदेव अन्न राशियों से युक्त है हवि देने वाला मनुष्य, हवि वहन करने वाले अग्नि से समस्त पाता है। वह पवित्र करने वाले प्रकाशमान अग्नि यजमान को सुन् स्थान प्राप्त कराते हैं ॥ ७ ॥ स्वयंभू विद्वान अग्निदेव की हुए हम सम्पूर्ण इच्छित धनों को प्राप्त करने वाले हों ॥ ८ ॥ हे समस्त इच्छित धनों को प्राप्त करें। समस्त देवगण तुमसे

१२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्राग्नि । छन्द—गायत्री)

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १
इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥ २
इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३
तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।
इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥ ५ । ११

हे इन्द्राग्ने ! स्तोत्रों द्वारा बुलाए जाकर तुम दिव्य, वरण करने योग्य सोम के निमित्त यहाँ आओ। हमारी साधना से प्रसन्न हुए इस सोम-रस का पान करो ॥ १॥ हे इन्द्राग्ने ! स्तुति करने वाले की सहायता करने वाला, यज्ञ का साधन भूत इन्द्रियों को पुष्ट करने वाला सोम प्रस्तुत है। इस निचोड़े हुए सोम-रस का पान करो ॥ २ ॥ यज्ञ का साधन करने वाले सोम के द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर स्तुति करने वालों को सुखी बनाने वाले इन्द्र और अग्नि का मैं पूजन करता हूँ। वे दोनों इस इस यज्ञ में सोम-रस पीकर तृप्ति को प्राप्त करें ॥ ३ ॥ शत्रु का नाश करने वाले, वृत्र-संहारक, विजयशील, किसी के द्वारा न जीते जाने वाले और बहुत-सा अन्न देने वाले इन्द्राग्नि का आह्वान करता हूँ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र, अग्ने ! स्तोतागण मंत्र द्वारा तुम्हें पूजते हैं। स्तोत्रों के ज्ञाता मेधावी जन तुम्हारा पूजन करते हैं। अन्न प्राप्ति के लिए मैं भी तुम्हारा पूजन करता हूँ ॥ ५ ॥ [११]

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥ ६
इन्द्राग्नी अपसस्पर्यु प प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या अनु ॥ ७
इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥ ८
इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥ ९ ।

इन्द्राग्ने ! तुमने प्रथम चेष्टा से ही असुरों के नव्वे नगरों को एव
मा डाला ॥ ६ ॥ हे इन्द्राग्ने ! स्तुति करने वाले विद्वान यज्ञ-सा
ते हुए हमारे कर्मों को विस्तृत करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तु
का बल और अन्न एक-सा ही है। वर्षा को प्रेरित करने वाला कार्य
दोनों में स्थित है ॥ ८ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दिव्यलोक को सुशोभित
हो। युद्ध में तुम्हारी विजय हो। युद्ध में होने वाली विजय तुम्हारी
सामर्थ्य का परिणाम है ॥ ९ ॥ [१२]

१३ सूक्त

(ऋषि-ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता-अग्नि । छन्द-उष्णिक्, अनुष्टुप्)

प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै ।
गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥ १
ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २
स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३
स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४
दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥
उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥
नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७

अध्वर्युओ ! अग्निदेव के लिए स्तुति करो। वह अग्नि देव
हाँ पधारें। यजन करने वालों में सर्वोपरि अग्निदेव कुश पे

पर विराजमान हों ॥ १ ॥ आकाश पृथिवी जिनके वश में हैं, देवग जिनकी शक्ति की सेवा करते हैं, उन अग्नि का व्रत निरर्थक नहीं होता ॥ २ मेधावी अग्निदेव यजमानों को प्रेरणा देने वाले हैं। वे पुनः पुनः यज्ञ का करते हैं। वे सब को बारंबार कर्मों में लगाते हैं। वे मनुष्यों को उनके कर्म का फल देते हैं। वे धन देने वाले हैं। उन अग्निदेव की सेवा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ वे अग्निदेव हमारे भोगने योग्य श्रेष्ठ धन और घर दें आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष का महान् धन अग्नि में निहित है, वह हमको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ स्तुति करने वाले मेधावी जन प्रकाशित, नवीन देवताओं को बुलाने वाले, प्रजाओं का पालन करने वाले अग्निदेव को मनो रम स्तोत्रों द्वारा प्रदीप्त करते हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने स्तुति के समय हमारी रक्ष करो। तुम देवताओं के बुलाने वालों में मुख्य हो। स्तोत्र-पाठ के समय हमारे रक्षक होओ। तुम सहस्र संख्यक धन देने वाले हो। मरुद्गण तुम्हें बढ़ाते हैं। तुम हमारे सुख को बढ़ाओ ॥ ६ ॥ हे अग्निदेव! तुम हमको पुत्र सहित, पालन करने योग्य, यश देने वाला, सर्वकार्य में समर्थ, क्षय न होने वाला बहुत सा अथवा सहस्र संख्या वाला धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ [१३]

१४ सूक्त

(ऋषि—ऋषभो वैश्वामित्रः। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥ १
अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥ २
द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ।
यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥ ३
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन्।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥ ४
वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य।

यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ५
त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥ ७ । १४

देवताओं का आह्वान करने वाले, स्तुति करने वालों का सुख बढ़ाने वाले, सत्य-निष्ठ, यज्ञ कर्म वाले, अत्यन्त बुद्धिमान्, संसार के स्वामी अग्निदेव हमारे यज्ञ में आते हैं। उनका रथ प्रकाशमान है। उनकी शिखा ही केश रूप हैं। वे बल के पुत्र पृथिवी पर अपना तेज उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥ हे यज्ञयुक्त अग्ने! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम शक्तिशाली तथा कर्मों को प्रकट करने वाले हो। तुम्हारे प्रति जो नमस्कार किया गया है, उसे स्वीकार करो। हे यज्ञ योग्य अग्निदेव! तुम मेधावी हो। विद्वानों के साथ आकर हमको शरण देने के निमित्त कुश पर विराजमान होओ ॥ २ ॥ हे अग्ने! अन्नों को प्रेरणा देने वाले उषा और रात्रि तुम्हें प्राप्त होते हैं। तुम वायुमार्ग से उनको प्राप्त होओ। ऋत्विगण उस प्राचीन अग्नि को हवि द्वारा भले प्रकार सींचते हैं। दम्पति के समान उषा और रात्रि बारंबार आते हुए हमारे घरों में वास करें ॥ ३ ॥ हे बलवान् अग्नि देव! मित्र, वरुणादि समस्त देवगण तुम्हारे प्रति स्तोत्र उच्चारण करते हैं, क्योंकि तुम बल के पुत्र तथा साक्षात् सूर्य हो। तुम अपनी पथ-प्रदर्शन करने वाली रश्मियों को विस्तृत कर आलोक में स्थित रहते हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने! हम अपने हाथों से आज तुम्हें उत्तम हवि देंगे। तुम मेधावी हमारे नमस्कार से प्रसन्न हुए यज्ञ की कामना करते हो। तुम्हारे स्तोत्रों द्वारा देवताओं का पूजन करो ॥ ५ ॥ हे बलोत्पन्न अग्ने! तुम्हारा रक्षण-सामर्थ्य यजमान को प्राप्त होता है। तुम्हीं से वह अन्न प्राप्त करता है। तुम हमारे प्रिय स्तोत्रों से प्रसन्न हुए सहस्र संख्या वाला धन प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम समर्थ, सर्वज्ञ, और प्रकाशमान हो। हम मनुष्य तुम्हारे लिए जो हवि यज्ञ में देते हैं, उस हवि को तुम सुस्वादु बनाओ और सब यजमानों की रक्षा के लिये चैतन्य होओ ॥७॥ [१४]

१५ सूक्त

(ऋषि—उत्कीलः कात्यः । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ १
त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥ २
त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥ ३
अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा सञ्जिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥ ४
अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥ ५
प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥ ६
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ७ । १५

हे अग्ने ! विस्तृत तेज वाले तुम अत्यन्त प्रकाशित हो । तुम वैरियों और दुष्ट राक्षसों का नाश करो । तुम सर्वश्रेष्ठ, महान, सुख देने वाले और श्रेष्ठ आह्वान से युक्त हो । मैं तुम्हारे आश्रय को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम उषा के प्रकट होने के पश्चात् सूर्योदय काल में हमारी रक्षा के लिए प्रज्वलित होओ । तुम स्वयं प्रकट होने वाले हो । पिता के पुत्र को प्राप्त करने के समान, तुम भी हमारी स्तुति को प्राप्त करो ॥ २ ॥ हे अग्निदेव ! तुम इच्छितवर्षी हो । मनुष्यों को देखने वाले हो । तुम अन्धकारयुक्त रात्रि में अधिक प्रकाशित होते हो । तुम्हारी लपटें बहुत बढ़ती हैं । तुम पितृरूप से हमको कर्मों का फल दो । हमारे पाप दूर करते हुए

धन की इच्छा वाले बनाओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम्हें शत्रु हरा नहीं सकते । तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो । तुम शत्रुओं के नगरों को धन सहित जीतकर प्रकाशित होते हो । तुम जन्म से ही मेधावी, महान् और शरण देने वाले हो । हमारे यज्ञ के सम्पादन करने वाले बनो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम संसार को नित्य पुराना बनाते हो । तुम उत्तम बुद्धि वाले और प्रकाशमान हो । देवताओं के निमित्त तुम हमारे सब कर्मों को निर्दोष बनाओ । तुम रथ के समान यहाँ रुक कर देवताओं के लिए हमारी हवियाँ पहुँचाओ । आकाश और पृथिवी को हमारे यज्ञ से व्याप्त करो ॥५॥ हे अग्ने ! तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो । हमको बढ़ाओ । हमको अन्न दो । उत्तम प्रकाश द्वारा शोभायमान हुए तुम देवताओं के साथ मिल कर आकाश पृथिवी को अन्न दोहन के उपयुक्त करो । कुबुद्धि कभी भी हमारे निकट न आवे,॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम अनेक कर्मों की कारणभूत धन देने वाली पृथिवी स्तुति करने वाले को दो । वंश को बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको मिले । तुम्हारी यह कृपा हम पर होनी चाहिए ॥ ७ ॥ [१५]

१६ सूक्त

(ऋषि–उत्कलिः कात्यः । देवता–अग्निः । छन्द–अनुष्टुप्, पंक्ति)

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥ २
स त्वं नो राय. शिशीहि मीढवो अग्ने सुवीर्यस्य ।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥ ४
मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥ ५

शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥ ६ । १६

हे अग्ने ! तुम महान् सामर्थ्य से युक्त, श्रेष्ठ सौभाग्य के अधिपति
गवादि धनों से सम्पन्न, सन्तानयुक्त ऐश्वर्यों के स्वामी तथा वृत्र-वध करने वाले
के नायक हो ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! तुम नायक रूप से सौभाग्य को बढ़ा
वाले अग्निदेव से युक्त होओ । यह अग्नि सुख बढ़ाने वाले धन से युक्त हैं
जिस संग्राम में सेनायें युद्ध करती हैं, उसमें मरुद्गण शत्रुओं को हराते हैं
ये शत्रुओं के संहारक हैं ॥ २ ॥ हे अग्निदेव ! तुम अत्यन्त धन वाले सब
अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो । हमको संतान वाला, आरोग्यतादायक
शक्ति और सामर्थ्य से युक्त धन देकर वृद्धि प्रदान करो ॥ ३ ॥ वे अग्निदे
संसार के सभी कर्मों को पूर्ण करते हुए उस में व्याप्त हैं । वे सभी भार क
सहते हुए देवताओं को हवि पहुँचाते हैं । वे अग्नि स्तुति करने वालों
साक्षात् करते हैं । वे यज्ञानुष्ठान करने वालों की स्तुतियों के प्रति आते
तथा युद्ध-काल में रणक्षेत्र में पधारते हैं ॥ ४ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तु
हमको शत्रुओं से पीड़ित न होने देना, हम वीरों से शून्य न हों । पशुओं
रहित एवं निन्दा के योग्य भी न हों । तुम हमसे रुष्ट न होओ ॥ ५ ॥
अग्ने ! तुम यज्ञ में प्रकट हुए सन्तानवान ऐश्वर्यों के स्वामी हो । हे यशस्वी
अग्निदेव, तुम अत्यन्त वैभववान हो । हमको सुख देने वाला तथा यश
बढ़ाने वाला धन प्रदान करो ॥ ६ ॥ [१६]

१७ सूक्त

(ऋषि—उत्कीलः कात्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥ १
यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २
त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।

...नामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥ ३
...दीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
...मरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ ४
...ोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।
...ु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥ ५ ।१७

वे अग्निदेव धर्म को धारण करने वाले, ज्वाला रूप केश वाले, परम ... पवित्र और सत्कर्मों के कर्त्ता हैं। वे यज्ञ के आरम्भ काल में प्रज्ज्वलित ...र बढ़ते हुए देव-यज्ञ को घृतादि युक्त हवियों से सींचते हैं ॥ १ ॥ हे ...! तुम जन्म से ही मेधावी और सर्वज्ञ हो। तुमने जैसे पृथिवी और ...काश को हवियाँ दी थीं, वैसे ही हमारी हवियों को देते हुए देवताओं का ...जन करो। हमारे यज्ञ को मनु के यज्ञ के समान ही सम्पन्न करो ॥ २ ॥ ... जन्म से ही बुद्धिमान अग्निदेव! तुम्हारा अन्न आज्य, औषधि और सोम रूप से तीन रूपों वाला है। एकाह, अहीन और समगत रूप तीन उषा देवताएं तुम्हारी मातृ रूप हैं। हे मेधावी! तुम उनके सहित देवताओं को हवियाँ देते हो। तुम यजमान को सुख और कल्याण प्राप्त कराने में समर्थ होओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम स्वयं दीप्तिमान, मेधावी, उत्तम दर्शन वाले, स्तुत्य हो। हम तुमको नमस्कार करते हैं। देवताओं ने तुम्हें मोह रहित और हवि पहुँचाने वाले दौत्य कर्म में नियुक्त किया है। तुम अमृत के नाभि रूप हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने! जो यज्ञकर्त्ता होता मध्यम और उत्तम स्थानों पर स्वधा युक्त बैठे हुए सुखी, तुम उनके कर्त्तव्य को देखते हुए यज्ञ करो। फि... देवताओं को प्रसन्न करने के लिए हमारे इस यज्ञ को धारण करो ॥ ५॥ [१७

१८ सूक्त

(ऋषि—कतो वैश्वामित्रः। देवता—अग्नि। छन्द—त्रिष्टुप्)

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥ १
तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।

तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥ २
इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं भूरि कृत्वः ॥ ४
कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ । १८

हे अग्ने ! मित्र अथवा माता-पिता के समान हितैषी बनो । हमसे प्रसन्न होओ । जो हम मनुष्यों के शत्रु, अन्य विरुद्ध आचरण करने वाले मनुष्य हैं उनको भस्म कर डालो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं के मार्ग में बाधक बनो । जो दुष्ट हवि नहीं देते उनके अभीष्ट व्यर्थ हों । तुम उत्तम निवासस्थान देने वाले, एवं सर्वज्ञाता हो, जिनका मन चलायमान हो उन मनुष्यों को दुःख दो । उनके लिए तुम्हारी जरा रहित किरणें बाधक बनें ॥१॥ हे अग्ने ! मैं अन की इच्छा से, तुम वेगवान और शक्तिशाली को समिधा और घृत युक्त हवि देता हूँ । मैं तुम्हारी स्तुति करके जब तक प्राणवान रहूँ, तब तक मुझे धन देते रहो । धन देने के लिए मेरी स्तुति को प्रकाशमान बनाओ ॥ ३ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम अपने तेज से प्रदीप्त होओ । तुम विश्वामित्र के वंशजों द्वारा स्तुति किए जाकर उन्हें धन सम्पन्न बनाओ । अन्न देते हुए आरोग्यता और निर्भयता भी दो । तुम कर्म करने वाले हो, हम साधक बारंबार तुम्हारी साधना करेंगे ॥ ४ ॥ हे अग्निदेव ! तुम सब धनों के दाता हो, हमको धनों में जो श्रेष्ठ धन है, वह प्रदान करो । जब तुम समिधाओं से युक्त होओ, तभी हमको प्रवृद्ध धन दो । तुम अपनी प्रकाशमान बाहुओं को स्तुति करने वाले के घर की ओर धन दान के निमित्त फैलाओ ॥ ५ ॥   [१८]

१९ सूक्त

(ऋषि—कुशिकपुत्रो गाथी । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

ग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥ १
ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥ २
स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३
भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥
यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥ ५ । १९

हे अग्निदेव ! तुम देवताओं के स्तोता, सर्वज्ञ, प्रज्ञावान् हो । ह
इस यज्ञ में तुम्हें होता रूप से ग्रहण करते हैं । वे अग्नि यज्ञ-कर्मों में व
कर देवताओं का यजन करें । वे धन और अन्न देने की इच्छा करते
हमारी हवियाँ स्वीकार करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! मैं हवियुक्त, हवि दे
साधन, घृत से पूर्ण जुहू को तुम्हारे सम्मुख करता हूँ । वे देवताओं के स
करने वाले अग्निदेव हमको देने योग्य धन के सहित यज्ञ में भाग लें ।
हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर साधक का हृदय अत्यन्त बल प्राप्
है । उसे संतानयुक्त धन दो । तुम फल देने की इच्छा वाले पु
धन प्रदान करते हो । हम तुम्हारी महती रक्षा से निर्भय होते हु
स्तुति करेंगे और धन के स्वामी बनेंगे ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम
हो । यज्ञ करने वाले ने तुम्हें प्रदीप्त किया है । तुम यज्ञ में दि
साधना करने वाले हो, अतः देवताओं को आहूत करो ॥ ४ ॥
यज्ञ में विराजमान मेधावी ऋत्विग्गण तुम्हें होता कहते हुए

तुम हमारी रक्षा के निमित्त चैतन्य होओ । हमारे पुत्रों को बलवान करो ॥ २ ॥ [११]

२० सूक्त

(ऋषि–कौशिको गाथी । देवता–विश्वेदेवाः । छन्द–त्रिष्टुप्)

अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥ १
अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ २
अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो ॥ ३
अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥ ४
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥ ५ । २०

ये हवि वाहक अग्निदेव उषाकाल में, अंधकार को दूर करते हुए उषा अश्विद्वय और दधिका नामक देवों को ऋचाओं से आहूत करते हैं । देवगण हमारे यज्ञ में आने की कामना करते हुए उन ऋचाओं को श्रवण करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा तीन प्रकार का अन्न तथा तीन प्रकार का ही वास स्थान है । तुम यज्ञ का सम्पादन करने वाले हो । देवताओं को तृप्त करने वाली तीन जिह्वाओं से युक्त हो । तुम्हारे शरीर के तीन रूप हैं, जिनकी देवता कामना किया करते हैं । तुम आलस्य से रहित हुए अपने तीनों रूपों से हमारे स्तोत्र के रक्षक बनो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकट होते ही ज्ञानी, प्रकाशमान, अमर और अन्नयुक्त हो । देवताओं ने तुमको तेज प्रदान किया है । तुम विश्व को तृप्त करने वाले, अभीष्ट फल देने वाले हो । देवताओं ने तुमको जिन शक्तियों से युक्त किया है, वे शक्तियाँ सदा तुममें विद्यमान रहती हैं ॥ ३ ॥ ऋतुओं को प्रकट करने वाले आदित्य के समान विश्व के

सत्य कर्मों में प्रवृत्त, वृत्र-संहारक, पुरातन, सर्वज्ञाता और प्रकाशमान् अग्निदेव, स्तुति करने वाले को सब पापों से पार करें ॥ ४ ॥ दधिका, अग्नि, उषा, बृहस्पति, तेजस्वी सूर्य दोनों अश्विनी कुमार, भग, वसु, रुद्र और सभी आदित्यों का इस यज्ञानुष्ठान में आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥ [२०]

२१ सूक्त

(ऋषि–कौशिको गाथी । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् बृहती)

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ १
घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ३
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४
ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥ ५ ॥ २१

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञ को देवों के प्रति पहुँचाओ । हमारी हवियों का भक्षण करो । तुम होता रूप हो । तुम हमारे यज्ञ में बैठ कर प्राणवान घृत का भक्षण करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम पवित्र हो । इस यज्ञ में तुम्हारे तथा देवताओं के पान के निमित्त घृत की बूँदें टपक रही हैं । तुम हमको वरण करने योग्य उत्तम धन प्रदान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी और यजन योग्य हो । घृत की टपकती हुई सभी बूँदें तुम्हारे लिए हैं । तुम ऋषियों में श्रेष्ठ हो । तुम स्वयं प्रदीप्त होते हो । हमारे यज्ञ की रक्षा करो ॥ ३ ॥ हे अग्निदेव ! तुम सदा गतिमान रहने वाले सर्वशक्ति सम्पन्न हो । स्नेह रूप हवि की बूँदें तुमको सींचती हैं । मेधावीजन तुम्हारा स्तवन करते हैं । तुम महान् तेजस्वी एवं प्रज्ञावान हो । हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥ ४ ॥ हे

अग्ने ! हम अत्यन्त सार रूप स्नेह तुम्हें प्रदान करेंगे । हे निवासदाता अग्नि-देव, हवि को जो बूँदें तुम्हारे लिए गिरती हैं, उनमें से बाँट कर देवताओं को पहुँचाओ ॥ ४ ॥   [२१]

२२ सूक्त

(ऋषि-कौशिको गाथी । देवता-पुरीष्या अग्नयः । छन्द-त्रिष्टुप् पंक्ति, अनुष्टुप्)

अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ १
अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ २
अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ३
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ४
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥ । २२

सोम की कामना करने वाले इन्द्र ने निचोड़े हुए सोम को जिस अग्नि रूप उदर में रखा था, वह यह अग्नि ही हैं । हे अग्निदेव ! तुम सर्वज्ञ हो । तुम उस अश्व के समान वेगवती हवि का सेवन करो । विश्व के सब प्राणी तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम यजन योग्य हो । तुम्हारा तेज आकाश, पृथिवी, औषधि और जल में व्याप्त है तथा तुम्हारे जिस तेज के द्वारा अन्तरिक्ष भी व्याप्त हुआ है, वह तेज समुद्र के समान गंभीर, सूर्य के समान प्रकाशित एवं मनुष्यों के लिए अद्भुत है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम आकाशीय जल के समान प्रवाहमान हो । प्राण-भूत देवगण को संगठित करने वाले हो । सूर्य के ऊपर के लोक में अथवा अन्तरिक्ष में जो जल है, उसे प्रेरित करने वाले हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! पुरु देश में हवियारों की संगति... को प्राप्त होओ । हम ऐसा अन्न हमें दो जिससे घर

शत्रुओं को दवाने वाले बनें तथा निरोग रह सकें ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! स्तुति करने वाले को कर्मों की प्रेरक और गवादि धन से युक्त भूमि तुम देते हो। हमारे वंश को बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको दो। यह अनुग्रह हमारे प्रति होना चाहिये ॥ ५ ॥ [२२]

२३ सूक्त

(ऋषि-देवश्रवा देववातश्च भारतौ। देवता—अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप्)

निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १
अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम्।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २
दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम्।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥ ३
नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५। २३

घर्षण से उत्पन्न, यजमान के गृह में स्थापित, सर्वज्ञाता, यज्ञ कर्म के सम्पन्न कर्त्ता, स्वयं प्रज्ञावान्, घोर वन का विनाश करने वाले अग्निदेव जरा रहित हैं। वे इस यज्ञ में अमृत धारण करने वाले हैं ॥ १ ॥ भरत के पुत्रों ने इन धन-सम्पन्न अग्निदेव को अरणि-मंथन द्वारा प्रकट किया। हे अग्ने ! बहुत से धन सहित तुम हमारी ओर देखो और हमको नित्यप्रति अन्न प्राप्त कराओ ॥ २ ॥ यह प्राचीन, रमणीय अग्निदेव दसों अंगुलियों द्वारा उत्पन्न होते हैं। हे देवश्रवा ! अरणि से उत्पन्न दिव्य वायु से प्रकट हुए अग्निदेव का स्तवन करो। वे अग्नि स्तुति करने वालों के ही वशीभूत होते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! श्रेष्ठ दिन की प्राप्ति के निमित्त हम इस पृथिवी के पवित्र स्थान में तुम्हें प्रतिष्ठित करते हैं। तुम दृषद्वती, आपया और सरस्वती इन तीनों

नदियों के निकट वास करने वालों के घरों में धन सहित प्रदीप्त होओ ॥ ४ ॥
हे अग्ने ! तुम स्तुति करने वाले को कर्मयुक्त तथा गवादि युक्त पृथिवी दो।
हमारे वंश को बढ़ाने वाला, सन्तानोत्पादन में समर्थ पुत्र हमको दो। यह
अनुग्रह हम पर अवश्य करो ॥ ५ ॥ [२१]

२४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप, गायत्री)

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य ।

दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १

अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥ २

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ३

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥ ४

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् ।

शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ५ । २४

हे अग्निदेव ! तुम शत्रु-सेना को हराओ । विघ्न करने वालों को भगा दो। तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। तुम शत्रुओं को हरा कर अपने यजमान को अन्न प्रदान करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ में प्रीति रखते हो। तुम मरण-रहित हो। तुम उत्तर वेदी पर प्रज्वलित होते हो। तुम हमारे यज्ञ को भले प्रकार से सम्पादन करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अपने तेज से चैतन्य होते हो। तुम बल के पुत्र का मैं आह्वान करता हूँ। मेरे कुश पर विराजमान होओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम अपनी पूजा करने वालों के यज्ञ में सभी प्रदीप्त अग्नियों के सहित स्तुतियों की मर्यादा को सुरक्षित करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम हवि देने वाले को पौरुषयुक्त धन प्रदान करो। हम सन्तान युक्त हैं। हमारी वृद्धि करो ॥ ५ ॥ [२२]

२५ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–अग्निः इन्द्राग्नी ! छन्द–अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।

ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥ १

अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।

स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ॥ २

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।

क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥ ३

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम् ।

अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥ ४

अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।

सधस्थानि महयमान ऊती ॥ ५ । २५

हे अग्ने ! तुम अद्भुत, सर्वज्ञाता, आकाश-पृथिवी के पुत्र तथा चैतन्यता युक्त हो । तुम इस देव-यज्ञ में पृथक् पृथक् यजन कर्म करो ॥ १ ॥ अग्नि मेधावी हैं, सामर्थ्यदाता हैं और स्वयं सुसज्जित होकर देवताओं को हवि पहुँचाते हैं । उनका अन्न विविध प्रकार का है । हे अग्ने ! देवगण को हमारे इस यज्ञ में ले आओ ॥ २ ॥ सर्वज्ञानी, संसार के स्वामी, प्रदीप्तिवान् शक्ति और अन्न से सम्पन्न अग्निदेव, विश्व-माता तेजस्विनी मरण-रहित आकाश-पृथिवी को प्रकाशमान बनाते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम इन्द्र सहित यज्ञ की रक्षा करते हुए सोम छान कर अर्पण करने वाले के इस घर में सोम पीने के निमित्त पधारो ॥ ४ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम सर्वज्ञानी और नित्य हो । तुम अपने आश्रय में प्राणियों को सुशोभित करते हुए जल के आश्रम स्थान अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित होते हो ॥ ५ ॥ [२५]

२६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः आत्मा । देवता—वैश्वानरः मरुत आदि।
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

वैश्वानरं मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥ १
तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥ २
अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥ ३
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे सम्मिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वतां अदाभ्याः ॥ ४
अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥ ५।२६

हम कौशिक जन धन की इच्छा से हवि एकत्रित करते हुए वैश्वानर अग्नि का आह्वान करते हैं। वे सत्यपथगामी स्वर्ग के सम्बन्ध में जानने वाले हैं। यज्ञ का फल देने वाले हैं। वे अपने रथ से यज्ञ-स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ उन उज्ज्वल वर्ण वाले वैश्वानर, विद्युत रूप, यज्ञ के स्वामी, प्रज्ञावान्, अतिथि, शीघ्र कार्यकारी अग्निदेव को यजमान के यज्ञ में आश्रय प्राप्त करने के निमित्त आहूत करते हैं ॥ २ ॥ उच्च शब्द करने वाले अश्व का बच्चा जैसे अपनी माता के आश्रय में वृद्धि प्राप्त करता है, वैसे ही कौशिकों के द्वारा वैश्वानर अग्नि की वृद्धि की जाती है। हे अग्ने! तुम देवताओं में चैतन्य हो। हमको श्रेष्ठ अश्व, पौरुष और महान् धन दो ॥ ३ ॥ अग्नि रूप अश्व, बलवान् मरुद्गण से संयुक्त हुए पृषती वाहनों को मिलावें। सर्वज्ञाता, किसी के द्वारा भी हिंसित न होने वाले मरुद्गण जल राशि युक्त तथा पर्वत के समान मेघ को कम्पायमान करते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि के आश्रित मरुत् संसार को आकर्षित करते हैं। हम उन्हीं मरुतों के उत्कृष्ट आश्रय की याचना

हैं। वे वर्षा रूप वाले, सिंह के समान गर्जनशील मरुद्गण जल दाता के रूप में प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥ [२६]

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥ ६
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७
त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्य कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥ ८
शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळि मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥ ९ । २७

बहुत से स्तोत्रों द्वारा हम अग्नि के तेज और मरुद्गण के बल की कामना करते हैं। वे विन्दु चिन्ह वाले अश्व युक्त मरुद्गण, नष्ट न होने वाले धन के सहित हवि के निमित्त यज्ञ को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ मैं अग्नि जन्म से ही मेधावी हूँ। अपने रूप को स्वयं प्रकट करता हूँ। प्रकाश मेरा नेत्र है। मेरी जिह्वा में अमृत है। मैं त्रिविध प्राणयुक्त एवं अंतरिक्ष का मापक हूँ। मेरे ताप का कभी क्षय नहीं होता। मैं ही साक्षात् हवि हूँ ॥ ७ ॥ सुन्दर ज्योति को हृदय से जानने वाले अग्निदेव ने अग्नि, वायु और सूर्य रूप धारण कर अपने को समर्थ बनाया। अग्नि ने इन रूपों से प्रकट होकर आकाश-पृथिवी के दर्शन किये थे ॥ ८ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! सौ धार वाले मेघ की तरह अक्षुण्ण प्रवाह युक्त मेधावी, पालनकर्त्ता, वाक्यों को मिलाकर बताने वाले माता-पिता की गोद में प्रसन्न सत्य स्वरूप अग्नि को पूर्ण करो ॥९॥ [२७]

२७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—ऋतवोऽग्निर्वा अग्नि । छन्द—गायत्री)

प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥१
ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् ।
श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ २

अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥ ३
समिध्यमानो अध्वरेग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥ ४
पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिकस्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ । २

हे ऋत्विजो ! स्त्रुक युक्त हवि वाले देवता, मास, अर्द्धमास आदि यजमान के निमित्त सुखी करने के इच्छुक हैं। वह यजमान देवताओं की कृपा प्राप्त करता है ॥ १ ॥ यज्ञ सम्पन्नकर्त्ता, प्रज्ञावान्, ऐश्वर्यवान्, वेगशाली अग्निदेव को मैं स्तोत्रों सहित पूजता हूँ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो। हव्य तैयार कर हम तुम्हारी सेवा करेंगे और पाप से बच सकेंगे ॥ ३ ॥ यज्ञ-काल में प्रकट होने वाले, ज्वालायुक्त केश वाले, पवित्रकर्त्ता पूज्य अग्निदेव के समीप उपस्थित होकर इच्छित फल माँगते हैं ॥ ४ ॥ उत्पन्न तेज से युक्त, अमर, घृत के शुद्ध करने वाले और समान रूप से पूजा किए गए अग्नि-देव यज्ञ के हवि को वहन करें ॥ ५ ॥   [२८]

तं सबाधो यतस्त्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥ ६
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥ ७
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९
नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत ।
                                        अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥ १० । २९

यज्ञ में उपस्थित विघ्नों को नष्ट करने वाले, हवियुक्त ऋत्विजों ने स्त्रुक को उठा कर आश्रय के निमित्त स्तोत्रों द्वारा अग्निदेव की पूजा करते हुए बढ़ाया ॥ ६ ॥ यज्ञ-सम्पादक, मरण-रहित, प्रकाशयुक्त अग्निदेव यज्ञानुष्ठान में सब को प्रेरणा देते हुए, महयोग पूर्वक यज्ञ में अग्रणि बनते हैं ॥७॥ अग्नि शक्तिशाली हैं। वे युद्ध में सब से आगे स्थान ग्रहण करते हैं। यज्ञ के समय अपने स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं। वे यज्ञ-कार्यों के सम्पादनकर्त्ता और प्रज्ञावान् हैं ॥ ८ ॥ कर्मों के द्वारा वरण करने योग्य, भूतों के कारण रूप, पिता तुल्य अग्निदेव को दक्ष-पुत्री (पृथिवी) धारण [illegible] ॥

हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम श्रेष्ठ प्रकाश वाले, हवियों की कामना वाले और वरण करने योग्य हो। तुम्हें दक्ष-पुत्री इला धारण करती है ॥१०॥ [२९]

अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः। विप्रा वाजैः समिन्धते। ११
ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि। अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥ १२
ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा ॥ १३
वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४
वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ १५। ३०

विश्व के नियामक और जल को प्रेरित करने वाले अग्नि को यज्ञ कार्य सम्पन्न करने के निमित्त ज्ञानी जन हवि द्वारा भले प्रकार प्रदीप्त करते हैं ॥ ११ ॥ मनुष्यों को यज्ञ से विहीन न होने देने वाले, अन्तरिक्ष के निकट प्रकाशमान अग्निदेव का मैं स्तवन करता हूँ ॥ १२ ॥ वे अग्नि नमस्कार करने योग्य, पूज्य, दर्शनीय तथा कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। प्रज्ज्वलित होते ही अंधेरे को नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥ घोड़े के समान हवि वहन करने वाले, कामनाओं के वर्षक अग्निदेव प्रज्ज्वलित होते हैं। मैं उन अग्नि का पूजन करता हूँ ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। हम घृतादि सींचते हैं, तुम जल सींचते हो। हम तुम्हें प्रदीप्त करते हैं। तुम प्रकाशमान और महान् हो ॥ १५ ॥ [३०]

२८ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्, उष्णिक् जगती)

अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः। प्रातःसावे धियावसो ॥१
पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः। तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २
अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम्।
सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३

माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४
अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५
अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः ।
जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥ ६ । ३१

हे अग्ने ! तुम जन्म से ही दीप्तियुक्त हो । तुम्हारे स्तोत्र से धन
मिलता है । तुम हमारे पुरोडाश और हव्य का प्रातः सवन में सेवन
करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा हो । तुम्हारे निमित्त ही पुरोडाश
...स्तव किया और सिद्ध किया गया है । उसका सेवन करो ॥ २ ॥ हे अग्ने !
...त्तम प्रकार से दिन के अन्त में दिए गए पुरोडाश का सेवन करो । तुम बल
...पुत्र हो । यज्ञ कार्य में लगो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम विज्ञानी हो । मध्य
...न में पुरोडाश ग्रहण करो । अध्वर्युगण तुम्हारे यज्ञ भाग को नष्ट नहीं
...ते ॥ ४ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम तीसरे सवन में दिए जाने वाले
...डाश की कामना करो । फिर इस ऐश्वर्यवान्, अमर, चैतन्य सोम को
...ण के निकट स्तुतिपूर्वक प्रतिष्ठित करो ॥ ५ ॥ हे विज्ञानी अग्निदेव !
...रोडाश रूप आहुति को दिवस के अन्त में ग्रहण करो ॥ ६ ॥ [३१]

२९ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-अग्निः । छन्द-अनुष्टुप्, पंक्ति,
त्रिष्टुप्, जगती)

...धिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १
...हितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ २

ामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
ुपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ ३
ास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
ेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ४
ता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
ास्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥ ५ । ३२

अरणि संसार की रक्षा में समर्थ है, उसे लाओ। इसी के मं ारा अग्नि की उत्पत्ति होती है। पूर्वकाल के समान हम अग्नि को म- द्वारा प्रकट करेंगे ॥ १ ॥ अरणियों में अग्निदेव गर्भवती स्त्री के गर्भ के समान स्थापित हैं। वे अपने कर्म में सदा तत्पर रहते हैं। उन हवि युक्त अग्नि को मनुष्य नित्य-प्रति पूजते हैं ॥ २ ॥ हे ज्ञानवान् अध्वर्युओ! ऊर्ध्व मुख वाली अरणि पर नीचे मुख वाली अरणि रखो। तत्काल गर्भ वाली अरणि ने कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्नि को प्रकट किया। उस अग्नि में दाहक गुण था। उत्तम प्रकाश वाले इला-पुत्र अग्नि अरणि द्वारा उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ हे विज्ञानी अग्निदेव! हम तुम्हें पृथिवी की नाभि रूप उत्तर वेदी में हवि-वहन करने के निमित्त प्रतिष्ठित करते हैं ॥ ४ ॥ हे अध्वर्युओ! श्रेष्ठ ज्ञानी, अविनाशी, कवि, प्रदीप्तियुक्त देह वाले अग्नि को अरणि मंथ से प्रकट करो। तुम यज्ञ कर्म में मनुष्य का नेतृत्व करने वाले हो। जो अ यज्ञ-सूचक, सुख देने वाले, प्रथम पूज्य हैं, उन्हें प्रारंभ में ही प्र करो ॥ ५ ॥ [३

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥
जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७
सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्सादया यज्ञं सुकृतस्य योन
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ८

दश स्वसारो अग्र ुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥ १३
प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥ १४
अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥ १५
यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १६।३४

जिस अग्नि का व्यापक रूप कभी नष्ट नहीं होता, उसे तनूनपात् कहते हैं। जब वह साक्षात् होते हैं तब आसुर और नराशंस कहलाते हैं और जब अन्तरिक्ष में अपने तेज को फैलाते हैं, तब मातरिश्वा होते हैं। जब वह प्रकट होते हैं, तब वायु के समान होते हैं ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञानी तथा मंथन से उत्पन्न हो। तुम श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हो। हमारे यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण करो। हम, देवताओं की कामना करने वालों के निमित्त देवताओं का पूजन करो ॥ १२ ॥ मरणधर्मा ऋत्विजों ने अक्षय, अविनाशी, दृढ़ दाँतों वाले और पाप से उद्धार करने वाले अग्नि को प्रकट किया। सन्तान के समान उत्पन्न हुए उस अग्नि के प्रति, भगिनीरूपिणी दसों अँगुलियाँ हर्ष-सूचक ध्वनि करती हैं ॥ १३ ॥ अग्नि प्राचीन हैं। सप्त होताओं द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में अत्यन्त सुशोभित होते हैं। जब वे वेदी में क्रीड़ा करते हैं तब अत्यन्त कांतियुक्त लगते हैं। वे सदा चैतन्य रहते हैं। वे असुर के मध्य से उत्पन्न हुए हैं ॥ १४ ॥ शत्रुओं से मरुद्गण के समान युद्ध करने वाले, ब्रह्मा द्वारा प्रथम उत्पन्न कौशिक ऋषियों ने सम्पूर्ण विश्व को जाना। वे अपने गृह में अग्नि को प्रदीप्त करते और उनके प्रति हवि देते हुए स्तुतियाँ करते हैं ॥ १५ ॥ यज्ञ-कार्य सम्पन्न करने वाले, मेधावी, सर्वज्ञाता अग्नि को हम इस यज्ञ में स्थापित करते हैं। हे अग्ने ! इस यज्ञ में देवताओं को हवि दो। उनकी नित्य प्रति स्तुति करो। सोम को सिद्ध हुआ जान कर उसको प्राप्त होओ ॥ १६ ॥ [३४]

३० सूक्त (तृतीय अनुवाक)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१
न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ २
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥ ३
त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४
उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥ ५ । १

हे इन्द्र ! सोम वाले ऋत्विग्गण तुम्हारी स्तुति-कामना करते हैं। मित्रगण तुम्हारे निमित्त सोम छानते हैं। उनमें से कुछ शत्रुओं के विघ्नों को सहन करते हुए हवि धारण करते हैं। तुम्हारे सिवाय विश्व में अधिक ख्याति प्राप्त अन्य कौन है ? ॥ १ ॥ हे हरित् वर्ण वाले अश्व युक्त इन्द्र ! सुदूर स्थान भी तुम्हारे लिये दूर नहीं है। तुम अपने अश्व सहित शीघ्र पधारो। तुम दृढ़ विचार वाले तथा कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। यह सवन तुम्हारे निमित्त ही किया गया है। अग्नि के प्रदीप्त होने पर सोम कूटने के लिए पाषाण कार्य में लिए जाते हैं ॥ २ ॥ हे कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्यवान् हो। तुम्हारा शिरस्त्राण देखने योग्य है। तुम विजयशील, धनयुक्त, मरुतों से युक्त, युद्ध में विविध कर्म वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले तथा विकराल हो। तुमने मनुष्यों के लिए जो कर्म युद्धों में किए, वह पराक्रम युक्त कर्म कहाँ हैं ? ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अकेले ही अत्यन्त दृढ़ असुरों को धराशायी किया। वृत्रादि का संहार किया। आकाश-पृथिवी और पर्वत तुम्हारे कर्म से ही अचल हुए हैं ॥ ४ ॥ हे ! तुम

बहुतों द्वारा आह्वान किए गए हो। तुम अत्यन्त पराक्रमी हो। तुमने अकेले ही वृत्र का संहार कर देवताओं को निर्भय बनाया। तुम्हीं आकाश-पृथिवी को कर्मों में लगाते हो। हे मघवन्! तुम्हारी यह महिमा प्रसिद्ध है ॥५॥ [१]

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ ६
यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं सः।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७
सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम्।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८
नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥ ९
अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः १०। २

हे इन्द्र! तुम्हारा अश्व युक्त रथ शत्रु के विरुद्ध शीघ्र आवे। शत्रु को मारने वाला तुम्हारा वज्र कार्य करे। अपने सम्मुख आए शत्रुओं का संहार करो। भागने वाले शत्रुओं को भी मारो। संसार को यज्ञ-कर्म करने वाला बनाओ। तुम में ही ऐसी सामर्थ्य है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुम सदा ऐश्वर्यवान् रहते हो। तुम जिसे देते हो, वह उसे पहले कभी प्राप्त नहीं था। वह गृहोपयोगी पशु, सुवर्ण आदि धनों को पाता है। तुम बहुतों द्वारा स्तुत्य तथा घृत युक्त हवियों से युक्त हो। तुम्हारे अनुग्रह में ही मंगल है। धनदान करने की तुम में असीमित सामर्थ्य है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! तुम अनेकों द्वारा स्तुति किये गए हो। तुम दान से युक्त हो। तुम बाधा देने वाले गर्जनकारी वृत्र को हस्त विहीन तथा छिन्न भिन्न करते हो। उस बढ़े हुए वृत्र को पंगु बना कर अपनी शक्ति से तुमने नष्ट कर दिया ॥८॥ हे इन्द्र! तुमने अनन्त, विशाल और गतिमान पृथिवी को स्थापित किया था। तुमने आकाश और अंतरिक्ष को ऐसे धारण किया, जिससे वह गिर न सके। हे इन्द्र!

तुम्हारे प्रेरणा से जल पृथिवी को प्राप्त हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! जलों का गोष्ठभूत मेघ वज्र प्रहार से पूर्व ही खण्ड-खण्ड होगया। जल रूप गौ के निकलने का मार्ग तुमने सरल किया। शब्द करता हुआ रमणीय जल अनेकों द्वारा पूजित होकर इन्द्र के समक्ष उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ [२]

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥ ११
दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥ १२
दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥ १३
महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥ १४
इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥ १५ । ३

इन्द्र ने अपने ही कर्म द्वारा आकाश-पृथिवी को सुसंगत कर अन्न, धन से पूर्ण किया। हे वीर इन्द्र ! तुम रथी हो। हमारे साथ रहने की इच्छा से रथ में जुते अश्वों को हमारे सामने करो ॥ ११ ॥ इन्द्र से ही सूर्य प्रेरणा पाते हैं। वे प्रकाशमान् दिशाओं पर नित्यप्रति गमन करते हैं। जब वे अपने अश्व सहित अपना गमन-मार्ग पूर्ण कर लेते हैं, तब हम से अलग होते हैं। यह सब भी इन्द्र की प्रेरणा से ही होता है ॥ १२ ॥ गतिमान रात्रि के पश्चात् उषा के भी चले जाने पर उस अद्भुत, महान् और तेजस्वी सूर्य के दर्शन करने को सभी उत्सुक होते हैं। जब उषा काल समाप्त होजाता है तब मनुष्य यज्ञादि कर्म में लग जाते हैं। इस प्रकार अनेक उत्तम कार्य इन्द्र के ही हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र ने महान् गुण वाले जल को नदियों में प्रयुक्त किया। इन्द्र ने अत्यन्त स्वादिष्ट दही, घृत, क्षीर आदि भोजन को जल रूप से गौ में धारण किया। यह नवप्रसूता गौ दुग्धवती हुई घूमती है ॥ १४ ॥ हे इन्द्र !

दृढ़ होओ। शत्रुओं ने विघ्न उपस्थित किया है। तुम यज्ञकर्त्ता स्तोता
ा मित्रों को उनका अभीष्ट फल दो। शत्रुगण मन्द गति से चलते हुए
ास्त्र चलाते हैं। वे धनुष बाण से युक्त हिंसक हैं। उनका संहार करना
चेत है ॥ १५ ॥ [३]

घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
श्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व ॥ १६
वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
ा कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥ १७
वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
ायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥ १८
आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥ १९
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥ २०
आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥ २१
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ २२ । ४

हे इन्द्र ! शत्रुओं द्वारा फेंके गए वज्र का शब्द हमको सुनाई पड़ता है। घोर दुःख देने वाली अशनियों (तोप आदि) को शत्रुओं के सामने ही नष्ट कर डालो। शत्रुओं के कार्य में बाधा देते हुए उन्हें छेद डालो। हे इन्द्र ! राक्षसों का संहार करके यज्ञ-कर्म में लगो ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! दैत्यों का वंश को जड़ से नष्ट करो। उनके मध्य भाग में प्रहार करो। अगले भाग को नष्ट करते हुए उन्हें दूर कर दो। यज्ञ से द्वेष करने वाले पर दुःखदायक हथियार चलाओ ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम विश्व के पोषक हो। हमको अश्व-युक्त बनाओ। हमको अमरत्व प्रदान करो। तुम्हारी निकटता प्राप्त कर हम

महान धन और प्राप्त धन के उपभोग द्वारा वृद्धि को प्राप्त होंगे। हमको पुत्र-पौत्रादि सहित धन प्राप्त कराओ ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! हमारे निमित्त उज्ज्वल धन लेकर आओ। तुम दान करने वाले हो। हम तुम्हारे दान को पाने के योग्य हैं। हमारी कामना अत्यन्त बढ़ी हुई है। तुम धन के स्वामी हो। हमारी कामना की पूर्ति करो ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! हमारी गौ, अश्व तथा रमणीय धन वाली कामना को अपने दान द्वारा पूर्ण करो। उससे हमको ख्याति प्राप्त हो। स्वर्ग की कामना वाले तथा सुख प्राप्ति की इच्छा वाले कर्मवान् कौशिकों ने श्रेष्ठ मन्त्रों से तुम्हारी स्तुति की है ॥ २० ॥ हे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र ! मेघ को छिन्न भिन्न कर हमको जल प्रदान करो। उपभोग्य अन्न हमको प्राप्त हो। तुम अभीष्टों के वर्षक हो। आकाश को व्याप्त करते हुए रहते हो। तुम सत्य के बल से युक्त हो। हमको गौ प्रदान करो ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नवान् हो। युद्ध में उत्साह पूर्वक बढ़े हुए तुम आपन्न धन वाले, ऐश्वर्यशाली, नायकों में श्रेष्ठ, स्तुतियों को सुनने वाले, विकराल, शत्रुओं का संहार करने वाले और धनों को जीतने वाले हो। हम तुम्हारे आश्रय के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २२ ॥ [५]

३१ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः कुशिको वा। देवता-इन्द्रः। छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १
न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम्।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २
अग्निर्जज्ञे जुह्वा रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे।
महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३
अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४
वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः।

विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥ ५ । ५

जिसके पुत्र न हो ऐसा व्यक्ति अपनी पुत्री का योग्य पुरुष से विवाह करता हुआ दौहित्र को प्राप्त करता है। वह पुत्रहीन व्यक्ति, पुत्री के गर्भ-धारण-विश्वास पर जीवित रहता है ॥१॥ औरस पुत्र से पुत्री को धन नहीं मिलता। वह पुत्री को उसके पति के सेचन-कार्य द्वारा माता बनाता है। यदि माता-पिता के पुत्र और पुत्री दोनों ही उत्पन्न हों, तो उनमें से पुत्र क्रिया-कर्म करने का अधिकारी है तथा पुत्री सम्मान की अधिकारिणी है ॥२॥ हे इन्द्र! तुम तेजस्वी हो। तुम्हारे यज्ञ के निमित्त कम्पित अग्नि ने पुत्र रूप किरणों को प्रकट किया है। इन किरणों का गर्भ जल-रूप हैं। इनका महान् जन्म ओषधि-रूप हैं। हे हरे अश्व वाले इन्द्र! सोम द्वारा प्रेरित तुम्हारी इन किरणों के कर्म महत्तावान् होते हैं ॥ ३ ॥ वृत्र से संग्राम-रत इन्द्र से मरुद्गण मिले थे। सूर्य रूप महान् तेज अन्धकार रूप वृत्र के आवरण में भी मार्ग-दर्शक हैं, इसे मरुद्गण जान गए। उषाओं ने इन्द्र को सूर्य समझा और उनके समक्ष पहुँची। तब एक मात्र इन्द्र ही समस्त किरणों के स्वामी हुए ॥ ४ ॥ प्रज्ञावान् सप्त अङ्गिराओं ने सुदृढ़ पर्वत पर रोकी हुई गौओं को ढूंढा। 'पर्वत पर गौएं हैं' यह विश्वास कर वे जिस मार्ग से वहाँ गए, उसी से लौटे। उन्होंने यज्ञ-मार्ग द्वारा सभी गौओं को प्राप्त किया। अङ्गिराओं की नमस्कार युक्त पूजा से प्रभावित इन्द्र इस बात को जान कर पर्वत पर पहुँचे ॥ ५ ॥ [५]

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६
अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७
सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८
नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।

इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९
सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥ १० ॥ ६

पर्वत के टूटे हुए द्वार पर जब सरमा गई, तब इन्द्र ने अपने प्रणनानुसार उसे उसका चाहा हुआ प्रचुर अन्न तथा अन्य धन प्रदान किया। वह उत्तम पाँव वाली सरमा गौओं के शब्द को पहचानती हुई उनके समीप प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ अत्यन्त प्रज्ञासम्पन्न इन्द्र अङ्गिराओं के प्रति मैत्री-पूर्ण इच्छा से वहाँ पहुँचे। पर्वत ने अपने में छिपे हुए गोधन को उन महान् योद्धा के निमित्त प्रकट किया, शत्रु का संहार करने वाले इन्द्र ने युवा मरुतों की सहायता से उन्हें पाया। तब अङ्गिराओं ने उनका पूजन किया ॥ ७ ॥ जो समस्त ऐश्वर्यवानों में अग्रगण्य हैं, जो रण-क्षेत्र में सब से आगे चलते हैं, जो सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता हैं, जिन्होंने शुष्ण को मारा था, वे इन्द्र गोधन की इच्छा वाले तथा अत्यन्त दूरदर्शी हैं। वे हमको आदर प्रदान करते हुए पाप से रक्षा करते हैं ॥ ८ ॥ मेधावीजन अन्तःकरण में गोधन-प्राप्ति की इच्छा से स्तोत्र द्वारा अमरत्व प्राप्ति का यत्न करते हुए यज्ञ कर्म में लगे। इनका यज्ञ ही महान् औषध रूप है। इन्होंने इस सत्य के कारण भूतयज्ञ के बल से महीनों को विभक्त किया ॥ ९ ॥ अङ्गिरावंशियों ने प्रथम उत्पन्न पुत्रों की रक्षा के निमित्त गोधन प्राप्त कर उनका दोहन किया और शरीर को पुष्ट बनाया। उनकी हर्ष ध्वनि आकाश पृथिवी में व्याप्त होगई। वे पूर्वकाल के समान ही संसार में रहे और गौओं की रक्षा के लिए उन्होंने वीरों को नियुक्त किया ॥ १० ॥ [१]

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥ १२
मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।

गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥ १३
मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥ १४
महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥ १५ । ७

इन्द्र ने मरुद्गण को साथ लेकर वृत्र का संहार किया । वे ही पूज्य हैं तथा यजन करने योग्य हैं । उन्होंने मरुद्गण के साथ यज्ञ के निमित्त गौओं का दान किया । घृतयुक्त हवि वाली तथा उत्तम हवि देने वाली गो, ने इनके निमित्त सुस्वादु क्षीर प्रदान किया ॥ ११ ॥ उन पालनकर्त्ता इन्द्र के लिए अङ्गिराओं ने अत्यन्त स्वच्छ एवं उज्ज्वल श्रेष्ठ स्थान का संस्कार किया । उत्तम कर्म वाले अङ्गिराओं ने इन्द्र के योग्य इस सुन्दर स्थान को दिखाया । उन्होंने यज्ञ में बैठ कर आकाश पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष रूप स्तम्भ का आरोपण कर इन्द्र को स्वर्ग में प्रतिष्ठित किया था ॥१२॥ आकाश-पृथिवी के विश्लेषण में प्रयुक्त वाणी, उसके वर्णन में समर्थ न हो तो भी इन्द्र की स्तुति द्वारा वृद्धि को प्राप्त होती हुई सुसंगत होती है । उन इन्द्र की सभी शक्तियाँ स्वयं सामर्थ्य वाली हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे महान् मित्र-भाव की याचना करता हूँ । तुम्हारी शक्ति के निमित्त याचना करता हूँ । तुम वृत्र का संहार करने वाले हो । तुम्हारे पास अनेक अश्व हैं । तुम अत्यन्त मेधावी हो । हम तुम्हें अपना हार्दिक मित्र-भाव, स्तोत्र और हवियाँ अर्पित करेंगे । हे इन्द्र ! तुम हमारे रक्षक हो हमको बुद्धिमान बनाओ ॥ १४ ॥ इन्द्र ने भले प्रकार विचार कर मित्रों को भूमि और सुवर्ण रूप धन प्रदान किया । फिर उन्होंने गवादि धन भी दिया । वे अत्यन्त तेजस्वी हैं । उन्होंने ही मरुद्गण, सूर्य, उषा, पृथिवी और अग्नि को प्रकट किया ॥१५॥ [७]

अपश्चिदेष विभ्वो दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥ १६
अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥ १७

पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥ १८
तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥ १९
मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥ २०
अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ २१
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ २२ ।

वे इन्द्र शांत स्वभाव से युक्त हैं। इन्होंने अत्यन्त वेगवाले सुसंगत और विश्व को परम आनन्द देने वाले जल को प्रकट किया। यह मधुर सोमों को पवित्र करते तथा अग्नि, सूर्य और वायु के द्वारा शुद्ध करते हैं। ये ही सम्पूर्ण जगत को आनन्द प्रदान करते हुए इस विश्व को दिन और रात्रि में भी अपने कर्मों में लगाते हैं ॥ १६ ॥ सूर्य की महिमा से समस्त पदार्थों के धारण करने वाले तथा यज्ञ निर्वाहक दिन-रात्रि क्रम पूर्वक भ्रमण करते हैं। ऋजु रूप, मित्र-भाव वाले मरुद्गण शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए तुम्हारी शक्ति का आश्रय प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र-संहारक हो। तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले, अमर तथा अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम हमारी प्रिय स्तुतियों के अधिपति होओ। तुम यज्ञ में जाने की इच्छा वाले एवं महान् हो। तुम अपनी कल्याण वहन करने वाली मित्रता सहित तथा महान् आश्रय से युक्त हुए हमको प्राप्त होओ ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन हो। अङ्गिराओं के समान मैं भी तुम्हारा पूजन करता हूँ। मैं तुम्हारे स्तवन के निमित्त नवीन स्तुतियाँ प्रस्तुत करता हूँ। तुम देवताओं के वैरियों का संहार करने वाले हो। हे इन्द्र ! हमारे लिए उपभोग करने योग्य धन प्रदान करो ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! यह पवित्र जल सब ओर फैल गया। हमारे इस श्रेष्ठ तट को जल में पूर्ण करो। तुम रथ युक्त हो। शत्रुओं से

ारी रक्षा करो। हमको गौओं के जीतने योग्य बल दो॥ २०॥ वृत्र का
हार करने वाले वे गौओं के स्वामी इन्द्र हमको गौऐं दें। यज्ञ में विघ्न
रने वाले राक्षसों को अपने प्रकाशमान तेज से मार डालें। उन्होंने सत्य के
ारा अङ्गिराओं को रमणीय गौऐं दान कीं और असत्य के सभी मार्गों को
रोक दिया॥ २१॥ हे इन्द्र! तुम अन्न का लाभ कराने वाले, युद्ध में
उत्साह द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए, धन से युक्त, ऐश्वर्यवानों में श्रेष्ठ, स्तुतियों
के सुनने वाले, विकराल, रणस्थल में शत्रुओं का संहार करने वाले तथा धनों
के जीतने वाले हो। मैं आश्रय प्राप्त करने के लिए तुम्हारा आह्वान करता
हूँ॥ २२॥ [८]

३२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २
ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥ ३
त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन्।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४
मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! तुम सोम के स्वामी हो। इस मध्य सवन में सो
करो। यह सोम तुमको अत्यन्त प्रिय है। तुम धन से युक्त तथा
युक्त हो। अपने अश्वों को रथ से पृथक् कर उनके मुख को श्रेष्ठ
पूर्ण करते हुए उन्हें इस यज्ञ में आनन्दित करो॥ १॥ हे इन्द्र

से युक्त, संस्कारित नवीन सोम को पीओ। तुम्हारी प्रसन्नता के निमित्त हम उसे भेंट करते हैं। तुम मरुद्गण और रुद्रों के साथ तृप्त होने तक सोम-पान करो॥ २॥ हे इन्द्र! जो मरुद्गण, शत्रु को सुलाने वाले तुम्हारे तेज की वृद्धि करते हैं, वे मरुद्गण ही तुम्हारे बल को बढ़ाने वाले भी हैं। वे मरुत ही स्तुति से तुम्हारी युद्ध सामर्थ्य को बढ़ाते हैं। तुम वज्रधारण कर, सुशोभित शिरस्त्राण युक्त हुए मध्य सवन में रुद्रों सहित सोम पान करो॥ ३॥ वृत्र को विश्वास था कि मेरा भेद कोई नहीं जानता। परन्तु मरुतों की सहायता और प्रेरणा द्वारा इन्द्र ने वृत्र का भेद जान लिया। उन्हीं मरुद्गण ने उत्साह-वर्द्धक मधुर वाणी से तुम्हें उत्साहित किया था॥ ४॥ हे इन्द्र! मनु के यज्ञ के समान तुम मेरे यज्ञ को ग्रहण करते हुए स्थायी बल के निमित्त सोम पीओ। तुम हरे अश्व वाले हो। यज्ञ के पात्र मरुद्गण के सहित धाराएँ और अन्तरिक्ष से जल को छोड़ो॥ ५॥ [१]

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम्॥ ६
यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम्।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते॥ ७
इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः॥ ८
अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम्।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त॥ ९
त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन्।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः॥ १०। १०

हे इन्द्र! तुम उज्ज्वल जल को ढकते हो। तुमने उस सोते हुए वृत्र को युद्ध में गिराया है। तुमने युद्ध में अश्व के समान जल को छोड़ दिया॥६॥ हवि द्वारा वृद्धि को प्राप्त, अविनाशी, महान्, सतत युवा, स्तुति के पात्र इन्द्र का हम पूजन करते हैं। महती आकाश और पृथिवी भी इन्द्र

को सीमित करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र के उत्तम कर्म, पराक्रम में सभी देव मिल कर भी बाधा नहीं डाल सकते। वे ा, पृथिवी और अन्तरिक्ष के धारणकर्त्ता हैं। उनके कर्म श्रेष्ठ हैं। ने सूर्य और उषा को प्रकट किया है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी आत्मा है। तुम्हारी महिमा ही प्रमुख है। तुम प्रकट होकर ही सोम पीते तुम शक्तिशाली हो। तुम्हारे तेज को स्वर्गादि लोक, दिन, मास और कोई भी नहीं रोक सकता ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही सब ऊँचे लोक स्वर्ग में विराजमान होकर प्रसन्नता के लिए सोम-पान किया। त्र तुम आकाश-पृथिवी में व्याप्त हुए तभी सम्पूर्ण सृष्टि के विधाता बन गए ॥ १० ॥ [१०]

अहन्नहिं परिशयानमर्णो ओजायमानं तुविजात तव्यान्।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥ ११
यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम्।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥ १३
विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ १५
न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥ १६
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ १७

हे इन्द्र ! तुमने अनेकों को उत्पन्न किया। जल को रोक ... शक्ति को तुमने नष्ट कर दिया। जब तुम पृथिवी को कठि

कर चलते हो तब स्वर्ग भी तुम्हारी महिमा की समता करने में समर्थ नहीं होता ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! हमारा यज्ञ तुमको बढ़ाता है। जिस कार्य में सोम का संस्कार किया जाता है, वह कार्य तुमको प्रिय है। तुम यज्ञ के योग्य हो। अपने यजमान की यज्ञ-कार्य के निमित्त रक्षा करो। अहि का संहार करने के निमित्त यह यज्ञ तुम्हारे वज्र को बलशाली बनावे ॥ १२ ॥ पुरातन, मध्य कालीन तथा नवीन स्तोत्र से जो इन्द्र बढ़ते हैं, उन्हीं इन्द्र को यजमान अपने रक्षक यज्ञ द्वारा सामने बुलाता है। नवीन धन के लिए यह उनका आह्वान करता है ॥ १३ ॥ इन्द्र की स्तुति करने की जब मैं इच्छा करता हूँ, तभी स्तुति करने लगता हूँ। मैं उस अशुभ दूरवर्ती दिन की आशंका से पहिले ही इन्द्र का स्तवन करता हूँ। वे इन्द्र हमें दुःख से पार करें। नदी के दोनों तटों के लोग जैसे नाव वाले को बुलाते हैं, वैसे ही हमारे मातृ कुल के व्यक्ति इन्द्र को बुलाते हैं ॥ १४ ॥ इन्द्र का कलश पूर्ण होगया। पान के निमित्त स्वहाकार की ध्वनि हुई। जैसे जल सींचने वाला पात्र से जल सींचता है, वैसे, ही मैं सोम को सींचता हूँ। सुन्दर स्वाद वाला सोम इन्द्र को आनन्दित करने के लिए उनके सम्मुख जाता है ॥१५ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा आह्वान किए गए हो। गंभीर समुद्र भी तुम्हें रोक नहीं सकता। समुद्र के चारों ओर,का उप-समुद्र भी तुम्हें निवारण करने में समर्थ नहीं है। क्योंकि मित्रों की प्रार्थना पर तुमने महाबली वृत्र का निवारण कर दिया है ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न का लाभ कराने वाले उत्साह से बढ़े हुए, धन और ऐश्वर्य से सम्पन्न, नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, विकराल, युद्ध में शत्रु का नाश करने वाले तथा धनों को जीतने वाले हो। आश्रय प्राप्त करने के लिए मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ १७ ॥ [११]

३३ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—नद्यः। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्, उष्णिक्)

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने।

गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १

...वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २

...ाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २
...च्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वी सुभगामगन्म ।
...त्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥ ३
...एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
...न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४
...रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ५ । १२

जल युक्त प्रवाह वाली विपाश और शुतुद्री नदियाँ पर्वत के अङ्क से निकल कर समुद्र से मिलने की कामना वाली होकर, अश्वशाला से विमुक्त अश्व के समान स्पर्द्धावान् होती हुई, दो गौओं के समान सुशोभित हुई वेग से समुद्र की ओर चलती हैं ॥ १ ॥ हे दोनों नदियो ! इन्द्र तुम्हें प्रेरणा देते हैं। तुम परस्पर प्रार्थना-सी करती हुई दो रथियों के समान समुद्र को प्राप्त होती हो। तुम प्रवाहमान हुई, तरंगों द्वारा बढ़ कर परस्पर मिलने की चेष्टा करती हुई-सी चलती हो और शोभा पाती हो ॥ २ ॥ माता के समा... सिन्धु नदी और श्रेष्ठ सौभाग्य वाली विपाशा नदी को प्राप्त होता हूँ। ... दोनों वत्साभिलाषिणी गौओं के समान आश्रय स्थान की ओर जाती है ॥ ... यह नदियाँ जल से पूर्ण हुई भूमि प्रदेशों को सींचती हुई, ईश्वर के रचे स्थान पर चलती हैं। इनकी गति कभी रुकती नहीं हम उन नदि... अनुकूल होते हुए प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे जल से पूर्ण हुई नदियो ! मेरे ... सम्पन्नता के कार्य की बात सुनने के लिए एक क्षण के लिए चलने से ... मैं कुशिक पुत्र विश्वामित्र बृहती स्तुति से प्रसन्नता प्राप्ति और अपनी ... पूर्ति के निमित्त इन नदियों का आह्वान करता हूँ ॥ ५ ॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥ ६
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यन्तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥ ७

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥
ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९
आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० । १३

नदियों को रोकने वाले वृत्र का संहार कर वज्रधारी इन्द्र ने हम दोनों नदियों का मार्ग खोल दिया। उत्तम बाहु वाले, तेजस्वी तथा संसार को प्रेरणा देने वाले इन्द्र ने हमें प्रेरणा दी है। हम आज्ञा के निर्देश से गमन करती हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र द्वारा वृत्र-वध के पराक्रम-पूर्ण कार्य का सदा गान करना चाहिए। इन्द्र ने सब दिशाओं से बाधा देने वालों को खोज कर वज्र से मार डाला। तब गमनशील जल चलने लगा ॥ ७ ॥ स्तुति करने वाले! तुम अपनी प्रतिज्ञा को न भूलना। आने वाले यज्ञ के दिनों में स्तोत्र रच कर तुम हमारी पूजा करना। हम नदियाँ तुम्हें नमस्कार करती हैं। हमारा पुरुषों के मध्य निरादर न करना ॥ ८ ॥ हे परस्पर बहिन रूप दोनों नदियो! मैं कौशिक स्तवन करता हूँ। मैं सुदूर से रथ में अश्व जोत कर आया हूँ। तुम नीची हो जाओ, जिससे मैं तुम्हें पार कर सकूँ। स्रोत के जल के समान रथ चक्र के आधे भाग तक ऊँची रह कर ही प्रवाहित होओ ॥ ९ ॥ हे स्तुति करने वाले! हम नदियों ने तुम्हारी बात सुन ली है। तुम दूर से आए हो, अतः शकट और रथ के साथ जाओ। जिस प्रकार माता पुत्र को स्तन पान कराने को तथा पत्नी पति से मिलने को झुकती है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे निमित्त झुकती हैं ॥ १० ॥

यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ ११
अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
माऽदुष्कृतौ व्येनसाऽघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ १३ । १४

दोनों नदियो ! भरतवंश वाले तुम्हें पार जाने की इच्छा वाले भारतीय, इन्द्र द्वारा प्रेरित तुम्हारे द्वारा पार किए जाँयगे । उन पार जाने का यत्न करने वालों को तुम अनुमति प्रदान कर चुकी हो, इसलिए मैं विश्वामित्र तुम्हारी सर्वत्र प्रशंसा करूँगा । तुम यजन करने योग्य हो ॥ ११ ॥ गोधन की कामना करने वाले भारतीय पार हो गए । विद्वानों ने नदियों का भले प्रकार स्तवन किया । तुम अन्न की कारणभूत तथा धन से सम्पन्न होकर लघु नदियों को भी जल से पूर्ण करती हुई द्रुत वेग से चलती रहो ॥ १२ ॥ दोनों नदियो ! तुम इस प्रकार प्रवाहित हो कि दोनों कीलें ऊपर रहें । तुम रज्जु को स्पर्श नहीं करना । पाप से रहित, कल्याण करने वाली तथा अनिंद्य विपाशा और शुतुद्री तुम्हारी तरंग इस समय अधिक ऊँची न उठे ॥ १३ ॥ [१३]

३४ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः देवता-इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥ १
मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ ३
इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ । १५

पुरों को तोड़ने वाले, महिमावान्, धनवान् इन्द्र ने अपने तेज से दस्युओं का संहार कर उन्हें जीत लिया। उन मंत्र द्वारा आकर्षित हुए और बढ़े हुए शरीर और बहुत-से शस्त्रों से युक्त इन्द्र ने आकाश और पृथिवी को पूर्ण किया ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम पूज्य तथा शक्तिशाली हो। अन्न के लिए मैं तुम्हें नमन कर, तुम्हारी प्रेरणा से ही स्तोत्र उच्चारण करता हूँ तुम देवता और मनुष्य दोनों में अग्रगण्य हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम विख्यातकर्मा हो। तुमने वृत्र को निवारण किया था। शत्रुओं के आक्रमण को रोकने वाले इन्द्र ने उन माया करने वालों का संहार कर डाला। शत्रु को मारने की इच्छा वाले इंद्र ने जंगल में छिपे हुए कंधा विहीन शत्रु को मार दिया। उन्होंने रमणीय गौओं को प्रकट किया ॥ ३ ॥ वे इन्द्र स्वर्ग प्राप्त कराने वाले हैं। उन्होंने दिन को प्रकट कर संग्राम की इच्छा वाले अङ्गिराओं का साथ देकर उनके विरोधियों की सेना को हराया। दिन के ध्वज रूप सूर्य को मनुष्यों के निमित्त प्रकाशित किया। इस प्रकार भीषण युद्ध के निमित्त अत्यन्त तेज प्राप्त किया ॥ ४ ॥ बाधा देने वालों तथा बल में बढ़ी हुई शत्रु-सेना के मध्य धन को ग्रहण कर इंद्र जा घुसे। स्तुति करने वाले के लिए उन्होंने उषा को चैतन्यता देकर उसके श्वेत वर्ण को बढ़ाया ॥ ५ ॥   [१५]

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६
युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८
ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १०

नं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११ । १६

उन महान इन्द्र द्वारा किये गए श्रेष्ठ कार्यों को साधकगण कीर्तन करते हैं। वे इन्द्र अपने बल से बड़े-बड़े बलवानों को पीस डालते हैं। उन विजेता इंद्र ने दस्युओं को अपनी भेद नीति द्वारा पीस डाला ॥ ६ ॥ देवताओं के स्वामी और मनुष्यों को वर देने वाले इन्द्र ने वृहद् संग्राम में धन प्राप्त कर स्तुति करने वालों को प्रदान किया। विद्वान स्तुतिकर्त्ता जन यजमान के गृह में मन्त्रों द्वारा इन्द्र का यश कीर्तन करते हैं ॥ ७ ॥ सर्व विजयी, वरण करने योग्य, स्वर्ग के स्वामी, दिव्य जलों के अधिपति इन्द्र के आनन्दित होने पर स्तोतागण प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। वह इंद्र पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष को धारण करने वाले हैं ॥ ८ ॥ अश्व, सूर्य, गोधन, रत्न और सुवर्ण आदि यह सब इन्द्र के दान रूप हैं। उन्होंने पापियों का संहार कर आर्यों की सदा रक्षा की है ॥ ९ ॥ इन्द्र ने ही दान रूप दि बनाया, उन्होंने ही ओषधियाँ दीं तथा अन्तरिक्ष और वनस्पतियाँ प्रदान कीं उन्होंने मेघ को विदीर्ण कर शत्रुओं को नष्ट किया। इन्द्र के सामने जो विरोधी उपस्थित हुआ, उसी को उन्होंने मार डाला ॥ १० ॥ हे इन् तुम अन्न प्राप्त करने में समर्थ हो। युद्ध में उत्साह द्वारा बढ़ते हो। तुम से हुए अपने वैभव से ही ऐश्वर्यवान् हो। तुम नायकों में श्रेष्ठ तथा स्तु को सुनने वाले हो। तुम अपने उग्र कर्मों द्वारा युद्ध में शत्रु-नाश कर धन जीतते हो। हम आश्रय-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा आह्वान [हैं ॥ ११ ॥

३५ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ।
उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।

द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २
उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥ ३
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ ४
मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥ ५ । १७

हे इन्द्र ! तुम्हारे हरित् अश्व रथ में जोड़े जाते हैं। जैसे वायु अपने अश्वों की प्रतीक्षा करते हैं। वैसे ही तुम भी तुरत चल अपने अश्वों की प्रतीक्षा कर, उनके सहित यहाँ आओ और हमारे सोम का पान करो। हम स्वाहाकार द्वारा तुम्हारी प्रसन्नता के लिए सोम अर्पित करते हैं ॥ १ ॥ अनेकों द्वारा बुलाए गए इन्द्र के शीघ्र आगमन के निमित्त रथ के आगे दोनों घोड़ों को हम जोड़ते हैं। विधिपूर्वक किए जाते इस यज्ञानुष्ठान में इन्द्र को दोनों घोड़े यहाँ ले आवें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले तथा अन्नों के स्वामी हो। शत्रु के भय से मुक्त कराने वाले अपने दोनों पराक्रमी घोड़ों को यहाँ ले आओ और इस यजमान के रक्षक बनो। तुम अपने दोनों घोड़ों को यहाँ खोल दो। वे यहाँ भोजन करें, तुम भी समान रूप वाले उपभोग्य धान्य का सेवन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे घोड़े मन्त्रों द्वारा जुड़ते हैं। तुम्हारे जो अश्व युद्ध में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, उन्हीं को हम मन्त्रों द्वारा जोड़ते हैं। हे इन्द्र ! तुम मेधावी हो। अपनी बुद्धि से दृढ़ और सुखदायक रथ पर बैठ कर सोम के निकट पधारो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! यजमान तुम्हारे पराक्रमी, सुन्दर पीठ वाले दोनों घोड़ों को आनन्द दें। हम तुमको उत्तम प्रकार से सिद्ध किए गए सोम के द्वारा तृप्त करेंगे। तुम बहुत से यजमानों को लाँघ कर यहाँ शीघ्रतापूर्वक आओ ॥ ५ ॥ [१७]

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६

स्तीर्णं ते वर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७
इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या अनु स्वाः ॥ ८
यां आभजो मरुत इंद्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानोग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥ ९
इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्रहस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥ १०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ११।१८

हे इन्द्र! यह सोम तुम्हारे लिए है, इसके समक्ष पधारो। प्रसन्न मुख द्वारा उस सिद्ध सोम का पान करो। इस यज्ञ में कुश पर प्रतिष्ठित होकर इस सोम को उदरस्थ करो॥ ६॥ हे इंद्र! यह कुश तुम्हारे निमित्त बिछाए गए हैं और सोम का संस्कार किया गया है। तुम्हारे दोनों घोड़ों के लिए धान्य प्रस्तुत है। कुश तुम्हारा आसन है। बहुत से विद्वान् तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम्हारे पास मरुत्‌गण रूप सेना है। तुम्हारे लिए विस्तृत हवियाँ प्रस्तुत हैं॥ ७॥ हे इंद्र! अध्वर्यु, पाषाण और जल ने इस दूध मिश्रित सोम को तुम्हारे लिए मधुरता से पूर्ण किया है। तुम मेधावी एवं दर्शनीय हो। हमारी इन स्तुतियों को अपने हित में जानते हुए प्रसन्न मुख से सोम-पान करो॥ ८॥ हे इन्द्र! जिन मरुद्‌गण को तुम सोम-पान करते समय आदरयुक्त करते हो तथा जो मरुद्‌गण तुम्हारे सहायक होते हुए युद्ध में तुम्हें बढ़ाते हैं, उन्हीं मरुद्‌गण के साथ सोम-पीने की इच्छा करते हुए, अग्नि रूप जिह्वा द्वारा सोम-रस को पीओ॥ ९॥ हे इन्द्र! तुम यजन-योग्य हो, अग्निरूप जिह्वा द्वारा इस संस्कारित सोम को पीओ। तुम अध्वर्यु द्वारा अर्पित सोम और होता द्वारा आहुतियोग्य हवि को ग्रहण करो॥ १०॥ हे इन्द्र! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह से बढ़ते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त,

नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति के सुनने वाले, विकराल, युद्ध में शत्रु-संहारक और धन जीतने वाले हो। हम आश्रय प्राप्त करने के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ११ ॥ [१८]

३६ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः घोर आंगिरसः। देवता—इन्द्र। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥ २
पिबा वर्धस्व तव धा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्यां इंद्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥ ३
महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४
महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इंद्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५ । १।

हे इन्द्र ! धन देने के लिए मरुद्गण के सहित यहाँ आकर विशेष प्रकार से सिद्ध किए गए इस सोम को ग्रहण करो। वे इन्द्र अपने महान् कर्मों के द्वारा विख्यात हैं तथा सोम सिद्ध किये जाने वाले कर्म में हर बार पुष्टिदायक हवियों द्वारा बढ़ते हैं ॥ १ ॥ प्राचीन काल में इन्द्र के लिए सोम अर्पण किया गया था, जिससे वे नियम-पालक, प्रकाशमान और महान् बने। हे इन्द्र ! इस अर्पित सोम को स्वीकार करो। यह पत्थर द्वारा कूटा हुआ सोम दिव्य फल देने वाला है, इसका तुम पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध सोम अभिनव रूप में संस्कारित किया गया है, इसे पीकर पुष्ट होओ। तुम स्तुति के योग्य हो। जैसे तुमने प्राचीन काल में सोम पान किया था, वैसे ही इस समय सोम-पान करो ॥ ३ ॥ जो इन्द्र महाबली तथा शत्रुओं को जीतने वाले हैं, जो इन्द्र शत्रुओं के

ललकारते हैं, उन इन्द्र का बल न जीतने योग्य है। उनका तेज सर्वत्र व्याप्त है। जब अश्वयुक्त इन्द्र को सोम पुष्ट करता है, तब पृथिवी और स्वर्ग भी उनको धारण करने की सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ४ ॥ बलवान, पराक्रमी, कामनाओं की वर्षा करने वाले, दानशील इन्द्र वीरतापूर्ण यश के निमित्त वृद्धि को प्राप्त हुए स्तोत्र से संगति करते हैं। इन्द्र की सब गौऐं दूध देने वाली होकर प्रकटी हैं। इन्द्र अत्यन्त दान करने वाले हैं ॥ ५ ॥ [१६]

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणाति दुग्धो अंशुः ॥ ६
समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥ ७
ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समी विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥ ८
आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ६
अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १०
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ११।२

नदियां जब स्रोत के समान दूरस्थ सागर की ओर बहती हैं, तब रथ के समान जल दौड़ता है। उसी प्रकार वरण करने योग्य इन्द्र अन्तरिक्ष से इस लतारूप सुसिद्ध की ओर आते हैं ॥ ६ ॥ समुद्र से मिलने की इच्छा करने वाली नदियाँ जैसे समुद्र को भरती हैं, वैसे ही इन्द्र के निमित्त अध्वर्युगण छाने गए सोम को संस्कारित करते हुए हाथों से सोम-लता को दुहते हैं और पाषाण द्वारा सोम-रस को शुद्ध करते हुए मधुरतायुक्त बनाते हैं ॥ ७ ॥ सरोवर के समान इन्द्र का उदर सोम का आश्रय-स्थान है। वे एक साथ ही अनेक यज्ञों को पूर्ण करते हैं। इन्द्र ने भक्षण के योग्य सोम का सेवन कि

है । फिर वृत्र को निवारण कर देवताओं को भाग दिया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र शीघ्र ही धन प्रदान करो । तुम्हारे दान को रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है । तुम धन के स्वामी हो, यह हम जानते हैं । तुम्हारा धन श्रेष्ठ और पूज्य के योग्य है, उसे हमको प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे सरल प्रवृत्ति वाले मघवन्, तुम सबके वरण करने योग्य हो । हमको उत्तम धन प्रदान करो । हमको सौ वर्षों तक जीने की सामर्थ्य दो । हमको चिरायुष्य वीर पुत्र प्रदान करो ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ लाभ वाले युद्ध में उत्साहपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नायकों में श्रेष्ठ, स्तुति के श्रवण करने वाले विकराल, रणक्षेत्र में शत्रु का नाश करने वाले और धन को जीतने में समर्थ हो । आश्रय-प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥११॥ [२०]

३७ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-इन्द्रः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघत. ॥ २
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥ ५ । २१

हे इन्द्र ! वृत्र को नाश करने वाले बल को प्राप्त करने और शत्रु की सेना को हराने के लिए हम तुम्हें प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारे मन और नेत्र को हर्ष प्रदान करते हुए, स्तुति करने वाले तुम्हें हमारे सामने बुलावें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम शतकर्म वाले हो । अहंकारी शत्रुओं को परास्त करने वाले रणक्षेत्र में हम तुम्हारा स्तवन करते हुए यशोगान करेंगे ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों द्वारा स्तुति करने के योग्य हो । तुम्हारे तेज की कोई सीमा नहीं है । तुम मनुष्यों के स्वामी हो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा बहुतों ने आह्वान किया है । वृत्र-

त्रुओं का नाश करने और धन-प्राप्त करने के निमित्त हम भी तुम्हारा
करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६
षु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७
न्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इंद्र सोमं शतक्रतो ॥ ८
द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ९
न्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् ।
उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ १०
र्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ११ । २२

हे सैकड़ों कर्मों में समर्थ इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में शत्रुओं को हराने में समर्थ हो । वृत्र के संहार करने के लिए हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! जो शत्रु युद्ध में अहंकार करने वाले, धन में प्रतिस्पर्द्धा वाले तथा वीर सैनिकों और पराक्रम में हमको चुनौती देने वाले हैं, तुम उनको हराओ ॥ ७ ॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! हमको आश्रय देने के निमित्त अत्यन्त शक्तिशाली, तेज-सम्पन्न और दुःस्वप्नों का निवारण करने वाले सोम का पान करो ॥ ८ ॥ हे शतकर्म युक्त इन्द्र ! पंचों में जो इंद्रियाँ हैं, उन सब को हम तुम्हारे द्वारा प्रेरित की जाने वाली मानते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! प्रदत्त हवि तुम्हें प्राप्त हो । शत्रुओं को कठिनता से प्राप्त अन्न हमको दो । हम तुम्हारे श्रेष्ठ बल को बढ़ावेंगे ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! पास हो या दूर, जहाँ कहीं हो, वहीं से हमारे पास आओ । तुम वज्र धारण करने वाले हो । तुम श्र... दिव्य स्थान से हमारे इस यज्ञ को प्राप्त होओ ॥ ११ ॥ [२३]

३८ सूक्त

(ऋषि—प्रजापतिः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति...

...ष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
...कवीँरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः ॥

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम् ।
इमा उ ते प्रण्यो वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥ २
नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३
आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ४
असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥ ५।२३

हे स्तुति करने वालो ! त्वष्टा के समान, इन्द्र के स्तोत्रों को चैतन्य करो । श्रेष्ठ, भार वहन करने वाले, वेगवान् अश्व के समान कर्म में लगा हुआ तथा इन्द्र के कर्मों का चिन्तन करता हुआ मैं, अपनी बुद्धि की वृद्धि करता हुआ स्वर्ग में गए हुए विद्वानों के दर्शन की कामना करता हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! उन विद्वानों के जन्म के सम्बन्ध में उनके गुरुओं से पूछो, जिन्होंने मनोनिग्रह तथा पवित्र कार्यों के द्वारा अपने को स्वर्ग-भागी बनाया । इस यज्ञ में तुम्हारे निमित्त रची गई स्तुतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हुई, मन के समान वेग से गमन करती हैं ॥ २ ॥ विद्वज्जनों ने इस पृथिवी पर उत्तम कर्म करते हुए पृथिवी और आकाश को बल प्राप्ति के लिए सजाया । उन्होंने गुह्य तत्वों द्वारा भूमि और स्वर्ग को स्थिर किया । उन्होंने विशाल एवं विस्तृत पृथिवी और आकाश को सुसंगत किया तथा आकाश और पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष का स्थापन किया ॥ ३ ॥ समस्त मेधावीजनों ने रथ में विराजमान इन्द्र को सजाया । अपने स्वभाव से ही तेजवान् इन्द्र प्रकाशित हुए स्थित हैं । कामनाओं की वर्षा करने वाले उग्रकर्मा इंद्र विचित्र कीर्ति वाले हैं । वे विश्वरूप को धारण करने तथा अमृतत्व में व्याप्त हैं ॥ ४ ॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले, प्राचीन तथा सर्वोत्कृष्ट इन्द्र ने जलों को उत्पन्न किया । उत्पन्न हुए जल ने उनकी पिपासा का निवारण किया । स्वर्ग के पौत्र रूप, सुशोभित इन्द्र और वरुण दोनों तेजस्वी स्तोता के स्तवन से हमारे निमित्त सुखकारी धन धारण करते हैं ॥ ५ ॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥६
तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥ ८
युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥ ६
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १०।२४

हे इन्द्र और वरुण ! व्यापक और सम्पूर्ण तीनों सवनों को इस यज्ञ में सुशोभित करो। हे इन्द्र ! तुम इस यज्ञ में पधारे थे। वहाँ मैंने वायु के समान विशिष्ट केश वाले गंधर्वों के दर्शन किये थे ॥ ६ ॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र के निमित्त जो यजमान हवि-योग्य रस को गौओं से दोहन करते हैं तथा जिन यजमानों के अनेक नाम हैं, वे नवीन पराक्रम धारण कर अपने-अपने कार्यों को इन्द्र के निमित्त समर्पित करते हैं ॥ ७ ॥ सूर्य का स्वर्णमय प्रकाश असीमित है। जो इस प्रकाश के आश्रयभूत हैं वे सूर्य श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रशंसित होते हुए, माता द्वारा संतान का आलिंगन करने के समान सर्वव्याप्त आकाश-पृथिवी का आलिंगन करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! पुरातन स्तोत्र उच्चारण करने वाले का कल्याण करो। हमारी सब ओर से रक्षा करो। इन्द्र की जिह्वा रूप वाणी सब को निर्भय बनाती है। इन्द्र स्थिर चित्त हैं। उनके विविध कार्यों को सभी मेधावीजन देखते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह-पूर्वक वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नेताओं में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, उग्र, रणक्षेत्र में शत्रुओं का संहार करने वाले और धन को जीतने वाले हो। आश्रय-प्राप्ति के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १० ॥ [२४]

३९ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः)

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥ १
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥ २
यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३
नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥
सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥ ५ । २४

हे इन्द्र ! तुम संसार के स्वामी हो। हृदय से निकले हुए तथा स्तुति करने वालों के द्वारा सम्पादन किए हुए स्तोत्र तुम्हारे सम्मुख उपस्थित होते हैं। जो स्तुति मेरे द्वारा उत्पन्न हुई है और तुम्हें चैतन्य कर यज्ञ में उच्चारण की जाती है, उसे स्वीकार करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जो स्तुति सूर्योदय से पूर्व उत्पन्न होकर यज्ञ में उच्चारण की जाती हुई तुम्हें चैतन्य करती है, वह कल्याण करने वाली उज्ज्वल स्तुति हमारे पूर्वजों से प्राप्त होने वाली तथा सनातन है ॥ २ ॥ अश्विद्वय की माता ने उन्हें जन्म दिया। उनकी स्तुति के निमित्त मेरी जिह्वा का अग्र भाग चंचल हो उठा है। अंधकार का नाश करने वाले दिन के आरंभ में आते हुए दोनों स्तुतियों से सुसंगति करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! गोधन-प्राप्ति के निमित्त संग्राम करने वाले हमारे पितरों की पृथिवी पर कोई निन्दा नहीं करता। अङ्गिराओं को उन महिमावान, कर्मवान इन्द्र ने समृद्ध गोधन प्रदान किया ॥ ४ ॥ अङ्गिराओं के मित्र इन्द्र जब उनके साथ गोधन की खोज में पर्वत पर गये थे, तब उन अङ्गिराओं के अँधेरे के लिये सूर्य का दर्शन किया ॥ ५ ॥

इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६
ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥ ७
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो वर्हणावत् ॥ ८
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ६ । २६

इन्द्र ने प्रथम दूध देने वाली गौओं पर मधुर रस सींचा । फिर चरण और खुर से युक्त उस गोधन को ले आये । गुफा में स्थित, अन्तरिक्ष में छिपे हुए मायामय असुर को इन्द्र ने दक्षिण हस्त द्वारा पकड़ लिया ॥ ६ ॥ इन्द्र ने रात्रि के गर्भ से उत्पन्न होकर प्रकाश धारण किया । हम पाप-रहित तथा निर्भय स्थान में रहने की इच्छा करते हैं । हे सोमपायी इन्द्र ! तुम स्तोता की इस स्तुति को स्वीकार करो ॥ ७ ॥ यज्ञ के लिए आकाश और पृथिवी को सूर्य प्रकाशित करें । हम पाप से दूर रहने की इच्छा कर करते हैं । हे वसु देवताओ ! तुम स्तुति द्वारा अनुकूल होते हो । इस धन को उदार दानी मनुष्य के लिए दो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न-लाभ वाले युद्ध में उत्साह-पूर्वक बढ़ते हो । तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, नेताओं में श्रेष्ठ, स्तुति सुनने वाले, उग्र, रणक्षेत्र में शत्रुओं को मारने वाले तथा धन को जीतने वाले हो । आश्रय-प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥ [२६]

४० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥ ३

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ । १

हे इन्द्र ! तुम कामनाएं पूर्ण करने वाले हो । इस संस्कारित सोम के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं । आनंददायक अन्न मिश्रित मधुर सोम का पान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा स्तुति किये गए हो । यह छाना हुआ सोम बुद्धि को बढ़ाने वाला है । इसे पीने की इच्छा प्रकट करते हुए इस तृप्त करने वाले सोम से अपने उदर को सींचो ॥ २ ॥ हे मरुतों के स्वामी इन्द्र ! समस्त यजन योग्य देवताओं के सहित हमारे इस हव्ययुक्त यज्ञ को भले प्रकार बढ़ाओ ॥ ३ ॥ हे सत्य के स्वामी इन्द्र ! हमारे द्वारा दिया हुआ प्रसन्नताप्रद, तेजयुक्त निष्पन्न सोम तुम्हारे उदर में प्रविष्ट हो रहा है इसे धारण करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! यह निष्पन्न सोम सब के लिए वरण करने योग्य है । इसे अपने उदर में रखो । यह अत्यंत उज्ज्वल सोम-रस तुम्हारे साथ स्वर्ग लोक में निवास करता है ॥ ५ ॥ [१]

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः । ८
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ६ । २

हे इन्द्र ! तुम स्तुति के योग्य हो । तुम आह्लादक सोम की धारा से हर्षित होते हो । हमारे इस सुसिद्ध सोम का पान करो । तुम्हारे द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुआ अन्न हमको मिलता है ॥ ६ ॥ देवताओं का यज्ञ करने वालों की उज्ज्वल, अक्षुण्ण, सोमयुक्त हवियाँ इन्द्र के समक्ष उपस्थित होती हैं । इन्द्रदेव सोम पीकर बढ़ते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्र का हनन किया था । तुम पास या दूर जहाँ कहीं हो, वहीं से हमारी ओर आते हुए हमारी स्तुति को स्वीकार करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूर, पास और मध्य प्रदेश में बुलाए जाते हो । इस यज्ञ में सोम पीने के निमित्त आओ ॥६॥ [२]

४१ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥२
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५।३

हे वज्रिन् ! होताओं द्वारा बुलाए जाने पर हमारे इस यज्ञ में अपने अश्वों के सहित सोम-पान के निमित्त आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! ऋत्विक् होता तुम्हारे आह्वान के निमित्त हमारे यज्ञ में बैठे हैं । परस्पर मिला कर कुश बिछाये गए हैं । प्रातः सवन में सोम सिद्ध के लिए पाषाण भी प्रस्तुत हैं । इसलिये सोम पीने को यहाँ आओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुति द्वारा प्राप्त होते हो । हम तुम्हारा स्तवन करते हैं । इस यज्ञ में कुश पर विराजमान होओ । तुम वीर हो । हमारे द्वारा दिए गए पुरोडाश का सेवन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र को मारने वाले और स्तुति के योग्य हो । हमारे यज्ञ के सवन-त्रय में उच्चारित स्तुतियों में व्याप्त होओ ॥ ४ ॥ सोम पीने वाले, बल के स्वामी, महान् इन्द्र को, गौओं द्वारा बछड़ों को चाटने के समान, स्तुतियाँ चाटती हैं ॥ ५ ॥ [३]

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९।४

हे इन्द्र ! धन देने के निमित्त इस सोम द्वारा अपने शरीर को पुष्ट करो । मुझ से स्तुति करने वाले की कभी निन्दा न हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना करते हुए हवि-युक्त स्तुति करते हैं । तुम हवि ग्रहण करने के निमित्त हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने अश्वों से प्रेम

करते हो। अपने घोड़ों को हमसे दूर न खोलो। हमारे पास आओ। इस यज्ञ में सोम से हर्ष प्राप्त करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! श्रम के स्वेद से युक्त तुम्हारे बड़े केश वाले अश्व, तुम्हारे बैठने योग्य इस कुश के आसन के सामने, सुख देने वाले रथ से ले आवें ॥ ९ ॥ [४]

४२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥ २
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥ ३
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥ ५

हे इन्द्र! हमारा सोम दुग्ध मिलाया हुआ सुसिद्ध है। उसके समीप पधारो। तुम्हारा रथ घोड़े सहित हमसे मिलने की इच्छा करता है ॥ १॥ हे इन्द्र! पाषाणों से कूट कर छाना गया यह सोम कुश पर रखा है। तुम इसका सामीप्य प्राप्त करो। तुम इसे यथेष्ट मात्रा में पीकर तृप्ति को प्राप्त करो ॥ २ ॥ हमारी स्तुति रूप वाणी इन्द्र के निमित्त उच्चारित होती हुई सोम-पान के लिए इन्द्र का आह्वान करती हुई, यज्ञ-स्थान से चल कर इन्द्र का सामीप्य प्राप्त करे ॥ ३ ॥ स्तोत्रों तथा प्रशंसनीय स्तुतियों द्वारा यज्ञ में सोम पान के निमित्त हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। वे बहुत बार आह्वान किए गए इन्द्र हमारे यज्ञ में पधारें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम सैकड़ों कर्मों से युक्त हो। तुम्हारे निमित्त यह संस्कारित सोम प्रस्तुत है। इसे अपने उदर में धारण करो हमारे लिए बल तथा धन प्रदान करो ॥ ५ ॥ [५]

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८

...स्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ । ६

...हे विद्वन् ! हे इन्द्र ! संग्राम भूमि में तुम शत्रुओं को हराने वाले ...नके धनों को जीतने वाले हो। ऐसा जानते हुए हम तुमसे धन माँगते ... ॥ हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ में आकर इस दुग्धादि मिश्रित किये निष्पन्न ...रस को पीओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! इस सुसंस्कारित सोम-रस को तुम्हारे ...करने के निमित्त ही हम तुम्हारे उदर में प्रविष्ट करते हैं। इससे तुम्हारा ...तृप्त होता हुआ पुष्टि को प्राप्त करेगा ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन हो। ... कौशिक वंशी ऋषिगण तुम्हारे द्वारा रक्षा-साधन प्राप्त करने की कामना ...ते हुए इस सुसंस्कारित सोम को पान करने के निमित्त सुन्दर स्तुति रूप ...ाणी से तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ९ ॥ [६]

४३ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–इन्द्र । छन्द–पंक्ति, त्रिष्टुप्)

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥ १
आ याहि पूर्वीरति चर्षणीरां अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥ २
आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥ ३
आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥ ४
कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥
आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसम्मृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥ ६
...वृषधूतस्य वृष्णा आ यं ते श्येन उशते जभार ।

यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥ ७
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ८ । ७

हे इन्द्र ! अपने जुए युक्त रथ द्वारा हमको प्राप्त होओ। यह पुरातन कालीन सोम तुम्हारे निमित्त ही तैयार हुआ है। तुम अपने प्रिय मित्र रूप अश्व को कुशों के समीप खोलो। यह ऋत्विग्गण सोम-पान के निमित्त तुम्हारा आह्वान कर रहे हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हे प्रभो ! तुम सभी प्राचीन मनुष्यों को लांघ कर यहाँ आओ। अपने अश्व के सहित यहाँ आकर सोम-पान करो। हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दो। यह मित्रता की कामना वाली स्तुतियाँ स्तोताओं के मुख से उच्चारण की जाती हुई तुम्हें बुलाती हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रकाशमान हो। हमारे यज्ञ को बढ़ाने वाले इस यज्ञ में अपने अश्व के सहित शीघ्र पधारो। घृत-अन्न से युक्त हवि सहित सोम पीने के निमित्त स्तुतियों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे सेचन कर्म में समर्थ सुन्दर धुरा युक्त दोनों मित्र-रूप रमणीय अश्व तुम्हें यज्ञ स्थान को प्राप्त कराते हैं। भुने हुए धान्ययुक्त सवन का सेवन करते हुए तुम मित्र-भाव से हम स्तुति करने वालों की स्तुति सुनें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मुझे मनुष्यों की रक्षा करने की सामर्थ्य प्रदान करो। तुम सोम से युक्त रहते हो। मुझे सब का आधिपत्य प्रदान करो। मुझे ऋषि बनाओ और सोम के पीने के योग्य बनाते हुए कभी भी क्षय न होने वाला धन दो ॥ ५ ॥ *हे इन्द्र ! रथ में जुते हुए महान् अश्व तुम्हें हमारे सामने लावें। तुम अभीष्ट वर्षक हो। तुम्हारे अश्व शत्रुओं का नाश करने वाले हैं।* इन्द्र के भ्रातों से चलते हुए वे अश्व दिशाओं की परिधि में चलते हुए आकाश-मार्ग द्वारा हमारे सम्मुख आते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम की कामना करते हो। तुम इच्छित फल देने वाले और पाषाण द्वारा सिद्ध किए सोम को पीने वाले हो। रदंन तुम्हारे निमित्त सोम लाता है। सोम से उत्पन्न हर्ष [illegible] करने वाले व्यक्तियों को धराशायी करते हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! [illegible] युद्ध में उत्साह से बढ़ते हो। धन और ऐश्वर्य से

सुनने वाले हो। भीषण युद्ध में भी शत्रु का विनाश कर धन
। आश्रय प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते
। [७]

४४ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्र । छन्द—बृहती, अनुष्टुप)

ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥ १
र्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २
द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥ ३
जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥ ५ । ८

हे इन्द्र ! यह सोम पाषाणों से कूट कर सिद्ध किया गया है। यह प्रीति को बढ़ाने वाला तथा रमणीय सोम तुम्हारे निमित्त है। तुम अप अश्वों से युक्त रथ पर चढ़ कर हमारे सामने आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तु सोम की इच्छा वाले होकर सूर्य को प्रकाशमान बनाते हो। हे अश्व संयु इन्द्र ! तुम मेधावी तथा हमारी कामनाओं के जानने वाले हो। तुम इन् प्रदान कर हमारे धन की वृद्धि करते हो ॥ २ ॥ हरे रङ्ग वाली किरण युक्त सूर्य लोक और हरे रङ्ग वाली ओषधियों से हरी हुई पृथिवी को धारण करते हैं। हरिद्वर्णा आकाश-पृथिवी के मध्य इन्द्र अपने अश्व के भोजन लेते हैं तथा इसी आकाश-पृथिवी के मध्य घूमते हैं ॥ २ ॥ वर्षा करने वाले इन्द्र उत्पन्न होते ही सब लोकों को प्रकाशित क

हरे अश्वों वाले इन्द्र अपने हाथों में हरे शस्त्र धारण करते हुए शत्रुओं को नष्ट करने वाला वज्र उठाते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्र ने उज्ज्वल, दुग्धादि द्वारा मिश्रित तथा पाषाणों द्वारा निष्पन्न सोम को प्रकट किया। उन्होंने अश्वों को साथ लेकर पणियों द्वारा चुराई हुई गौओं को बाहर निकाला ॥ ५ ॥ [८]

४५ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-इन्द्र । छन्द-बृहती, अनुष्टुप्)

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १
वृत्रखादो वलरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥ २
गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥ ३
आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु ॥ ४
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ । ९

हे इन्द्र ! मोर पङ्खों के समान रोम वाले अश्वों के साथ इस यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ। जैसे शिकारी उड़ते हुए पक्षियों को फाँस लेते हैं। वैसे तुम्हारे मार्ग में बाधक हुआ कोई तुम्हें न फाँस ले। जैसे मार्ग चलने वाले व्यक्ति मरुभूमि को लाँघते हैं, वैसे ही तुम भी सब उपस्थित बाधाओं को लाँघ कर हमारे यज्ञ में शीघ्र पधारो ॥ १ ॥ इन्द्र ने वृत्र का संहार किया, वह मेघों को चीर कर जल को गिराते हैं। इन्होंने शत्रु के नगरों का विध्वंस किया है। इन्द्र घोड़ों को चलाने के निमित्त हमारे सामने ही रथारूढ़ हुए हैं। इन्हीं इन्द्र ने शक्तिशाली वैरियों का संहार किया है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जैसे साधु वीर ग्वाले अपनी गौओं को जौ आदि खाद्य-पदार्थों द्वारा पालते हैं तथा तुम जैसे जल द्वारा गंभीरतम समुद्र को पूर्ण करते हो, वैसे ही यज्ञ-

कर्मानुष्ठान में रत यजमान को भी उसका इच्छित फल देकर पुष्ट करो। जैसे
गौएं घास आदि को प्राप्त करती हैं तथा छोटी नदियाँ बड़े जलाशयों को प्राप्त
करती हैं, वैसे ही यज्ञ में संस्कारित सोम तुम को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥
हे इन्द्र ! जैसे पिता अपने व्यवहार कुशल पुत्र को धन प्रदान करता
है, वैसे ही शत्रुओं को जीतने में समर्थ, धन प्राप्ति योग्य पुत्र हमको प्रदान
करो। जैसे पके फलों को अंकुशाकार टेढ़ा बाँस झाड़ कर गिरा देता है, वैसे
हमारी इच्छा पूर्ण करने वाला फल प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम धन
से युक्त हो। दिव्यलोक के स्वामी, उत्तम वचन वाले तथा सुन्दर यश वाले
हो। बहुतों ने तुम्हारा स्तवन किया है। तुम अपने बल से ही बढ़े हुए हो।
हमको अत्यन्त सुशोभित अन्न देने वाले बनो ॥ ५ ॥ [६]

४६ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्)

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १
महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २
प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३
उरुं गभीरं जनुषाभ्युग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥ ४
यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ । १०

हे इन्द्र ! तुम धनों के स्वामी, अभीष्ट फल देने वाले, युद्ध में बढ़ने
वाले, सामर्थ्य से युक्त, अजर, शत्रुओं को हराने वाले, अत्यन्त युवा, वज्र
धारण करने वाले, शाश्वत और लोक-त्रय में प्रसिद्धि प्राप्त हो। तुम महान्
पराक्रम वाले हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम उग्र कर्म वाले तथा पूजनीय हो।

तुम अपने धन को सेवन करने वाले हो। अपने बल से शत्रुओं को आतंकि
करते हो। तुम सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र स्वामी हो। तुम शत्रुओं का ना
करते हुए सज्जनों को उत्तम वास प्रदान करो॥ २॥ यह इन्द्र सोम यु
हैं। सब प्रकार से असीमित तथा पर्वतों से भी अधिक दृढ़ हैं। यह प्रकाशयु
तथा देवताओं से भी अधिक बलशाली हैं। यह आकाश और पृथिवी से भ
विशाल हैं तथा विस्तृत और महान् अन्तरिक्ष से भी उत्कृष्ट हैं॥ ३॥
इन्द्र! तुम अत्यन्त गंभीर एवं महान् हो। तुम अपने स्वभाव से ही शत्रु
के प्रति विकराल हो जाते हो। तुम सर्व व्यापक एवं स्तुति करने वालों
रक्षा करने वाले हो। जैसे नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं, वैसे ही यह प्राची
काल से व्यवहृत सोम सुसिद्ध होकर इन्द्र की ओर जाने वाला हो॥ ४
हे इन्द्र! गर्भ धारण करने वाली जननी के समान, तुम्हारी कामना क
वाली आकाश-पृथिवी सोम का धारण करती हैं। तुम कामनाओं के पू
करने वाले हो। अध्वर्यु गण उसी सोम का शोधन कर तुम्हारे सेवन करने
लिए उसे प्रेरित करते हैं॥ ५॥ [१०]

४७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्)

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मि त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम्॥ १
सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः॥ २
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः॥ ३
ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः॥ ४
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम्।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम॥ ५। ११

हे इन्द्र ! तुम मरुद्गण के साथी तथा जल की वर्षा करने वाले हो।
हवि रूप अन्न से युक्त सोम को युद्धादि के निमित्त तथा आनन्द वर्द्धन के
लिए पान करो। तुम उस सोम को अपने उदर में सींचो। तुम प्राचीन-काल
ही सोमों के अधीश्वर हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम वीर हो। तुम देवताओं
साथी तथा मरुतों की सहायता को प्राप्त करने वाले हो। तुम वृत्र को
मारने वाले तथा सभी कर्मों को जानने वाले हो। तुम सोम पान करते हुए
हमारे शत्रुओं का संहार करो। हिंसक जीवों को नष्ट कर डालो तथा हमको
सब ओर से निर्भय कर दो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने मित्र रूप देवताओं
और मरुद्गण को साथ लाकर हमारे संस्कारित सोम को पीओ। युद्ध में
सहायता के लिए तुमने जिन मरुतों को साथ लिया था और जिन मरुतों ने
तुम्हें अपना प्रभु स्वीकार किया था, उन्हीं मरुतों ने युद्ध क्षेत्र में तुम्हारा बल
बढ़ाया था। फिर तुमने वृत्र का संहार किया था ॥ ३ ॥ हे मघवन् ! तुम
अश्वों से युक्त हो। जिन मरुद्गण ने तुम्हें असुर को मारने वाले कार्य में
बढ़ाया था, जिन्होंने तुम को शम्बर को मारने के कार्य में शक्तिशाली बनाया
था तथा जिन्होंने गौओं के निमित्त पणियों के साथ हुए संग्राम में तु
प्रवृद्ध किया था, वे मरुद्गण प्रज्ञावान् हैं। वे अब भी तुमको प्रसन्न करने
लगे रहते हैं। तुम उन्हीं मरुतों के साथ आकर सोम को पीओ ॥ ४ ॥
इन्द्र ! तुम मरुतों से युक्त हो। तुम जल वर्षा करते हो। विश्व के नि
तथा शासक हो। तुम विकराल कर्म वाले अत्यन्त शक्तिशाली हो।
तथा अद्भुत हो। हम तुम्हारा अभिनव आश्रय प्राप्त करने के निमित्त
पूर्वक आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

४८ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥
यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ।

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥ ४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ५ । १२

वे जल-वर्षा करने वाले, सद्यःजात इन्द्र हवियुक्त सोम के संग्रह करने वाले के रक्षक हों। सोम-पान की इच्छा करते हुए तुम दुग्धादि से युक्त सोम को देवताओं से पहिले ही पीओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही, प्यास लगने पर पर्वत पर स्थित सोम लता का रस पिया था। तुम्हारी माता अदिति ने तुम्हारे पिता कश्यप के घर में, स्तन पिलाने से पूर्व सोम-रस ही तुम्हारे मुख में डाला था ॥ २ ॥ इन्द्र ने माता से अन्न माँगा तब उन्होंने उसके स्तन में दुग्ध रूप उज्ज्वल सोम का दर्शन किया। शत्रुओं को मारने के लिए देवताओं द्वारा कामना किए गए इन्द्र शत्रुओं को अपने स्थान से हटाते हुए घूमने लगे। उनके अङ्ग-भङ्ग करते हुए, इन्द्र ने वृत्र का संहार आदि बहुत से पराक्रम-युक्त महान् कर्म किये ॥ ३ ॥ वे इन्द्र शत्रुओं के लिए भयंकर हैं। वे अपने पराक्रम से शत्रुओं को शीघ्र हराते हैं। वे अपने रूप को विभिन्न प्रकार का बनाने में समर्थ हैं। उन्होंने अपने सामर्थ्य से त्वष्टा को वश में कर चमस में स्थित सोम का पान किया था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हे मघवन् ! तुम अन्न प्राप्त करने वाले युद्ध में उत्साह द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन और ऐश्वर्य से युक्त, श्रेष्ठ नेतृत्व वाले तथा स्तुतियों को सुनने वाले हो। तुम विकराल रूप वाले, भीषण युद्ध में शत्रुओं का नाश करते तथा धनों को जीतते हो। आश्रय प्राप्त करने के निमित्त हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [१२]

४९ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता—इन्द्र । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।

धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥ १
: पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
त्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २
त्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३
दवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
स्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥ ४
हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
न्तमुग्रतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥ ५ । १३

हे स्तुति करने वाले ! यह इन्द्र महान् हैं, इनकी स्तुति करो। इन्द्र
रचित हुए सब मनुष्य यज्ञ में सोम पीते हुए इच्छित प्राप्त करते हैं।
गण तथा आकाश और पृथिवी ने ब्रह्मा द्वारा विश्व के स्वामी बनाए गए
तम कर्म वाले, पाप-विनाशक इन्द्र को प्रकट किया ॥ १ ॥ युद्धस्थल में
पने तेज से सुशोभित, अश्व जुते हुए रथ पर बैठे हुए बलवानों के युद्ध में
नायक रूप, लड़ती हुई सेनाओं को दो ओर विभक्त करने वाले जिन इन्द्र पर
आक्रमण करने में कोई समर्थ नहीं है, वे इन्द्र उन सेनाओं के अधिपति हैं।
संग्राम में शत्रुओं के बल को क्षीण करने वाले मरुद्गण के सहित वे इन्द्र
अत्यन्त वेगवाले होकर शत्रुओं के जीवन को समाप्त करने में समर्थ हैं ॥ २ ॥
जैसे शक्तिशाली अश्व शत्रुओं के सामने वेग से जाता है, वैसे ही वे सामर्थ्य-
वान् इन्द्र स्पर्द्धायुक्त संग्राम में अधिक वेगवान् होते हैं। वे इन्द्र आकाश-
पृथिवी को श्रेष्ठ धनों से सम्पन्न करते हैं। यज्ञ में की जाने वाली स्तुतियों
के वे पिता तुल्य हैं। वे बुलाए जाने पर अन्न प्रदान करने वाले होते हैं ॥३॥
वे इन्द्र ही आकाश और अन्तरिक्ष के धारण करने वाले हैं। वे ऊपर की
ओर बढ़ाने वाले रथ के समान उन्नत हैं। वे मरुद्गणों की सहायता प्रा
कर चुके हैं। वे रात्रि में अन्धकार करते तथा सूर्य को उदय करते हैं। वे क
के फल रूप अन्न का वैसे ही विभाजन करते हैं जैसे धनवान् पुरुष अप
वायी द्वारा धन का विभाजन करता है ॥ ४ ॥ हे मघवन् ! तुम अन्न

करने वाले युद्ध में उत्साह के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम धन
ऐश्वर्य से युक्त हो। तुम श्रेष्ठ नेतृत्व से युक्त तथा स्तुतियों के श्रव
हो। तुम उग्र कर्म वाले हो। संग्राम में शत्रुओं को विनाश करने में
हो। तुम धनों के विजेता हो। हम, आश्रय-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा
करते हैं ॥ ५ ॥ [

५० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता–इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः॥ १
आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः॥ २
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य॥ ३
इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्॥४
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम्॥ ५

— ये इन्द्र हमारे यज्ञ में आकर इस सोम को पीवें। यह सोम जिन
के निमित्त है, ये विघ्न करने वालों की हिंसा करने में समर्थ हैं। ये म
युक्त इन्द्र यज्ञ कर्त्ताओं को फल की वर्षा करते हैं। ये अत्यन्त व्याप
हमारे द्वारा अर्पित अन्न से वे तृप्त हों। हवि उनको संतुष्ट करे ॥
इन्द्र! तुम्हें यज्ञ में बुलाने के निमित्त हम रथ में अश्व जोड़ते हैं
प्राचीन काल से अश्वों का अनुगमन करने वाले हो। तुम्हारी ठोड़ी
सुन्दर है। वे अश्व तुमको सवार करा कर इस यज्ञ में लावें। तु
उत्तम प्रकार से सिद्ध किए गए सोम-रस को यहाँ आकर पीओ ॥ २ ॥
करने वाले अभीष्टों की वर्षा करने वाले तथा स्तुतियों से प्रसन्न होने

इन्द्र को स्तोता ऋत्विक् श्रेष्ठत्व की प्राप्ति के लिए दुग्धयुक्त सोम द्वारा धारण करते हैं। हे इन्द्र! तुम सोमयुक्त हो। प्रसन्नता पूर्वक सोम को पीओ और स्तुति करने वालों को यज्ञ-सिद्धि के निमित्त गौऐं प्रदान करो ॥ ३ ॥ हमारी कामना को गौ, घोड़े और श्रेष्ठ धन से पूरी करो। धन द्वारा हमको प्रसिद्धि प्राप्त हो। हे इन्द्र! स्वर्ग-सुख की कामना करने वाले कर्मवान् कौशिकों ने मन्त्रों द्वारा तुम्हारा स्तवन किया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम अन्न प्राप्त करते हो। युद्ध में उत्साह द्वारा बढ़ते हुए धन और ऐश्वर्य के स्वामी बनते हो। तुम श्रेष्ठ नेतृत्व शक्ति से युक्त हो तथा स्तुतियों के सुनने वाले हो। तुम उग्र कर्म वाले हो। संग्राम में शत्रुओं का विनाश कर धन जीतते हो। हम आश्रय-प्राप्ति के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [१४]

५१ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—इन्द्र। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री)

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ १
शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥ २
आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥ ३
नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४
पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥ ५ । १५

अभीष्ट प्रदान करके मनुष्यों के पालन कर्त्ता, प्रशंसनीय, धन, बल और ऐश्वर्य से निरंतर बढ़ते हुए, स्तुति करने वालों द्वारा बहुत बार बुलाए गए, अमर शोभायमान रूप वाणी से सुशोभित इन्द्र का स्तोत्र उच्चारण

करें ॥ १ ॥ इन्द्र सैकड़ों कर्म करने वाले, मरुद्वान, अलवान्, संसार के अग्रणी, अन्नदाता, शत्रु के नगरों को ध्वंस करने वाले, युद्ध के निमित्त शीघ्र गमन करने वाले, मेघ को विदीर्ण कर जल गिराने वाले, धन-दान करने वाले, शत्रुओं को हराने वाले तथा स्वर्ग-लाभ कराने वाले हैं। उन इन्द्र को हमारी स्तुति रूप वाणी प्राप्त हो ॥ २ ॥ इन्द्र की रक्षा क्षेत्र में सभी स्तुति करते हैं। वे शत्रुओं के बल को नष्ट करते हैं। वे हृदयपूर्वक कही हुई स्तुतियों का आदर करते हैं। वे यज्ञकर्त्ता यजमान घर में सोम पीकर परमानन्द प्राप्त करते हैं। हे विश्वामित्र ! मरुद्गण को साथ लेकर शत्रुओं का विनाश करने वाले इन्द्र का स्तवन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी तथा मनुष्यों के नायक हो। दैत्यों द्वारा संतापित हुए ऋत्विक् तुम्हारी स्तुति मन्त्रों से भले प्रकार पूजा करते हैं। तुम वृत्र-संहारक कार्य में बल के सहित जाते हो। वे प्राचीन इन्द्र ही इस अन्न के स्वामी हैं। इसलिए मैं उस इन्द्र को ही प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ इन्द्र का अनुशासन मनुष्यों में व्यापक हैं। उनके निमित्त ही पृथिवी महान् ऐश्वर्य धारण करती है। इन्द्र की आज्ञा से सूर्य औषधियों, जलों, मनुष्यों और वृक्षों के उपभोग्य अन्न की रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥   [१९]

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥ ६
इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥ ७
स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥८
अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥ ९
इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥ १०
यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसे ॥ १२ । १६

हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो, ऋत्विग्गण तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों को धारण करते हैं, तुम उन्हें ग्रहण करो । तुम सब को निवास देने वाले मित्र स्वरूप हो । इस नवीन हवि को स्वीकार कर स्तुति करने वालों को अन्न प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे मरुद्वान् इन्द्र ! जिस प्रकार तुमने शर्याति के यज्ञ में सोम-पान किया था, उसी प्रकार इस यज्ञ में भी करो । तुम वीर हो । तुम्हारे ठहरने के स्थान में मेधावी यज्ञकर्त्ता हवि द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! सोम की इच्छा से अपने मित्र मरुतों को साथ लेकर हमारे इस यज्ञ में सुसंस्कारित सोम का पान करो । तुम को पुरुवंशियों ने बुलाया था । तुम्हारे उत्पन्न होते ही सब देवताओं ने महासमर के निमित्त तुम्हें प्रतिष्ठित किया था ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! जल को प्रेरित करने के कारण इन्द्र तुम्हारे मित्र बने हैं । उनको तुमने प्रसन्न किया है । वे, वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र हविदाता यजमान के घर में सुसिद्ध किए गए सोम को तुम्हारे साथ बैठ कर पान करें ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम धनों के ईश्वर हो । तुम इच्छापूर्वक इस सोम को अपने बल से शीघ्र पीओ ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त जो अन्नयुक्त सोम संस्कारित किया है, अपने मन को उसमें लगाओ । तुम सोम-पान करने के पात्र हो । यह सोम तुम्हें आनन्दित करे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! वह सोम तुम्हारी दोनों कुक्षियों में व्याप्त हो । स्तोत्रों से युक्त हुआ सोम तुम्हारे शरीर में रमे । हे वीर ! वह सोम धन के निमित्त तुम्हारी दोनों बाहुओं को पुष्ट बनावे ॥ १२ ॥ [१६]

५२ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः । देवता–इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती)

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १
पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २
पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४
माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥ ५ । १७

हे इन्द्र ! यव मिश्रित, दही, सत्तू और पुरोडाश से युक्त पाधाए द्वारा प्रस्तुत हमारे सोम को प्रातः सवन में ग्रहण करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! परिपक्व पुरोडाश का भक्षण करो। यह यज्ञ-योग्य पुरोडाश तुम्हारे निमित्त प्रस्तुत होता है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हमारे इस पुरोडाश को ग्रहण करो। हमारी इस सुनने योग्य वाणी को पत्नी के प्रेमी पति के समान सेवन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन काल मे विख्यात हो। हमारे पुरोडाश का प्रातःसवन में भक्षण करते हुए अपने कर्म में महत्ता प्राप्त करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मध्य सवन वाले यवादि युक्त श्रेष्ठ पुरोडाश को यहाँ पधार कर सेवन करो। तुम्हारे सेवक स्तुति के निमित्त उत्कंठित रहते हैं। तुम्हारी सेवा के लिए इधर उधर गमन करने वाले स्तोता श्रेष्ठ मन्त्रों से जब तुम्हारी उपासना करते हैं, तभी तुम पुरोडाशादि को ग्रहण करते हो ॥ ५ ॥ [१७]

तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥ ६
पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ७
प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ । १८

हे इन्द्र ! तुम्हारी बहुतों ने स्तुति की है। तुम तीसरे सवन में हमारे भूँजे यवादि युक्त पुरोडाश का सेवन करो। तुम ऋभुओं से युक्त तथा धन और पुत्रों से युक्त हो। हम हवियों से युक्त स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी पूजा करते है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम पूषा देवता से युक्त हो। तुम्हारे लिए हम दधि-मिश्रित सत्तू तैयार करते हैं। तुम अश्ववान् के निमित्त हम भूँजा हुआ जौ प्रस्तुत करते हैं। मरुद्गण के साथ आकर पुरोडाश ग्रहण करो। तुमने वृत्र

को मारा था। तुम मेधावी हो। इस सोम का पान करो ॥ ७ ॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के निमित्त भुने जौ प्रस्तुत करो। यह नायकों में महान् हैं। इन्हें पुरोडाश दो। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को दूर करने वाले हो। तुम्हारे निमित्त नित्य प्रति की जाने वाली स्तुतियाँ सोम-पान के कर्म में तुम्हें प्रोत्साहित करें ॥ ८ ॥ [१८]

५३ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः। देवता-इन्द्रापर्वतौ आदि। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप, जगती, गायत्री बृहती)

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥१
तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥ २
शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३
जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४
परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥ ५ । १९

हे इन्द्र ! हे पर्वत ! अपने श्रेष्ठ रथ पर उत्तम संतान युक्त अन्न लाओ। तुम प्रकाशमान हो। हमारे यज्ञ में आकर हवि-सेवन करो। हवियों द्वारा पुष्ट होते हुए हमारी उत्तम स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ १ ॥ हे इंद्र ! कुछ समय तक इस यज्ञ स्थान में सुख से रहो। हमारे यज्ञ से जाओ मत। रमणीय निष्पन्न सोम-रस द्वारा हम तुम्हारा यज्ञ करते हैं। तुम अत्यन्त बली हो। पिता के वस्त्रों को मीठे वचन बोलता हुआ बालक जैसे पकड़ लेता है, वैसे ही सुन्दर स्तोत्रों द्वारा हम तुम्हारे वस्त्रों को पकड़ते हैं ॥ २ ॥ हे अध्वर्युओं ! हम दोनों उन इन्द्र की स्तुति करेंगे। तुम हमको

सदुपदेश करो। हम इन्द्र के प्रति श्रद्धावान् हुए उनका स्तवन करें। तुम यजमान के कुश रूप आसन पर विराजमान होओ। हमारे द्वारा प्रदत्त उक्थ (स्तुति) इन्द्र के लिए आकर्षित करने वाला हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! स्त्री ही पुरुषों का वास स्थान है। रथ युक्त अश्व तुमको उस गृह में पहुँचावें। हम जब कभी तुम्हारे निमित्त सोम को संस्कारवान् करें, तब हमारे द्वारा अभिषिक्त अग्नि दूत रूप से तुमको प्राप्त हों ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूर देश में गमन करते हुए हमारे यहाँ पधारो। तुम सब का पोषण करने वाले हो तुम्हारा प्रयोजन दोनों स्थानों पर है। जिस घर में स्त्री है, वहाँ सोम है। तुम रथ पर आरोहण कर घर को प्राप्त होकर घोड़ों को खोल दो ॥ ५ ॥ [१६]

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६
इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७
रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम् ।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८
महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९
हंसा इव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥ १०।२०

हे इन्द्र ! तुम यहाँ रुक कर सोम पीओ। सोम पीकर ही घर को गमन करना। तुम्हारे गृह में सौभाग्यवती सुरमणीया स्त्री है। तुम घर जाने के निमित्त रथ पर चढ़ो और वहाँ अश्वों को विमुक्त करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यह "भोज" और "सुदास" राजा की ओर से यज्ञ करते हैं। यह "अङ्गिरा" "मेधातिथि" आदि विविध रूप वाले हैं। देवताओं में अत्यन्त बली रुद्रोत्पन्न मरुद्गण अश्वमेध यज्ञ में मुझ "विश्वामित्र" को महान धन दें और आयु को बढ़ावें ॥ ७ ॥ इन्द्र जैसी इच्छा करते हैं, वैसा ही रूप बना लेते

हैं। वे अपने देह को माया द्वारा विविध रूप का बनाने में समर्थ हैं। वे ऋतुओं को प्रेरित करने वाले होकर भी सोम-पान करने में किसी ऋतु विशेष का ध्यान नहीं रखते। वे अपनी ही स्तुतियों द्वारा बुलाये जाकर तीनों सवनों में पहुँचते हैं॥ ८ ॥ अत्यन्त समर्थ, तेजस्वी, तेजों को उत्पन्न करने वाले, अध्वर्यु आदि को उपदेश देने वाले "विश्वामित्र" ने जल से पूर्ण सागर के वेग को बाँध दिया। जब उन विश्वामित्र ने "पिजवन-पुत्र सुदास" को यज्ञ-कर्म में लगाया तब इन्द्र ने कौशिकों के प्रति अपना उत्तम व्यवहार व्यक्त किया॥ ९ ॥ हे विद्वानो! हे परमहंसो! हे ऋषियो! हे सब को देखने वालो! तुम यज्ञानुष्ठान में पाषाणों से सोम के संस्कारित होने पर स्तुतियों से देवताओं को प्रसन्न करो। हंसों के समान श्लोकों का उच्चारण करो। देवताओं के साथ मधुर सोम-रस पीओ॥ १० ॥ [२०]

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११
य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ १२
विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। करदिन्नः सुराधसः ॥ १३
किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ॥ १४
ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥ १५ । २१

हे कौशिको! तुम अश्व के पास जाकर उसे उत्तेजना दो। "सुदास" राजा के घोड़े को धन के निमित्त छोड़ो। इन्द्र ने विघ्न करने वाले वृत्र को पूर्व, पश्चिम, उत्तर में संहार किया। "राजा सुदास" श्रेष्ठ भू भाग में यजन कर्म करें॥ ११ ॥ हे कौशिको! हमने आकाश-पृथिवी के संहयोग से इन्द्र की पूजा की है। स्तुति करने वाले विश्वामित्र का इन्द्र के प्रति कहा गया स्तोत्र भरतवंशियों की रक्षा करे॥ १२ ॥ विश्वामित्र के वंशजों ने वज्रधारी इन्द्र

का स्तवन किया है। वे इन्द्र हमको श्रेष्ठ धन से सुशोभित करें ॥ १३
हे इंद्र ! "कीकट" लोग, जो कि अनार्य हैं, वे गौओं का क्या उपभोग कर
हैं ? वे न तो दुग्ध ही प्राप्त करते हैं न घृत ही निकालते हैं। हे इन्द्र ! उ
गौओं को हमारे पास ले आओ। अधिक धन प्राप्त करने की आशा से ध
उधार देने वालों के धनों को भी हमें प्राप्त कराओ ॥ १४ ॥ अग्नि व
चैतन्य करने वाले ऋषियों द्वारा सूर्य से प्राप्त कर हमको दी गई अज्ञान
हटाने वाली, रूप और शब्द से युक्त, लपकती हुई वाणी शब्द द्वारा ज्ञान
प्रकट करती है। सूर्य की दुहिता वाणी अमृत रूप अन्न का विस्तार करत
है ॥ १५ ॥ [२१]

ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
सा पक्ष्या नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥ १६
स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥ १७
बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ १८
अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥ १९
अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥ २० । २२

लपकती हुई गद्य-पद्य रूपिणी वाणी सर्वत्र विद्यमान ज्ञान रूप अ
को हमें प्रदान करे। दीर्घजीवी ऋषियों ने जिस वाणी को सूर्य से प्राप्त क
हमको प्रदान किया है, वह सूर्य की दुहिता वाणी हमको नया जीवन प्रदा
करे ॥ १६ ॥ दोनों वृषभ स्थिर होओ। धुरा दृढ़ हो। जिससे दण्ड न
न हो। जुआ टूट न जाय। दोनों कीले उखड़ें नहीं। वे इन्द्र रथ को गिर
से पहले ही बचावें। हे अरिष्टनेमि रथ ! तू हमको मङ्गलमय मार्ग पर
जाता हुआ सदा प्राप्त हो ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बलवान् हो

रों को वल दो। हमारे वैलों को वलिष्ट वनाओ हमारे पुत्र-पौत्रादि
वी होने के निमित्त शक्ति प्रदान करो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! रथ के
काष्ठ के सार को दृढ़ बनाओ। शीशम के काष्ठ को भी दृढ़ करो।
तुम हमारे द्वारा मजबूती से वनाए गए हो अतः दृढ़ होओ। कहीं
समनशील रथ से हमको अलग मत कर देना ॥ १६ ॥ यह रथ वृक्षों
ठ द्वारा वनाया गया है। यह हमको छोड़ न दे। जब तक हमको घर
हो तव तक यह रथ चलता रहे और जवतक उससे घोड़ों को खोल न
जाय तव तक हमारा कल्याण हो ॥ २० ॥

[२२]

ीतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ २१
रशुं चिद्ध तपति शिम्बलं चिद्धि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येपन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२
न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥ २३
इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥ २४ । २३

हे वीर ! हे शत्रु-संहारक इन्द्र ! तुम शत्रुओं का नाश करने के कार्य में वीरों से युक्त उत्तम सेनाओं से हमको युक्त कर विजय प्राप्त कराओ और प्रसन्न करो। हमसे वैर करने वाला भले प्रकार नीचा देखे। जिससे हम द्वेष करें उसका प्राण उसका त्याग करे ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! जैसे तपती हुई पतीली उबलती हुई फेन निकालती है, वैसे ही हमारे शत्रु मुख से झागों को निकालें,जैसे सेमर का पुष्प अनायास ही छिन्न भिन्न हो जाता है, वैसे ही हमारे शत्रुओं के शरीर कट कर गिर जाँय। लोहार जैसे अग्नि पर कुठार को तपाता है, वैसे ही शत्रु सेना संतप्त हो ॥ २२ ॥ हे मनुष्यो ! शस्त्रादि के सामने अपने प्राणों का अन्त करने वाले के अज्ञान को तुम नहीं जानते। वे लोग वशीभूत हुए अपने आपको पशु के समान आगे ले जाते हैं। ज्ञानी पुरुष अज्ञानी पुरुष से सामना करके हँसी नहीं उड़वाते। क्योंकि अश्व की स

गपा नहीं करता ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! यह भरतवंशी पार्थक्य जानते हैं और मेल भी जानते हैं। वे युद्ध काल में प्रेरित अश्व के समान धनुष की प्रत्यंचा का घोष करते हैं ॥ २४ ॥ [२१]

५४ सूक्त [पाचवाँ अनुवाक]

(ऋषि—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥ १
महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन्।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥ २
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम्।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ३
उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४
को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या का समेति।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ । २८

अध्ययन रूप मंथन द्वारा प्रतिपादित स्तोत्र स्तुति के योग्य है। इसका महान् यज्ञ में बारंबार उच्चारण किया जाता है। अपने घर तेज से परिपूर्ण हुए अग्निदेव इस स्तोत्र को श्रवण करें। वे अपने दिव्य तेज से निरन्तर पूर्ण रहते हुए हमारी स्तुतियों पर ध्यान दें ॥ १ ॥ हे स्तुतिकर्त्ता ! तुम आकाश-पृथिवी की अत्यन्त शक्ति को समझते हुए उन्हें पूजो। मैं सम्पूर्ण भोगों की कामना करता हूँ। मेरा मन सब ओर जाता है। अपने अर्चन की कामना वाले देवगण मनुष्यों के यज्ञों में जाकर आकाश-पृथिवी को पूर्ण करते हुए आनन्द प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ हे आकाश, पृथिवी ! तुम्हारा कर्म सत्य हो। तुम हमारे इस महान् यज्ञ को निर्विघ्न पूर्ण कराने में समर्थ होओ। हे अ

में आकाश और पृथिवी को प्रणाम करता हूँ। हवि रूप अन्न द्वारा सेवा करता हुआ मैं श्रेष्ठ धन माँगता हूँ ॥ ३ ॥ हे सत्य धर्म वाली आकाश-पृथिवी! प्राचीन सत्यवक्ता ऋषियों ने तुमसे हित करने वाला अभीष्ट प्राप्त किया था। हे पृथिवी! रणक्षेत्र को प्रस्थान करने वाले सभी वीर तुम्हारी महिमा को जानते हुए तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ उसके सत्य के कारण रूप का ज्ञाता कौन है? उस समझे हुए विषय को प्रकट करने वाला कौन है? वह सरल मार्ग कौन-सा है जो देवताओं का सामीप्य प्राप्त कराये। दिव्य लोक के निचले स्थान में नक्षत्रादि प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। वे हमको उत्कृष्ट एवं कठिन व्रतों में लगाते हैं ॥ ५ ॥ [२४]

कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥ ६
समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥ ७
विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्विभ्रती न व्यथेते।
एजद् ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥ ८
सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥ ९
इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥ १० । २५

मनुष्यों के द्रष्टा सूर्य आकाश-पृथिवी को सब ओर देखते हैं। जल के प्राकट्य स्थान अन्तरिक्ष में यह हर्षोत्पादन करने वाली, रस से युक्त हुई, समान कर्म वाली आकाश-पृथिवी अनेक स्थान पर घोंसला रखने वाले पक्षियों के समान विभिन्न स्थानों को व्याप्त करती हैं ॥ ६ ॥ परस्पर आकर्षण में बंधी हुई, पृथक् रह कर भी साथ रहने वाली, जिनका कभी विनाश नहीं होता, ऐसी आकाश-पृथिवी, कभी भी नष्ट न होने वाले अन्तरिक्ष में दो तरुणी बहिनों के समान एक आत्मा वाली हुई सृष्टि कर्म में समर्थ बन कर

स्थित हैं ॥ ७ ॥ यह आकाश-पृथिवी सभी भौतिक पदार्थों को प्रकट करती हुई, सूर्य, इन्द्र, नदी, समुद्र, पर्वत आदि को धारण करके भी नहीं थकतीं। स्थावर और जङ्गम पदार्थों से युक्त विश्व केवल पृथिवी को ही प्राप्त करता और चलायमान पशु पक्ष्यादि जीव आकाश-पृथिवी में ही व्याप्त होते हैं ॥८॥ हे आकाश ! तुम सब की जन्मदात्री हो। तुम्हीं सब का पालन करने वाली हो। तुम्हारी प्राचीनता, पूर्व क्रम से विकाश और हमारा उत्पादन इस सबका एक ही कारणभूत हैं। आकाश भगिनी रूपा है। हम उसका चिंतन करते हैं। तुम्हारी स्तुति करने वाले देवगण अपने-अपने वाहनों पर चढ़े हुए तुम्हारा स्तवन सुनते हैं ॥ ९ ॥ हे आकाश-पृथिवी ! तुम्हारे स्तोत्र को भले प्रकार गाते हैं। सोम को उदरस्थ करने वाले, अग्निरूप जिह्वा वाले, नित्य युवा, तेजस्वी अपने-अपने कर्मों को प्रकट करने वाले मित्रादि देवगण हमारी स्तुतियों को श्रवण करें ॥ १० ॥ [२५]

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥ ११
सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२
विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥ १३
विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥ १४
इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५।२६

दान से निमित्त सुवर्ण को हाथ में लेने वाले, उत्तम वचन वाले सूर्य यज्ञ के तीनों सवनों को आकाश से आकार प्राप्त करते हैं। हे सूर्य ! तुम स्तुति करने वालों के स्तोत्र को स्वीकार करो। फिर सभी इच्छित धनों को हमारे निमित्त प्रेरित करो ॥ ११ ॥ कल्याण के हाथ वाले, सुन्दर विध के

रचियता,.सत्य प्रतिज्ञ,धन से युक्त त्वष्टा हमारी रक्षा के लिए आवश्यक साध
दें। हे ऋभुगण! तुम पूषा से युक्त होकर हमको धन देते हुए पुष्ट बनाओ
पाषाण को सोमाभिषेक के निमित्त प्रेरित करने वाले ऋत्विक् इस अनुष्ठान क
करते हैं ॥ १२ ॥ दमकते हुए रथ वाले, शस्त्रों से युक्त, तेजस्वी, शत्रुओं
नाशक, यज्ञ में प्रकट, गतिमान् मरुद्गण और वाक् देवता हमारी स्तुति
को श्रवण करें। हे मरुतो! हमको पुत्र से सम्पन्न धन प्रदान करो ॥ १३
धन का कारण भूत यह स्तोत्र और पूजा के योग्य हवि इस महान् यज्ञ
अनेक कर्म करते वाले विष्णु को प्राप्त हो। सब को जन्म देने वाली दिशाएँ
जिन विष्णु को नष्ट नहीं कर सकतीं, वे विष्णु अत्यन्त सामर्थ्यवान् हैं
उन्होंने अपने एक पाँव से सम्पूर्ण संसार को ढक लिया था ॥ १४ ॥ स
बलों से युक्त हुए इन्द्र ने आकाश और पृथिवी दोनों को अपनी महत
सामर्थ्य से पूर्ण किया। शत्रु के गढ़ों को तोड़ने वाले वृत्र संहारक और शत्रुओं
को जीतने वाली सेना से युक्त इन्द्र पशु-सम्पत्ति को भले प्रकार संग्रहीत क
हमको प्रदान करें ॥ १५ ॥ [२६]

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥ १६
महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥ १७
अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥ १८
देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्वन्तरिक्षम् ॥ १९
शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०
सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥ २१

स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही

नः ॥ २२ । २७

हे अभिद्रय ! तुम हमसे बंधुत्व स्थापन की इच्छा करते हो । तुम हमारा पालन करने वाले बनो । हे अधियो ! तुम्हारा निरादर करने में कोई समर्थ नहीं है । तुम हमको श्रेष्ठ धन देने में समर्थ हो । हम तुमको हव्य-दान करते हैं । उत्तम कर्मों द्वारा हमारी रक्षा करो ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! हे विद्वानो ! तुम्हारा कर्म अत्यन्त श्रेष्ठ है, जो तुम इन्द्र की सेवा में रहते हुए ऐश्वर्य या विजय प्राप्त करते हो । हे इंद्र ! तुम बहुतों द्वारा आहूत किए हुए हो । तुम्हारी मित्रता असुरों को प्राप्त है । धन-लाभ के निमित्त हमारे इस स्तोत्र को स्वीकार करो ॥ १७ ॥ सदा गतिमान सूर्य, देवमाता अदिति, देवगण और अहिंसायुक्त वरुण हमारा पालन करें । वे हमारे मार्ग से अहित-कारी विघ्नों को दूर भगावें । हमारे घर को पशु और संतान आदि से सम्पन्न बनावें ॥ १८ ॥ यज्ञानुष्ठानों के निमित्त अग्नि देवताओं के दूत रूप से प्रसिद्ध हैं । वे हमको कर्म साधन से युक्त और अपराध-वृत्ति से रहित करें । आकाश, पृथिवी, जलाशय, सूर्य और नक्षत्रों से युक्त अन्तरिक्ष हमारे स्तोत्रों को सुनें ॥ १९ ॥ ये मरुद्गण इच्छित फलों की वर्षा करने वाले हैं । ये अभिलाषियों का अभीष्ट पूर्ण करने वाले अचल पर्वत हवि-युक्त अन्न से प्रसन्न होकर हमारे स्तोत्र पर ध्यान दें । अदिति अपने पुत्र देवताओं के सहित हमारी स्तुति सुने और मरुद्गण हमारा मङ्गल करने वाला धन प्रदान करें ॥ २० ॥ हे अग्ने ! हमारा पथ सरल हो । हम अन्न-यात्रा में सफलता प्राप्त करें । देवताओ ! औषधियों को मधुर-रस से पूर्ण करदो । हे अग्ने ! हम तुम्हारे मित्र हो गए हैं, अतः हमारे धन का नाश न हो । हम धन को उत्पन्न करने वाले अन्न को प्राप्त करें ॥ २१ ॥ हे अग्ने ! इस यज्ञ-योग्य हवि का स्वाद लो । हमारे निमित्त अन्न का प्रकाश करो । अन्न हमारे लिए प्रत्यक्ष हो । युद्ध करने वाले सभी बाधक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और प्रसन्न मन से हमारे सब दिनों को प्रकाश से पूर्ण करो ॥ २२॥ [२७]

५५ सूक्त

(ऋषि-प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । देवता-विश्वेदेवाः आदि
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

सः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
ता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १
ो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
ुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३
समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४
आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ५ । २८

जब प्राचीन उषा उदय काल के तेज से संतप्त होती हैं तब आकाश में अमरत्व प्राप्त आदित्य उदय होते हैं। सूर्योदय होने पर यजमान यज्ञ करते हुए देवताओं का सामीप्य प्राप्त करते हैं। वे सब महान् देवता सम बल से युक्त हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! देवगण हमारा विनाश न करें। दे प्राप्त पितरगण हमको न मारें। यज्ञ की प्रेरणा देने वाले सूर्य आकाश-पृथि के मध्य उदित होते हैं, वे हमारी हिंसा न करें। उन सब देवताओं का म बल एक ही है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हमारी बहुत प्रकार की कामनाएं वि दिशाओं में भ्रमण करती हैं। उन उत्तम प्रकार से प्रकट हुए अग्नि के हम अपने प्राचीन स्तोत्र को चैतन्य करते हैं। अग्नि के भले प्रकार प्रदीप्त पर हम स्तोत्र-उच्चारण करेंगे। सब देवताओं का महान् पराक्रम है ॥ ३ ॥ वे प्रजा स्वामी अग्निदेव, सभी स्थानों में यज्ञादि कर्मों के स्थापित किए जाते हैं। वे वेदी पर रमण करते हैं। अरणियों से प्र हैं। इनके माता-पिता पृथिवी और आकाश हैं। आकाश इनका व

पोषण करता है और पृथिवी इनको निवास देती है। देवताओं का बल एक समान ही है ॥ ४ ॥ पुरातन औषधियों में रमे हुए और नवीन औषधियों में गुण के अनुरूप स्थित अग्निदेव फली-फूली औषधियों के अन्तर में वास करते हैं। वे औषधियाँ, बिना वीर्य-दान प्राप्त किये, अग्नि द्वारा गर्भवती हुई फल-पुष्पादि को उत्पन्न करने में समर्थ हैं। यह सब अग्निदेव का सामर्थ्य है। सभी देवताओं का बल समान है ॥ ५ ॥ [२८]

शयुः परस्तादध नु द्विमातावन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६
द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ८
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महाश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ९
विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १० । २९

दोनों माता-पिता रूप आकाश-पृथिवी के मध्य सूर्य प्रकट होते हुए पश्चिम में शयन करते हैं। वे सूर्य उदय-काल में अकेले ही आकाश में अबाध गति से विचरण करते हैं। यह कर्म मित्र वरुण की प्रेरणा से होता है। वे दोनों समान बल वाले हैं ॥ ६ ॥ वे अग्नि आकाश-पृथिवी रूप दोनों लोकों के रचयिता हैं। वे यज्ञ में भले प्रकार रमण करते हैं और आकाश में सूर्य रूप से विचरते हैं। वे ही इस पृथिवी पर वास करते हुए सब कर्मों के कारणरूप हैं। स्तोतागण सुन्दर वचनों द्वारा श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं। उन सब देवताओं का पराक्रम एक-सा है ॥ ७ ॥ अति वीरता पूर्वक युद्ध करने वाले पुरुष के सामने जो कोई आता है, वही उससे हार कर पराङ्मुख होता है, उसी प्रकार अग्नि के सम्मुख जो भी आता है वही पराङ्मुख होता है

५५ सूक्त

(ऋषि—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा । देवता—विश्वेदेवाः आदि
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १
मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३
समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४
आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ५ । २८

जब प्राचीन उषा उदय काल के तेज से संतप्त होती है तब आकाश में अमरत्व प्राप्त आदित्य उदय होते हैं। सूर्योदय होने पर यजमान यज्ञ कर्म करते हुए देवताओं का सामीप्य प्राप्त करते हैं। वे सब महान् देवता समान बल से युक्त हैं॥ १॥ हे अग्ने! देवगण हमारा विनाश न करें। देवत्व प्राप्त पितरगण हमको न मारें। यज्ञ की प्रेरणा देने वाले सूर्य आकाश-पृथिवी के मध्य उदित होते हैं, वे हमारी हिंसा न करें। उन सब देवताओं का महान् बल एक ही है॥ २॥ हे अग्ने! हमारी बहुत प्रकार की कामनाऐं विभिन्न दिशाओं में भ्रमण करती हैं। उन उत्तम प्रकार से प्रकट हुए अग्नि के प्रति हम अपने प्राचीन स्तोत्र को चैतन्य करते हैं। अग्नि के भले प्रकार प्रदीप्त होने पर हम स्तोत्र-उच्चारण करेंगे। सब देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है॥ ३॥ वे प्रजा स्वामी अग्निदेव, सभी स्थानों में यज्ञादि कर्मों के निमित्त स्थापित किए जाते हैं। वे वेदी पर रमण करते हैं। अरणियों से प्रकट होते हैं। इनके माता-पिता पृथिवी और आकाश हैं। आकाश इनका वर्षा द्वारा

पोषण करता है और पृथिवी इनको निवास देती है। देवताओं का बल ए
समान ही है ॥ ४ ॥ पुरातन औषधियों में रमे हुए और नवीन औषधियों
गुण के अनुरूप स्थित अग्निदेव फली-फूली औषधियों के अन्तर में वास करते
हैं। ये औषधियाँ, बिना वीर्य-दान प्राप्त किये, अग्नि द्वारा गर्भवती हुई फल
पुष्पादि को उत्पन्न करने में समर्थ हैं। यह सब अग्निदेव का सामर्थ्य है
सभी देवताओं का बल समान है ॥ ५ ॥ [२८]

शयुः परस्तादध नु द्विमातावन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६
द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७
शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ८
नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ९
विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १० । २९

दोनों माता-पिता रूप आकाश-पृथिवी के मध्य सूर्य अन्य होते हुए
पश्चिम में शयन करते हैं। ये सूर्य उदय-काल में अकेले ही आकाश में अबाध
गति से विचरण करते हैं। यह कर्म मित्र वरुण की प्रेरणा से होता है। ये
दोनों समान बल वाले हैं ॥ ६ ॥ वे अग्नि आकाश-पृथिवी रूप दोनों लोकों
के रचयिता हैं। वे यज्ञ में भले प्रकार रमण करते हैं और आकाश में सूर्य
रूप से विचरते हैं। वे ही इस पृथिवी पर वास करते हुए सब कर्मों के
कारणरूप हैं। स्तोतागण सुन्दर वचनों द्वारा श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण
हैं। उन सब देवताओं का पराक्रम एक-सा है ॥ ७ ॥ अति वीरता पूर्वक
करने वाले पुरुष के सामने जो कोई आता है, वही उससे
होता है, उसी प्रकार अग्नि के सम्मुख जो भी आता है वह

ता है। ये सर्वज्ञाता अग्निदेव सर्वत्र व्यापते हैं। उन सब देवताओं का एक
ही महान् बल है ॥ ८ ॥ जैसे सूर्य आकाश और पृथिवी के मध्य अपनी
अत्यन्त सामर्थ्य से व्याप्त हैं, वैसे ही देवताओं के दूत और प्राणीमात्र का
पालन करने वाले अग्नि औषधियों में व्याप्त हैं। ये विविध रूपधारी, हमको
अत्यन्त कृपा-दृष्टि से देखें। सब देवों का महान् बल एक ही है ॥ ९ ॥ सर्व
व्यापक, सब के पालक, हितैषी, कभी क्षीण न होने वाले अग्नि तेज को
धारण करते हुए पृथिवी आदि लोकों की रक्षा करते हैं। यह अग्नि समस्त
भूतों को जानते हैं। यह सब देवों में अद्वितीय एक ही महान् शक्ति
है ॥ १० ॥ [२६]

नाना चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ११
माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १२
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १३
पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १४
पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १५ । ३

कृष्ण वर्ण वाली रात्रि और तेजमय उज्ज्वल उषा दोनों बहिनें, स
से उत्पन्न होती हुए जागृति और निद्रा के नियम में जीवों को डालने वा
विविध रूपों से युक्त हैं। उन दोनों में एक तेज से चमकती तथा दू
अंधकार से काली रहती है। इन सब देवताओं में उन सूर्य रूप अग्नि
एक ही महान् बल है ॥ ११ ॥ पृथिवी और आकाश दोनों ही माता
पुत्री के समान हैं। पृथिवी सब जीवों को उत्पन्न कर उनका पालन कर
कारण माता तथा आकाश से वर्षा के जल को दूध के समान ग्रहण कर

कारण पुत्री रूप है । मैसे ही आकाश मेघ, वर्षा आदि से जीवों के पालन कर्त्ता होने से माता और पृथिवी के जल को दूध के समान खींच कर पीने से पुत्री के समान है । यह दोनों ही गौ के समान अन्न, जल रूप से दूध देने वाली हैं । उन आकाश और पृथिवी का हम स्तवन करते हैं । यह दोनों देवताओं के एक ही महान् बल द्वारा समर्थ हुई हैं ॥ १२ ॥ गौ के समान रस-वर्षा-करने वाली आकाश पृथिवी के जल को मेघ रूप से धारण करती है । उस समय यह पृथिवी के जल से उत्पन्न मेघ को बछड़े के समान धारती है और विद्युत गर्जन के रूप से ध्वनि करती हुई भूमि को अन्नोत्पादक तथा पोषक वर्षा के जल से भले प्रकार सींचती है । यह सब देवताओं के एक महान् बल का ही परिणाम है ॥ १३ ॥ शरीर को विविध प्रकार से आकाश पृथिवी ढकती हैं । उन्नत होकर तीनों लोकों को व्याप्त करने वाले सूर्य को धारती हुई-सी चलती हैं । सत्य के कारणभूत सूर्य के स्थान को जान कर हम उनकी स्तुति करते हैं । देवताओं का महान् बल एक ही है ॥ १४ ॥ दो पाँवों के समान गमनशील दिन रात्रि आकाश और पृथिवी के मध्य व्याप्त हैं । ये दोनों अद्भुत, हैं, एक अन्धकार का और दूसरी उजाले का नाश करने वाली है । उन दोनों का मिलन मार्ग पापी और पुण्यकर्मा दोनों को ही प्राप्य है । देवताओं का एक ही महान् बल है ॥ १५ ॥   [१०]

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १६
यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः ।
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७
वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १८
देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १९
मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २०

इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २१
निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २२ । ३१

वर्षा करने के कारण सब को प्रीति प्राप्त करने वाली, शिशु-विहीना, आकाश-व्यापिनी सदा युवती और नवीन स्वरूप वाली दिशाएँ कम्पायमान होती हैं। यह देवताओं की एक महान् सामर्थ्य का फल है ॥ १६ ॥ वर्षणशील मेघ गौ के मध्य स्थित वृषभ के समान दिशाओं में शब्द करता हुआ जल वर्षा करता है। इन्द्र ही उसे इस कार्य में प्रेरित करते हैं। वे इन्द्र सब के द्वारा उपासना करने के योग्य हैं और सब के स्वामी हैं। देवताओं का सामर्थ्य एक समान है ॥ १७ ॥ हे मनुष्यो ! हम इन्द्र के सुशोभित घोड़ों का उत्तम वर्णन करते हैं। देवगण इन इन्द्र के अश्वों को जानते हैं। दो-दो महीनों को मिला कर वर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं। हेमन्त और शिशिर को एक कर देने पर पाँच ऋतुएँ मानी जाती हैं। यह इन्द्र के अश्व रूप ऋतुएँ मानी जाती हैं। यह इन्द्र के अश्व रूप ऋतुएँ सूर्यरूप इन्द्र का वहन करती हैं। देवताओं का महान् सामर्थ्य एक ही है ॥ १८ ॥ त्वष्टा देव अन्तर्यामी होने से सब को प्रेरित करने वाले हैं। वे विभिन्न रूप वाली प्रजाओं को उत्पन्न करने वाले हैं। तथा वही उनका पोषण करते हैं। यह सब लोक त्वष्टा के ही हैं। देवताओं का महान् बल एक समान है ॥ १९ ॥ इन्द्र ने ही इन महत्तावान् आकाश पृथिवी को सुसंगत कर, पशु-पक्षियों को प्रकट करने वाला बनाया। वे आकाश पृथिवी दोनों ही, इन्द्र के तेज से व्याप्त हैं। वे सामर्थ्यवान् इन्द्र शत्रुओं को हरा कर उनके धन को ले लेने में प्रसिद्ध हैं। इनके साथी देवताओं का महान् बल एक ही है ॥ २० ॥ विश्व के धारण करने वाले, हमारी पृथिवी और आकाश के भी स्वामी, हित चिंतक मित्रों से युक्त इन्द्र स्वयं तेजस्वी हुए प्राणियों का पालन करते हैं। मरुद्‌गण युद्ध का अवसर प्राप्त होने पर इन्द्र के आगे चलते हैं और दिव्य स्थानों पर निवास करते हैं। देवताओं का महान् सामर्थ्य एक ही है ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! यह

पृथिवी रोग नाशिनी औषधियों को पुष्ट करती है। जल-धाराएं भी तुम्हा सखा श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर उनका भोग करने में समर्थ हों। देवताओं व महान् बल एक ही है ॥ २२ ॥ [३१]

५६ सूक्त

(ऋषि—प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा। देवता—विश्वेदेवाः
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥ १
षड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥ २
त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३
अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥ ४
त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट्।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥ ५
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥ ६
त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥ ७
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥ ८ । १

देवताओं की सृष्टि में उत्पन्न होने वाले मायावी असुर श्रेष्ठ का की हिंसा न करें। विद्वान् भी उत्तम कर्मों को न त्यागें। आकाश और पृथि भी प्राणियों के साथ विघ्न रहित रहें। अविचल पर्वतों को कोई झुका न

ता ॥ १ ॥ एक संवत्सर वसंतादि षट् ऋतुओं का धारणकर्त्ता है । सत्य
आधारभूत, सूर्य से युक्त संवत्सर की रश्मियाँ प्राप्त होती हैं । तीनों लोक
पर ही स्थित हैं । स्वर्ग और अन्तरिक्ष गुफा में छिपे हैं । केवल पृथिवी ही
दृश्य हैं ॥ २ ॥ ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त ऋतुओं से युक्त, जल की वर्षा करने
में समर्थ, तीनों लोकों को स्नान के समान रस प्रदान करने वाले, प्रज्ञा युक्त,
गर्मी, वर्षा और शीत गुण वाले, महत्वशाली संवत्सर मायाशक्ति से युक्त हैं ।
यह संवत्सर जल धारण कर पृथिवी को सींचने में समर्थ हैं ॥ ३ ॥ इन सब
औषधियों के समीप उनके पद रूप से संवत्सर पर्जन्य होता है । मैं उन
आदित्यों के सुन्दर नामों को जानता हूँ । इस संवत्सर से स्वतन्त्रमार्गगामी
जल समूह चार महीने तक सुसंगति करता और आठ महीनों के लिए वियुक्त
त्मनः हैं ॥ ४ ॥ हे नदियो ! त्रिगुणात्मक और त्रिसंख्यक लोकों में देवता
निवास करते हैं । लोक त्रय के रचयिता सूर्य यज्ञ के भी स्वामी हैं । अन्तरिक्ष
से चलने वाली जलवती इला, सरस्वती और भारती यज्ञ के तीनों सवनों में
में रहें ॥ ५ ॥ हे सूर्य ! तुम सब को बल देते हो । प्रतिदिन तीनों सवनों
आकाश से आकर हमको प्राप्त होते हुए सुन्दर उपभोग्य धन दो
तुम हमारा पालन करने वाले हो । हमको दिन के तीनों सवनों में पशु, स्व
अन्न और गवादि धन दो । हे मेधावी सूर्य ! जिस उपाय से हमको धन-ध
हो सकें, वही उपाय करो ॥ ६ ॥ वे सवितादेव दिन में तीन बार ह
ऐश्वर्य हैं । कल्याणरूप हाथ वाले, राजा, मित्र और वरुण, आकाश
पृथिवी तथा अन्तरिक्ष आदि देवता सवितादेव से ऐश्वर्य वृद्धि की
करें ॥ ७ ॥ सर्व विजेता, प्रकाशवान, अविनाशी तीन श्रेष्ठ स्थान हैं
तीनों में अग्नि, वायु और सूर्य सुशोभित होते हैं । यज्ञ से युक्त, तिर
किये जाने वाले हुतगामी देवता तीनों सवनों में हमारे यज्ञा
पधारें ॥ ८ ॥

५७ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप

...मनीषां धेनुं चरन्ती प्रयुतामगोपाम्

सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥ १
इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥ २
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३
अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥ ४
या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥ ५
या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥ ६ । २

वे बुद्धिमान इन्द्र अकेले विहार करने वाली, रक्षक से रहित गौ के समान हमको प्राप्त करें। जिस स्तुति रूप गौ से अभिलाषित फल दोहने की इच्छा की जाती है, उस स्तुति को इन्द्र और अग्नि दोनों प्राप्त करें ॥ १ ॥ इन्द्र, पूषा और अभिलाषित वर्षा करने वाले मङ्गल हस्त मित्रावरुण अन्तरिक्ष में शयन करने वाले मेघ को अन्तरिक्ष से दुहते हैं। हे विश्वेदेवाओ ! तुम उत्तम निवास देने वाले हो। इस यज्ञ वेदी पर रमण करो जिससे हम तुम्हारे द्वारा दिए गये सुख को प्राप्त कर सकें ॥ २ ॥ जल वर्षक इन्द्र की शक्ति की कामना करने वाली औषधियाँ नम्र होकर इन्द्र की गर्भाधान करने वाली क्षमता का ज्ञान प्राप्त करती हैं। फल की अभिलाषा करने वाली औषधियाँ यथाद्रि शिशुओं के सामने अभिमुख होती हैं ॥ ३ ॥ यज्ञ में सोम-अभिषव करने वाले पाषाण को धारण करते हुए हम आकाश-पृथिवी की मधुर वाणी द्वारा स्तुति करते हैं। हे अग्निदेव ! तुम्हारी वरण करने योग्य, पूजनीय एवं रमणीय प्रदीप्तियाँ मनुष्यों के समक्ष ऊपर उठती हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वाला रूप जिह्वा अत्यन्त रसवती तथा मधुमती और प्रज्ञावती होती हुई देवताओं के आह्वान के निमित्त होती है। अपनी उस जिह्वा से यजन करने

देवताओं को इस यज्ञ कर्म में हमारी रक्षा के निमित्त बुलाओ और उन
ताओं को सोम-पान कराके प्रसन्न करो ॥ ५ ॥ हे तेजस्वी अग्निदेव ! तुम
को त्याग कर अन्य किसी के पास न जाने वाली विविध रूपिणी तुम्हारी
पापूर्ण मति हमको इच्छित फल प्रदान करती हुई बढ़ावे। उसी प्रकार जैसे
मेघ, जल द्वारा वनस्पतियों को बढ़ाता है। तुम स्वयं बुद्धिमान एवं निवास
दाता हो, हमको अपनी वही कृपापूर्ण बुद्धि दो तथा सबका कल्याण करने
वाली बुद्धि से सुशोभित करो ॥ ६ ॥ [२]

५८ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति)

धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१
सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥२
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्ति गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३
आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्रमित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥ ४
तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ५ । ३

प्राचीन अग्नि के निमित्त उषा रात्रि की समाप्ति पर ओस
की बूंदों को दुहती है। फिर उषा-पुत्र भास्कर उसके बीच घूमते हैं।
प्रकाश से युक्त दिन सब को प्रकाश देने वाले सूर्य को घुमाता है।
से पूर्व ही अश्विनीकुमार का स्तवन करने वाले तत्पर होते हैं।
अश्विनीकुमारो ! उत्तम, श्रेष्ठ तथा सत्य रूप रथ द्वारा तुमको य
के लिए दो घोड़े जुतते हैं। माता-पिता की ओर पुत्र के जाने के

तुम्हारी ओर जाता है। हमारे निकटस्थ दैत्यों और दुष्कर्मियों को हमसे दूर हटाओ। हम तुम्हारे लिए हव्य प्रदान करते हैं। तुम दोनों यहाँ आओ ॥ २॥ हे अश्विनीकुमारो! विशेष चक्र वाले सुन्दर रथ में सुशोभित घोड़ों को जोड़ो और उस पर चढ़ कर यहाँ आओ। हम स्तोता तुम दोनों का स्तोत्र उच्चारण करते हैं, उसे आकर सुनो तथा इस बात पर भी ध्यान दो कि प्राचीन बुद्धिमानों ने क्या-क्या स्तुति की। तुम दोनों उन्हीं के अनुकूल चलो ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों को सभी आदरपूर्वक बुलाते हैं। उनके आह्वान पर ध्यान देकर अपने अश्वों सहित यज्ञ में पधारो। वे तुम्हारे निमित्त मित्र के समान प्रसन्नताप्रद दुग्धादि से मिश्रित हव्य प्रदान करते हैं। उषा के पश्चात् आदित्यदेव उदित हो रहे हैं। अतः शीघ्र ही यहाँ पधारो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय! तुम दोनों की वाणी सब लोकों को प्राप्त हो। तुम्हारी वाणी सभी सङ्कटों को दूर करे। तुम दोनों विद्वज्जनों के मार्गों से इस लोक में आगमन करो। तुम शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हो। इस मधुर रस से पूर्ण, पुष्टिकारक सोम को तुम्हारे निमित्त ही पात्रों में निचोड़ कर रखा गया है ॥ ५ ॥   [१]

पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥ ६
अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥ ७
अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥ ८
अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥ ९ । ४

हे अश्विनीकुमारो! तुम्हारी मित्रता प्राचीन और सब को आवश्यक तथा मङ्गलकारी है। तुम दोनों सब का नेतृत्व करने वाले हो। तुम दोनों का ज्ञान जन्हु कुल वालों के लिए कल्याणकारी हो। तुम दोनों के मैत्री भाव का

सुत हम वारम्बार प्राप्त करें। प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले सोम का पान करते हुए हम भी तुम दोनों के साथ शीघ्र ही तुष्टि को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम सभी उपयुक्त मार्गों से युक्त हो। तुम मिथ्यात्व रहित, महान् तथा श्रेष्ठ गुणों के देने वाले हो। वायु तथा नियमों में नियुक्त ब्रह्मा से युक्त हुए (यहाँ आकर) अजय गुण वाले, सोम पाने के अभ्यासी तुम दोनों को दिन के प्रकाश में सोम पान करो ॥ ७ ॥ हे अश्विनीकुमारो। यह पर्याप्त हव्य तुमको प्राप्त होता है। कर्मों में चतुर तथा पाप-रहित स्तुति करने वाले उत्तम स्तोत्रों द्वारा तुम दोनों की पूजा करते हैं। स्तुति करने वाले उपासकों द्वारा आकर्षित किया गया जलदायक रथ आकाश और पृथिवी के बीच चलता है ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! यह अत्यन्त मधुर रस तथा दुग्धादि से मिश्रित सोम प्रस्तुत है, इसे पीओ। तुम दोनों का धन देने वाला श्रेष्ठ रथ सोम शुद्ध करने वाले यजमान के सुशोभित [४ में बारंबार पहुँचता है ॥ ९ ॥

५९ सूक्त

(ऋषि–विश्वामित्रः। देवता–मित्रः। छन्द–त्रिष्टुप, पंक्ति, गायत्री

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १
प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ २
अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥ ३
अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४
महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ५

देवगण पूजित होने पर सम्पूर्ण संसार को कृषि आदि कर्मों में प्रेरित करते हैं। वर्षा द्वारा अन्नादि को उत्पन्न करने वाले मित्र देवता पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाले हैं। वे मित्र देवता कर्म करने वाले व्यक्तियों को सब प्रकार के अनुग्रह की दृष्टि से देखते हैं। उन मित्र देव के निमित्त घृतयुक्त हवियाँ दो ॥ १ ॥ हे आदित्य! तुम्हें मित्र के सहित जो व्यक्ति हवियाँ देता है, वह अन्नों का स्वामी हो। जो मनुष्य तुम्हारी रक्षा प्राप्त कर लेता है, उसको हिंसा कोई नहीं कर सकता। तुम्हारे निमित्त जो मनुष्य हवि देता है, उसके निकट पाप कभी नहीं आता ॥ २ ॥ हे मित्र! हम रोगों से बचें। अन्न प्राप्ति द्वारा पुष्ट हों। इस विस्तृत पृथिवी पर हम अपनी आँखों को सकोड़ कर (जानु के बल बैठे हुए) आदित्य के व्रत का पालन करते हैं। वे आदित्य हमारे प्रति अपनी कृपा-बुद्धि रखें ॥ ३ ॥ यह आदित्य सुन्दर प्रकाश वाले, बल में बढ़े हुए, सबको उत्पन्न करने वाले, सब के स्वामी तथा नमस्कार करने के योग्य हैं। इनके प्रादुर्भाव पर यज्ञकर्म होते हैं। हम यजमान इनकी कृपा तथा मङ्गलकारी वात्सल्य भाव को प्राप्त करें ॥ ४ ॥ उन महान्, लोकों के प्रवर्त्तक आदित्य की नमस्कारों से युक्त पूजा करनी चाहिए। स्तुति करने वालों से ये आदित्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। हे स्तोताओं! मित्र देवता स्तुति के पात्र हैं, उनके निमित्त प्रीतिदायक हवियाँ अग्नि में डालो ॥ ५ ॥   [५]

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥ ८

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥ ६ । ६

वर्षा के द्वारा मनुष्यों को धारण करने वाले मित्र देवता का विचित्र अन्नादि धन कीर्ति और ज्ञान से युक्त होकर सब के लिए सेवन करने के योग्य तथा सुख देने वाला हो ॥ ६ ॥ मित्र देवता ने अपनी महत्ता से आकाश

वशीभूत किया है, उन्होंने अपने कर्मों द्वारा अत्यन्त यशस्वी होकर पृथिवी
सब के सेवन करने वाले अन्न से युक्त किया ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय,
श्य, शूद्र तथा निषाद यह पाँचों वर्ग शत्रुओं को जीतने की क्षमता वाले
मित्र देवता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करें। वे मित्र अपने स्वरूप द्वारा ही
सब देवताओं का पोषण करते हैं ॥ ८ ॥ जो व्यक्ति विद्वानों, देवताओं एवं
अन्य मनुष्यों में कुश को काट कर लाता है, मित्र देवता उसके लिए मङ्गल-
कारी अन्न प्रदान करते हैं ॥ ९ ॥ [६]

६० सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः । देवता-ऋभवः । छन्द—जगती)

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१
याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २
इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥
इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ।
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥
इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः
इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम्
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥

हे ऋभुओ ! तुम्हारे ऐश्वर्य, कर्म और सामर्थ्य को सभी
हे मनुष्यो ! तुम सुधन्वा के वंशज हो, तुम अपने जिस कर्म द्

को हराने में उपयुक्त तथा विशिष्ट तेज से युक्त होकर यज्ञ-भाग को प्राप्त करते हो, उस सब कर्म को तुम इच्छा करते ही जान लेते हो ॥ १ ॥ हे ऋभुओ ! तुमने अपनी जिस शक्ति से चमस का विभाजन किया था, जिस बुद्धि की शक्ति से तुमने गौ के शरीर में चर्म जोड़ा था तथा जिस ज्ञान से तुमने इन्द्र के दोनों घोड़ों की रचना की थी, अपने उन्हीं सब कर्मों द्वारा तुम यज्ञ-भाग के अधिकारी होकर देवत्व प्राप्त कर सके ॥ २ ॥ मनुष्यों के वंशज ऋभुओं ने यज्ञादि कर्मों द्वारा इन्द्र का मैत्री-भाव प्राप्त किया। पहिले मरणधर्मा होते हुए भी वे इन्द्र की मित्रता से शरीर में प्राणयुक्त रहते हैं। पुण्यकर्म करने वाले यह सुधन्वा के पुत्र कर्म के बल से अविनाशी पद प्राप्त किये हुए हैं ॥३॥ हे ऋभुओ ! तुम इन्द्र के साथ एक ही रथ पर चढ़ कर सोम सिद्ध करने वाले स्थान में जाओ। फिर मनुष्यों के स्तोत्रों को स्वीकार करो। हे सुधन्वा के पुत्रो ! तुम अमृत की शक्ति को वहन करने वाले हो। तुम्हारे श्रेष्ठ कर्मों को कोई रोक नहीं सकता। हे ऋभुगण ! तुम्हारी शक्ति का सामना करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! जैसे सूर्य वेगवती तथा तेजस्विनी रश्मियों को पुष्ट करता है, वैसे ही तुम पृथिवी को बलवान् और ज्ञानीजनों से पुष्ट करो। हे इन्द्र ! तुम ऋभुओं के सहित सोम पान करो और स्तुतियों द्वारा आहूत हुए तुम यजमान के घर में सौधन्वों के साथ सोम पान करते हुए आनन्द का लाभ प्राप्त करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों के द्वारा स्तुत्य हो। तुम इन्द्राणी सहित तथा ऋभुओं से युक्त होकर हमारे तीसरे सवन में आनन्द प्राप्त करो। हे इन्द्र ! दिन के तीनों सवनों में यह सवन तुम्हारे सोम-पान के लिए निश्चित है। वैसे देवताओं के सब व्रतों और मनुष्यों के सब कर्मों द्वारा सभी दिन तुम्हारी पूजा के लिए श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करने वालों के लिए अन्न-सम्पादन करते हुए बलवान् ऋभुगण सहित स्तोता की स्तुतियों के प्रति इस यज्ञ में पधारो। शतसंख्यक कुशल अश्वों के द्वारा मरुद्गण भी यजमान के सहस्र, हिंसा रहित यज्ञ में आगमन करें ॥ ७ ॥

[७]

६१ सूक्त

(ऋषि-विश्वामित्रः । देवता-उषाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १
उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २
उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३
अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४
अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ॥ ५
ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६
ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥ ७ । ८

हे उषा ! तुम धनैश्वर्य और अन्न वाली हो। तुम श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त होकर स्तुति करने वाले के स्तोत्र को स्वीकार करो। तुम सभी के द्वारा वरण करने योग्य हो। अतः प्राचीनकालीन युवती के समान सुशोभित तथा बहुत से स्तोत्रों से युक्त होकर यज्ञानुष्ठान के निमित्त शीघ्र आओ ॥ १ ॥ हे उषा ! तुम मरण धर्म से मुक्त हो। तुम्हारा रथ स्वर्णयुक्त है। तुम सत्य रूप प्रिय वचनों का उच्चारण करने वाली हो। तुम सूर्य किरणों की शोभा से शोभायमान होती हो। अरुण-वर्ण वाले बलवान् अश्व सरलता से तुम्हारे रथ में जुड़ते हैं। वे तुम्हें आहूत करें ॥ २ ॥ हे उषे ! तुम सम्पूर्ण संसार के प्राणियों के सामने आती हो। तुम मरण धर्म से रहित तथा सूर्य की सूचना

देने वाली, समान मार्ग में चलती हुई अन्तराकाश में गमन करती हो। तुम सूर्य के रथ के अश्व के समान बारंबार उस मार्ग पर चलो ॥ ३॥ वस्त्र के समान ढकने वाले घोर अन्धकार को नाश करने वाली, धन से युक्त उषा सूर्य की पत्नी के रूप में गमन करती हैं, वह अत्यन्त सौभाग्यशालिनी और सत्कर्मों की साधिका है। वही उषा आकाश और पृथिवी की सीमा में प्रकाशित होती हैं ॥४॥ हे स्तुति करने वालो! तुम्हारे सामने सुशोभित उषा प्रत्यक्ष होती हैं। तुम नमस्कार पूर्वक उसकी स्तुति करो। उन स्तुतियों को पुष्ट करने वाली उषा आकाश के उन्नत तेज को धारण करती है। वह उषा अत्यन्त सुन्द सुशोभित तथा तेजस्विनी है ॥ ५ ॥ उस सत्य से युक्त उषा को आकाश के तेज रूप से प्रकट होने पर सब जानते हैं। वह उषा धनैश्वर्य से युक्त है और अनेक प्रकार से आकाश-पृथिवी में व्याप्त होती है। हे अग्ने! उषा तुम्हारे सामने आती है। तुम उससे हवि की याचना करते हुए सुखकारी धनों को पाते हो ॥ ६ ॥ आदित्य ही वृष्टि द्वारा जल को गिराते हैं। वे सत्यरूप दिन के आरम्भ में उषा को भेज कर आकाश-पृथिवी के मध्य प्रविष्ट होते हैं। फिर वह अत्यन्त महत्व वाली उषा मित्रावरुण की प्रभा के रूप में प्रकट होकर सुवर्ण के समान अपनी प्रदीप्ति को संसार में फैलाती है ॥ ७ ॥ [८]

६२ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रः, विश्वामित्रो जमदग्निर्वा। देवता—इन्द्रावरुणौ आदि। छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री)

इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन्।
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥ १
अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २
अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥ ३
बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य। रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४

शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥ ५ । ६

हे इन्द्रावरुण ! सब को ढकने वाले अन्धकार के समान सब को वशीभूत करने वाले तुम दोनों की भ्रमणशीला क्रियाएं जानी जाती हैं । वे क्रियाएं तुम्हारे साधकों के लाभ के लिए हैं तथा शत्रुओं द्वारा किसी प्रकार भी नाश के योग्य नहीं हैं । हे इन्द्रावरुण ! तुम्हारा वह यश और तेज कहाँ है जिसके द्वारा तुम मित्रों के निमित्त अन्न और बल की वृद्धि करते हो ॥१॥ हे इन्द्रावरुण ! धन की इच्छा करने वाले यह साधक तुम दोनों को अन्न प्राप्ति के निमित्त बुलाते हैं । हे मरुतो ! आकाश और पृथिवी से संगत हुए तुम मेरे स्तोत्र को सुनो ॥ २ ॥ हे इन्द्रावरुण ! हमको वह अलौकिक ऐश्वर्य प्राप्त हो । हे मरुतो ! हमको सब वीरों से युक्त सुवर्ण, रत्न तथा गवादि धन प्राप्त हो । तुम्हारी रक्षक सेनाएं अपने शत्रुनाशक साधनों तथा शस्त्रास्त्रों द्वारा हमारी रक्षा करें । सब का पालन करने वाली प्रदान करने योग्य वाणी उदार वचनों द्वारा हमारा पोषण करें ॥ ३ ॥ हे बृहस्पते ! तुम सब सज्जनों का हित करने वाले हो । हमारे द्वारा दिए जाने वाली हवियों को स्वीकार करो । हविदाता यजमान को श्रेष्ठ तथा रमणीय धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा बृहस्पति को यज्ञादि शुभ कर्मों के अवसरों पर नमस्कार द्वारा पूजो । मैं उनमें ही, शत्रु द्वारा कभी भी न झुकाए जा सकने वाले पराक्रम की याचना करता हूँ ॥ ५ ॥ [६]

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६
इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७
तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८
यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० । १०

सब मनुष्यों में सर्व सुखों की वर्षा करने में समर्थ, सब से सत्कार

पाने के योग्य, किसी के द्वारा भी हिंसित न होने वाले, बलवान्, सब पर अनुग्रह करने वाले, श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरण करने वाले बृहस्पति सभी पदार्थों के जानने वाले हैं। उनको नमस्कार करो॥ ६ ॥ हे पूषन्! तुम सब प्रकार से प्रकाशमान् तथा प्रत्येक सुख की वर्षा करने में समर्थ हो। तुम्हारा यह अत्यन्त नवीन स्तोत्र सदा ही स्तुति करने के योग्य है। इस श्रेष्ठ स्तुति को हम तुम्हारे प्रति सदैव उच्चारण करते रहें॥ ७ ॥ पत्नी की कामना करने वाला पुरुष जैसे तुष्टि चाहने वाली रमणी को प्रेम-पूर्वक स्वीकार करता है, वैसे ही हे पूषन्! मेरी उस ज्ञानमय तथा सत्यासत्य को जानने वाली वाणी और श्रेष्ठ धारणावती, मन्त्रमय बुद्धि को प्रेम-भावना पूर्वक स्वीकार करो॥ ८ ॥ जो पूषा सब लोकों को समान रूप से देखते हैं तथा सब लोकों को विविध दृष्टिकोण से देखते हैं, वह हमारे पालक तथा सब प्रकार से रक्षा करने वाले हों॥ ९ ॥ जो सवितादेव हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करते हैं, उन पूर्ण तेजस्वी, सर्व प्रकाशक, सर्वदाता, सर्वस्रष्टा परमेश्वर के उस अद्भुत, सर्वश्रेष्ठ, पापों का नाश करने वाले तेज को धारण करते हुए उसी का ध्यान करें॥ १० ॥ [१०]

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरन्ध्या। भगस्य रातिमीमहे ॥ ११
देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः। नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२
सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम्।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥ १३
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे। अनमीवा इषस्करत् ॥ १४
अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः। सोमः सधस्थमासदत् ॥ १५
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १६
उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः। द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७
गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम्। पातं सोममृतावृधा। १८।१

हम सर्व प्रकाशक, तेजोमय, सब ऐश्वर्यों को देने वाले सब के भजने योग्य, कल्याणरूप, सुखकारी सवितादेव की दान-बुद्धि को अन्न, यज्ञ और धन

की कामना करते हुए, धारण सामर्थ्य से युक्त स्तुति द्वारा, याचना करते हैं ॥ ११ ॥ मेधावीजन श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करने वाली बुद्धि की प्रेरणा से दोषों का समूल नाश करने में सामर्थ यज्ञादि उत्तम कर्मों से सर्व प्रकाशक, सर्वप्रेरक तथा रचयिता सवितादेव की नमस्कार पूजा करते हैं ॥ १२ ॥ सोम ज्ञानीजनों की प्रशंसा को प्राप्त करता हुआ उनके सर्व साधन सम्पन्न कर्मों के कारण उनके आश्रय को प्राप्त करता है। वह अत्यन्त पुष्ट सुख और सत्य के आश्रय से यज्ञ-स्थान को जाता है ॥ १३ ॥ वह सोम हम दो पाँव वाले मनुष्यों के निमित्त, तथा चार पाँव वाले पशुओं के निमित्त भी, रोग-रहित, स्वास्थ्यप्रद अन्नों को उत्पन्न करने में समर्थ हो ॥ १४ ॥ यह सोम हमारी आयु की वृद्धि करता हुआ तथा देह के सभी रोगों को शत्रु के समान नष्ट करता हुआ। हमारे यज्ञ स्थान में हमारे साथ आकर निवास करे ॥ १५ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे बीच में श्रेष्ठ कर्मों को करते हुए, उत्तम आचरणों द्वारा, ज्ञानयुक्त मधुर वचनों से लोकों को सींचो अथवा पृथिवी को मधुर रस से सिक्त करो ॥ १६ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों अत्यन्त शुद्ध आचरण करने वाले हो। तुम प्रशस्त स्तुतियों से युक्त नमस्कार पूर्वक पूजन किए जाते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हो। तुम अपनी अत्यन्त पुरुषार्थ युक्त शक्ति तथा बल और ज्ञान के महान् सामर्थ्य से सुशोभित होओ ॥ १७ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम प्रज्ज्वलित अग्नि के समान सत्य को प्रकाशित करने वाले ज्ञान के द्वारा उपदेश करते हुए अन्न से पूर्ण हुए घर के समान विराजमान होओ। तुम दोनों नित्य सेवन करने योग्य सत्य के बल से वृद्धि को प्राप्त होते हुए श्रेष्ठ सोम-रस का पान करो ॥ १८ ॥ [११]

॥ तृतीय मन्डलम् समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुर्थ मण्डलम् ॥

१ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः अग्निर्वा वरुणश्च। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे।

अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत
प्रचेतसम् ॥ १
स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं
ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥ २
सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ ३
त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ४
स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥ ५ । १

हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हो । वेग से चलते हो । शत्रु को विजय करने की इच्छा वाले स्पर्द्धा से युक्त देवता तुम्हें युद्ध के निमित्त प्राप्त करते हैं । यजमान तुम्हारी स्तुति करते हुए आकर्षित करते हैं । तुम अविनाशी प्रकाशमान और अत्यन्त ज्ञानी हो । मनुष्यों को यज्ञ-कर्म के निमित्त प्राप्त करने के लिए देवताओं ने तुम्हें प्रकट किया । तुम कर्मों के ज्ञाता को सब यज्ञों में प्रत्यक्ष रहने के लिए देवताओं ने तुम्हारी उत्पत्ति की है ॥ १ ॥ हे अग्ने वरुण तुम्हारे भाई हैं । वे हवियों के पात्र, यज्ञ का उपभोग करने वाले, जल वाले, प्रशंसित, अदिति के पुत्र हैं । वे जल-वृष्टि द्वारा मनुष्यों को धारण करने वाले हैं । वे सुन्दर प्रज्ञा वाले एवं शोभनीय हैं । इन वरुण को स्तुति करने वालों के सामने लाओ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम मित्र-भाव से युक्त हो जैसे गमनोपयुक्त रथ में जुते दो घोड़े जल्दी चलने वाले पहियों को लक्ष्य पर पहुँचाते हैं, वैसे ही तुम अपने मित्र वरुण को हमारे पास पहुँचाओ । हे अग्ने ! तुम्हारे सहयोग से वरुण ने सुखदायक हवियाँ प्राप्त की हैं तथा अत्यन्त तेजस्वी मरुतों के लिए भी सुखदायक हव्य-अर्जन किया है । हे अग्ने ! तु

हमारी सन्तान को सुख दो और हमको कल्याण प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सब कर्मों के ज्ञाता हो । प्रकाशमान वरुण को हमारे प्रति क्रोधित न होने दो । तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ, हवियों के वहन करने वाले और अत्यन्त प्रकाशमान हो । तुम हर प्रकार के पापों से हमारी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! रक्षण कर्मों द्वारा हमारे अत्यन्त समीप होओ । उषा की समाप्ति पर, प्रातः वेला में यज्ञादि कार्यों की सिद्धि के निमित्त हमारे अत्यन्त निकट आओ । हमारे निमित्त जल से होने वाले रोगों को पहिले ही नष्ट कर दो । तुम यजमानों को अभीष्ट फल देते हो । इस पुष्टिप्रद हवि का सेवन करो । हम तुम्हें भले प्रकार आहूत करते हैं । तुम हमारे निकट आओ ॥५॥ [१२]

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६
त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥ ७
स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥ ८
स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९
स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥ १० । १३

श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान् अग्नि की, मनुष्यों के मध्य अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अद्भुत अनुग्रह-दृष्टि हो । जैसे दूध की इच्छा वाले मनुष्य को गौ का पवित्र दूध थनों से निकल कर उष्ण ही प्राप्त होता है, जैसे गौ-दान की अभिलाषा वाले को दान स्पृहणीय होता है, वैसे अग्नि का तेज भी गाय के समान पोषण-योग्य एवं स्पृहणीय होता है ॥ ६ ॥ अग्नि के तीन रूप अग्नि, वायु और सूर्य प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ हैं । अनन्त आकाश में अपने तेज से व्याप्त, सब के शुद्ध करने वाले, प्रकाश से युक्त और अत्यन्त तेजस्वी अग्नि हमारे यज्ञ को

प्राप्त हों ॥ ७ ॥ ये अग्नि, देवताओं के बुलाने वाले दूत, सुवर्ण रथ वाले, कमनीय ज्वालाओं वाले सभी यज्ञों को प्राप्त होने की कामना करते हैं। सुन्दर अश्व वाले, प्रदीप्त, अग्नि अन्न से सम्पन्न घर के समान सुखकर हैं ॥ ८ ॥ अग्नि यज्ञ में व्याप्त होते हैं। वे यज्ञ कर्मों की इच्छा वाले मनुष्यों को जानते हैं। अध्वर्यु गण उन्हें उत्तरवेदी में नियम पूर्वक स्थापित करते हैं। वे यजमानों का अभीष्ट सिद्ध करते हुए उनके घरों में रहते हैं। वे प्रकाशमान अग्नि धन सम्पन्नों के साथ निवास करते हैं ॥ ६ ॥ जिस रमणीय ऐश्वर्य की स्तुति करने वाले भजते हैं, अग्नि का वह श्रेष्ठ ऐश्वर्य हमारे सामने आवे। अविनाशी देवताओं ने अग्नि को यज्ञ के निमित्त उत्पन्न किया है। आकाश उनके पालक पिता रूप हैं। अध्वर्यु लोग घृतादि की आहुतियों से उस सत्य-भूत अग्नि को सींचते हैं ॥ १० ॥ [११]

स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥ ११
प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्यां ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥ १२
अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुऋर्तमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥ १३
ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४
ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ १५ । १४

अग्नि सब से श्रेष्ठ हैं। वे घरों में रहने वाले मनुष्यों के मध्य घरों के प्रधान पुरुष के समान निवास करते हैं। वे महान् जल समुद्र के आश्रय स्थान रूप एवं स्वयं बिना पाँव वाले हैं। वे सब के मीतर रम होते हुए भी सिर-वर्जित हैं। वे सब के भीतर रमे रहते हैं तथा जल वर्षक देवों में व्याप्त होते हुए धूमाकार प्रगट हैं ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम जलों के उत्पत्ति स्था

मेघ के नीए रूप अन्तरिक्ष में, स्तुतियों से युक्त हुए व्याप्त रहते हो। सर्व श्रेष्ठ तेज तुम्हारे पास उपस्थित रहता है। जो अग्निदेव सब के चाहने योग्य, सतत युवा, कमनीय एवं प्रकाश से युक्त हैं। सप्त होता उन्हीं के लिए स्तुतियाँ उच्चारित करते हैं ॥ १२ ॥ इस लोक में हमारे पितर यज्ञ-साधन के निमित्त अग्नि के सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने उषा का आह्वान किया और अग्नि की उपासना से प्राप्त हुई शक्ति के द्वारा पर्वत की गुफा में छाए हुए घोर अन्धकार में से दुहने योग्य, पयस्विनी गौओं को बाहर निकाला ॥ १३ ॥ उन्होंने पर्वत को तोड़ते समय अग्नि की पूजा की। अन्य ऋषियों ने भी उनके कर्मों का सर्वत्र बखान किया। उन्हें पशु-रक्षा के उपायों का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने अभीष्ट फल देने वाले अग्नि की स्तुति द्वारा देखने वाली इन्द्रिय का लाभ प्राप्त किया तथा अपनी उत्तम बुद्धि द्वारा यज्ञ-कर्म का साधन किया ॥ १४ ॥ पूर्वजगण कर्मों को करने में अग्रगण्य थे। वे अग्नि की सदा कामना करते थे। उन्होंने गौ को प्राप्त करने की इच्छा से अत्यन्त दृढ़, गौओं से भरे हुए गौशाला के समान पर्वत को अग्नि की स्तुति से प्राप्त शक्ति द्वारा खोला ॥ १५ ॥ [१४]

ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥ १६
नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ १७
आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥ १८
अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥ २० । १५

हे अग्ने ! स्तुति करने वाले अङ्गिरा आदि ऋषियों ने ही वाणी रूपिणी

माता से उत्पन्न स्तुतियों के साधन रूप शब्दों का प्रथम बार ज्ञान प्राप्त किया फिर सत्ताईस छन्दों को जाना। इसके पश्चात् इनको जानने वाली उषा की स्तुति की और तब आदित्य के तेज से युक्त अरुण वर्ण वाली उषा का आविर्भाव हुआ ॥ १६ ॥ रात्रि के द्वारा उत्पन्न अन्धकार उषा की प्रेरणा से नष्ट हुआ फिर अन्तरिक्ष में प्रकाशमान् हुआ। उषा की आभा प्रकट हुई। मनुष्यों के सत्यासत्य कर्मों को देखने में समर्थ आदित्य सुदृढ़ पर्वत पर चढ़ गये ॥ १७ ॥ सूर्य के उदित होने पर अङ्गिरा आदि ऋषियों ने पणियों के द्वारा चुराई गई गौओं को जाना तथा पीछे से उन्हें भले प्रकार देखा। इनके सब स्थानों को यज्ञ-कर्म में भाग प्राप्त करने के पात्र देवता प्राप्त हुए। हे मित्रता की भावना से ओतप्रोत अग्निदेव! तुम वरुण के क्रोध का शांत करने वाले हो। तुम्हारी पूजा करने वाले को सुन्दर फल प्राप्त हो ॥ १८ ॥ हे अग्ने! तुम देवताओं का आह्वान करने वाले, अत्यन्त प्रदीप्ति वाले, संसार का पालन करने वाले एवं सब की अपेक्षा अधिक यज्ञ-कर्म वाले हो, हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम्हारे निमित्त आहुति देने वाले यजमान न तो दूध दुहते हैं और न सोम का संस्कार करते हैं। वे केवल तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ १९ ॥ अग्निदेव, यज्ञ के पात्र सभी देवताओं को प्रसन्न करने वाले हैं। वे अग्नि सब मनुष्यों के लिए अतिथि के समान पूजनीय हैं। स्तोताओं का हव्य भक्षण करने वाले अग्निदेव स्तुति करने वालों को सुखी करें ॥ २० ॥ [१५]

२ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्]

यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १
इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जातां उभयां अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥ २
अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥ ३

अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥ ४
गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥ ५ । १६

अविनाशी अग्नि सत्य स्वरूप से मनुष्यों के मध्य रहते हैं। जो प्रकाशमान् अग्निदेव इन्द्रादि देवताओं के साथ मिल कर शत्रुओं को हराने वाले हैं, वे अग्नि देवताओं को बुलाने में समर्थ हैं तथा सब से अधिक यज्ञानुष्ठान करते हैं। वे उत्तरवेदी पर अपनी महिमा द्वारा ही प्रदीप्त होने के लिए विराजते हैं। तथा हवि वहन करते हुए, यजमानों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए प्रकट हुए हैं ॥ १ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव! तुम आज हमारे कार्य में सिद्ध हुए हो। तुम दर्शनीय हो, अपने पुष्ट, तेजस्वी, बली घोड़ों को रथ में जोड़ कर देवताओं और मनुष्यों के बीच हविवाहक बन कर दूत रूप से प्राप्त होते हो ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम सत्य के कारण रूप हो। मैं तुम्हारे दोनों लाल रङ्ग वाले घोड़ों की स्तुति करता हूँ। तुम्हारे वे घोड़े मन से भी अधिक वेग वाले हैं। वे अन्न और जल की वर्षा करते हैं। तुम उन तेजस्वी घोड़ों को अपने रथ में जोड़ कर देवताओं और मनुष्यों के बीच में पधारो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम्हारे घोड़े, रथ एवं ऐश्वर्य सभी श्रेष्ठ हैं। अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण तथा दोनों अश्विनीकुमारों को हवियुक्त यजमानों के निमित्त इन मनुष्यों के मध्य बुलाओ ॥ ४ ॥ हे शक्तिशाली अग्निदेव! हमारा यह यज्ञ गौ, बैल और अश्व-लाभ कराने वाला हो। जो यज्ञ अध्वर्युओं और यजमानों द्वारा किया जाता है, वह यज्ञ हव्य से सम्पन्न तथा संतानों से युक्त हो और अनुष्ठान धन तथा ऐश्वर्यों का कारणभूत और उपदेश करने वाले ज्ञानियों से पूर्ण हो ॥ ५ ॥ [१६]

यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥ ६
यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।

आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥ ७
यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥ ८
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥ ९
यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥ १० । १७

हे अग्ने ! तुम्हारे निमित्त लकड़ियों को ढोने वाला जो मनुष्य पसीने से युक्त होता है, जो तुम्हारी कामना से अपने मस्तक को काष्ठ के बोझ से भारी करता है, तुम उसका पालन करते हुए धन से युक्त करते हो। तुम उसके अहित चिंतकों से भी उसकी रक्षा करते हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! अन्न की कामना से जो तुम्हें देने के निमित्त हव्य संचित करता है, जो तुमको सोम-रस देता है, जो तुम्हें उत्तर वेदी पर अतिथि रूप से प्रतिष्ठित करता है तथा जो व्यक्ति देवत्व की कामना से अपने घर में तुम्हें स्थापित करता है, उसका पुत्र धर्ममार्गी, दृढ़ तथा उदार हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! जो मनुष्य रात्रि के समय तथा जो व्यक्ति उषा वेला में तुम्हारा स्तवन करता है और जो हविवान् यजमान तुम्हें प्रसन्न करने का यत्न करता है, तुम उस यजमान की सुवर्ण से बनी भूल वाले अश्व के समान चलते हुए आकर रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा कभी नाश नहीं होता। जो यजमान तुमको हविदेता है, जो यजमान तुम्हारे निमित्त स्रुक को ठीक करता है तथा जो यजमान तुम्हारी पूजा-सेवा करता है, वह स्तुति करने वाला यजमान कभी भी निर्धन न हो। हिंसकों की हिंसा उसे कभी भी स्पर्श न करे ॥ ९ ॥ हे सद्यःयुवा अग्ने ! तुम सदा प्रसन्न रहते हो तथा प्रकाशमान हो। जिस यजमान का भले प्रकार सम्पादित और हिंसा-शून्य भावना से दिया हुआ अन्न सेवन करते हो, वह होता निश्चय ही प्रेम करने वाला है। अग्नि की सेवा करने वाले जो यजमान यज्ञ को बढ़ाते हैं, हम उन्हीं का अनुसरण करेंगे ॥ १० ॥ [१७]

चितिमचित्तिं चिनवद्विविद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥ ११
कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्यों अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुतां अर्य एवैः ॥ १२
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥ १३
अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥ १४
अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥ १५ । १८

जैसे अश्व को पालने वाला उसकी पीठ के कसे हुए साज को अलग कर देता है, वैसे ही अग्नि पाप पुण्य को पृथक् करें । हे अग्ने ! हमको सुन्दर पुत्र से युक्त धन प्रदान करो । तुम दान देने वाले को धन प्रदान करो और उसका निकट से पालन करो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! मनुष्यों के घर में निवास करने वाले तथा कभी भी निरादत न होने वाले देवताओं ने तुम अत्यन्त ज्ञानी का होता नियुक्त किया है । हे अग्ने ! तुम यज्ञ का पालन करने वाले एवं मेधावान् हो । तुम अपने चंचल तेज के द्वारा देवताओं को दर्शनीय बनाओ ॥ १२ ॥ हे सद्यः युवा अग्ने ! तुम अत्यन्त तेज वाले हो । तुम मनुष्यों की इच्छाओं को पूर्ण करते हो । तुम उत्तरवेदी पर प्रतिष्ठित किए जाने के पात्र हो । जो यजमान तुम्हारे निमित्त सोम का अभिषव करता है, तुम्हारी सेवा करता हुआ स्तोत्र उच्चारण करता है, उसकी रक्षा के निमित्त उसे प्रसन्नताप्रद श्रेष्ठ धन प्रदान करो ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! जिस कारण हम तुम्हारी अभिलाषा करते हुए हाथ-पाँव तथा देह को कार्य-रत करते हैं, उसी कारण उत्तम कार्य वाले, यज्ञ-कार्य में लगे हुए अङ्गिरादि ऋषियों ने अपने हाथों से अरणि मन्थन द्वारा शिल्पी के रथ निर्माण करने के समान तुम सत्य के कारण रूप को प्रकट किया ॥ १४ ॥ हम सात विप्र आरम्भिक मेधावी हैं ।

हमने माता रूप उषा के प्रारम्भकाल से अग्नि को उत्पन्न किया है। हम
प्रकाशमान् आदित्य के पुत्र अङ्गिरा हैं। हम तेजस्वी होकर जल से पूर्ण मेघ व
विदीर्ण करेंगे ॥ १५ ॥   [१८

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ १६
सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥ १७
आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ १८
अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥ १९
एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥ २०

हे अग्ने ! हमारे पितरों ने श्रेष्ठ, परम्परागत और सत्य के कार
रूप यज्ञ कर्मों को करके उत्तम पद तथा तेज को प्राप्त किया। उन्होंने उक्थ
के द्वारा अन्धकार का नाश किया और पणियों द्वारा अपहृत गौओं को ढूँ
निकाला ॥ १६ ॥ धौंकनी के द्वारा स्वच्छ हुए लौह के समान, यज्ञादि श्रे
कार्यों में लगे हुए, देवताओं की कामना वाले स्तोता अपने मनुष्य जन्म क
यज्ञादि कार्यों के द्वारा स्वच्छ करते हैं। वे अग्नि को प्रदीप्त करते हुए इन्
को बढ़ाते हैं। उन्होंने चारों ओर उपासना करते हुए वृहद् गौ-समूह क
पाया था ॥ १७ ॥ हे अग्निदेव ! तुम तेजवान् हो। अन्न से युक्त घर
पशुओं के रहने के समान देवताओं की गौओं का सामीप्य अङ्गिरादि को प्रा
है। उनके द्वारा लाई गई गौओं ने प्रजाओं को पुष्ट किया। वर्द्धन-सामर्थ
से युक्त मनुष्य संतानवान् तथा पोषण-सामर्थ्य से युक्त हो गए ॥ १८ ॥
अग्ने ! हम तुम्हारी पूजा करते हैं, उसी से हम श्रेष्ठ कर्म वाले बनते है
अन्धकार का नाश करने वाली उषा सम्पूर्ण तेजों से युक्त हुई प्रसन्नता के

अग्नि को धारण करने वाली हैं। तुम प्रकाश से युक्त हो। हम तुम्हारे
ीय तेज की उपसना करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्निदेव ! तुम विद्वान हो।
तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, तुम इनको ग्रहण करो।
प्रदीप्त होकर हमको बढ़ाओ। तुम बहुतों द्वारा वरणीय हो। हमको
म धन प्रदान करो। श्रेष्ठ वर वालों में उत्तम निवास हमको [१६]
॥ २० ॥

३ सूक्त

(ऋषि-वामदेवः । देवता-अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप् बृहती, पंक्तिः)

ा वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्नि पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १
अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २
आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्य मीळे ॥ ३
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥ ४
कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥ ५ । २०

हे पुरुषो ! देवताओं के आह्वान करने वाले, यज्ञ के स्वामी, आकाश
पृथिवी को अन्न से पूर्ण करने वाले, सुवर्ण के समान आभा वाले तथा शत्रुओं
को रुलाने में समर्थ रौद्र रूप वाले अग्निदेव की, मृत्यु के पूर्व ही रक्षा प्राप्त
करने के निमित्त पूजा करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! पति की कामना वाली एवं
सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित जननी जिस प्रकार पति के लिए स्थान देती है, वैसे
ही हम भी उत्तरवेदी रूप स्थान तुम्हारे लिए देते हैं। तुम्हारा यही स्थान
है। हे अग्निदेव ! तुम श्रेष्ठ कर्मों को करने वाले हो। तुम अपने तेज

सुशोभित हुए हमारे सामने पधारो । यह स्तुति तुम्हारी उपासना में पहुँचे ॥ २ ॥ हे स्तोता ! तुम स्तोत्रों को सुनने वाले, निरालस्य, सुखदाता, द्रष्टा एवं अविनाशी अग्नि की कामना से स्तुतियों का उच्चारण करो । पाषाण जैसे सोम का अभिषव करने में समर्थ हैं, उसी प्रकार यजमान अग्नि के निमित्त स्तुति करने में रत रहते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञानुष्ठान में तुम देवता बनो । तुम सत्य के जानने वाले और श्रेष्ठ कर्मों के करने वाले हो । तुम हमारे स्तोत्र को जानो आह्लाद उत्पन्न करने वाले तुम्हारे स्तोत्र कब कहे जाँयगे ? कब तुम हमारे घर में मैत्री-भाव से व्याप्त होगे ? ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हमारे पापों की बात वरुण के सामने क्यों करते हो ? हमारी निन्दा सूर्य से क्यों करते हो ? हमारा तुम्हारे प्रति कौन-सा अपराध हुआ है ? अभीष्ट फल देने वाले मित्र, पृथिवी, अर्यमा और भग से तुमने हमारी बात कही ? ॥ ५ ॥ [२०]

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ६
कथा महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥ ७
कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ८
ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९
ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १० । २१

हे अग्ने ! तुम जब यज्ञ में बढ़ते हो, तब उस बात को क्यों कहते हो ? महान् बली, शुभकारी, सर्वत्र गतिमान्, सत्य में अग्रणि वायु से भी यह बात क्यों कहते हो ? पृथिवी तथा पापियों का संहार करने वाले रुद्र से यह बात क्यों कहते हो ॥ ६ ॥ हे अग्निदेव ! उस श्रेष्ठ एवं पालक पूषा से, यज्ञ के

ान्न एवं हवियुक्त रुद्र से, बहुत सी स्तुतियों के पात्र विष्णु से तथा महान्
वत्सर के समक्ष वह बात क्यों कहते हो ? ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! सत्य के कारण
प मरुद्‌गण से वह बात क्यों कहते हो ? पूछे जाने पर भी सूर्य से, अदिति
। तथा द्रुतगामी वायु से क्यों कहते हो ? हे सबको जानने वाले मेधावी !
म महान् कर्मों को सिद्ध करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हम सत्य के कारण भूत
ज्ञ से संबंधित दुग्ध को गौओं से नित्य माँगते हैं। वह गौएं कच्ची अवस्था
भी पक्व एवं मधुर दूध को धारण करती हैं। उनमें काली गौएं भी पुष्टि
द, प्राणदाता, श्वेत दूध देकर मनुष्यों को पुष्ट करती हैं ॥ ९ ॥ इच्छित
ल की वर्षा करने वाले श्रेष्ठ अग्निदेव पोषक दूध द्वारा सींचे जाते हैं।
न्नदाता अग्निदेव अपने सम्पूर्ण तेज को एकत्र करते हुए गमन करते हैं।
ल की वर्षा करने वाले आदित्य अन्तरिक्ष का दोहन करते हैं ॥ १० ॥ [२१]

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११
ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥ १२
मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥ १३
रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥ १४
एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥ १५
एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥ १६ । २२

गौओं को रोकने वाले पर्वत को "मेधातिथि" आदि ने चीर डाला
और तब गौओं को पाया। कर्मों में अग्रसर अङ्गिराओं ने उषा को सुख से
प्राप्त किया। फिर अरणि-मंथन से अग्नि के प्रकट होने पर सूर्य उदित

हुए ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! अविनाशिनी, मधुर जल वाली नदियाँ यज्ञ द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर, चलने के लिए उमङ्गित अश्व के समान निर्विघ्न रूप से सदा बहती हैं ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! जो कोई हमारी हिंसा करे, उसके यज्ञ में तुम कभी भी न पहुँचना, किसी दुष्ट पड़ौसी के यज्ञ में कभी मत जाना । हमारे सिवाय किसी अन्य को मित्र न बनाना । तुम कुटिल बुद्धि वाले बन्धु की हवियों की इच्छा मत करना । हम भी शत्रु के दिए अन्न का सेवन नहीं करते । केवल तुम्हारे दिए धन को ही भोगेंगे ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्तम यज्ञ वाले हो । तुम हमारी रक्षा करते हो । तुम हवि द्वारा प्रसन्न होकर अपना आश्रय प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करो । तुम हमको बढ़ाओ । हमारे घोर पाप का नाश करते हुए इस बढ़े हुए अज्ञान को नष्ट कर डालो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! हमारे उपासना योग्य स्तोत्रों द्वारा तुम हम पर स्नेह करो । हमारी स्तुतियों से युक्त हवियों को स्वीकार करो । तुम हविरूप अन्न को ग्रहण करने वाले हो हमारे स्तोत्रों को ग्रहण करो । देवताओं के निमित्त की जाने वाली स्तुतियाँ तुम्हें बढ़ावें ॥ १५ ॥ हे अग्ने ! तुम विधायक हो । तुम कर्मों के ज्ञाता तथा मनुष्यों के द्रष्टा हो । हम बुद्धिमान मनुष्य तुम्हारी कामना से फलदायक, गूढ़, अत्यन्त उच्चारण के योग्य, हमारे द्वारा रचित इन सम्पूर्ण स्तोत्र का भले प्रकार उच्चारण करते हैं ॥ १६ ॥　　　　[२२]

४ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः । देवता—रक्षोहाऽग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति, बृहती)

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १
तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २
प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥ ३
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यमित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।

यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ ४
ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥ ५।२३

हे अग्ने ! तुम अपनी तेज-राशि को व्याधि द्वारा अपने जाल को बढ़ाने के समान विस्तृत करो। मन्त्री को साथ लेकर राजा के गमन करने के समान तुम अपने भय रहित तेज के साथ गमन करो। तुम अपनी द्रुत वेग वाली सेना के साथ शत्रु की सेना का संहार करो। शत्रुओं को नष्ट कर डालो। तुम अपने तीक्ष्ण तेज से असुरों को विदीर्ण कर डालो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी गतिलती, द्रुतगामिनी किरणें सब जगह जाती हैं। तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। शत्रुओं को हराने में समर्थ तेज द्वारा शत्रुओं को जला डालो। शत्रु तुमको बाधित नहीं कर सकते। तुम आकाश से गिरने वाले तारों के समान वेग से जाने वाले अपने तेज को प्रेरित करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त वेगवाले हो। शत्रुओं को रोकने वाली अपनी शक्ति को शत्रुओं के प्रति चलाओ। तुम्हें कोई हिंसित नहीं कर सकता। दूर या पास से हमारा अनिष्ट-चिंतन करने वाले से हमारी संतानों की रक्षा करो। हमको कोई भी शत्रु वशीभूत न कर पावे, इसका ध्यान रखो, क्योंकि हम साधक तुम्हारे ही हैं ॥ ३ ॥ हे तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्निदेव ! दुष्टों का संहार करने को तैयार होओ। शत्रुओं पर अपनी ज्वालाओं का आवरण डाल दो और उन्हें भस्म कर डालो। हे अग्ने ! हमारे साथ शत्रुता का व्यवहार करने वाले दुष्ट को सूखे काठ के समान जला डालो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम दुष्टों का संहार करने को तैयार होओ। हमसे अधिक बलवान शत्रुओं को एक-एक कर मारो। अपने दिव्य तेज को प्रत्यक्ष करो। जीवों को संतापित करने वाले दुष्टों को विजय-रहित करो। पहले पराजित हुए अथवा अपराजित शत्रुओं का नाश कर डालो ॥ ५ ॥　　　　[२३]

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥ ६
सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।

पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥ ७
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८
इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥ १०॥२

हे अत्यन्त युवा अग्ने ! तुम गतिमान एवं मुख्य हो । तुम्हारे प्रति स्तुति करने वाला मनुष्य तुम्हारी कृपा प्राप्त करता है । हे यज्ञ स्वामिन् ! तुम उसके निमित्त समस्त सौभाग्यशाली दिनों को, धन एवं रत्नादि धनों को ग्रहण करो । तुम उसके सामने प्रकाशमान होओ ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! जो व्यक्ति नित्य हवि दान एवं मन्त्र रूप स्तुतियाँ प्रेरित करने के उद्देश्य से तुम्हारी प्रीति की इच्छा करता है, वह व्यक्ति सौभाग्यशाली एवं दानशील हो । वह कठिनता से प्राप्त होने वाली अपनी सौ वर्ष की पूर्ण आयु को भोगे । उस यजमान के लिए सभी दिन सौभाग्य की वर्षा करने वाले हों । वह यज्ञ का फल प्राप्त करने के साधनों से सम्पन्न हो ॥ ७ ॥ हे अग्निदेव ! हम तुम्हारी कृपा-पूर्ण बुद्धि का स्तवन करते हैं । तुम्हारे निमित्त उच्चारण किये हुए वाक्य प्रतिध्वनित होते हुए तुम्हारा स्तवन करें । हम अपने पुत्र पौत्रादि एवं श्रेष्ठ रथ और अश्वों से युक्त हुए तुम्हारी सेवा करने वाले हों । तुम हमारे निमित्त नित्यप्रति शोभन अन्न धारण करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम दिन रात प्रदीप्त होते हो । इस लोक में मनुष्य तुम्हारा सामीप्य प्राप्त कर नित्य प्रति तुम्हारी सेवा करते हैं । शत्रुओं के धन को अपनाते हुए हम भी अपने घर में संतानों के सहित मोद करते हुए प्रसन्न हृदय से तुम्हारी विविध भाँति सेवा करते हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सुन्दर घोड़े से युक्त धन आदि से सम्पन्न रथ के सहित तुम्हारे निकट जाता है, तुम उस मनुष्य की रक्षा करते हो । जो मनुष्य तुम्हें अतिथि मान कर तुम्हारा पूजन करता है, तुम उसके प्रति मित्र-भाव रखने वाले होओ ॥ १० ॥ [२४]

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥ ११
अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥ १२
ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ १३
त्वया वयं सधन्य स्त्वोतास्तव प्रणीतश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥ १४
अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥ १५ । २५

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त युवा, बुद्धिमान एवं होता रूप हो। स्तोत्र द्वारा तुमसे जो हमारा भ्रातृभाव उत्पन्न हुआ है, उसके द्वारा हम आसुरी-वृत्ति वाले शत्रुओं को विदीर्ण करें । यह स्तोत्र रूप वाणी गौतमों द्वारा हमको प्राप्त हुई है । तुम शत्रुओं का संहार करने वाले हो । हमारे स्तुति रूप वचनों पर पूरी तरह ध्यान देने की कृपा करो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञाता हो । तुम्हारी रश्मियाँ सदा चैतन्य रहती हैं । वे सदा गमनशील, प्रमाद-रहित, अहिंसित, अश्रान्त एवं सुसंगठित रहती हुई रक्षा-कार्य में समर्थ हैं । वे रश्मियाँ इस यज्ञ स्थान पर रमण करती हुई हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी इन रक्षणक्षम रश्मियों ने ममता के नेत्र हीन पुत्र दीर्घतमा पर अनुग्रह कर उसकी शाप से रक्षा की । हे अग्निदेव ! तुम अत्यन्त मेधावी हो । अपनी उन रश्मियों का स्नेह पूर्वक पालन करते हो । तुम्हारे शत्रु तुम्हारा नाश करने की इच्छा करते हुए भी अपने प्रयत्न में विफल होते हैं ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम निःसंकोच गमन करते हो । हम स्तुति करने वाले तुम्हारी कृपा से धनवान होकर तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें । तुम्हारी प्रेरणा से हमको अन्न-लाभ हो । हे अग्ने ! तुम सत्य का विस्तार करने वाले हो । तुम पाप का नाश करने में समर्थ हो । निकट या दूर के शत्रुओं का तुम नाश करो

और सभी कार्यों का साधन करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! प्रस्तुत स्तुति द्वारा हम तुम्हारी सेवा करें। हमारे स्तोत्र को ग्रहण करो। जो दुष्ट तुम्हारी स्तुति नहीं करते, उन्हें भस्म कर डालो। हे अग्ने ! तुम मित्रों द्वारा पूजनीय हो। हमको शत्रुओं और निंदकों की निंदा पूर्ण वार्ताओं से बचाओ ॥ १५ ॥ [२५]

५ सूक्त

(ऋषि–वामदेवः। देवता–वैश्वानरः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति)

वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥ १
मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान्।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२
साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥ ३
प्रतां अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥ ४
अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥ ५ । १

हम सब समान प्रीति वाले साधक यजमान उन अभीष्टों की वर्षा करने वाले, अत्यन्त दीप्तिमान वैश्वानर अग्नि को प्रसन्न करने के निमित्त किस प्रकार हवि दें ? जैसे छप्पर को खंभा धारण करता है वैसे ही वे अग्निदेव अपने सम्पूर्ण रूप द्वारा आकाश को धारण करते हैं ॥१॥ हे होताओ ! हवियुक्त होकर हम मरणधर्मा परिपक्व बुद्धि वाले यजमानों को जो अग्निदेव धन देते हैं, उनका निरादर न करो। वे अविनाशी अग्निदेव अत्यन्त मेधावी हैं। वे श्रेष्ठ नेतृत्व वाले वैश्वानर अग्नि अत्यन्त महान् हैं ॥ २ ॥ मध्यम एवं उत्तम दोनों स्थानों में व्याप्त अग्निदेव अपने तीक्ष्ण तेज से युक्त हैं। वे अभीष्टों की वर्षा करने वाले, सारयुक्त एवं धन-सम्पन्न होते हुए भी पर्वत में छिपे गोप

के समान रहस्यपूर्ण हैं । उनका ज्ञान प्राप्त करना उचित है । विद्वज्जन महान् स्तोत्रों के अध्ययन द्वारा हमको उनका स्वरूप ज्ञान करावें ॥ ३ ॥ जो व्यक्ति मेधावी मित्र और वरुण के प्रिय तेज की हिंसा करना चाहता है, उसे तीक्ष्ण दांत वाले सुन्दर धन युक्त अग्निदेव अपने अत्यन्त क्लेशदायी तेज के द्वारा भस्म कर डालें ॥ ४ ॥ जैसे पालन करने वाले भाई से द्वेष करने वाली स्त्री तथा पति से द्वेष करने वाली मिथ्याचारिणी स्त्री दुःख देने वाली गंभीर दशा को प्राप्त हो जाती है, वैसे ही यज्ञ-विहीन एवं अग्नि से द्वेष करने वाला सत्य-रहित तथा सत्यवाणी से शून्य पापाचारी अधःपतन को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ [१]

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६
तमिन्न्वे व समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥ ७
प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥ ८
इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥ ९
अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥ १०।२

हे पावक ! हम तुम्हारे प्रति किए जाने वाले व्रत को नहीं छोड़ते । जैसे दुर्बल को कोई भारी बोझा से लाद दे उसी प्रकार तुम हमको सुन्दर धन प्रदान करो । वह धन शत्रु को रगड़ने वाला, अन्न से युक्त, पोषण करने में समर्थ, आनन्द वर्धक एवं महान् सप्त धातुओं से युक्त है ॥ ६ ॥ यह सब प्रकार उपयुक्त, समान शोधन करने वाली स्तुति पूजन विधि के द्वारा वैश्वानर अग्नि को प्राप्त हो । वह स्तुति वैश्वानर अग्नि को चढ़ाने वाली उज्ज्वल पृथिवी के समीप से अचल आकाश पर विचरण करने के निमित्त पूर्व दिशा में प्रकट

हुई है ॥ ७ ॥ विद्वानों का कथन है कि दोग्धा जिस दूध को जल के समान दुहते हैं, उस दूध को वैश्वानर अग्नि गुहा में गुप्त रखते हैं। वे विस्तृत भूमंडल के प्रिय स्थान के रक्षक हैं। यह वचन कितना अद्भुत अथवा अधिक कहा जाने के योग्य हैं ॥ ८ ॥ जिन अग्निदेव की दूध देने वाली गाय यज्ञादि शुभ कर्म में सेवा करती हैं, जो अग्नि स्वयं प्रकाशमान हैं, जो गुफा में बसे हुए हैं, जो शीघ्र गतिमान एवं वेगवान् हैं, वे महान् एवं पूजनीय हैं, सूर्य मंडल में व्याप्त उन वैश्वानर अग्नि को हम भले प्रकार जानते हैं ॥ ९ ॥ फिर पिता माता के समान आकाश पृथिवी के बीच में व्याप्त हुए प्रकाशमान वैश्वानर गौ के ऊर्ध्व भाग में श्रेष्ठ एवं सुस्वादु दूध को पीने के निमित्त चैतन्य हों। उन अभीष्टों को वर्षा करने वाले, प्रकाशमान् वैश्वानर अग्नि की जिह्वारूपिणी गौ के ऊर्ध्व स्थान में पय पान करने की इच्छा करती है ॥१०॥ [२]

ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ।११।
किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ।१२।
का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः १३।
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ।१४।
अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ।१५। ।३.

मुझसे कोई अत्यन्त आदर पूर्वक पूछे तो हे विद्वन्! मैं अवश्य सत्य बात कहूँ। हे अग्ने! तुम्हारी स्तुति करते हुए हम इस सुन्दर धन प्राप्त करें तो तुम ही इस धन के अधिपति बनो। क्योंकि तुम सभी धनों स्वामी हो। पृथिवी और आकाश में जितने भी धन हैं उन सब के तुम अधीश्वर हो ॥ ११ ॥ इस धन की साधने भूत शा

ा है ? इसका हितकारी धन कौन सा है ? हे अग्निदेव ! तुम जो ानते हो, वह हमको बताओ । इस धन को प्राप्त करने का जो सरल मार्ग , उसका श्रेष्ठ उपाय बताओ । जिससे हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में न्दा के भागी न बनें ॥ १२ ॥ मर्यादा क्या है ? करने योग्य कर्त्तव्य कौन· ौन से हैं ? जानने योग्य ज्ञान कौन से हैं ? वेगवान् अश्व जैसे युद्ध को ाता है एवं शीघ्र कार्य-क्षम व्यक्ति निरालस्य हुआ ज्ञान-विज्ञानों को प्राप्त रता है, वैसे हम भी कब गतिमान होंगे और ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करेंगे ? ज्ज्वल प्रकाशवाली अविनाशिनी उषा सूर्य के प्रकाश से युक्त हुई कब हमारे ेमित्त प्रकाशित होगी ॥१३ ॥ हे अग्ने ! अन्न से वंचित, विरुद्ध ज्ञान वाला, ातृप्त मनुष्य इस लोक में स्वल्प वचन से तुम्हारे प्रति क्या कहता है ? वह ्थियारों से रहित निहत्थे व्यक्ति की भाँति असत् ज्ञान से युक्त हुए क्लेश ाते हैं ॥ १४ ॥ इस सुख वर्षक दैदीप्यमान् अग्नि की तेज राशि यज्ञ स्थान में प्रदीप्त होती है । यजमान को सुख देने के निमित्त वे उज्ज्वल तेज को ारण करते हैं, अतः उनका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर है । जैसे अश्वादि धनों से युक्त हुआ राजा चमकता है, वैसे ही वे अग्निदेव यजमानों की स्तुतियों द्वारा पूजित होकर चमकते हैं ॥ १५ ॥ [३]

६ सूक्त

(ऋषि–वामदेव । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्ति ।)

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥ १ ॥
अमूरो होता न्यसादि विक्ष्वग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥ २ ॥
यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुधितः सुमेकः ॥ ३ ॥
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥ ४ ॥

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् । ५ । ४

हे होता अग्ने ! तुम याज्ञिकों में श्रेष्ठ हो। तुम हमसे परमोच्च पद पर अवस्थित होओ। तुम सभी शत्रुओं के धनों को जीतने वाले हो। स्तुति करने वालों की स्तुतियों को प्रशस्त करो ॥ १ ॥ वे अग्निदेव यज्ञ का संपादन करने वाले, प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाले, अत्यन्त ज्ञानी और मेधावी हैं। वे यज्ञ मंडप में यजमानों के मध्य विराजमान होते हैं। वे उदय होते हुए सूर्य के समान ऊँचे उठते हैं और खंभे के समान धूम को धारण करते हैं ॥ २ ॥ प्राचीन एवं संयत जुहू घृत से पूर्ण हुआ है। यज्ञ की वृद्धि करने वाले अध्वर्यु प्रदक्षिणा करते हुए अपनी कामना को प्राप्त करते हैं। नवोत्पन्न यूप ऊपर उठता हुआ सुखकारी होता है। हितकर्त्ता यजमान गवादि पशुओं को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ कुश के बिछाये जाने पर तथा अग्नि के समृद्ध होने पर अध्वर्युगण दोनों का आदर करने के निमित्त प्रस्तुत होते हैं। यज्ञ का संपादन करने वाले प्राचीन अग्निदेव थोड़े से हव्य को भी प्रचुर करते हैं। वे पालकों के समान ऐश्वर्य वृद्धि करते हुए उत्तम, मध्यम, अधम तीनों श्रेणी के जीवों पर अनुग्रह करते हैं ॥ ४ ॥ प्रसन्नता प्रदान करने वाले, होता रूप, मिष्ट भाषी, यज्ञ से युक्त अग्निदेव परिमित गति वाले होकर सर्वत्र गमन करते हैं। उनका प्रकाश पुंज घोड़े के समान सब ओर दौड़ता है। वे जब प्रदीप्त होते हैं तब अखिल विश्व के प्राणी डर जाते हैं ॥ ५ ॥ [४]

भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी रेप आ धुः ।६
न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ।७
द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ।८
तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।

अरुपासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ।९
ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ।१०
अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ।११ ।

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वालाएं सुन्दर हैं, तुम दुष्टों को भयभीत कर वाले एवं सर्व व्यापक हो। तुम्हारा मनोहर और कल्याणकारी स्वरूप भ प्रकार दर्शनीय हैं। रात्रि का अन्धकार भी तुम्हारे प्रकाश को रोकने में सम नहीं है। राक्षसादि दुष्ट तुम्हारे शरीर पर पापमय प्रयोग करने में सफल नह हो सकते ॥ ६ ॥ हे वैश्वानर अग्निदेव ! तुम वर्षा के कारणभूत हो । तुम्हा दान किसी के द्वारा रोका नहीं जा सकता। जिस अग्नि को प्रेरित करने माता पिता रूप पृथिवी आकाश शीघ्र ही समर्थ नहीं होते, वे अग्नि तृप्त हो पवित्र करने वाले होते हैं और मनुष्यों के बीच मित्र के समान प्रतिष्ठित हु प्रकाशित होते हैं ॥ ७ ॥ मनुष्यों की दसों अँगुलियाँ, नारी के समान जि अग्नि को प्रदीप्त करती हैं, ये अग्नि उषा काल में जागने वाले, हव्य भक्ष करने वाले, उत्तम प्रकाश से दमकने वाले एवं सुन्दर स्वरूप वाले हैं। तीखे मुख वाले फरसे के समान शत्रुओं का नाश करते हैं ॥ ८ हे अग्ने ! तुम्हारे उन घोड़ों को हम अपने यज्ञ के सम्मुख बुलाते हैं। उन मुख से फेन निकलता है। वे लाल वर्ण वाले सीधे मार्ग पर चलने वाले हैं उनकी चाल सुन्दर है और वे दमकते हुए शरीर वाले युवावस्था से यु बलवान तथा देखने योग्य हैं ॥ ९ ॥ अग्ने ! तुम्हारी रश्मियाँ शत्रुओं वश करने में समर्थ हैं। वे गमनशील, दमकती हुई और पूजा के यो रश्मियाँ मरुतों के समान विविध नाद करने वाली हैं तथा वे घोड़े के सम गन्तव्य स्थान पर पहुँचने में पूर्ण समर्थ हैं ॥ १० ॥ हे देदीप्यमान् अग्निदे यह महान् स्तोत्र तुम्हारे निमित्त ही हमने किया है। तुम्हारे निमित्त विद्वान पुरुष श्रेष्ठ वचनों का उच्चारण करते हैं। यजमान तुम्हारा यज्ञ क हैं। इसलिए तुम हमको धनैश्वर्य प्रदान करो। मनुष्यों के होता अग्नि

पूजन करने के लिए तथा पशु आदि धनों की कामना के साथ ऋत्विक् आदि विद्वान यहाँ बैठे हैं ॥ ११ ॥ [५]

७ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, उष्णिक, अनुष्टप्)

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ।१
अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ।२
ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ।३
आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आजभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ।४
तमीं होतारमानुषक्चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभि. ।५ ।६

यह अग्नि सब से श्रेष्ठ, सब के आदि में वर्तमान, सर्व सुखों के दाता, पूजनीय एवं सभी यज्ञों में स्तुति करने के योग्य हैं। इन्हें आदि काल में भृगुओं ने प्रदीप्त किया था। वे अग्नि याज्ञिकों में श्रेष्ठकर्मा, तेजस्वी एवं पाप नाशक हैं। इन परमेश्वर स्वरूप अग्नि को यज्ञ करने वाले विद्वान प्रतिष्ठित करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के द्वारा पूजा करने के योग्य हो। तुम अत्यन्त दीप्तिमान् हो। तुम्हारा प्रकाश कब अनुकूल होगा ? तुमको जीवन-दाता रूप से यह मरणधर्मा मनुष्य कब ग्रहण करेंगे ? ॥ २ ॥ वे अग्निदेव विविध ज्ञानों से युक्त, माया से रहित तथा नक्षत्रों से युक्त आकाश के समान सभी यज्ञों को सम्पन्न करने वाले हैं। उन दर्शनीय को ऋत्विक् आदि मेधावी जन प्रत्येक यज्ञ स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं ॥ ३ ॥ जो अग्निदेव प्रजाओं के सुख के निमित्त अपना तेजोमय प्रकाश देते हैं, वे शीघ्र गमनशील, यजमा

के दूत स्वरूप एवं ज्ञान के प्रकाश से युक्त हैं। उन अग्निदेव का प्रकट होना प्रत्येक प्रजाजन के लिए कल्याण करने वाला हो ॥ ४ ॥ उन होता रूप अग्नि को अध्वर्यु आदि ने यथा स्थान प्रतिष्ठित किया है। वे तेजस्वी एवं पवित्र करने वाली प्रदीप्ति से युक्त हैं। वे अत्यन्त दानशील तथा सभी के सखा रूप हैं। वे सप्त तेजोयुक्त अग्नि अनुकूल होकर यज्ञ स्थान में निवास करें ॥५॥ [६]

तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम्।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम्। ६
ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ।७
वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान्।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि। ८
कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम्।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ।९
सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ।१०
तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११ ।७

मातृभूत जलों में तथा वृक्षों में विद्यमान, जलने के भय से बहुत से प्राणियों द्वारा असेवित, गुहा में अवस्थित, अद्भुत, मेधावी और सर्वत्र हव्य सामग्री को ग्रहण करने वाले अग्नि की मनुष्यों ने उपासना की है ॥ ६ ॥ देवता निद्रा को त्याग कर उषाकाल में जिन अग्नि को यज्ञ स्थान में स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करते हैं, वे सत्य से युक्त महान् अग्निदेव नमस्कार पूर्वक दिए हुए हव्य को स्वीकार करते हुए यजमान द्वारा किये गए यज्ञ को जानते रहें ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञानवान् हो। यज्ञ के दौत्य कर्म जानने वाले हो। तुम इन दोनों आकाश-पृथिवी के बीच अवस्थित हुए अंतरिक्ष को भली प्रकार जानते हो। हे अग्निदेव ! तुम प्राचीन हो। अल्प हव्य को भी बढ़ाकर

अधिक कर देते हो । तुम [illegible]
ी । तुम देवताओं को हवि पहुँचाने के लिए [illegible]
ास होते हो ॥ ८ ॥ हे [illegible]
ार्ग काले रंग का है । [illegible]
सी तेजोमय पदार्थों से [illegible]
ारण काष्ठ को ग्रहण किया जाता है और [illegible]
ुत बन जाते हो ॥ ९ ॥ [illegible]
ग्नि के तेज को [illegible]
ारों के [illegible]
ो [illegible]
े बन जाते हैं ॥ १० ॥ [illegible]
[illegible]
बन जाते हैं ॥ [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७
परि दूळ्भो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥ ।६

हे अग्ने ! हमको सुख दो । तुम देवताओं की इच्छा करने वाले एवं महान् हो । तुम यजमान के निकट कुश पर विराजमान होने की इच्छा में आते हो ॥ १ ॥ राक्षसादि दुष्टों द्वारा भी जिनकी हिंसा नहीं हो सकती, जो मर्त्यलोक में स्वच्छन्द विचरण करने में समर्थ हैं, वे अग्निदेव अविनाशी हैं। वे सब देवताओं के दूत हैं ॥ २ ॥ ऋत्विज आदि द्वारा यज्ञ गृह में ले जाए जाकर अग्निदेव स्तुति के पात्र होते हैं या वे पोता हुए यज्ञ स्थान में जाते हैं ॥ ३ ॥ या वे अग्निदेव अध्वर्यु अथवा देवपत्नी रूप होते हैं। अथवा यज्ञ-गृह में गृहपति रूप से प्रतिष्ठित होते हैं। अथवा यज्ञ में ब्रह्मा रूप से विराजमान होते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ की कामना करने वाले मनुष्यों की हवियों की अभिलाषा करते हो। तुम अध्वर्यु आदि के कर्मों के ज्ञाता ब्रह्मा रूप हो। तुम यज्ञ कर्मों के उपदेष्टा स्वरूप हो ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम हवियाँ वहन करने के निमित्त जिस यजमान के यज्ञ का सेवन करते हो, उस यजमान के यज्ञ में दौत्य कर्म करने के लिए भी तुम इच्छा करते हो ॥ ६ ॥ हे तेजस्वी ! तुम हमारे यज्ञ का सेवन करो। हमारे हव्य को ग्रहण करो और आह्वान करने वाले हमारे स्तोत्र को सुनने का अनुग्रह करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम अपने जिस रथ पर चढ़कर सब दिशाओं में गमन करते हुए हव्यदाता यजमान की रक्षा करते हो, तुम्हारा वह रथ कभी भी हिंसित नहीं हो सकता। वह रथ हमारे सब ओर व्याप्त होता हुआ रक्षा करे ॥ ८ ॥   [६]

१० सूक्त

(ऋषि—वामदेवः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री ।)

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ १

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३
अभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४
तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५
घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६
कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥७
शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥१०

हे अग्ने ! हम ऋत्विगगण स्तुति द्वारा आज तुमको बढ़ाते हैं। जैसे घोड़ा सवार को चढ़ाता है, वैसे ही तुम हवियों को वहन करते हो। तुम यज्ञ करने वाले का उपकार करते हो। तुम भजन करने योग्य तथा अत्यंत प्रिय एवं सुखकारी हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे भजन के योग्य हो। तुम बढ़े हुए, अभीष्ट फल को सिद्ध करने वाले, सत्य के आधार रूप एवं महान् हो तथा रथी के समान नेतृत्व करने वाले हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाश से युक्त सूर्य के समान सम्पूर्ण तेज से पूर्ण एवं श्रेष्ठ अन्तःकरण वाले हो। तुम हमारे द्वारा पूजन के योग्य स्तोत्र द्वारा उत्तम चित्त वाले होकर हमारे सामने आओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हम आज वाणी द्वारा स्तुति करके तुम्हारे लिए हवि प्रदान करेंगे। सूर्य रश्मि के सामने तुम्हारी पवित्र करने वाली ज्वाला शब्दवान् है। अथवा मेघ के समान गर्जनशील है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी परम प्रिय प्रदीप्ति अलंकार के समान पदार्थों को आश्रित करने के निमित्त उनके पास रात दिन सुशोभित होती है ॥ ५ ॥ हे अग्ने तुम अन्न से युक्त हो। तुम्हारा स्वरूप शुद्ध घृत के समान पाप से शून्य है। तुम्हारा पवित्र एवं

शुद्ध तेज आभूषण के समान प्रकाशमान है ॥ ६ ॥ हे सत्य से युक्त अग्ने तुम चिरन्तन होते हुए भी यजमानों द्वारा उत्पन्न होते हो। तुम यजमानों के पाप को दूर करने में निश्चय ही समर्थ हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान हो। तुम्हारे प्रति हमारा जो बन्धुत्व और मैत्री भाव है, वह कल्याणकारी हो यह मैत्रीभाव एवं भ्रातृत्व सम्पूर्ण यज्ञ में हमारा बन्धन रूप हो ॥ ८ ॥ [१०]

११ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-वामदेवः । देवता-अग्निः । छन्द-त्रिष्टुप् बृहती, पंक्तिः ।)

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आरोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १
वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥ २
त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ३
त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४
त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५
आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥ ६ । १

हे अग्ने ! तुम बल से युक्त हो। तुम्हारा भजन योग्य तेज सूर्य के देदीप्यमान तेज के समान है। तुम्हारा तेज सुन्दर एवं दर्शनीय है, वह रात्रि में भी छिपता नहीं। तुम अत्यन्त रूप वाले हो। तुम्हारी प्रेरणा से घृतादि युक्त अन्न उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ हे बहुत जन्म वाले अग्निदेव ! तुम यज्ञ करने वालों के द्वारा पूजित हुए, स्तोता यजमान के निमित्त पुण्य लोक का द्वार खोलो तुम सुन्दर तेज से युक्त हो। देवताओं के साथ तुम यजमान को

जो धन प्रदान करते हो, हमको भी वही इच्छित धन प्रदान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हवियों का वहन करना और देवताओं के आगमन सम्बन्धी कार्य तुम्हारे द्वारा ही प्रकट हुए हैं। स्तुति रूपी वाणी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुई है और आराधना के योग्य मन्त्र भी तुमसे ही प्रकट हुए हैं। सत्य कर्म वाले एवं-हवि-दाता यजमान के निमित्त पुष्टिदायक धन एवं अन्न भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! शक्तिशाली, हव्य वहन करने वाले, यज्ञ कर्मों के साधक, महान् और सत्य बल से युक्त पुत्र तुम्हारे द्वारा ही प्रकट हुए हैं। देवताओं द्वारा प्रेरित कल्याणकारी ऐश्वर्य तुम्हारे द्वारा प्रकट होता है। विशेष गति वाला, वेगवान्, शीघ्रगामी अश्व भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो। देवताओं की कामना करने वाले मनुष्य स्तुतियों द्वारा तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम देवताओं में आदि देवता हो। तुम दीप्तिमान हो। तुम्हारी जिह्वा देवताओं को बलवान् बनाने वाली है। तुम पापों को दूर करते हो तथा दैत्यों का संहार करने की कामना करते रहते हो ॥ ५ ॥ हे बलोत्पन्न अग्निदेव ! तुम रात्रि के समय मंगलकारी एवं प्रकाशमान होकर हमारे कल्याण के निमित्त जागरूक रहते हो। जिस कारण वश तुम यजमानों को पुष्ट करते हो, उसी से हमारे समीप उत्पन्न हुई मति-हीनता को हटाओ। हमारे पास से पाप को हटा दो। हमारे पास से कुबुद्धि को दूर करो ॥ ६ ॥ [११]

१२ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः।)

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक् त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१
इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् । २
अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ।३

यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व स्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ।४
महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः । ५
यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ।६ ।१२

हे अग्ने! स्रुक को स्थिर कर जो यजमान तुम्हें प्रदीप्त करता है ए जो तुम्हें नित्य प्रति तीनों सवनों में हवि रूप अन्नदान करताहै, वह तुम्हें तृ करने वाले कर्म द्वारा तुम्हारे तेज का ज्ञान प्राप्त कर धन से शत्रुओं जीतत है ॥ १ ॥ हे अग्ने! जो व्यक्ति तुम्हारे लिए यज्ञ-साधक काष्ठ को लाता तथा जो व्यक्ति काष्ठ की खोज में थककर तुम्हारे तेज की पूजा करता है ए रात और दिन में तुम्हें प्रज्ज्वलित करता है, वह यजमान संतान अ पशुओं से सम्पन्न होकर शत्रुओं का नाश करता और धन प्राप्त करत है ॥ २ ॥ वे अग्नि महान् शक्ति के स्वामी तथा श्रेष्ठ अन्न और पशु-रू धन के अधिपति हैं। अत्यन्त युवा एवं अन्नवान् अग्नि सेवा करने वाले यज मान को सुन्दर धन से सम्पन्न करें ॥ ३ ॥ हे सद्यः युवा अग्निदेव! तुम्हा सेवकों के मध्य हम अज्ञान के वश में पड़े हुए तुम्हारा अपराध करते हैं, तु पृथिवी के निकट हमको उन अपराधों और पापों से बचा दो। हे अग्ने! तु सर्वत्र प्राप्त हो। हमारे पापों को हटाओ ॥ ४ ॥ अग्ने! तुम हमारे मित्र हो हमने इन्द्रादि देवताओं अथवा सद् मनुष्यों का जो अपराध या पाप किया है उस घोर पाप से हम कभी भी विघ्नों को प्राप्त न हों। तुम हमारी संतान क भी पाप-रूप उपद्रवों से बचाते हुए सुख प्रदान करो ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तु पूज्य एवं निवास से युक्त हो। तुमने जिस प्रकार पाँवों से बँधी हुई गौ क बचाया था, उसी प्रकार हमको पाप से बचाओ, हे अग्ने! हमारी आयु तुम्हा द्वारा बढ़ायी गई है, तुम इसे और भी बढ़ाओ ॥ ६ ॥ [१२

१३ सूक्त

(ऋषि—वामदेवः। देवता—अग्निः। छन्दः—त्रिष्टुप्।)

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।

...मश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १
...वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
...नु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ २
सोमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
... सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ ३
...वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
...दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ ४
...अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ।५।१२

हे श्रेष्ठ मन वाले अग्निदेव ! अन्धकार का नाश करने वाली उषा के प्रकाश के पहले ही तुम प्रवृद्ध होते हो । हे अश्विनीकुमारो ! तुम यजमान के घर में गमन करो । ऋत्विक् आदि को प्रेरणा देने वाले सूर्य अपने तेज सहित उषा काल में उदित होते हैं ॥ १ ॥ सूर्यदेव किरणों को विकसित करते हैं । जब किरणें सूर्य को आकाश में चढ़ाती हैं, तब वरुण, मित्र और अन्य सभी देवता अपने कर्मों के पीछे चलते हैं, उसी प्रकार, जिस प्रकार बलिष्ठ बैल गौओं की इच्छा कर धूल उड़ाता हुआ गौओं के पीछे चलता है ॥ २ ॥ सृष्टि रचयिता देवताओं ने संसार के कार्य को न त्याग कर अन्धेरे को नष्ट करने के निमित्त जिस सूर्य की रचना की, वह सूर्य समस्त प्राणियों को जानने वाले हैं । उन्हें सात घोड़े धारण करते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रकाशमान् सूर्य ! तुम संसार का पालन करने वाले अन्न के निमित्त रश्मियों को बढ़ाते हो । तुम ही उस काले रङ्ग की रात्रि को भगाते हो और अत्यंत बोझ को भी ढो लेने वाले घोड़ों द्वारा गमन करते हो । सूर्य की गतिमान् रश्मियाँ अन्तरिक्ष में स्थिति अन्धकार को दूर करने वाली हों ॥ ४ ॥ प्रत्यक्ष प्राप्त सूर्य को कोई बांध नहीं सकता । नीचे रहने वाले सूर्य की कोई हिंसा नहीं कर सकता । वे किस बल ... ऊँचे उठते हुए चलते हैं ? आकाश में खंभे के समान हुए सूर्य स्वर्ग ... आश्रय देते हैं । इसे कौन देखता है ? ॥ ५ ॥

[१...